प्रस्तावना

कलाकार, वैज्ञानिक अथवा शूरवीर की तरह एक राजनीतिज्ञ सहज ही लोकमान्य नहीं बन सकता। उसकी महानता लोगों के सामने उतने स्पष्ट रूप से और ठोस कार्यों में प्रकट नहीं होती जितनी कि एक कलाकार की उसकी रचना में, एक वैज्ञानिक की उसके आविष्कार अथवा अनुसन्धान-कार्यों में, या एक युद्ध-विशारद की उसे प्राप्त सैनिक सफलताओं में। राजनीतिज्ञ का मुख्य कार्य अपने देश की नीतियों में परिवर्तन लाना और उससे भी अधिक लोगों की विचारधारा को एक नया मोड़ देना है। जो राजनीतिज्ञ जितना ही बड़ा ही होगा, उतनी ही कम सम्भावना उसकी महानता को निश्चित सफलताओं अथवा घटनाओं से आँकने की होगी। फिर, उसका कार्य स्वयं अपने तक ही सीमित नहीं होता; उसे तो ऐसे लोगों में कार्य करना पड़ता है जिनमें से अधिकांश उसके ध्येय को समझ नहीं पाते और जो थोड़े-से लोग अपनी-अपनी दृष्टि से उसे देखते-समझते भी हैं, वे अकसर उसके विरोधी बन बैठते हैं। यही कारण है कि उसका कार्य अधिकांशतः अधूरा ही रहता है और अपने आदर्श की दिशा में जो भी प्रगति हो, उसीसे उसे संतोष कर लेना पड़ता है।

लिंकन भी इस नियम का अपवाद नहीं था। पिछली तीन शताब्दियों में उसकी कोटि के कुछ थोड़े-से ही राजनीतिज्ञ हुए हैं। अपने समकालीनों की गलतफ़हमी का वह शिकार हुआ और बहुत कम लोग उसके जीवन-काल में उसकी वास्तविक महानता को समझ पाये। उसका स्थान निश्चय ही विश्व के महान व्यक्तियों में है। सत्य के प्रति अटूट लगनवाला यह अडिग और कठोर श्रमशील व्यक्ति केवल इसीलिए महान नहीं है कि अपने विश्वासों के प्रति वह सदा वफ़ादार रहा और जो भी उसने ठीक समझा उसी के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ जुट गया, बल्कि एक और विशेषता उसके चरित्र में है जो उसे वास्तविक महापुरुषों के सन्निकट ले आती है, और वह है अपनी प्रौढ़ावस्था में भी बच्चों का सा सीधा और सरल स्वभाव।

—सम्पादक

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ

पहला अध्याय

अब्राहम लिंकन का बाल्यकाल

इस जीवनी का नायक अब्राहम लिंकन आज भी अमरीका के नागरिकों के लिये राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। उनकी इस श्रद्धा में निरंतर वृद्धि हुई है, क्योंकि समय के साथ-साथ लिंकन के महत्वपूर्ण कार्यों का प्रमाण इस दिशा में पूर्ण सार्थक सिद्ध हुआ है। इस अगाध श्रद्धा में ऐसी अनोखी अनुभूति है कि वे लोग भी जिनके पितामहों ने लिंकन के विरुद्ध गृहयुद्ध में शस्त्र उठाये थे आज भी हार्दिक श्रद्धा से उन्हें नमन करते हैं। उनकी मृत्यु यद्यपि अपने समय की अत्यन्त दुखद घटना है, परन्तु इस दुर्घटना के बजाय उनके जीवन का महान लक्ष्य ही लोगों के स्मृति-पट पर अधिक अंकित है।

अन्य राष्ट्रों के लोग इसमें कदापि संदेह नहीं करेंगे कि जिस व्यक्ति की इतनी प्रशंसा की गयी है वह निस्संदेह इसके लिये सत्पात्र है। फिर भी केवल अमरीका के गृहयुद्धकालीन इतिहास के पन्नों को उलट कर यदि वे देखें, तो उन्हें यह आश्चर्य हुए बिना न रहेगा कि इस व्यक्ति को निर्विवाद ही यह अपार श्रद्धा कैसे प्राप्त हो गयी।

गृहयुद्ध के दिनों में अमरीका के राष्ट्रपति की स्थिति तथा उसके क्रियाकलापों की तुलना ऐतिहासिक शूरवीरों व तलवार के धनियों के कारनामों से नहीं की जा सकती। फिर भी यह कम आश्चर्यजनक नहीं कि उस समय, जबकि दोनों ओर ही योद्धाओं व शूरवीरों की कमी नहीं थी, भाग्य से अकेला यह व्यक्ति ही सारे यश का भागीदार बन गया और वह भी तब, जब उसका गृहयुद्ध में प्रमुख कार्य एक सामान्य नागरिक न्यायाधीश (civil magistrate) के रूप में निर्णय प्रदान करना मात्र था। इस प्रसिद्धि की कहानी को बार बार दुहराने की अपेक्षा लिंकन के जीवनी-लेखक को इतिहास की गहराइयों में न खो कर यही बताना चाहिए कि अमरीकी जन-जीवन कैसी परिस्थितियों व वातावरण से परिचित रहा। यदि उसका स्वयं का दृष्टिकोण इससे बिलकुल मेल न खाता हो तो भी उसे बिना किसी हिचकिचाहट के सभी तथ्य प्रस्तुत करने चाहिए।

जहाँ तक निष्पक्षता का प्रश्न है, इसका अर्थ यही है कि वह तथ्यों की अवहेलना न करे, वरन् उन्हें भी विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करे जिनके प्रति उसका विरोध हो।

अमरीका के सोलहवें राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का जन्म १२ फरवरी १८०९ में केन्टकी के देहात में, एक खेत में स्थित लकड़ी के सामान्य झोंपड़े में हुआ। पचास वर्ष बाद जब उसे राष्ट्रपति-पद के लिये मनोनीत किया गया, तब लोगों ने उसके विगत जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर उसे लिपिबद्ध करना चाहा। इस बारे में जब उससे प्रश्न पूछे गये तो उत्तर में लिंकन ने कहा—"मेरे विगत जीवन को उलटपुलट कर उसमें से महानता ढूंढ कर इतिहास बनाने का प्रयत्न निरा पागलपन है। इसे एक ही वाक्य में यों कहा जा सकता है—एक दीन की छोटी-सी सामान्य कहानी! यही मेरा जीवन था, जैसा कि साधारण किसानों का होता है। चाहे कितनी भी छानबीन क्यों नहीं की जाय, इससे अधिक मेरे विगत जीवन के बारे में कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

फिर भी उसके निकटवर्ती मित्र लिंकन द्वारा कभी-कभी चर्चा करने पर विगत जीवन के कुछ-कुछ संस्मरण जुटा पाने में सफल हो सके। विभिन्न राज्यों की समस्याओं पर विचार-विमर्ष करते समय अपने देहात की चर्चा करते हुए भी वह अपने बारे में अधिक उदासीन रहता था तथा यह नहीं बताता था कि उसने वहाँ पचास वर्षों में कौनसी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लिंकन के बाल्यकाल, किशोरावस्था व विद्यार्थी-जीवन के कुछ ही संस्मरण प्रकाश में आ पाये हैं। ये कहानियाँ महान व्यक्तियों के जीवन-चरित्रों में प्रस्तुत क्रियाकलापों के समान ही हैं तथा तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत भी की जा सकती हैं। ये अशिक्षित विद्यार्थी के धैर्य की कतिपय कहानियाँ, विशालकाय लड़के की दयालुता और चपलता, सीधे-सादे देहाती नौजवान के क्रियाकलापों की कहानियाँ हैं; परन्तु ये ही उसके जीवन को पूर्णतया समाविष्ट नहीं करतीं। फिर भी, इनका कैसा ही स्वरूप क्यों न रहा हो, हम उसके चारित्रिक व मानसिक विकास की गति का पता लगा सकते हैं। यह तथ्य निर्विवाद है कि लिंकन को स्वयं भी अपने विगत जीवन का विचार आकर्षणहीन लगता था, जिन कष्टों पर उसने विजय पायी, उससे वह आत्मसंतुष्ट नहीं हुआ और युवावस्था के उस आनन्द के बारे में भी उसके हृदय में कोई गुदगुदी नहीं होती थी।

ठीक यही बात उसके परिजनों व परिवार के बारे में कही जा सकती है। निम्नस्तर से जीवन आरंभ करने के प्रति घृणा प्रत्येक ईमानदार व्यक्ति को अरुचिकर लगती है, लेकिन लिंकन के लिए तो यह कदाचित् अकल्पनीय ही

होती। संभवतया उसने इस दिशा में कभी विचार ही नहीं किया। लिंकन ने कभी भी अपने पूर्वजों में अपने देशवासियों की तरह रुचि नहीं प्रकट की। जब कभी भी उसके निकटतम परिजनों की चर्चा चलती, तब ऐसा प्रतीत होता मानों वह किसी तरह की उदासी से ओतप्रोत हो गया हो। इसके क्या कारण हो सकते हैं? उसकी मृत्यु के बाद ही यह निश्चित पता चला कि १६३८ में नोर्विचवासी एक सज्जन सेम्युअल लिंकन मेसाचुसेट्स आ कर आबाद हो गये थे। उक्त सज्जन के कतिपय वंशधारी वरजीनिया में एक धनीमानी परिवार के लोग बन गये तथा गृहयुद्ध के दिनों में उनमें से बहुत से लोगों ने दक्षिण का पक्ष लेकर युद्ध में भाग लिया। १७८० में इन वंशजों में से अब्राहम लिंकन, जो राष्ट्रपति लिंकन के पितामह थे तथा सेम्युअल के पौत्र थे, वरजीनिया से पर्वतश्रेणियाँ पार कर नये प्रदेश केन्टकी में आकर बस गये। इस तरह बस जाने के कोई चार वर्ष बाद की बात है कि एक दिन जब वे अपने तीन पुत्रों मोर्डेसाई, जोशिया और थामस के साथ अपने खेत में काम कर रहे थे, तब पास की झाड़ियों में से एक गोली उनको आकर लगी और उनका प्राणान्त हो गया। मोर्डेसाई घर की ओर लपका। जोशिया निकटवर्ती किले की ओर भागा और छः वर्षीय थामस पिता की लाश के पास खड़ा रहा। मोर्डेसाई बंदूक लेकर लौटा और खिड़की से देखने पर उसने युद्ध के रंगों से सज्जित एक रेड इन्डियन आदिवासी को थामस की ओर निशाना साधते हुए पाया। तत्काल उसने गोली छोड़ी और उस आदिवासी को धराशायी कर दिया। थामस भी भागकर कमरे में चला आया और उन्होंने आसपास की झाड़ियों से जारी गोलीवर्षा का निरंतर उत्तर दिया। कुछ ही समय बाद जब जोशिया किले से सशस्त्र सैनिकों के साथ लौटा, तब वे आदिवासी वृद्ध अब्राहम की मृत देह को छोड़कर भाग खड़े हुए। अब्राहम के उत्तराधिकारी मोर्डेसाई ने भी समृद्धिपूर्वक जीवनयापन किया। पश्चिमी इलिन्यास में उन दिनों मोर्डेसाई एक प्रतिष्ठित धनी व्यक्ति के रूप में प्रख्यात था। आदिवासियों के बारे में इसने अपनी दृढ़ धारणा बना ली थी। उनके ताम्रवर्णी शरीर को देखते ही उसके तन-मन में हिंसा की भावना प्रज्वलित हो उठती थी और वह बंदूक लेकर झाड़ियों में घुस जाता और एक पुत्र की आत्मचेतना व शिकारी की भावना तब तक शांत नहीं हो पाती जबतक कि आदिवासी को बेकाबू कर वह गोली का शिकार नहीं बना लेता। फिर भी लोगों का कहना था कि वह बहुत नेकदिल आदमी था। जोशिया भी इलिन्यास को चला आया और

वह भी एक भले तथा वृद्ध धनी सज्जन के रूप में उस क्षेत्र में प्रख्यात हो गया। परन्तु राष्ट्रपति लिंकन तथा उनकी बहिन को ऐसे ख्यातिप्राप्त पूर्वजों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था और न उन्हें अपने पिता के निकट परिजनों का ही पता था। विगत जीवन के प्रारंभिक इक्कीस वर्ष जिसके साथ उन्होंने व्यतीत किये, वे उल्लेखनीय हैं। थामस लिंकन अपने बड़े भाइयों मोर्डेसाई और जोशिया की तरह कभी सुखी व समृद्धिशाली नहीं हो पाया, न किसी व्यक्ति को उसके सत्कर्मों या किसी अन्य उल्लेखनीय कार्य के बारे में कोई स्मृति ही है। थामस ने जोसेफ हांक्स से बढ़ईगिरी का धंधा सीखते समय अपने मालिक की भतीजी नेन्सी से विवाह कर लिया तथा नेन्सी ने एक कन्यारत्न सारा को जन्म दिया। उसके चार वर्ष बाद होजेनविल खेत के निकट अमरीका के भावी राष्ट्रपति अब्राहम का जन्म हुआ। कई वर्षों तक इधर-उधर भटकने के बाद १८१६ में इन्डियाना तट पर ओहियो के निकट थामस ने अपना घर बसा लिया। इसी स्थान के निकट जेन्ट्रीविल नामक ग्राम का बाद में आविर्भाव हुआ। थामस इस स्थान पर अब्राहम के इक्कीस वर्ष की वय प्राप्त करने तक रहा। अब्राहम लिंकन जब ८ वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहान्त हो गया। बड़ी बहिन ने उनकी देखभाल की। पत्नी की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् ही लिंकन के पिता केन्टकी अकेले लौट आये और श्री जान्स्टन की विधवा सारा से पुनर्विवाह करने में सफल हुए। सारा से थामस का प्रथम विवाह के पूर्व असफल प्रणय भी रह चुका था। लिंकन परिवार में इस परिणाम से सार्थक-निरर्थक वृद्धि भी हुई, जिनमें सारा के पुत्र जान जान्स्टन का नाम भी उल्लेखनीय है। अब्राहम के ननिहाल वाले तथा उनके अन्य पड़ौसी भी इस स्थानान्तर में उनके साथ रहे, जिनमें जान्स और डेनिस प्रमुख हैं। अंत में १८३० में ये सभी इलिन्यास के सुदूर पश्चिम तक पहुँच गये। अब्राहम अपने बाल्यकाल से ही विभिन्न तरह के काम अपने पिता व परिवार वालों के लिए किया करता था, जिन्हें उसके पिता पसन्द करते थे। जब वह किशोरावस्था में था, तभी उसे कुछ समय के लिये एक नदी में चलनेवाली नौका की व्यवस्था सौंपी गयी। इस कार्यकाल में उसने अपने प्रारंभिक जीवनकाल की दो साहसिक यात्रायें पूर्ण कीं। उसने पहली यात्रा दो नौका-अधिकारियों के साथ नदी में मालवाही नौका में न्यू आरलिअन्स तक की। दूसरी महत्त्व की यात्रा उसने इलिन्यास में बसने के शीघ्र बाद की। वह वहाँ से न्यू सालेम लौट आया जो उसके पिता के खेत से कुछ दूरी पर था।

यहाँ एक दुकान खुलने जा रही थी और लिंकन को उसमें काम मिलने की भी संभावना थी। अब्राहम अब वयस्क हो चुका था और वहाँ के प्रचलित रिवाजों के अनुसार वह पिता के घर से पृथक होकर स्वतंत्र बस सकता था।

इन सभी आव्रजनों में उसके पिता थामस को सामान लादने-ले जाने में कठोर श्रम करना पड़ा। सामानों में बोरिये, बिस्तर, लकड़ी, कबाड़ और मकान का भी सामान होता था, जिन्हें घर में बनी नाव पर ढोकर ले जाना पड़ता था। थामस लिंकन इतना परिश्रमी व्यक्ति था, फिर भी इतिहासज्ञों की उस पर कुछ क्रूर दृष्टि रही। ऐसा लगता है कि वह कहीं भी अपना सिलसिला नहीं जमा पाया। कुछ भी हो, वह रुपये-पैसे का महत्व कभी नहीं समझ पाया और न कोई जमा-पूंजी ही वह छोड़ सका। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि वह पियक्कड़ था, परन्तु यह भी सर्वविदित है कि केन्टकी के लोगों में आम तौर पर सुरापान का अधिक प्रचलन है। इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि उसने सदा अपना फर्ज पूरा किया; परन्तु प्रभावशाली पिता वह सिद्ध नहीं हो सका। या तो वह कभी हाथ ही नहीं उठाता या जब पीटता तो बुरी तरह पीटता और बहुधा बिना अपराध के ही। वह न तो विद्वान ही था और न उसने अपने पुत्र को विद्यानुराग के लिए प्रोत्साहित किया। फिर भी उसे कहानियों में अत्यधिक रुचि थी। वह शांत तथा विनम्र स्वभाव का व्यक्ति था, परन्तु अधिक उकसाये जाने पर यदि क्रोधित होता तो इतना कड़ा व कठोरमिज़ाज हो जाता कि सम्हालना कठिन हो जाता। अब्राहम के चले जाने के बाद वृद्ध थामस अच्छे खेतों की तलाश में सुदूर पश्चिमी तट की ओर आव्रजन करता रहा और सदा ही वह दूसरों के कर्ज में डूबा रहा। अब्राहम ने, जिन दिनों वे स्वयं अपनी आजीविका के लिये संघर्ष कर रहे थे, धन से अपने पिता की यथासम्भव सहायता भी की। पिता के अंतकाल के पूर्व उन्होंने जो पत्र लिखा उसमें सच्ची और गहरी हार्दिक सहानुभूति निहित है। एक-एक शब्द से करुणा टपकती है। लिंकन ने पत्र में लिखा कि उनके घर में स्वयं बीमारी होने के कारण वे पिता से इतनी दूर भेंट कर सकने में असमर्थ हैं और जैसी कि निर्धन परिवार में आश्चर्यजनक रूप से स्पष्ट बात कहने की सीधी भावना पायी जाती है, उसी भावना से खरे-खरे शब्दों में उन्होंने पिता को लिखा कि यदि किसी तरह ऐसी भेंट संभव भी हुई, तो दोनों को आनन्द की अपेक्षा पीड़ा ही अधिक होगी। सभी ने इस बात पर जोर दिया है कि लिंकन अपने पिता के अनुरूप कितने कम थे; लेकिन उनसे प्राप्त कुछ विशेषताओं के दर्शन हमें अन्यत्र भी होंगे।

बड़े होने पर लिंकन ने एक बार अपनी माँ की चर्चा करते हुए (ये कभी भूले भटके ही उसका जिक्र करते थे) उसके वात्सल्य भाव की गहरी सराहना में कहा—"आज जो भी सद्‌गुण या खूबियाँ मुझमें हैं, वे सब उसी की देन हैं।" इस वार्ता के दौरान में उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बताया कि कैसे वे अपनी माता से वंशानुगत गुण प्राप्त कर पाये, जिनसे वे लिंकन और हांक्स परिवारों से विभिन्न थे। उन्होंने कहा कि उनकी माता वरजीनियावासी एक सज्जन की नाजायज़ संतान थीं। उनका नाम वे नहीं जानते, परन्तु इतना निश्चित है, कि उनकी माँ में अपने पिता के विशिष्ट गुण निहित थे।

अब्राहम लिंकन की बहिन सारा का विवाह जेन्ट्रीविल के श्री ग्रिगसबी के साथ हुआ था। जेन्ट्रीविल के लोगों की तरह ये संपन्न परिवार के थे। ऐसा कहा जाता है कि अब्राहम लिंकन के बाल मस्तिष्क में यह धारणा प्रबल हो चुकी थी कि ग्रिगसबी लोगों ने सारा के साथ सद्व्यवहार नहीं किया और अनेक संतापों का यह मूल कारण था। इनकी सौतेली माता सारा बुश लिंकन ने सदा इनका ध्यान रखा और ये भी उसे नहीं भूले। बाल्यकाल में उसने सदा ही इनको पढ़ने-लिखने में प्रोत्साहित किया। यदि कोई दूसरी चिड़चिड़ी गृहिणी होती तो इनके अध्ययन में भयानक बाधा बन कर खड़ी हो जाती। वह सदा इसी आशा पर रही कि लिंकन राष्ट्रपति पद के लिये नहीं चुना जाय, क्योंकि उसे यह भय था कि शत्रु उसे मार डालेंगे और यथार्थ में उसने यह भय सत्य होते भी देखा। अब्राहम लिंकन ने अंतिम क्षण तक अपनी माँ के प्रति अगाध प्रेम प्रकट किया। वह अपने पुत्र जान्स्टन के साथ रहने लगी थी। अपने युवाकाल के इस साथी के बारे में लिखे गये उसके पत्र लिंकन के स्मृति ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। वे इसलिए पठनीय हैं कि ऐसे फिजूलखर्च व्यक्ति को जो अपने कष्टों को नहीं जीत सकता, कोई क्या सलाह दे और क्या उसके साथ व्यवहार करे, यह उनमें पाया जाता है। यह खेदजनक है कि प्रारंभ में अपने पत्रों में 'सदा ही तुम्हारा स्नेहशील भाई' लिखने वाला अंत में केवल 'तुम्हारा विश्वासजनक' जैसा सामान्य सम्बोधन लिखने लगा था; परन्तु इस अनुभूति की क्षीणता का सच्चा कारण है और वह यह कि जान्स्टन स्वयं अपनी माँ के साथ भी धोखा-फरेब करने लगा था और अब्राहम लिंकन के लिए इसे रोकना जरूरी था।

लिंकन परिवार में दो और नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें एक डेनिश हांक्स हँसोड़ व मज़ाकिया स्वभाव का था, तो जान हांक्स गंभीर और दृढ चरित्र

का व्यक्ति था। ये और जान जान्स्टन घटनाक्रम में पुनर्प्रवेश करते हैं अन्यथा लिंकन के परिजनों की कहानी यहीं समाप्त होती है। प्रारम्भ में ही इन लोगों के इतने महत्वहीन उल्लेख का कारण यह नहीं है कि ये लोक दुर्जन अथवा सामान्य व्यक्ति थे। कारण यह है कि जबसे लिंकन ने अपने पुरुषार्थ से संसार के कार्यक्षेत्र में कदम रखा, उसने स्वयं ही यह धारणा बना ली कि बस यहीं तक उसके परिवार का उससे सम्बंध है; इससे आगे कुछ नहीं। उसके अत्यंत निकट के लोग असमय में ही कालकवलित हो गये। सही अथवा गलत, उसने अपने मन में यह धारणा बना ली कि उसे किसी अज्ञातनाम पितामह (नाना) से उनके वंशानुगत गुण प्राप्त हुए हैं। प्रारंभ के दिनों में ही उसने अपने को महत्वाकांक्षी पाया होगा और इस दिशा में अपनी बुद्धि का भी परिचय दिया होगा। परन्तु बारह से इक्कीस वर्ष का उसका ऐसा जीवनकाल है जिसमें उसे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जो उसको प्रेरणा अथवा सराहना के दो शब्द भी कहता, जब कि यही समय जीवन के सर्वांगीण विकास का प्रारंभिक काल माना जाता है। उसकी स्मरण-शक्ति पर जो यह पाला पड़ा, उसने उसके जीवन पर सदा के लिये घनीभूत पीड़ा की विशिष्ट छाप अंकित कर दी, जो उसके चेहरे पर भी झलकती थी। निस्संदेह उसने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही यह समझ लिया था कि वह विलक्षण है और उसकी यह असामान्यता उसकी शक्ति से सम्बंधित है; शायद उसे जीवन-संघर्ष में एकाकी ही खड़ा रहना पड़े। वह अपने को इस योग्य भी समझने लगा था।

इस सुदूर पश्चिमी क्षेत्र में कृषिजीवी साहसी के लिये अप्रयुत स्वतंत्रता के महान अवसर प्राप्त थे। परन्तु लिंकन जब तक वयस्क हुआ, प्रगति व परिवर्तनकाल आरंभ हो चुका था और इसलिए उस समय शीघ्र समृद्धिशाली बनने की आशा नहीं की जा सकती थी। इसके विपरीत सभी लोगों के लिए कठिन दिक्कतें पैदा हो गयी थीं। सारा प्रदेश घने बनों से घिरा था। इसमें बसने वालों के लिये प्रारंभ में भूमि को साफ करने तथा वहाँ रक्षात्मक बसेरा बनाने का कठिन श्रमसाध्य कार्य था। यह ऊबड़-खाबड़ बसेरा छोटा-सा मकान अथवा अर्धचन्द्राकार तंबू की शक्ल में खड़ा किया जाता, जो एक ओर से खुला रहता था। सर्दी व वर्षा के मौसम से बचने के लिये वहाँ कोई आड़ नहीं होती थी। ठीक ऐसे ही स्थान में लिंकन परिवार ने जेन्ट्रीविल में अपनी पहली शीत ऋतु गुजारी। एक बार स्थान चुन लेने व भूमि साफ कर लेने के बाद भी कृषि करना अथवा ऐसी उर्वरा भूमि प्राप्त करना जैसी कि रेलों व कृषिजन्य मशीनों के विकास

के कारण, बाद में सुदूर पश्चिम में बसने वालों को प्राप्त हुई, प्रारंभ में निश्चित नहीं थी। न उस समय मिसीसिपी नदी के दक्षिण तक फैले विशाल समतल घास के मैदानों में उत्पन्न कृषि-उत्पादनों के लिये पूर्वी या यूरोपीय बाजार ही उपलब्ध थे।

जब तक जनसंख्या में विशेष वृद्धि नहीं हुई, ये कृषक अन्वेषक परिवार अपने हाथों से ही अधिकतर उत्पादन करते थे, विशेषकर जीवन की आवश्यकताओं व सुविधा की पूर्ति के लिए। इनके माल के लिए पूर्वी बाजार नहीं थे, क्योंकि १८४० तक रेलें नहीं बनी थीं और उसके कई वर्षों बाद कृषिजीवी लोग पूर्वी पर्वतों के पार गये। कभी-कभी चपटे तह की नाव में माल ढोकर पास की खाड़ी से मिसिसपी नदी के टेढ़े मेढ़े पेचीले जलमार्गों में हो कर ओहियो या न्यू ओरलिअन्स तक माल ले जाया जाता था, परन्तु लौटते समय नदी में ऊपर की दिशा में माल ढोकर नहीं लाया जा सकता था। व्यापार में चाकू और कुल्हाड़ी को मूल्यवान माना जाता था। लिंकन के जन्म के दिनों में दूर पूर्वी क्षेत्र में ऊनी वस्त्र बहुत ही कम मिलते थे। उस समय श्वेतांग नर-नारी आदिवासियों की ही तरह हिरणों के चमड़े को मुख्यतया प्रयोग में लाते थे। जंगलों में शिकार का बाहुल्य था और जब पश्चिमी क्षेत्र का प्रारंभिक विकास हुआ, तब मनुष्य को अपने भरण पोषण के लिए आखेट पर निर्भर रहना पड़ता था। सर्दी की ऋतु सबसे बड़ी और कष्टकर होती थी और एक बार तो इलिन्यास की गहन हिम भरी सर्दी लोगों को बहुत दिनों तक याद रही। वह अचानक ही आरंभ हुई तथा उससे भयंकर तबाही पैदा हो गयी। इस प्रदेश में अन्य वन प्रदेशों की ही तरह प्रारंभ में ही फसलों में कीड़ा लगने लगा तथा मलेरिया का विषम प्रकोप हुआ। प्रारंभ में उपनिवेशवासियों की सामाजिक अथवा धार्मिक सभाओं में अधिक उपस्थिति रहती थी, परन्तु बाद में यह अनुपात घटने लगा क्योंकि बसने वालों का जीवन अधिक एकाकी और कठोर होता चला गया।

अब्राहम लिंकन ने अपनी किशोरावस्था में अच्छा शारीरिक विकास किया और उन्नीस वर्ष की आयु में उसका कद छै फुट चार इंच का हो गया था, परन्तु वज़न लम्बाई के अनुपात में अनुकूल नहीं था। अनुचित विकसित स्वरूप लम्बी भुजाएं, लम्बे हाथ, सिकुड़ा हुआ सीना तथा चेहरे पर पड़ी अजीब झुर्रियाँ इसकी सूचक हैं कि विकास के उस काल में उसे पौष्टिक तथा पूरा भोजन नहीं मिल पाया। फिर भी उसकी भुजाएं शक्तिशाली थीं और वह

कितना अधिक वज़न उठा लेता और कितनी शक्ति के साथ कुल्हाड़े के वार करता था, इस बारे में आश्चर्यजनक विविध कथाएं प्रचलित हैं। ऐसे नम्र और विचारशील बालक के लिए, जिसके हृदय में गुप्त महत्त्वाकांक्षा छिपी हो, ऐसी शक्ति का पाया जाना वरदान-स्वरूप था, और उस वातावरण में ऐसा होना भी अत्यंत ही आवश्यक था। लड़कपन में लिंकन ने कई तरह के काम करने में कुशलता दिखायी। उसने कभी यह विरोध नहीं प्रकट किया कि इस तरह का कड़ा शारीरिक श्रम उसके मानसिक विकास के अनुकूल नहीं है। अपने साथ के लड़कों में उसका काफी आदर था। इन्डियाना और केन्टकी में बसने वाले लोगों में उस समय इतना पुरुषार्थ शेष नहीं था जिसके लिए केन्टकी पहले प्रसिद्ध था। फिर भी पहाड़ी सीमान्त प्रदेशों के लोगों की तरह इनकी अफलातून के इस सिद्धान्त में मान्यता थी कि उठते हुए यौवनकाल में मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने विरोधों को घूँसों से सुलझायें। युवा लिंकन के ऐसे ही कुछ गंभीर झगड़े संतोषजनक रूप से उसके पक्ष में निर्णायक रहे। इन दंगलों ने कभी दंगे-फिसाद का रूप ग्रहण नहीं किया क्योंकि वहाँ इस तरह की घटनाएं घटनी असामान्य नहीं थीं। अतएव लिंकन का स्वाभाविक व विचित्र विकास ठीक उसी ढंग पर हुआ। यही कारण था कि बाद में तरह तरह के लोगों से मिलने पर भी न तो उसे आत्मग्लानि ही हुई न उसमें दूसरों पर अपने को हावी करने की प्रवृत्ति ही पैदा हुई।

अपने साथियों में व्याप्त एक सामान्य रुचि का लिंकन में पूर्णतया अभाव था। बहुत से वनवासी बंदूकों का निशाना साधने में अभिरुचि रखते थे। लिंकन ने बताया कि जब वह आठ वर्ष का था, तब उसने एक मुर्गी पर निशाना साधा था, उसके बाद कभी भी बंदूक नहीं उठायी। बचपन में एक बार कुछ पक्षियों के निरर्थक वध किये जाने पर उसने कड़ा विरोध प्रदर्शित किया। इससे उसे अत्यंत पीड़ा हुई। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह सभी तरह की मारकाट से घृणा करता था। असहाय व्यक्तियों व निस्सहाय पशुओं की सहायता लिंकन किस प्रकार किया करता था, इस बारे में भी कई कथाएं प्रचलित हैं। यह कहा जाता है कि उस पर अपने आसपास के वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा और इस तरह के उसके कार्यों से लिंकन का भी बहुतों पर प्रभाव पड़ा। आज भी इस आश्चर्यजनक कथा को दुहराया जाता है कि कैसे उसने बर्फ में फँसे एक शराबी की रक्षा करने में कड़ी-से-कड़ी बाधाओं की परवाह नहीं की।

इसी तरह की कई कथाएं हैं, कि कैसे उसने कीचड़ में फँसे सुअर तथा बर्फ में धँसे कुत्ते को अथवा ऐसे ही संकटग्रस्त व्यक्तियों को बचाया। ये उसके जीवन पर अमिट व आश्चर्यजनक प्रभाव डालनेवाली घटनाएँ थीं। ऐसा लगता है कि ये कार्य उसने तात्कालिक सहज बुद्धि से ही नहीं, वरन् अपने पूर्ण चेतनाशील गम्भीरता के प्रादुर्भाव से किये थे। अपनी दुरावस्था पर लोगों के ध्यान न देने पर ही धीरे-धीरे इस व्यक्ति ने दूसरों की सहायता करने के इस तथ्य को हृदयंगम कर लिया था। लिंकन में सम्पन्नता व सामान्य अभिरुचियों के प्रति आकर्षण की कमी थी। एक बार एक महिला ने उसे इस बारे में स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयत्न भी किया था कि उसमें छोटी-छोटी सौजन्यमयी भाव-भंगिमाओं का अभाव है। परन्तु कड़े-से-कड़े अवसर पर भी उसकी न्याय के प्रति अगाध चेतना उसके शांत व विनम्र स्वभाव में चिनगारी की तरह प्रज्वलित हो उठती थी।

लिंकन की स्कूली शिक्षा कुल मिला कर बारह महीने से कम ही रही और वह भी कभी निकट में स्कूल होने अथवा स्कूल जाने की सुविधा प्राप्त होने पर। आठ वर्ष से लेकर पन्द्रह वर्ष की आयु में उसे जब कभी ऐसा सुयोग मिला, लिंकन पढ़ना-लिखना व जोड़-बाकी सीखने में सफल हुआ। महान् व्यक्तियों द्वारा बिना किसी सहायता के निरंतर श्रमसाध्य प्रयत्नों के समान ही लिंकन का यह प्रयत्न था। पढ़ना सीख लेने के बाद वह यह पुस्तकें प्राप्त कर सका—बाइबिल, ईसप की कहानियाँ, राबिन्सन क्रूसो, पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस, संयुक्त राष्ट्र अमरीका का इतिहास और वीम लिखित वाशिंगटन की जीवनी। बाद में उसे अपने राज्य के कानून जानने की इच्छा हुई और उसने इंडियाना के कानून की पुस्तक पढ़ डाली। ये पुस्तकें लिंकन ने बार-बार पढ़ीं और उन पर मनन किया। इस अध्ययन में कोई काल्पनिक अथवा केवल बौद्धिक अभिरुचि इसे नहीं थी, वरन् अपने व्यावहारिक जीवन को उन्नत बनाने के लिये और साथ ही अपने भावी को इच्छित स्वरूप देने की इच्छा से उसने इन पुस्तकों को पढ़ा था। जैसा पहले कहा जा चुका है कि श्रमिक के रूप में लिंकन की सेवा काफी महत्व की होती थी, और जब कभी उसके हृदय में किसी कार्य को करने की इच्छा प्रबल हो उठती, उस समय उसकी शक्ति का स्फुरण भी आश्चर्यजनक हो उठता था। इतने पर भी एक मालिक ने जो सम्भवतया उसका सब से कटु आलोचक था, उसे 'कामचोर' की संज्ञा दे डाली। मालिक ने कहा—"एक बार मैंने उसे सूखे घास के ढेर पर उकड़ू बैठे कुछ पढ़ते हुए देखा।

'क्या पढ़ रहे हो?'— मैंने पूछा।

'मैं पढ़ नहीं रहा हूँ, अध्ययन कर रहा हूँ'— उसने कहा।

मैंने पूछा—'क्या अध्ययन कर रहे हो?'

उसनें सिसेरो की तरह गर्व से कहा—'कानून।'

मैंने कहा—'हे भगवान!

बालक लिंकन ने पढ़ना शब्द बदल कर अध्ययन कर दिया, यह प्रगल्भता भले ही हो, परन्तु बात उचित ही है। इस बारे में अधिक जानकारी के लिए उसें प्राप्त शैक्षणिक सुविधाओं की ओर हमें दृष्टिपात करना होगा। उस प्रदेश में जनसमुदाय यद्यपि अधिकतर अशिक्षित था, परन्तु वहाँ के लोगों की जिज्ञासा व ज्ञानपिपासा कुंठित नहीं थीं। लिंकन के समक्ष कई प्रकार की कहानियाँ, जिनका वहाँ बाहुल्य था, कभी कोई समाचारपत्र, यदाकदा भाषण व राजनीतिक सभाएँ, आये दिन होने वाले धार्मिक प्रवचन, जहाँ उपदेशक गंभीर सिद्धान्त को जोश व विश्वास के साथ सिखाते, आते रहते थे। सामान्य धार्मिक सभा में अगाध श्रद्धा भरे भजन और कूपर की कविता की यह कड़ी "यह झरना है रक्तस्नात" वहाँ अधिक पसन्द किया जाता था। इन भजनों के अतिरिक्त वे गीत जो डेनिस हांक्स और उसके अन्य साथी गढ़ते अथवा नकल कर लिया करते थे, उन्हें भी लिंकन दुहराता, अथवा अपने ढंग से निस्संकोच रूप से अपने साथी श्रमिकों को भाषण सुनाया करता था और वे सदा ही इस मजाक और काम रोकने के बहाने का स्वागत करते थे। स्वशिक्षित मानव द्वारा प्राप्त सिद्धि आश्चर्यजनक तो होती ही है, परन्तु वह अगर कठिनाइयों पर पूर्ण विजय पा ले तो जिन सीमाओं में उसे रहना पड़ा वे सीमाएं भी उसके लिये लाभजनक हो जाती हैं। केवल कुछ पुस्तकों को ही अधिक-से-अधिक पढ़ने के लाभ हैं; कुछ अच्छी पुस्तकों तक ही परिस्थितिवश सीमित रहने में और भी अधिक लाभ हैं और अशिक्षित मानस की उस चेतना से भी कई लाभ हैं जो उसे वयस्क होने पर मानसिक अनुशासन में स्वयं बांध देती है।

लिंकन के स्वशिक्षण काल के बारे में प्रचलित ऐसें कई उदाहरण व प्रमाण मिले हैं जो बताते हैं कि उसके हृदय में समय से पूर्व ही महत्त्वाकांक्षा–उच्च और स्पष्ट महत्वाकांक्षा–ने जन्म ले लिया था। इसके अतिरिक्त ऐसे भी कई उदाहरण हैं कि लिंकन शरारती लड़कों में पूर्ण शरारती भी था। लिंकन की शरारतों के बारे में जो चयन किया गया है उसमें सुसज्जा की कमी है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें एक चिड़चिड़े, रूखे व कठोर स्वभाववाले व्यक्तित्व

की झलक है। वह शब्दशः एक बड़ा शरारती लड़का था। उसकी शरारतों की चर्चा करने के पूर्व यह जानना जरूरी है कि लिंकन ग्रिग्सबी परिवार से असंतुष्ट था। उसके हृदय में किसी के प्रति प्रतिहिंसा की भावना भी थी तो केवल एकमात्र इनके विरुद्ध थी, जिसके स्वाभाविक कारण भी थे। इसके फलस्वरूप एक बार आपस में संघर्ष भी हुआ। इसके विस्तृत वर्णन से पाठक निश्चय ही ऊब उठेंगे। इस सारे घटनाचक्र में केवल यही एक खूबी थी कि लिंकन ने एक कमजोर प्रतिस्पर्धी को अधिक जोश में आ जाने पर भी शारीरिक क्षति से बचाया। लिंकन ने ग्रिग्सबी परिवार के विरुद्ध अपनी मानसिक प्रतिक्रिया लोगों को गद्य और हल्की कविताओं में सुनाना आरंभ की। ये केवल बकवास मात्र तथा निरी मजाक थीं। ये 'रयूबन का प्रथम वंशानुगत इतिहास' के तौर पर जानी जाती हैं। कहानी इस तरह है कि रयूबन ग्रिग्सबी के पुत्र रयूबन और जोशिया ने कैसे एक ही दिवस अपना विवाह रचाया। स्थानीय रिवाज के अनुसार विवाह-भोज हुआ और इसके बाद पितृगृह में उन्हें वैवाहिक जीवन आरंभ करना था। रीति यह थी कि कुछ नौकर नववधूओं को उनके शयनकक्ष तक ले जाया करते थे और बाद में वर का भी वहाँ पहुँचा दिया करते थे। श्रीमती रयूबन ग्रिग्सबी को इसमें कुछ शरारत की झलक दिखायी दी और वे इसे मन में नहीं रख सकी तथा नौकरों के उतरते ही शीघ्र ऊपर पहुँची और वहाँ से चिल्ला कर बोलीं—"अरे रयूबन! तुम्हारी पत्नी यह नहीं है, दूसरी है।" लिंकन की ऐसी ही तथा अन्य कतिपय शरारतों को लेकर कुछ इतिहासज्ञों ने उसे दोषी ठहराया कि दावत में निमन्त्रित नहीं किये जाने पर उसने रयूबन-परिवार के साथ ऐसी अश्लील शरारत गढ़ डाली तथा पारिवारिक कलह पैदा करने के लिए नौकरों को फोड़ कर अपने में मिला लिया। उपरोक्त घटना की सत्यता में संदेह है। केवल यही कहा जा सकता है कि ग्रिग्सबी परिवार के प्रति असंतोष व्यक्त करने के लिये सत्रह और अठारह वर्षीय लिंकन इसी प्रकार कहानी-कविताएं रच कर अपने ही हाथों उन्हें वंशानुक्रम इतिहास का स्वरूप भी दे दिया करता था। इसी लेखक की पहले की एक मूलप्रति में एक स्थान पर हाशिये में एक कोने में लिखा मिला—"अब्राहम लिंकन, उसके हाथ और उसकी कलम अच्छे हो जायेंगे परंतु भगवान ही जाने कब!" ऐसी ही बेसिरपैरवाली बातों से हमें गंभीर निर्णय की स्थिति में नहीं आ जाना चाहिए। हम इतना कह सकते हैं कि प्रारंभ के रूखे और उजड्ड गँवार बालक की बातचीत व व्यवहार का तरीका राष्ट्रपति बन जाने के बाद भी लिंकन के स्वभाव में

समाया रहा। लिंकन को सदा ही एकाकी रहना पड़ा। जिसे सभ्य समाज कहा जाता है, उस वातावरण की ग्रामों व देहातों में झलक भी नहीं थी। उसका प्रारंभिक जीवन शुरू से ही रुखा रहा। नारीत्व के प्रति उसमें एक लजीली किन्तु श्रद्धायुत भावना थी जो कैसे ही कठोर और सभ्य समाज से अपरिचित वातावरण में भी प्राप्त की जा सकती है और निबाही भी जा सकती है। उसके मित्रों तथा साथियों से प्राप्त प्रमाणों के अनुसार कहा जा सकता है कि लिंकन ने किशोरावस्था में ही कुछ-कुछ कवित्वशक्ति प्राप्त कर ली थी। एक युग व्यतीत हो जाने के कारण वे कविताएँ असम्बद्ध हो गयी हैं तथा किस सिलसिले में उसने क्या बात कही थी, ज्ञात नहीं होने के कारण ये किंवदन्तियाँ आज अटपटी-सी व रूखी लगती हैं। इन्हें देखकर लिंकन पर श्रद्धा करने वालों में से कुछ व्यक्ति भी उस पर उसके स्वभाव के कारण किसी तरह का दोषारोपण करें, यह अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु उसके चरित्र की विशाल सरलता और जिन परिस्थितियों में इनका जन्म हुआ, उन्हें समझे बिना इस विनोदप्रियता में से कुछ ऐसी बातें प्राप्त करने की चेष्टा करना, जिससे उसकी विशाल सहानुभूति की भावनाएं तथा स्वभाव में व्याप्त अगाध विनम्रता लांछित हो, क्या किसी भी आलोचक के लिये निर्दयता का कठोर कार्य नहीं कहा जायेगा! इलिन्वास में उसके ही एक राजनीतिक मित्र श्री ल्योनार्ड स्वेट के शब्दों में (जिन्हें बाद में संयुक्त राष्ट्र अमरीका का महाप्राभिकर्त्ता (अटर्नी जनरल) बनाया गया था), "यह मानी हुई बात है कि कोई भी व्यक्ति यदि अश्लील बात लिखता है तो इस अभिव्यक्ति के पीछे उसके मस्तिष्क में भी ऐसी ही भावना अवश्य रहती होगी। परन्तु लिंकन के साथ यह बात लागू नहीं होती, क्योंकि वह उदात्त चरित्रवान, पवित्र और विनम्र तथा शीलवान व्यक्ति था। इसमें कहीं किसी को सन्देह नहीं है। तर्क खोजते समय सूझबूझ के दौरान में उसे यह भान नहीं रहता था कि वह उन्हें कहाँ से चुन रहा है और किस तरह से उन्हें प्रस्तुत करने जा रहा है। इसी सरलता के कारण वह अश्लील और सुसंस्कृत वाक्यों में अंतर नहीं कर पाता था। वह तो केवल सूझ प्राप्त करना चाहता था, चाहे वह उसे कहीं से भी प्राप्त हो। शुद्ध रत्न के समान, इसे वह कीचड़ में से भी चुन लेता और किसी जौहरी की मेज पर से भी। कुछ भी हो, जब कभी उसके तर्कों में अश्लीलता का उल्लेख मिला तो भी उसके पीछे गहरी सूझबूझ व अकाट्यता थी और साथ ही उसमें निहित थी सरल मानस की झलक, जो सुनने वालों को मोह लेती थी।"

लिंकन के बाल्यकाल की एक अंतिम घटना से उसके मित्र अत्यधिक प्रभावित हुए और उनका यह निर्णय है कि उसी घटना ने लिंकन के राजनीतिक जीवन का भावी स्वरूप ग्रहण किया। पहले, इस बात का उल्लेख किया गया था कि लिंकन ने दो बार मिसीसिपी नदी में जिम्मेदारियों के साथ यात्रा की थी। इन यात्राओं के दौरान में उसने न्यू ओरलिअन्स तक अपने मित्रों के साथ कई सुहावने दृश्य देखे तथा विविध लोगों के संपर्क में आया। इस तरह की यात्रा में उसे कई तरह के अनुभव भी हुए होंगे। परन्तु केवल दो ही लिखे गये हैं। पहली बार लिंकन और उसके साथी को नीग्रो लुटेरों से लड़ना पड़ा; परन्तु दूसरी यात्रा में इन्होंने नीग्रो जाति को दूसरे ही रूप में देखा जो अधिक उल्लेखनीय है।

न्यू ओरलिअन्स में इन तरुण युवकों ने अन्य दृश्यों के साथ-साथ यह भी देखा कि नीग्रो जंजीरों से बंधे पड़े हैं, उन्हें कोड़ों से पीटा जाता है, लांछित किया जाता है और उन के साथ पशु से भी हीन व्यवहार किया जाता है। घूमते-फिरते हुए यह एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ एक गोरी व हब्शी वर्णसंकर नीग्रो तरुण कन्या को बोली लगा कर नीलाम में बेचा जा रहा था। घोड़ी की तरह कमरे में दौड़-दौड़ कर अपनी चाल व अंग-प्रत्यंग की हरकत बताने के लिए इस लड़की को बुरी तरह यंत्रणापूर्वक चुटकी काटी जाती थी। बेचारी असहाय लड़की को यह सब सहना पड़ता था, जिससे बोली लगाने वाला उस खरीद की वस्तु के अवयवों व हरकतों से पूर्ण संतुष्ट हो सके। एक स्वतंत्र राज्य के देहाती लड़कों की तरह बिना किसी विशेष प्रयोजन के जान हांक्स, जान्स्टन और अब्राहम लिंकन ने यह दृश्य देखा। उनके अपने प्रदेश में जब भी दासप्रथा की चर्चा छिड़ती, उसकी भयानकता परिलक्षित रहती थी। इन दर्शकों में से एक दृढ धारणा और दृढ़ स्मृति वाला व्यक्ति था। "लिंकन ने यह सब देखा!"—बाद में जान हांक्स ने बताया और इस बात की अन्य लोगों ने भी पुष्टि की—"लिंकन ने यह सब देखा। उसका हृदय रो उठा। मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला, वह चुपचाप खड़ा रहा। मैं कह सकता हूँ कि इसी यात्रा के दौरान में उसने दासप्रथा के बारे में अपनी धारणा दृढ बनाली। वहीं उसी स्थान पर, उसी मई १८३१ को, तत्काल ही जैसे पत्थर की अमिट रेखा की तरह यह बात उसके मस्तिष्क पर अङ्कित हो गयी। मैंने उसे बहुत-सी बार यह कहते भी सुना।" शायद अन्य बातों में जान हांक्स कुछ नाटकीय पुट देते रहे हों, उन्होंने बताया कि उस दास-नीलामघर पर

किस प्रकार लिंकन ने कहा—"भगवान के लिए! हम लोगों को यहाँ से चल देना चाहिए। यदि कभी मुझे इस प्रथा पर चोट करने का अवसर मिला तो मैं कस कर चोट करूँगा।" वही नवयुवक, सम्भवतया जिसने अपनी इस घृणा को भावी निर्देशित वाक्यों में नहीं व्यक्त किया हो, भाग्य से इसी मामले को निपटाने के लिए चुना गया। वस्तुतः ऐसी चोट उसने की, जिसकी मार से यह प्रथा कभी भी सभ्य संसार में मान्य संस्था के रूप में खड़ी नहीं रह सकेगी। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि नीग्रो दासों के प्रति लिंकन ने कभी हीन व्यवहार नहीं किया और न उन्हें अपने से नीची श्रेणी का समझा। उसके लिये नीग्रो शब्द कदापि हीनता का सूचक नहीं था, जैसा कि दक्षिण अमरीकी राजनीतिज्ञ इन्हें समझते थे। फिर भी हमें इस महान व्यक्ति की केवल गुलामी से मुक्तिदाता के रूप में ही श्रद्धा नहीं करनी है। उसने इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। जब वह अपनी इस यात्रा से लौट कर इलिन्यास आया उस समय वह केवल एक महत्वाकांक्षी युवक ही था जो अपने तरुण देश के लिए गौरवपूर्ण जीवन से कर्त्तव्यपालन करने को तत्पर था। हम मानते हैं और वह स्वयं भी स्वीकार करता था कि दास-प्रथा का अंत एक महत्वपूर्ण कार्य था और इसके साथ सदा उसका नाम जुड़ा रहेगा। परन्तु उसका सर्वोपरि कार्य था अपने देश को पितरों द्वारा निर्देशित गौरवपूर्ण सुसभ्य मार्ग पर ले जाना, जिससे एक महान राष्ट्र के रूप में वह सार्थक सिद्ध हो सके; दासप्रथा से मुक्ति का कार्य इसी महान कार्य का एक अंश मात्र था।

दूसरा अध्याय

अमरीकी राष्ट्र का विकास

[१]

राष्ट्रीय सरकार का गठन

किसी भी राजनीतिज्ञ के जीवन का अध्ययन उसके देश की स्थिति और अतीत का अध्ययन किये बिना पूर्णतया असम्भव है। अमरीका के विषय में यह अध्ययन विशेष आवश्यक है, क्योंकि इस नवीन राष्ट्र ने अब तक अपने जीवन में कई संस्थाओं व विभिन्न प्रथाओं को जन्म दिया है। लिंकन के विषय में अध्ययन करने के लिए यह और भी अधिक आवश्यक है कि अतीत का अध्ययन किया जाय। उसने स्वयं भी अतीत की गौरवशाली प्रथाओं से निरंतर प्रेरणा ग्रहण करने की अपील की थी। उसके कार्यकाल में ऐसे कौन से कारण थे जिससे अमरीकी राष्ट्रीय एकता का जन्म हुआ तथा ऐसे कौन से व्यवधान उत्पन्न हुए, जिनसे विघटन की आशंका हो गयी। इस अध्ययन के लिए हमें उन समस्याओं का भी अध्ययन करना होगा जिन्हें लिंकन को अपने जीवनकाल में सुलझाना पड़ा।

१७७६ में 'अमरीका के तेरह संयुक्त राष्ट्रों'ने ब्रिटेन से सम्बंध विच्छेद कर जब स्वतंत्रता की घोषणा की, उस समय यह भूभाग अतलांटिक महासागर के १३०० मील क्षेत्र में कई विभिन्न उपनिवेशों में विभक्त था। मानचित्र में देखा जाय तो सुदूर उत्तर में स्थित मेन उस समय मेसाचुसेट्स उपनिवेश का ऊबड़-खाबड़ वन प्रदेश था। सुदूर दक्षिणी प्रदेश फ्लोरिडा स्पेन का उपनिवेश था, स्वतंत्र वरमाँट न्यूयार्क की बस्ती के आधीन था। लगभग इन सभी उपनिवेशों की अपनी विभिन्नताएँ थीं तथा पड़ोसी राज्यों से मनमुटाव था। इन्हें तीन प्रमुख दलों में विभक्त किया जा सकता है। दक्षिण के पांच राज्यों को हम अन्य राज्यों से पृथक कर सकते हैं। ये राज्य अधिक समृद्धिशाली थे, जिनमें वरजीनिया प्रमुख था। उत्तर चार या छै राज्यों का समूह न्यू इंग्लैंड के नाम से

पुकारा जाता था। इन दोनों क्षेत्रों को सर्वप्रथम एक ही श्रेणी के लोगों ने आबाद किया, जिनमें इंग्लैंड के निम्न स्तर के जमींदार तथा कुछ खाते-पीते व्यवसायी थे, यद्यपि उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में बाद में निर्धन व बेकार आव्रजक अधिक संख्या में पहुँच गये। उत्तर में विशेषकर कारीगर लोग पहुँचे। दक्षिणी प्रदेश की प्राकृतिक स्थिति ऐसी थी कि वहाँ बड़े खेत या बगीचे बने और जमींदार वर्ग उत्पन्न हुआ। वहाँ नीग्रो गुलामों की संख्या अधिक थी जो खेतों में तंबाकू, नील, चावल और बाद में कपास की खेती में सहायक सिद्ध हुए। उत्तरी प्रदेश में छोटे-छोटे खेत रहे; परन्तु यहाँ के निवासी व्यापारी व मत्स्य उद्योग की ओर आकर्षित हुए और आरंभ से ही समुद्री नौकानयन इनकी रुचि का विषय बन गया जिससे बाद में औद्योगिक उत्पादन को स्थान मिला। दक्षिणी प्रदेश वाले इंगलैंड के गिरजों से सम्बंधित थे। न्यू इंगलैंड का जन्म ही प्यूरिटन लोगों के आव्रजन के कारण हुआ। केवल रोडे द्वीप को छोड़कर अन्य राज्यों में इस तरह की सहनशीलता की भावना नहीं रही, जिस तरह की प्रारम्भ में यहाँ आने वालों में थी। उनमें चरित्र के विभिन्न गुणों के साथ-साथ वैसी ही स्वाभाविक त्रुटियाँ भी थीं। मध्यवर्ती औपनिवेशिक समूह में मिश्रित संस्कृति थी, न्यूयार्क और न्यू जर्सी डच लोगों के उपनिवेश थे, डेलावार में अंशतः स्वीडनवासी थे। पेन्सीलवानिया आरम्भ में क्वेकर बस्ती थी, पर अन्य जातियों के लोग भी वहाँ थे। प्राकृतिक और आर्थिक स्वरूप में ये न्यू इंगलैंड के समान ही थे, परन्तु इनमें से कई बस्तियों में प्यूरिटन ढंग का अनुशासन समाप्त हो चुका था तथा उनमें एक मिश्रित ढंग की धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था स्वरूप ग्रहण करने लगी। यद्यपि उत्तरी बस्तियों व दक्षिणी बस्तियों में आपस में गहरा विरोध था, फिरभी दूर होने के कारण उत्तरी व दक्षिणी क्षेत्रों में विशेष अलगाव रहा। घटनाचक्रों ने इस विरोधाभास को अधिक शिथिल बनाने में योग दिया। फिर भी एक महत्वपूर्ण विशेषता ने दक्षिण के निवासियों को समान रूप से उत्तर व मध्य के निवासियों से अलग ही रखा।

स्वतंत्रता के विचार के उदय होने के पूर्व ही अंग्रेज और अमरीकी व्यक्तित्व में सामान्य विरोधाभास दृष्टिगोचर होते थे। इन पर जरा बारीकी से विचार करना जरूरी है; क्योंकि कुछ वर्षों पूर्व ही एक अमरीकी इतिहासज्ञ ने लिखा था— "१८०० के विशिष्ट अमरीकी में वे सभी बातें मौजूद हैं जो १७७५ में उसके पूर्वजों में थीं, जबकि विशिष्ट अंग्रेज में यह बात अधिक नहीं पायी जाती है।" सभी उपनिवेशों में जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ बनीं कि उनसे

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विकास हुआ। इसके साथ ही व्यवहारिक परिस्थितियों ने उन्हें बाध्य किया कि वहाँ किसी भी विषय में पूर्ण पारंगत होने की अपेक्षा सभी धन्धों का उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता विकसित हुई। मसलन्, एक श्रमिक को लीजिए। उसे कई कामों की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि उसे न तो इसका अवसर ही प्राप्त है और न ऐसे साधन ही हैं कि वह किसी एक में पूर्ण पारंगत बने। इसी तरह वैज्ञानिक व्यक्ति उन आविष्कारों में जुटे जो जीवन की कठोरताओं में कमी कर सकें। विद्वान व दार्शनिकों में यह योग्यता उत्पन्न हुई कि वे नव समाज के लिए कानून-वेत्ता और राजनीतिज्ञों के रूप में योग दे सकें। अमरीका में बसने वाले लोगों के पूर्वज यूरोप के दकियानूसी ढर्रे से ऊब कर नये समाज की स्थापना के स्वप्न लेकर वहाँ पहुचे थे। यही कारण है कि अमरीकी जनता उच्च आदर्शों की सराहना करने व उन्हें ग्रहण करने में अपने ही इंगलैंडवासी भाइयों से अधिक अग्रणी है। जहाँ एक आदर्शवादी अमरीकी सुन्दर शब्दों में अपनी सराहना करते हुए नहीं अघाता, वहाँ दूसरी ओर गंभीर और लज्जाशील अंग्रेज इससे दूर भागता है और यहाँ तक कि इसमें उसका अविश्वास भी झलकने लगता है। अधिकतर यह भावना अमरीकी जनता की विशिष्ट प्रवृत्ति की द्योतक है। जब अमरीका विकसित हो रहा था, और नये-नये आविष्कारों व शक्ति की आवश्यकता पड़ी, उस समय उसके समक्ष मार्ग-दर्शन के लिये पुरानी परम्परायें भी नहीं थीं। अतएव आदर्शों के प्रति एक विशेष गर्व होना भी स्वाभाविक ही है। एक अमरीकी अर्थशास्त्री ने इस स्थिति पर चुटकी लेते हुए लिखा है—"कलम लगाने की (अथवा एक जाति द्वारा नये राष्ट्र को जन्म देने की) जो क्रिया है, उससे पुरानी रूढ़ियाँ तथा रीतिरिवाजों के बंधन समाप्त हो जाते हैं; क्योंकि यह पुरातनवाद आज भी पुरानी दुनिया की प्रगति में बाधक बना हुआ है। नये राष्ट्र में सभी बातें पुराने ढंग से पूरी नहीं की जा सकतीं और सम्भवतया यही कारण है कि यहाँ वह कार्य सर्वोत्तम ढंग से किया जाता है।"

परन्तु नये राष्ट्र में उन सभी पुरातन तरीकों को दृढ़ता से स्वीकार कर लिया जाता है जिनका कुछ न कुछ उपयोग हो और एक पिछड़ा हुआ अविकसित देश विचारों के इस आदान-प्रदान में पूरा भाग नहीं लेता, जो उसकी पुरानी दुनिया में परिवर्तन (मुख्यतया प्रगति) का संदेशवाहक हो। इस तरह के कारणों से जो अनुदारतावाद पनपा है, वह अमरीका में स्पष्ट परिलक्षित है। वहाँ चाहे कितनी नवीनता और आधुनिकता की बातें विमिश्रता लिये

हों, परन्तु आज भी इंग्लैंड और अमरीका में भाषा की एकता है। इंगलैंड की भाषा में यद्यपि आधुनिकता आयी है, परन्तु अमरीकी भाषा ठीक पुराने इंगलैंड की भाषा के समान है, जैसा कि लावेल के विद्यार्थी जानते हैं। यही बात उसके साहित्य व भाषणों में भी लागू होती है। ऊपर दिये गये उदाहरण से ज्ञात होता है कि जैसी-जैसी आवश्यकता हुई नवीनता आती गयी और इसे ही परिवर्तन या प्रगति का नाम दे दिया गया। एक अंग्रेज बर्क की तुलना डेमोस्थनीज या अफलातून से सामान्य तौर पर ही करेगा, परन्तु अमरीकी अपने राजनीतिज्ञों का उल्लेख इस तरह करेंगे मानों वे बाइबिल के उद्धरण या पात्र हों। इसी तरह राजनीतिक जीवन में भी ऐसी प्रवृत्ति व्याप्त है—उदाहरणतया, 'आकस्मिक उद्भव' (accidental origin) के प्रश्न को ही लीजिए, अमरीका में यह संवैधानिक स्वरूप ग्रहण कर चुका है कि प्रतिनिधि चुने जाने के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस स्थान का प्रतिनिधित्व करे वहाँ का निवासी हो।

इस सिलसिले में हम यहाँ उस समय की घटनाओं को दुहराना पसन्द करेंगे जब कि पहले-पहल इंगलैंड से लोग यहाँ बस्तियाँ बसाने आये थे और अपने साथ वे एक विशेष प्रकार की राजनीतिक परम्परा लाये थे। इस परम्परा में सर्वोपरि स्थान स्वायत्त शासन की भावना का है। दक्षिण में बड़े-बड़े खेत-मालिकों ने इसे पनपाया, तो उत्तरी क्षेत्र में गिरजों की व्यवस्था ने इसे विकसित स्वरूप प्रदान किया। इसी में राज्य के विरुद्ध प्रजा के अधिकारों की महत्वपूर्ण भावना निहित है। हेम्पडन द्वारा जहाज-कर चुकाने में आनाकानी, कानून और न्यायालयों को प्रजा के अधिकारों की रक्षा में सरकार के विरुद्ध प्रबल साधन मानना इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे ब्रिटिश पार्लियामेंट की अधीनता में जाने को तैयार थे—स्वाधीनता के संघर्ष से ही इसका सही अर्थ समझा जा सकता है—जब कि पार्लियामेंट वरजीनिया और मेसाचुसेट्स बसाने वाले पूर्वजों के गृहत्याग के दिनों के पूर्व ही सशक्त हो चली थी। इसी भावना में एक और भी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी जिसने इस राष्ट्र के संविधान पर गहरा प्रभाव डाला।

अमरीकी लोग उस समय भी ब्रिटिश पार्लियामेंट के ढंग की सरकार बनाना नहीं चाहते थे जिसके अंतर्गत विधायिका परिषद् और ताज के सलाहकार (मंत्रिमंडल) एक साथ बैठ कर जनता के प्रतिनिधित्व के नाम पर कुछ समय के लिये सर्वोपरि कर्त्ता-धर्त्ता बन जाएं, अर्थात् वे पूर्ण निरंकुश हो जाएं। ऐसे

कतिपय अन्य राजनीतिक कारण भी हैं, जिनके कारण ब्रिटिश सत्ता को अस्वीकार करने के मामले में ये विभिन्न औपनिवेशिक बस्तियाँ एक हो सकीं। फिर भी उस समय ऐसे लक्षण नहीं दृष्टिगोचर हुए जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता कि एक महान नवीन राष्ट्रीय एकता की उनमें अभिलाषा ही थी और न ऐसी कोई योग्यता ही उनमें थी।

ये उपनिवेश तथापि ब्रिटिश सरकार के सहयोग से फ्रांस द्वारा प्रस्तुत समान संकट को टालने में एकजुट होकर संघर्ष करने में सफल रहे। जब इन्हीं राज्यों ने ब्रिटेन के विरुद्ध संघर्ष किया तब उन्होंने अपने-आपको संयुक्त राष्ट्र के तौर पर घोषित किया और शीघ्र ही उन्होंने 'गणराज्य तथा' चिरस्थायी एकता के नियम रचने की दिशा में कदम उठाये। परन्तु यह एकता उस समय अधिक कमजोर थी। प्रत्येक राज्य की अलग-अलग सरकार अपने आंतिरिक मामलों में स्वतंत्र थी। सभी राज्यों में प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थान थे। केवल इतने ही परिवर्तन की आवश्यकता थी कि सरकारी अधिकारियों के बजाय चुने हुए प्रतिनिधि नियुक्त किये जाएं। राज्यों के संगठन के दृष्टिकोण से कांग्रेस का गठन किया गया, जिसमें प्रत्येक राज्य का अपना प्रतिनिधित्व था। कांग्रेस विदेशी मामलों पर निर्णय लिया करती थी, परन्तु वह अधिकार व शक्ति से हीन सरकार थी। उसे केवल उतना ही अधिकार था, जितना कि कोई राज्य प्रदान करता था। वह किसी भी राष्ट्र से युद्ध ठान सकती थी; परन्तु इसके पास यह सत्ता नहीं थी कि वह ठीक तरह से नियंत्रित सेना रख सके या अपने नागरिकों को सैनिक सेवाओं के उपलक्ष्य में वेतन दे सके। किसी भी देश से इसे संधि करने का अवश्य अधिकार था, परन्तु इतना नहीं कि संधि की शर्तें किसी भी राज्य की इच्छा के विरुद्ध उस पर थोपी जा सकें। इस तरह के अटपटे शासन संगठन से भी कुछ दिनों तक काम चल सकता था, यदि गणराज्य सरकार जन-सामान्य की देशभक्ति और राष्ट्रीय गौरव की भावनाओं को अपने में समाविष्ट कर लेती। परन्तु इस शासनतंत्र में इन भावनाओं का अभाव था और यह ठीक ढंग से उस समय काम नहीं कर सकी। जब अमरीकी क्रान्ति सफल हुई तथा ब्रिटेन व अमरीका के मध्य शांति स्थापित हुई तो इतिहासकार अमरीकी क्रांति के गौरव-गीतों में डूब गये। बाद में कई अंग्रेज इतिहासकारों ने इसका विरोध करते हुए क्रांति की सफलता के कारणों पर प्रकाश डाला। इन इतिहासकारों के अनुसार अमरीका द्वारा प्रस्तुत मांग निराशाजनक थी, परन्तु उसकी सफलता के कारण थे वाशिंग्टन की नेतृत्वयुक्त बुद्धि और उसकी

नैतिक सत्ता, फ्रांस और स्पेन द्वारा समुद्र पर आधिपत्य, क्षुद्र झगड़े की भावना जिसे लेकर इन बस्तियों की मांगों पर जोर दिया गया, और अत्यंत क्षुद्र परन्तु कौशलपूर्ण तरीके से चलाया गया आंदोलन जिसने अंत में विघटन को जन्म दिया। इसकी कई कमियां भी थीं जिनमें युद्धकाल में देशभक्तिपूर्ण भावनाओं का अभाव, क्रूरता और विश्वासघात के साथ अल्पसंख्यकों का किया गया दमन और संधि के अनुसार प्रदत्त निजी अधिकारों का हनन मुख्य हैं। इस अरुचिपूर्ण वृत्तांत में बारीकी से न्याय आदि ढूंढने का प्रयत्न निरर्थक है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति क्रांतिकाल के दौरान में गुजरी घटनाओं से क्षोभित या गंभीर नहीं है और हम भी यह जानते हैं कि 'नये राष्ट्र' नाम से तात्पर्य नये देश के जन्म से है, जिसे प्रारंभ में संघर्ष द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करनी होती है और युद्ध का वातावरण तो ऐसा होता ही है कि उससे अनुशासनहीनता और व्यर्थ का रक्तपात बढ़ जाता है।

अभी तक इंगलैंड और अमरीका के अधिकांश लोगों में यह प्रवृत्ति है कि वे इस क्रांति को उसके सही रूप में स्वीकार नहीं करते। क्रांतिकाल व संविधान रचनाकाल को शूरता का समय माना जाता है। परन्तु हुआ यह कि क्रांति के तत्काल बाद में ही निरंतर निराशा व पतन तथा सही स्थितियों का नग्न स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगा। यह सभी तौर पर ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल था। इसके पश्चात् जिस युग का सूत्रपात हुआ, उसमें भी कई भूलें हुई हैं; परन्तु वे भूलें अपने आपको जीवित रखने के प्रयत्नों के कारण हुई हैं इस लिये क्षम्य हैं। इसके आगे का इतिहास भयंकर बाधाओं, तथा पतनोन्मुख परिस्थितियों के मध्य विकास का साहसिक इतिहास है। अठारहवी शताब्दी में क्रान्ति के अत्यन्त गुणगान किये जा सकते थे; परन्तु गृहयुद्ध में उत्तर व दक्षिण के निवासियों ने क्रांतिकाल से भी अधिक शौर्य और वीरता का परिचय दिया।

अमरीकी स्वतन्त्रता संग्राम और क्रान्ति की अन्य राष्ट्रों के विप्लवों से तुलना नहीं की जा सकती। यह किसी भयंकर शोषण या पूर्णतया विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध ही बगावत न थी, परन्तु उस राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष था, जिसका उस समय जनता में साधारण तौर पर विरोध होने लगा था तथा राजनीतिज्ञ जिसे असह्य और असाध्य मानने लगे थे। इस को दूरदर्शी राजनीतिज्ञों, महत्त्वाकांक्षी लोगों तथा क्रांतिकारी भावना का स्वागत करने वालों ने अपना लिया। परन्तु उस समय सरकारी कानूनों के अंतर्गत नित्य प्रति अपनी आजीविका चलाने वाले जन-सामान्य के लिये इन दोनों में से एक भी पक्ष के लिये कोई विशेष रुचि नहीं थी।

स्वतंत्रता-संग्राम के बाद ही संयुक्त राष्ट्र अमरीका के लिये संविधान रचना व उसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का जो आंदोलन छिड़ा, उसमें भी कुछ ही व्यक्तियों ने हिस्सा बँटाया और उसमें किसी जन-आंदोलन से कुछ भी योग नहीं मिला और न एकता के लिये ही जनसाधारण ने तनिक भी रुचि दिखायी। राजनीतिज्ञ यह अच्छी तरह जानते थे कि यह नया राष्ट्र या राज्यों का समूह बाहरी संकटों के साथ-साथ आंतरिक वित्तीय कठिनाइयों के कारण असहाय था। उन्हें यह स्पष्ट दिखायी दे रहा था कि सरकार की सामान्य अमरीकी नागरिक पर उसी तरह की सत्ता होना जरुरी है जैसी कि इन राज्यों की सत्ता वहाँ के नागरिकों पर थी। उन्होंने इसे लागू भी किया परन्तु हिचकिचाहट के साथ, क्योंकि जनमत इसके प्रति संदेहशील था व इसके अधिक पक्ष में नहीं था।

संविधान निर्माताओं की अमरीकी जनता ने अत्यंत सराहना की, परन्तु वे गणराज्य सरकार का ऐसा अनुकूल आदर्श नहीं प्रस्तुत कर सके, जिसे अन्य राष्ट्र भी स्वीकार कर सकते।

जिस शासनतंत्र की रचना इन्होंने की वह अन्य शासन-प्रणालियों से व्यावहारिक रूप में श्रेष्ठ सिद्ध नहीं हो पाया, क्योंकि इस शासनतंत्र के दोनों ही विधान-सदनों में संतुलित विरोध रहा, राष्ट्रपति के कार्यांग और सामयिक शासकीय अधिकारों व जनता की भावना के मध्य निरंतर विरोधाभास पाया गया, जिसे यह शासनतंत्र मिटा नहीं सका। अमरीकी संविधान की यह विशिष्टता विभिन्न राज्य-सरकारों को ध्यान में रखते हुए जो रचना की गयी, उसके कारण भी है। इसके अतिरिक्त उस समय राष्ट्रीय एकता के अभाव व अन्य शासन प्रणालियों के प्रति विरक्ति के कारण भी यह दोष पैदा हो गया था। इसके निर्माताओं की जो अपने समय के गंभीर व चतुर कूटनीतिज्ञ थे, सबसे बड़ी सफलता यह रही कि उन्होंने विभिन्न अड़चनों के होते हुए भी सभी राज्य-सरकारों में अत्यंत संतोषजनक समझौते का मार्ग प्रस्तुत किया, जिसे अमरीका के सभी राज्यों ने स्वीकार कर लिया।

अतएव १७७६ में जिन उपनिवेशों ने ब्रिटेन से सम्बंध-विच्छेद किया, उन्होंने १७८९ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका के रूप में ऐसे शासनतंत्र पर अधिकार कर लिया, जो उनकी राष्ट्रीय एकता व स्वतंत्रता को चिरस्थायी रखने में समर्थ था।

इस स्थान पर संविधान की उन विशेषताओं की चर्चा करना भी आवश्यक है जिनकी गहराइयों में हमें आगे चलकर उतरना पड़ेगा। सामान्यतः यह मानी हुई बात है कि अमरीका के राष्ट्रपति का चुनाव होता है। उसे जनसाधारण के

मतों से चुने जाने की संज्ञा दी जाती है। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि अमरीकी राष्ट्रपति चार वर्ष के अपने कार्यकाल में इंगलैंड के राजा तथा प्रधान-मंत्री के संयुक्त अधिकारों का उपयोग करता है, तथा मंत्रिमंडल उसके प्रति पूर्ण उत्तरदायी व अधीन रहता है, परन्तु इस विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण विशेषता भी है। केवल कुछ प्रतिबंधों के साथ उसके पास शासन-संचालन के समस्त कार्यवाही अधिकार होते हैं जब कि ब्रिटेन के प्रधान मंत्री अथवा मंत्रिमंडल के सदस्यों की तरह उसे विधान-सभाओं में भाषण देने या बैठने अथवा मत देने का अधिकार नहीं है। अमरीका का राष्ट्रपति यदि चाहे तो भी ब्रिटेन के राजा की तरह विधान सभाओं को भंग नहीं कर सकता। उसे काँग्रेस द्वारा पारित प्रस्तावों पर विशेषाधिकार प्रयोग करने की छूट है, परन्तु दोनों सदनों के बहुमत से इस विशेषाधिकार को पंगु भी बनाया जा सकता है। अमरीका में शासनतंत्र के न्यायांग और कार्यवाही अंग को जानबूझकर पृथक बनाया गया है। ऐसे शासनतंत्र का उदाहरण अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं है।

कदाचित् इस बात को बहुत कम लोग समझ पाये हैं कि जिस तरह एक सीमित उत्तरदायित्व वाली कंपनी अपने संस्थान के घोषणापत्र के अंतर्गत कठोर रूप से नियन्त्रित रह कर कार्य करती है, उसी तरह अमरीका के राष्ट्रपति और कांग्रेस को संविधान के अंतर्गत काम करना पड़ता है। यह संविधान—जो दोनों ही तरह की शासन-प्रणालियों की व्याख्या करता है तथा जिसमें प्रजा को कई अधिकार हैं—परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधनशील भी है। परन्तु किसी भी संशोधन के लिये कांग्रेस के भारी बहुमत या सभी विलीन राज्यों की विधायिका परिषदों के भारी बहुमत द्वारा एक विशेष प्रक्रिया आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संशोधनों की पुष्टि के लिये विभिन्न राज्यों में तीन चौथाई मतों की स्वीकृति जरुरी है। इस तरह हम देखेंगे कि दास-प्रथा के अंत के लिये जो संशोधन रखा गया उसे दास-बहुल राज्यों ने भावी आतंक के रूप में लिया, परन्तु जो दासहीन स्वतंत्र राज्य थे वे भी यह मानते थे कि ऐसे संशोधनों का पारित होना असम्भव है।

हमें अपने मस्तिष्क में से इस विचार को निकाल देना चाहिए कि इन विभिन्न राज्यों में से किसी की धारासभा भी संयुक्त राष्ट्र अमरीका की कांग्रेस के अधीन है, या राज्यों के गवर्नर राष्ट्रपति के अधीनस्थ अधिकारी हैं। गणराज्य का यह संविधान राष्ट्रीयता की तत्कालीन अल्पविकसित भावना की देन है। इस संविधान के अंतर्गत ऐसी व्यवस्था है कि विभिन्न राज्य-सरकारें राष्ट्रीय

सरकार के समानान्तर अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करती रहें तथा सभी संविधान के नियमन में रहें; परन्तु अपने क्षेत्र में सभी सर्वोपरि सत्ता बनी रहें। इस तरह इन राज्य-सरकारों को यह अधिकार नहीं है कि वे युद्ध की घोषणा करें या सुलह करें अथवा किसी तरह का तटकर लागू करें क्योंकि ये मामले राष्ट्रीय सरकार के कार्यक्षेत्र के हैं। इसी तरह सरकार राज्य-क्षेत्र के कार्यों, मसलन् सामान्य अपराधों का दंड, शिक्षा, विकास अथवा कारखानों के नियमन के मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। इसकी शक्तिहीनता व शिथिलता इसी से जानी जा सकती है कि गृहयुद्ध के अंत के बाद भी संविधान के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र अमरीकी सरकार १८०७ के अंत में जाकर दासों के व्यापार पर प्रतिबंध लगा पायी; फिर भी उसे किसी भी राज्य में प्रचलित दास-प्रथा को समाप्त करने का अधिकार नहीं था। उसके अतिरिक्त उस समय कांग्रेस की रचना भी कुछ इस तरह की करना जरूरी था कि विभिन्न राज्य भी एकबद्ध हो सकें और उन्हें अपने समान राज्यों से, जिनकी घनी जनसंख्या है, अल्पमत में नहीं रह जाना पड़े और साथ ही इन राज्यों को समान प्रतिनिधित्व भी प्राप्त हो। इनके ऐसे हितों की रक्षा के लिए यह व्यवस्था की गयी कि सीनेट में प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि रखे गये और इससे अधिक किसी भी राज्य के प्रतिनिधि नहीं लिये गये। जहाँ तक प्रतिनिधि सभा में प्रतिनिधित्व का प्रश्न है वहाँ सारे राष्ट्र की जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है। अतएव अमरीकी कांग्रेस में किसी भी कानून को पारित होने के लिये दो तरह की शक्तियों के मध्य गुजरना पड़ता है, जिनमें सहज ही विरोधाभास हो सकता है—एक ओर अमरीकी नागरिकों का बहुमत तो दूसरी ओर विभिन्न राज्यों का बहुमत।

कांग्रेस के इन दो सदनों में सीनेट महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है, क्योंकि इसके सदस्य छै वर्षों के लिये चुने जाते हैं और क्रम जारी रखने के लिये सभी एक साथ नियुक्त नहीं होते। इन कारणों से भले ही आरंभ में राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर अधिक नहीं गया हो, बाद में प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ इसी ओर आकर्षित होने लगे और इस तरह इसे विशेष प्रभाव प्राप्त हो गया।

इसके अतिरिक्त उन प्रदेशों में जो इन राज्यों के अधीन नहीं हैं, राष्ट्रीय सरकार का प्रभुत्व है, चाहे ये भूभाग किसी भी अमरीकी राज्य के अंतर्गत क्यों न हों। वहाँ चाहे कैसी भी शासन-व्यवस्था क्यों न हो, उनके लिये यह सरकार सदा सर्वोपरि है, जिसे सभी मामलों में हस्तक्षेप का पूर्ण

अधिकार भी है। परन्तु जैसे-जैसे इन प्रदेशों में जनसंख्या की वृद्धि हुई, उनमें और अधिक स्थिरता आने लगी। आरंभ से ही इन्हें राज्यों की तरह गठित किया गया और बाद में उन्हें राष्ट्रीय सरकार के अधीन कर दिया गया। परन्तु जब कभी इन्हें एक बार भी राज्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया, उसके बाद उनका प्रतिनिधित्व और दर्जा विलय-काल के पुराने राज्यों के बराबर का हो गया। इन सभी प्रदेशों में जब वे संघ क्षेत्र के अंतर्गत थे, कांग्रेस के समक्ष यह प्रस्ताव आया कि क्या यहाँ इन भूभागों में दास-प्रथा आवश्यक है अथवा अनावश्यक। यदि इस तरह का कोई भूभाग राज्य का स्वरूप ग्रहण कर नये राज्य के रूप में गणराज्य का सदस्य बनने को प्रस्तुत होता तो उस समय कांग्रेस इस बात पर निर्णय करती थी कि इन राज्यों के संविधान में दास-प्रथा-सम्बंधी धारा रहे अथवा दास प्रथा प्रतिबंध की धारा रहे। जिस समय संयुक्त राष्ट्र अमरीका का संविधान गढ़ा जा रहा था, उस समय दास-प्रथा एक ऐसा विषय था जिस पर सतर्कतापूर्वक समझौते की आवश्यकता थी। परन्तु चाहे कैसा भी समझौता क्यों न हो, स्वतंत्रताप्रिय राज्यों तथा दास रखने वाले राज्यों के मध्य कड़े विवाद की जड़ जम जाना सैद्धान्तिक रूप से स्वाभाविक ही था और इन्हीं प्रदेशों के कारण पुनः इसी विवाद में से सारे राष्ट्र को गुजरना पड़ा।

दास-प्रथा के अतिरिक्त अन्य दूसरे सभी मामलों में संविधान के विधायकों ने महान बाधाओं में भी उच्च कोटि की राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है; विधायकों का दास-प्रथा के प्रति इस तरह का रुख रखना किसी न-किसी रूप में महत्त्वपूर्ण ही था। लिंकन की जीवनी के पाठक इसे बाद में अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

[२]

सीमा विस्तार

शासनतंत्र की प्रणाली गढ़ ली गयी; अब हमें इस पर विचार करना है कि किस प्रकार यह प्रणाली क्रियाशील हुई। यह विशाल राष्ट्र जो इसके अंतर्गत शासित होने वाला था, अभी भी सुस्थिर रूप से बस नहीं पाया था। उसके भूभाग में अभी भी सीमा-विस्तार, परिवर्तन व विलय की आवश्यकता दृष्टिगोचर हो रही थी। राज्यों की सीमाएं और आपसी विस्तार के क्षेत्र अभी भी अनिर्णीत तथा विवादग्रस्त थे। अतएव इस स्थान पर सीमा-विस्तार पर विचार करना अधिक उचित होगा।

इन तेरह उपनिवेशों में जब पहली बार क्रांति का श्रीगणेश हुआ तब उन राज्यों की पश्चिमी सीमाएं स्पष्ट थीं। इनमें से सबसे पश्चिमी राज्य का प्रदेश समुद्र-तट से लेकर अल्लेगेनी पर्वतों तक फैला हुआ था। युद्ध का अंत होने पर ब्रिटेन ने संयुक्त राष्ट्र अमरीका को मिसीसिपी नदी का अन्तर्वर्ती प्रदेश सौंप दिया, वरर्जीनिया ने अब तक केन्टकी प्रदेश को आबाद कर लिया था और कुछ काल के लिये इसे उस राज्य के अंतर्गत माना गया। उत्तरी व दक्षिणी कारोलिना ने टेनेसी प्रदेश को आबाद किया और वह उत्तरी कारोलीना के अंग बन गये। वरर्जीनिया ने ओहीयो नदी के उत्तर का प्रदेश जीत कर इस उत्तर पश्चिमी प्रदेश पर अपना अधिकार जताया। परन्तु इस तरह के विवादग्रस्त प्रदेश, जिनके दावे सुलझने या अर्धनिर्णयात्मक स्थिति में थे, राष्ट्रीय सरकार को संविधान बन जाने पर सौंप दिये गये। राष्ट्रीय सरकार ने भी शीघ्र ही एक बड़े भूभाग पर अपना अधिकार किया। १८०३ में राष्ट्रपति जफरसन ने दृढ़ता के साथ संविधान के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों के अनुसार नेपोलियन प्रथम से मिसीसिपी नदी का पश्चिमी क्षेत्र ल्युशियाना खरीद लिया। पश्चिमी क्षेत्रीय यह प्रदेश वर्तमान ल्युशियाना राज्य से अधिक विस्तृत नहीं था; परन्तु सुदूर उत्तर में यह इतना फैला हुआ था कि मिसूरी व उसकी सभी सहायक नदियों वाला यह क्षेत्र वर्तमान मोंटाना राज्य तक पहुँच गया था। १८१९ में स्पेन से फ्लोरिडा क्षेत्र खरीद लिया गया और उसने तटवर्ती अल्बामा और मिसीसिपी प्रदेश से भी अपना अधिकार हटा लिया।

जिस समय लिंकन ने अपना राजनीतिक जीवन आरंभ किया, उस समय संयुक्त राष्ट्र अमरीका का यही स्वरूप था। जिस तरह के लोगों ने अमरीका को बसाया और इसे आबाद किया, उसमें विभिन्न वर्गों के व्यक्ति मिलते हैं। १७८० के बाद अधिकतर निर्धन परिवार या वरर्जीनिया से कारोलिना के धनी परिवारों के युवा पुत्र यहाँ बसने आये। ये केन्टकी और मिसीसिपी क्षेत्र में पहले बसे, बाद में निरंतर सुदूर उत्तर की ओर बढ़ते गये और इन्डियाना, इलिन्यास तथा मिसूरी तक पहुँच गये। अधिकतर इनमें एक ही परिवार के लोग या विभिन्न परिवारों के समूह थे, जिनमें कई साहसिक उत्साही व्यक्ति थे। ये लोग अधिक मेहनती व स्फूर्तिवान थे। इनके आने के बाद दक्षिण में बागानों का विकास हुआ। केन्टकी और टेनेसी में जैसे इक्के-दुक्के दास स्वामी आकर बसे थे वहाँ उस तरह की व्यवस्था नहीं थी, वरन् बड़े पैमाने पर खेत व बाग खड़े किये जा रहे थे, जहाँ इनके मालिकों ने दासों द्वारा इन खेतों में काम

लेना विशाल पैमाने पर आरंभ कर दिया था। बागान-क्षेत्र केवल पश्चिमी सीमा की ओर ही न बढ़ कर मेक्सिको की खाड़ी और मिसीसिपी तथा ल्यूशियाना तक पहुँच गया। इस राज्य में फ्रांसिसी लोगों की अधिकता थी, बाद में बागान व्यवस्था मिसीसिपी और मिसूरी राज्यों में भी पनपने लगी। कालान्तर में उत्तरी क्षेत्र के राज्यों ने पश्चिमी क्षेत्र में अभियान किया। इन लोगों ने पहले अपनी शक्ति नौकानयन, व्यवसाय, तथा ऊबड़खाबड़ भूमि को साफ करने में लगायी। अतएव इलिन्यास में ये लोग काफी देर से पहुँचे, जबकि दक्षिणी प्रदेश के लोग वहाँ इनसे पहले ही पहुँच चुके थे। अंत में जैसे-जैसे इनके औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई, इन राज्यों में यूरोपवासी अधिक संख्या में आकर बसने लगे और उत्तर पश्चिम के उपजाऊ क्षेत्र में ऐसे लोगों का विशाल जनसमूह आकर बस गया, तथा आज भी यह क्रम जारी है। मिसीसिपी के ऊपरी क्षेत्र में इमारती लकड़ी के अभाव तथा अन्य कारणों से इस क्षेत्र की उपजाऊ भूमि के विकास में बाधा पैदा हुई। ये बाधाएं रेलों के विकास के बाद ही हल की जा सकीं। १८४० में रेलों का प्रारम्भ हुआ था। तब तक ये भूभाग काफी विस्तृत हो चुके थे। १८३० में इलिन्यास सुदूर पश्चिम तक फैल चुका था। यही हाल १८६० में आयोवा और मिनेसोटा का था। उत्तर क्षेत्रीय लोगों ने पश्चिम की ओर जब अभियान किया तो वे अच्छी संख्या में थे। इनमें दूसरों की अपेक्षा अनुशासन की भावना तथा सुसंस्कृत सभ्यता झलकती थी। अतएव उस क्षेत्र में जहाँ पहले लिंकन के परिवार वाले एकाकी बसे थे, ऐसे लोगों के पहुँचने से बड़े पैमाने पर एक सामाजिक परिवर्तन का युग आरंभ हुआ। इलिन्यास में, जहाँ से हमारी कहानी सम्बद्ध है, लिंकन के बसने और उसके राष्ट्रपति बनने के समय तक जनसंख्या में सातगुनी वृद्धि हो गयी थी।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका का सीमा विस्तार १८४६ में टेक्सास प्रदेश के विलय से भी हुआ। यह विलय एक समझौते के अनुसार सम्पन्न हुआ। पहले टेक्सास प्रदेश का मेक्सिको से पृथक अस्तित्व था तथा उसमें टेक्सास राज्य के विशाल प्रदेश के अलावा भी उसका क्षेत्र अर्कान्सास नदी तक फैला हुआ था। १८४६ में सीमा निर्धारण समझौते के अनुसार ब्रिटेन ने ओरेगान प्रदेश संयुक्त राष्ट्र अमरीका को सौंप दिया; इससे इसी नामवाला वर्तमान ओरेगान राज्य का प्रदेश और कोलंबिया नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र भी नये राष्ट्र में सम्मिलित हो गये। इन दिनों ब्रिटिश कोलंबिया का भूमाग ब्रिटेन को दे दिया गया। इसके

अतिरिक्त मेक्सिको से १८४८ में जीता गया केलीफोर्निया का प्रदेश, तथा सीमा क्षेत्र की खरीद व अन्य कई छोटे उपनिवेशों के मिल जाने के पश्चात् कहीं जाकर अमरीका का वर्तमान स्वरूप विकसित हो पाया।

[३]

राष्ट्रीय सरकार की प्रक्रिया और परम्पराओं का विकास

अब हमें पुनः इस नवगठित संयुक्त राष्ट्र के आंतरिक विकास पर विचार करना चाहिए। संविधान तैयार कर लिया गया था। सभी राज्यों ने इसे स्वीकार भी कर लिया और इसके अंतर्गत जार्ज वाशिंगटन को संयुक्त राष्ट्र अमरीका का सर्वप्रथम राष्ट्रपति भी घोषित किया गया। ठीक इसी समय एक नया विवाद दो दलों में उठ खड़ा हुआ। उस समय वाशिंग्टन के मंत्रिमंडल में अलेग्जेंडर हेमिल्टन और टामस जफरसन दो मंत्री थे, जो इन विरोधी दलों के नेता थे। दोनों ही महत्वशाली और शक्तिसम्पन्न व्यक्ति थे। हेमिल्टन सभी माने में एक बड़ी हस्ती था। विरोधाभासों के कारण इन दोनों ने राष्ट्र की जो सेवाएं कीं उसके आधार पर ही यह नव राष्ट्र अधिक विकसित हो सका।

अलेक्जेंडर हेमिल्टन जिस समय वित्त मंत्री थे, उस समय इनकी तुलना फॉक्स व नेपोलियन जैसे महान् व्यक्तियों से प्रसिद्ध इतिहासकार टेलीरेन्ड ने की थी। उस काल के इतिहास का अध्ययन करने वाला कोई भी विद्यार्थी हेमिल्टन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यदि उसके नाम का—आज अमरीका में, जिसकी उसने महान सेवाएं कीं—अधिक समादर नहीं है, तो उसका कारण केवल यही है कि वह व्यक्ति अपने विचारों में, सच्चे माने में अमरीकी नहीं था। हेमिल्टन के पूर्वज स्काटलैंडवासी तथा फ्रॉसिसी थे। उसका जन्म नेविडा के पश्चिमी द्वीपों में हुआ था। बाल्यकाल में उसने न्यूयार्क में शिक्षा प्राप्त की। इन दिनों उसने अपने भाषणों से न्यूयार्क-वासियों का ध्यान स्वाधीनता के आदर्श की ओर आकर्षित किया। वाशिंगटन की मातहती में रहकर उसने युद्धक्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। उसने शौर्य-प्रदर्शन के साथ-साथ कई अंग्रेजों व उनके समर्थकों की रक्षा की; परन्तु अमरीकी स्वाधीनता के संग्राम में उसने ब्रिटेन के विरुद्ध शानदार संघर्ष किया। उसने न्यूयार्क जैसे केन्द्रीय राज्य को संविधान स्वीकार कर लेने के लिये राजी किया, जब कि वहाँ का स्थानीय शक्तिशाली दल संविधान को ठुकरा देने के पक्ष

में था और इस तरह राष्ट्रीय एकता का निर्माण असम्भव बना देने पर तुला हुआ था। वाशिंगटन के वित्तमंत्री (अर्थसचिव) के रूप में उसने शासन तंत्र को संगठित किया, अपने प्रमुख को नव राष्ट्र के शैशवकाल में ही दृढ़, सच्ची और सतर्क विदेशनीति लागू करने में सहयोग दिया तथा राष्ट्र की अस्त-व्यस्त अर्थव्यवस्था को समुचित रूप प्रदान करने में उसने सबसे बड़ी सेवा की।

अधेड़ अवस्था आरंभ होने के साथ ही हेमिल्टन का देहान्त हो गया, या यों कहें कि उसने स्वयं अपने जीवन का अंत कर दिया—ऐसा जीवन जो निरर्थक नहीं था वरन् सराहनीय और हृदयग्राही था। इसका अंत भी उसने बड़े ही शौर्य से किया। आरोन बुर नाम के किसी व्यक्ति ने उसे एक घातक द्वन्द युद्ध लड़ने को बाध्य किया और हेमिल्टन ने इसे स्वीकार कर लिया। बुर एक दुर्व्यसनी व्यक्ति था। उसमें कतिपय गुण अवश्य थे परन्तु उसमें सिद्धांत तो नहीं के समान थे। राष्ट्रपति-पद के लिये हेमिल्टन के महान प्रतिद्वंद्वी जफरसन के विरुद्ध इसने भी उम्मीदवारों में अपना नाम दिया था। हेमिल्टन ने यह जानते हुए कि इस तरह का द्वन्द उसके लिये संकटमय हो सकता है उसे स्वीकार किया और निस्संकोच इस तरह उसने अपना प्रबल पक्ष कट्टर विपक्षी जफरसन को प्रदान किया। हेमिल्टन की नीति की बारीकियों में हमें नहीं जाना है, परन्तु यह सत्य है कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका उसके द्वारा प्रदत्त दृढ़ शासनतंत्र की भावना और व्यवहारिक प्रशासन के बिना अधिक दिनों तक ठहर नहीं पाता और सारा ढाँचा ही लड़खड़ा जाता। इस सब का श्रेय हेमिल्टन को है जिसने नवीन राष्ट्र को गति प्रदान की। तथापि 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार हेमिल्टन में भी अमरीकी जन-सामान्य की भावना को समझने और संघ राष्ट्र को एकता में बनाये रखने की प्रबल आकांक्षा को स्वीकार करने की सामर्थ्य नहीं थी। हेमिल्टन के दल का नाम फेडरलिस्ट दल (संघीय दल) था, क्योंकि उन लोगों का विश्वास संगठित व कुशल संघीय सरकार की स्थापना में था। हेमिल्टन की मृत्यु के साथ ही इस दल की भी सांस उखड़ गयी। इस दल के समाप्त होते ही अमरीका में सदा के लिये-ऐसे दलों का अंत हो गया जिनके सिद्धान्त या झुकाव सामन्तशाही की ओर हो।

जफरसन के दल का भविष्य फेडरलिस्टों के ठीक विपरीत था, उस समय यह दल रिपब्लिकन कहलाता था; परन्तु बाद में बनने वाली रिपब्लिकन पार्टी के साथ उसका सम्बंध जोड़ना भूल होगी। उस समय राष्ट्रपति का सम्बन्ध डेमोक्रेटिक दल से था और उनका यह दावा था कि राष्ट्रपति-पद उनके दल के

लिए क्रमबद्ध दैवी अधिकार के समान है। हमें इनके आपसी सम्बंधों में गहरे जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि हम दलों की तुलना व्यक्तियों से नहीं कर सकते। वाशिंगटन के मन्त्रिमंडल में विदेशमंत्री के रूप में टामस जफ़रसन का जो व्यक्तित्व निखरा तथा उसने अपने जीवनकाल में जो कार्य किये और जैसा दीर्घकालीन व्यापक प्रभाव सारे अमरीका पर उसका पड़ा, उसकी तुलना दूसरे से नहीं की जा सकती।

अभी तक कोई भी जीवनी-लेखक जफ़रसन के विलक्षण जीवन को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने में सफल नहीं हुआ है। अन्य आलोचकों ने सहानुभूति-रहित ढंग से उसके बारे में जो भी लिखा है, उससे ऐसा प्रतीत होता है मानों सारी सामग्री रसहीन, विरोधाभासी तथ्यों का संग्रह मात्र है। जफ़रसन का कद लंबा था। स्फूर्तिवान होने के साथ-साथ वह एक कुशल घुड़सवार तथा अचूक निशानेबाज भी था। सात वर्ष तक उसने गृहयुद्ध में सफल नेतृत्व भी किया; परन्तु एक भी दिन उसने बंदूक चलाने के प्रति रुचि नहीं प्रदर्शित की। वह एक विद्वान, संगीतकार और गणितज्ञ भी था। उसे लच्छेदार चिकनी-चुपड़ी बातें या खुशामदी भाषा बोलना पसन्द नहीं था। "एक महान महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व—जो किसी भी तरह की प्रशासनिक कुशलता या साहस के बिना भी विवादों अथवा विचार व्यक्त करते समय भी—अपना प्रभाव दूसरों पर डालने में समर्थ था। उसे सदा धार्मिक या दयापूर्ण विचार पसन्द थे, परन्तु अपने निजी जीवन में वह कपटपूर्ण व्यवहार तथा क्रूरतम बदला लेने वाले व्यक्ति के रूप में भी कुख्यात था।" यह चित्रण जफ़रसन के व्यक्तित्व का यथायोग्य चित्रण नहीं है। यह उस व्यक्ति के अनुकूल नहीं है क्योंकि जफ़रसन के मित्रों की उसके बारे में दूसरी राय थी। फिर भी यह सत्य है कि ऊपर जिन गुण-अवगुणों का चित्रण किया गया है, उन सबके प्रमाण मिलते रहे हैं। अतएव किसी भी विदेशी लेखक के लिए यह असंभव बात है कि वह जफ़रसन के बारे में विचार करते समय उसकी कमियों की ओर ध्यान नहीं दे, और जब कि उस प्रतिद्वन्द्वी के साथ जिसे इन्होंने राजनीतिक जीवन से समाप्त करना चाहा इसकी तुलना की जा रही हो। तथापि जफ़रसन ने कठोर परिश्रम द्वारा उन लोगों से निजी संपर्क साध कर एक बड़े राजनीतिक दल को जन्म दिया, अपनी छाप सारे राष्ट्र पर छोड़ी, और सदा ही अपने प्रभाव का राष्ट्रीय हित में ही प्रयोग किया। जफ़रसन के दल ने जिस शीघ्रता के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर पूर्ण विजय प्राप्त की, उससे मालूम होता है कि अमरीकी जन-जीवन में

फ्राँसिसी राज्य-क्रान्ति के स्पष्ट व विवेकयुक्त सिद्धान्तों की धारा प्रवाहित हो उठी थी। हेमिल्टन की विचारधारा के विरुद्ध जब जफरसन ने अपना विरोध आरंभ किया, उस समय अमरीकी राजनीतिक जीवन में इस पर अधिक जोर दिया जाने लगा था कि सरकार अधिक शक्तिशाली हो, जिससे व्यवसायी जगत में स्थिरता बनी रहे। फ्रांस में क्रांति के नाम पर जो रक्तपात व गुण्डागिरी हुई, उसकी ब्रिटिश और अमरीकी विचार-क्षेत्रों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। यह लहर अमरीका में अधिक शक्तिशाली थी। इसके बावजूद भी जफरसन ने स्वतंत्रता के मूल्यों में गहन विश्वास स्थापित किया और सरकार के समक्ष कोई भी नागरिक चाहे वह किसी भी श्रेणी या स्थिति का व्यक्ति क्यों न रहा हो, उसे समान अधिकार दिलाया। इसके अतिरिक्त शासन-तंत्र में भी उसने यह प्रक्रिया उत्पन्न की कि सर्वोपरि महत्व उन लोगों के स्वीकृत सिद्धान्तों को देना होगा जिन पर वे शासन करते हैं। इतना ही नहीं, उसने इस तरह की विचार-धारा को राष्ट्रीय जीवन का इतना महत्वपूर्ण अंश बना दिया कि भले ही दृढ व स्थायी प्रशासनवाला दृष्टिकोण लुप्त नहीं हुआ, परन्तु स्वतंत्रता के सिद्धान्तों के समक्ष वह गौण ठहराया जाने लगा।

अमरीका में जो इस तरह की उदारवादी विचारधारा का जन्म इतना पहले हो गया, उससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि केवल कुछ लुभावने नारे प्रचलित हो गये हों अथवा लोकतंत्र का ऊपरी दिखावा, मसलन् वयस्क मताधिकार या ऐसे ही कुछ सिद्धान्त चल निकले हों। प्रारम्भ में कुछ राज्यों में अवश्य ही लोकशाही के ऊपरी दिखावे को सैद्धान्तिक तौर पर स्वीकार कर लिया गया था। परन्तु राष्ट्रीय एकता की भावना भी प्रबल हो रही थी। हमें यहाँ जफरसन के विलक्षण चरित्र की गहराइयों में उतरना होगा; तभी जाकर इस भावना पर प्रकाश पड़ेगा जो उसके नेतृत्व-काल में राष्ट्रीय एकता के स्वरूप को प्रभावित करती रही। इतिहासकारों ने कहीं-कहीं उसके इस चरित्र को इस तरह अंकित किया है मानों उसका व्यक्तित्व फ्रांस के अव्यावहारिक दार्शनिकों तथा राजनीतिक उत्पातियों का-सा हो। डिकन्स के कथा-नायक मार्टिन चज़लविट का ऐसे तत्वों से पाला पड़ा जो अपने आपको स्वतंत्रता की संतान कहते थे और इन लोगों की यह मान्यता रहती थी कि सभी तानाशाहों तथा क्रूर शासकों का निवास अस्ताचलगामी सूरज के साथ अस्त कर दिया जाय। जफरसन इस तरह का व्यक्ति नहीं था। हो सकता है कि विदेशनीति के बारे में उसका निर्णय अदूरदर्शी रहा हो। विदेशमन्त्री होते हुए भी उसने (अत्यंत

संकीर्ण मसलों पर) वाशिंगटन का विरोध किया। वह इस पक्ष में नहीं था कि संविधान के अंतर्गत राष्ट्रीय सरकार के जो अधिकार हैं उन्हें भी संकुचित कर दिया जाय। यह निर्विवाद सत्य है कि जफरसन और उसके दल ने निरर्थक आक्रोश के प्रति जो विरोधपूर्ण दृढ दृष्टिकोण अपनाया, वह सही था। यद्यपि राष्ट्रपति के रूप में वह अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि उसके प्रतिद्वन्द्वी ने प्रशासन का जो विचारपूर्ण पथ निर्धारित किया, जफरसन के लिए उसे निर्बाध गति से जारी रखने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। अमरीका आज भी इसके लिये ऋणी है कि उसने अपने राजनीतिक जीवन में कई महत्वपूर्ण कार्यों के अतिरिक्त एक महान सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त ने संयुक्त राष्ट्र अमरीका के भावी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपने इन सिद्धान्तों के अनुकूल उसने वरजीनिया में कई महत्वपूर्ण सुधार के कार्य सम्पन्न किये। जफरसन ने वरजीनिया राज्य में निरंतर परिश्रम व लगन से ये महत्वपूर्ण सुधार के कदम उठाये। यद्यपि ये विशेष क्रान्तिकारी नहीं थे फिर भी इनका महत्व है। उसने धार्मिक सहनशीलता, भूमि-कानून में सुधार, निर्धनों के लिये शिक्षा की व्यवस्था, तथा दासों को धीरे-धीरे मुक्ति प्रदान करने की योजना (जो यद्यपि असफल रही) को क्रियान्वित किया। जफरसन के अनुयायियों ने अन्य राज्यों में इसी तरह इन कुरीतियों को नष्ट करने तथा नयी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में सुधार लाने के लिए इंगलैंड के सुधारवादी रोमिली और बेन्थम की तरह प्रयत्न किये। इंगलैंड के सुधारवादियों ने अपनी छाप रिफॉर्मिस्ट पार्लियामेंट के काल में डाली तथा जफरसन के प्रयत्न बहुत दिनों बाद कहीं जाकर सफल हुए। इन सबका यही प्रयत्न था कि राष्ट्रीय स्वरूप में कोई कमी नहीं हो और वह पूर्ण व्यवस्थित रहे। यद्यपि ये लोग इस दिशा में इंगलैंड से आगे नहीं आ सके, फिर भी जफरसन के समय के इन अमरीकावासियों के प्रयत्नों को चुनौती नहीं दी जा सकती है।

तथ्यों को सामने रखते हुए हमें जफरसन के उन महान उद्घोषों पर विचार करना चाहिए जो लम्बे समय तक गौरवशाली विजयघोष या ठीक इसके विपरीत प्रतिक्रियाजनक शब्दों में अमरीकावासियों के मस्तिष्क में गूंजते रहे। इन्हीं उद्घोषों पर आगे चलकर लिंकन ने दास-प्रथा से मुक्ति के लिए मानवीय समानता के नाम चिरस्मरणीय अपील की। जिस समय संविधान स्वीकार किया जा रहा था उस समय जफरसन ने एक सिद्धान्त को लेकर प्रचार आरंभ किया।

उस सिद्धान्त को उसने अपने युवाकाल में, जब "स्वतंत्रता के घोषणापत्र" का प्रारूप तैयार किया जा रहा था, जन्म दिया। इस घोषणापत्र में उपनिवेशवासियों के असंतोष को मुख्य रूप से व्यक्त किया गया है। इसमें कानूनी तर्क-वितर्क, कई तरह के संगत-असंगत विचारों की अभिव्यक्ति है जैसी चार्ल्स प्रथम के समय पार्लियामेंट में प्रस्तुत की गयी थी। परन्तु इन तर्क-वितर्कों के प्रारम्भ में जो भूमिका है उसमें यह उद्घोष उल्लेखनीय है—"हम इस सत्य को निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि सभी मनुष्यों को समान बनाया गया है, कि परमात्मा ने मनुष्य को कुछ विशेष अपरिवर्तनीय समान अधिकार प्रदान किये हैं। इनमें से जीवन, स्वतंत्रता तथा सुखप्राप्ति प्रमुख हैं। इन अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए मनुष्यों में शासनतंत्र स्थापित किया गया है; इस शासनतंत्र के न्यायोचित अधिकार शासितों की स्वीकृति से प्राप्त होते हैं।" बाइबिल के अतिरिक्त ऐसा उदाहरण बहुत कम उपलब्ध होता है जिसके द्वारा जफरसन के विरुद्ध की गयी विवेकहीन व धूर्ततापूर्ण आलोचना का उत्तर दिया जा सके।

जफरसन ने जिस समय यह बात कही कि "सभी मानवों को समान रचा गया है" और अनुदार डा. जानसन ने जब मनुष्यों की नैसर्गिक समानता का उल्लेख किया, तो दोनों ने अठारहवीं सदी में प्रचलित सिद्धान्तों का प्रयोग किया। यूनानी दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी इस सिद्धान्त के मूल को ज्ञात कर सकता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सिद्धान्त हास्यप्रद या निरर्थक-सा हो, न ही इस उद्घोष में केवल मौखिक प्रचलित वेदवाक्य की-सी ध्वनि है। यह आवश्यक नहीं है कि यहाँ इस सिद्धान्त की व्याख्या की जाय। लिंकन ने बाद में आवश्यकता पड़ने पर स्वयं इसका पूर्ण विश्लेषण किया—"सम्माननीय समानता का अर्थ जफरसन के दृष्टिकोण में यह नहीं था कि मनुष्य समान ऊँचाई या वज़न के हों और न ही सभी समान बुद्धि या समान रूप से भले हों। उसने इस सिद्धान्त का प्रारंभिक प्रयोग कानून की दृष्टि में करना चाहा था, जिसके अनुसार हत्या सबके लिए समान अपराध माना जाय, भले ही हत्यारा अथवा जिसकी हत्या की गयी है, वे व्यक्ति समाज में ऊँच, नीच अथवा कैसी ही प्रतिष्ठा क्यों न रखते हों।"

जफरसन ने जिन दिनों इस कानून का उल्लेख किया उसके बहुत पहले से ही इंग्लैंड में यह नियम शक्तिशाली बन चुका था। फिर भी जब लार्डसभा ने अपने ही एक सामन्त सदस्य को सेवक की हत्या के अपराध में फाँसी पर लटका दिया, तो सारा यूरोप आश्चर्यचकित रह गया। ऐसे बहुत तरीके हैं

जिनके अनुसार वे व्यक्ति जो पूर्णतया असमान हैं, सरकार व अपने पड़ौसियों के समक्ष अन्य व्यक्तियों के बराबर माने जा सकते हैं। इस सिद्धान्त की केवल व्याख्या ही नहीं की जाकर इसे जीवन में व्यापक तौर पर लागू किया जाना चाहिए। जफरसन ने यदि मानवीय समानता और उसके सहयोगी सिद्धान्त स्वतंत्रता को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया था—जैसाकि बाद में स्वयं लिंकन जैसे महान व्यक्ति ने स्वीकार किया (उसने इन सिद्धान्तों को पूरी सच्चाई व ईमानदारी से व्यक्त किया है), तो भी यह ऐसी बात है जिसे आज कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त उसने जिन सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया उसे अमरीका की विभिन्न राज्य सरकारों ने निरर्थक बना दिया था, इसके विपरीत कानून बनाये गये—और हेमिल्टन और उसके उत्साही अनुयायियों के लिए, जिन्होंने इनका समर्थन किया, ये सिद्धान्त अव्यावहारिक ही रहे।

स्वाधीनता का घोषणापत्र राज्य का स्पष्ट नीतिपत्र नहीं था और जफरसन ने इसके लिए जो भावनामूलक लोकप्रियता बनायी, वह कई तरह के विरोधाभासों से अछूती नहीं थी। बहुत से लोग जो वाशिंगटन और हेमिल्टन जैसे महान नहीं थे, अपने-आपको उनके समकक्ष मानते थे और नीग्रो को, जैसी स्थिति में वे थे, अपने समान मानने को तैयार नहीं थे। इस नयी दुनिया की विशालता और विचित्रताओं के कारण भी समानता और स्वतंत्रता को कुछ दिशाओं में महान सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया; यहाँ तक कि इसके लिए अधिक परिश्रम व अनुशासन की आवश्यकता थी। लिंकन ने जिन महान देशभक्तिपूर्ण भाषणकर्त्ताओं से अपने युवाकाल में सीखा-सुना, वे लोग भी अपने इस महान लोकतंत्र को राजनीतिक विद्वत्ता की महत्वपूर्ण उपज मानते जब कि कई लोग उसे वहाँ की भौगोलिक स्थिति की देन मानते थे। वे लोग विशाल वनों व विस्तृत क्षेत्रों को अपने लिए सार्थक समझने लगे, जैसा कि कुछ लोग इंगलैंड के विकास व राजनीतिक चेतना का श्रेय उसकी द्वीप पर बसे होने की स्थिति को देते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि नयी दुनिया की इस परम्परा का जिसने लिंकन के विचारों को सरल व स्वाभाविक अनुप्रेरणा दी, कोई मूल्य नहीं है। जफरसन एक महान अमरीकी देशभक्त था। उसके हृदय में सभी राज्यों के अधिकार की भावना केवल आडंबर मात्र नहीं थी। उसके अनुसार ये प्रादेशिक सरकारें ऐसा तंत्र थीं, जिसके द्वारा सरकार व जनता को निकट के सम्पर्क में लाया जा सकता था और उसने यही सबसे बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसकी सुदृढ़

राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में महती आवश्यकता थी। उसने अपने देश में एक नवीन ऐतिहासिक परम्परा को जन्म दिया और उसके अनुयायियों ने इसके मौतिक साधन जुटाये जो भावनात्मक कवित्व और पूर्ण राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थे। किसी भी प्राचीन राष्ट्र में देशभक्ति को गर्व और गौरव उसके अतीत की परम्पराओं की प्रेरणा से प्राप्त होता है, इनका प्रभाव गहरा होता है और विना किसी नवीन प्रक्रिया के ये सार्वजनिक व निजी जीवन में गौरवमय अतीत के प्रेरणा-स्रोत बनाये रखते हैं। जफरसन वह व्यक्ति था, जिसने नयी दुनियाँ को इस ऐतिहासिक गौरव के अभाव से मुक्ति प्रदान की तथा उसने गौरवपूर्ण राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीयस्वरूप आदि उच्चादर्श प्रदान किये। यह एक ऐसा महान कार्य था जो संगठित स्वरूप ग्रहण करने के पश्चात् किसी भी राज्य के लिये महान प्रशासकों पर रचनात्मक राजनीतिज्ञों के कार्यों से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

[४]

मिसूरी समझौता

कोई भी गंभीर आलोचक अमरीकी राजनीतिज्ञों की पहली पीढ़ी की तुलना उनके समकालीन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से करते समय कभी भी यह दोषारोपण नहीं करेगा कि उन्होंने अपने लिए जहाँ तक सम्भव था, एक अच्छे-से-अच्छा संविधान तैयार करने में दासप्रथा की जो उलझनें उन्हें महसूस हुईं, उन्हें राज्यों की एकता लाने में बाधक बनने दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल दासप्रथा के मसले पर ही कुछ अप्रत्यक्ष मतभेद था, अन्यथा ये राज्य दूसरे सभी मामलों में एकमत थे। परन्तु इस तरह स्वाधीनता का घोषणापत्र तैयार करने वालों में बहुत से ऐसे लोग भी थे जिन्होंने स्वतंत्रता और समानता के अनुल्लेखनीय अधिकार के नाम पर संविधान के अंतर्गत अफ्रीका के दास-व्यापार को १९ वर्ष तक के लिये पूरी छूट दे दी। यह अपने-आप में कितनी हीनतापूर्ण मक्कारी है। इसके अतिरिक्त उन राज्यों को भी जो दास-प्रथा को अनुचित मानते थे, कानून के अन्तर्गत यह कार्य सौंप दिया गया कि वे स्वतंत्र दासों को पुनः बंधन में डाल दें। डा. जानसन ने चुटकी लेते हुए पूछा है—"दासों को हाँकने वाले ही स्वतंत्रता की बढ़ी-चढ़ी बातें क्यों करते हैं!" तथ्यों को देखते हुए हमें यह कहने पर बाध्य होना पड़ता है कि जिस रास्ते को उन्होंने अंगीकार किया उसके अलावा ऐसा कोई चारा नहीं था, जिसके अंत-

गंत इन राज्यों में एकता लायी जा सकती थी। फिर भी इन लोगों द्वारा जिस 'स्वतंत्रता और समानता' की जोर-शोर से गर्जना की गयी है, उसके बारे में संदेह रहना स्वाभाविक ही है कि इनमें कितनी गहराई और सच्चाई थी। अब हम दास-प्रथा के बारे में उस नीति का अध्ययन करेंगे जिसने लिंकन को महान नेता के रूप में प्रस्तुत किया। लिंकन ने बार-बार दुहराया कि दास-प्रथा की समाप्ति करने का अर्थ अपने पूर्वजों (वह लोग जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम छेड़ा और संविधान बनाया) की परम्परा को अपनाना है। यद्यपि लिंकन इतिहासज्ञ नहीं था, परन्तु उसने इस बात को दुहराते समय सच्चाई के साथ राजनीति के एक ऐतिहासिक तथ्य को प्रकट किया है। हमें पहले यह देखना है कि इन पूर्वजों ने किस तरह दास-प्रथा जैसे प्रश्न पर ईमानदारी का दृष्टिकोण रखा, परन्तु उन लोगों ने लक्ष्य-प्राप्ति (दास-प्रथा से मुक्ति) के लिए विशेष कारणों से उस समय अधिक जोर नहीं दिया। वे लोग अवश्य इस ओर आशान्वित थे। संविधान-रचयिताओं में से शायद ही उस समय तक कोई जीवित रहा हो जब इस प्रथा का अंत आया। यदि उस समय कोई व्यक्ति बचा भी होगा तो उसने देखा होगा कि कितने निराशाजनक रूप में यह लक्ष्य प्राप्त हुआ।

इसके विपरीत ही कुछ समय बाद जिन राजनीतिज्ञों ने इस क्षेत्र में काम किया उन्होंने यह आशा कैसे छोड़ दी और इस समझौते से ही संतुष्ट हो गये कि दास-प्रथा, जैसा कि उनका विश्वास था, अमरीका के विकास व निर्माण में सहायक सिद्ध होगी।

संभवतया स्वाधीनता के घोषणापत्र पर जिन लोगों ने हस्ताक्षर किये उनमें कुछ लोग डा. जानसन की उक्ति के अनुसार बढ़-बढ़ कर बातें करने वाले रहे होंगे। यह भी महत्वपूर्ण है कि ऐसे भी बहुत-से लोग थे जो दास-प्रथा को जारी रखने के प्रबल पक्ष में थे और उन्होंने समानता के सिद्धान्त का विरोध करने में कसर नहीं उठा रखी थी। जफरसन जैसे व्यक्ति यह जानते ही होंगे कि दक्षिणी कारोलीना और जोर्जिया के लोग उनकी भावनाओं के पक्ष में नहीं थे। जोर्जिया के लोग नये-नये अमरीकी ही थे और दास-प्रथा के कट्टर पक्ष में थे। परन्तु अन्य राज्यों में दास-प्रथा के ऐसे सच्चे और बनावटी भक्त अधिक नहीं थे जो यह मानते रहे हों कि दास-प्रथा विकास में सहायक है। यहाँ तक कि सबसे अधिक दास वरजीनिया राज्य में थे; उसमें भी इनके विचारों के समर्थक नहीं के समान थे। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि १७७५ या १७८९ में इस मामले में अमरीकी विचारधारा ब्रिटेन से बहुत अधिक प्रगतिशील थी। परन्तु १८३३ में दास-प्रथा

के विरुद्ध ब्रिटेन की विचारधारा अमरीका से अधिक प्रगतिशील हो गयी और ब्रिटेन की सुधारवादी सरकार ने पश्चिमी द्वीपसमूह में दासों के मालिकों से सभी दास खरीद लिये और उन्हें स्वतंत्र कर दिया। पहले-पहले ब्रिटिश सरकार ने कई अमरीकी उपनिवेशों को दास-प्रथा के लिये बाध्य किया और कहीं १७६९ में जाकर औपनिवेशिक व्यापार को ध्यान में रखते हुए इन्होंने अफ्रीका से दास-व्यापार को बंद करने के लिये विशेषाधिकार का प्रयोग किया। अमरीकी उपनिवेशों में स्वदेश के विरुद्ध यह भी एक महत्व का असंतोष था। केवल इतना ही नहीं, इन उपनिवेशों में दास-प्रथा-विरोधी भावना इतनी बढ़ गयी कि १७७४ में सभी उपनिवेशों के सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित किया गया कि "इन उपनिवेशों में उनकी इच्छा के विरुद्ध लागू की गयी घरेलू दास-प्रथा शीघ्र समाप्त की जानी चाहिए परन्तु दासों को मतदान-अधिकार देने के पूर्व अफ्रीका से दासों का व्यापार बंद किया जाना चाहिए।" अतएव यह मानकर चला जाय कि युद्ध के कारण कुछ समय तक इस दिशा में कदम नहीं उठाया जा सका; परन्तु स्वाधीनता-प्राप्ति तक दास-प्रथा की सांस उखड़ चुकी थी।

अमरीकी पितृगणों में वाशिंगटन, जान एडम्स, जफरसन, मेडिसन, फ्रांकलिन और हेमिल्टन दास-प्रथा के समर्थक थे। इनमें पहले तो चार राष्ट्रपति रहे, शेष विचित्र विचारधाराओं व दलों के नेतागण थे। इनमें से कुछ लोग—वाशिंगटन और जफरसन स्वयं—दास रखते थे। वाशिंगटन का वह महत्वपूर्ण पत्र अभी भी सुरक्षित है, जिसमें उन्होंने अपनी श्रीमतीजी के भागे हुए हब्शी नौकर की वापसी के लिये लिखा था। उसमें लिखा गया था कि इस तरह की घटना इसके पूर्व वाशिंगटन के घर में कभी नहीं घटी थी। इस हब्शी महिला को वापिस समझा-बुझा कर भेज दिया गया तथा उसके साथ मालिक के कानूनी अधिकारों का प्रयोग नहीं किया गया, इसलिए नहीं कि वह स्वतंत्र हो गयी थी। जफरसन के गुलामों के साथ भी ऐसी ही कुछ स्थिति थी। उसकी नीति दास-प्रथा के कट्टर विरोध में थी। वृद्धावस्था में उसने इस बारे में आशा छोड़ दी और स्वतंत्रता के बजाय एकता पर जोर देने लगा। परन्तु यह निराशा उसे अपने प्रयत्नों में निरंतर असफलता प्राप्त होने के कारण ही हुई। वरजीनिया में जब उसने धीरे-धीरे दास-प्रथा समाप्त करने की दिशा में एक विधेयक प्रस्तुत किया तो वह अस्वीकार कर दिया गया। इस पर १७९१ में उसने लिखा—"मेरी यही मान्यता है कि प्रकृति ने अपने ही अश्वेत भाइयों को हमारी तरह बुद्धि प्रदान की है और इसकी कमी जहाँ-कहीं प्रतीत

होती है, इसका कारण इन लोगों की आर्थिक गिरावट है। यह अफ्रीका और अमरीका में समान रूप से लागू है। मैं सत्य के साथ यह और कहना चाहता हूँ कि एक ऐसी अच्छी पद्धति जारी की जाय जो इनके शारीरिक व बौद्धिक विकास में सहायक सिद्ध हो, साथ ही मौजूदा स्थितियों तथा दूसरी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस दिशा में तेजी से कदम भी उठाया जाय।"

जब उसे यह ज्ञात हो गया कि स्वतंत्रता का उदय नहीं होने वाला है, उसने अपने प्रभावशाली पत्रों में इस दिशा में गहरा दुख अभिव्यक्त किया। उसने लिखा—"जब कभी मैं नीग्रो लोगों के बारे में सोचता हूँ तो मेरे देश का नाम लेने मात्र से ही मैं काँप उठता हूँ।" यदि हम जफरसन को केवल उसकी अभिव्यक्त भावनाओं, या उसके इस दिशा में किये गये प्रयत्नों से भी नहीं आँकें, तो भी उसने दास-प्रथा की समाप्ति की दिशा में इतना महत्वपूर्ण प्रथम कदम उठाया कि उसे दास-प्रथा-मुक्ति-अभियान के सूरमाओं में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। उसने दासों की मुक्ति की दिशा में बाद में उठाये गये आंदोलनों को पहली कड़ी प्रदान की। १७८४ में वरजीनिया ने गणराज्य सरकार की स्थापना के पूर्व की कांग्रेस को उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र प्रदान कर दिया। जफरसन ने उस समय इस आशय का अध्यादेश जारी करवाया, जिसके अंतर्गत कांग्रेस को प्राप्त सभी प्रदेश में दास-प्रथा का उन्मूलन हो। परन्तु इस दिशा में वह असफल रहा क्योंकि जिस प्रदेश का विलय हुआ, वहाँ पहले से ही दास-प्रथा जम चुकी थी। इसका महत्वपूर्ण परिणाम १७८७ में एक अध्यादेश के रूप में सामने आया, जिसके अनुसार दास-प्रथा सदा के लिए उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश से समाप्त हो गयी और जब ओहियो, इन्डियाना, इलिन्यास, मिचिगन और विसकोनसिन राज्यों का गठन हुआ तो इन राज्यों में दास-प्रथा नाम की कोई व्यवस्था लागू करना असंभव बन गया।

इस दिशा में तत्कालीन पीढ़ी ने और भी कतिपय महत्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त कीं। यहाँ यह भेद समझना आवश्यक है कि दासों को रखना और अफ्रीका से दास-व्यापार को जारी रखना दोनों अलग-अलग प्रश्न थे। नयी कांग्रेस ने संविधान के अंतर्गत जनवरी १८०८ के प्रथम दिन ही दास-व्यापार को समाप्त कर दिया। इंगलैंड ने भी इन्हीं दिनों इसे समाप्त किया। तीन राज्यों ने तो अपने सीमा क्षेत्रों में भी दास-व्यापार बंद कर दिया। जहाँ तक दास-प्रथा का प्रश्न है तेरह में से सात राज्यों और वरमोन्ट ने यह प्रथा १८०५ के पहले ही समाप्त कर दी। ये सभी उत्तरी राज्य थे जहाँ दास-प्रथा का कुछ भी उपयोग

नहीं था। वरजीनिया में बहुत समय से लोगों में यह धारणा दृढ़ हो रही थी कि दास-प्रथा से आर्थिक लाभ नहीं है और अज्ञानवश ऐसी ही धारणा राष्ट्र के अन्य भागों में भी पायी जाने लगी कि दास-प्रथा स्वयं अपने-आप में ही समाप्त हो जायेगी। जो भी हो, यह निश्चित है कि जिन लोगों ने संविधान बनाया और उसके अनुकूल आचरण किया उसमें जफरसन प्रमुख है। अन्य कई महत्वपूर्ण समस्याओं के उठ खड़े होने के कारण व उपरोक्त धारणा के फलस्वरूप भी दास-प्रथा-उन्मूलन का अमरीका में किया गया कार्यारंभ अधूरा ही रहा।

इन्हीं दिनों अमरीका में एक ऐसी आर्थिक घटना घटी जिसके कारण दक्षिण में दास-प्रथा की उपयोगिता बढ़ गयी। १७९३ में एलिविटने ने कपास में से बिनौले अलग करने की मशीन का आविष्कार कर दिया, फलस्वरूप कपास का निर्यात १९२ हजार पौंड से बढ़ कर चार वर्षों में (१७९१–१७९५) ६० लाख पौंड तक पहुँच गया। कपास के उत्पादन में दासों द्वारा किया गया श्रम अधिक सस्ता और उपयोगी साबित हुआ था। इस तरह दक्षिणी कारोलिना और सुदूर दक्षिण में दास-प्रथा समृद्धिदायिनी और उस समय की सामाजिक प्रणाली का आधार बन गयी। फल यह हुआ कि वरजीनिया के कुछ निम्न स्तर के खेत-मालिकों ने गुलाम पालना व उनकी नस्ल को दक्षिण में बेचना आरंभ कर दिया।

अब हम १८२० के महत्वपूर्ण वर्ष का उल्लेख करना चाहते हैं। इस वर्ष इतना ही महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक कानून पारित किया गया जितना स्वयं संविधान भी नहीं था; परन्तु इसका महत्व ३४ वर्ष बाद में जाकर प्रमाणित हुआ। इस काल तक १३ मूल राज्यों में ८ नये राज्य सम्मिलित हो गये थे। उत्तरी राज्यों में उस समय यह दृढ़ भावना थी कि इन नये राज्यों के विधान में जब तक दास-प्रथा की स्वीकृति है, इनका विलय सिद्धान्तों के विपरीत है। प्रमुख दास-बहुल राज्यों में दास-प्रथा जारी रखने के दो मुख्य कारण थे। इनके नहीं होने पर दक्षिणी राज्यों के लोग अपने उद्योग के साधनों व जीवन-यापन के अपने तरीकों के अनुसार अब तक अछूत भूप्रदेश की ओर नहीं जा सकते थे। इसके अतिरिक्त उत्तर में पहले से ही जनसंख्या का आधिक्य था। अतएव यदि इस तरह के राज्यों की संख्या का तटस्थीकरण समान स्तर पर नहीं किया जाता तो दास-प्रथा के लिये भावी राजनीतिक संकट पैदा हो जाता। इस मामले में उत्तरी क्षेत्र किसी हद तक सहृदयता के साथ दक्षिण वालों की बात मानने को तैयार थे, क्योंकि चार नये दास-बहुल राज्यों की भूमि गणराज्य को पुराने दास-बहुल राज्यों ने प्रदान की थी और दास रखने वाले उस पर स्वतंत्रता से बस भी गये थे और

पांचवें राज्य ल्यूशियाना में दास-प्रथा फ्रांस के साथ की गयी एक संधि के अन्तर्गत कानूनी स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी। इस संधि की शर्तें उसी भूभाग पर लागू होती थीं, अन्य भूभाग पर नहीं। स्वाभाविक तौर पर फिर कई वर्षों तक यह क्रम जारी रहा कि दास-प्रथावाले राज्य और उत्तर के स्वतंत्र राज्य एक साथ ही जोड़े के रूप में गणराज्य में सम्मिलित किये जाने लगे। इसके बाद फ्रांस के उस पुराने भूभाग का प्रश्न उठ खड़ा हुआ जिसे आजकल मिसूरी राज्य कहते हैं। कुछ दास रखने वाले लोग इस भूभाग में दासों सहित जाकर बस गये परन्तु दासप्रथा को लेकर इस दिशा में कोई स्पष्ट अधिकार नहीं जताया गया। अतएव सीनेट के उत्तरी सदस्यों तथा काँग्रेस-सदस्यों ने माँग की कि मिसूरी राज्य के विधान में दास-प्रथा के धीरे-धीरे उन्मूलन का उल्लेख होना चाहिए। स्वाभाविक ही था कि इससे एक ऐसा विवाद पैदा हो गया जो वृद्ध जफरसन के शब्दों में रात को आग लगने पर संकट की घंटी बजने के समान था तथा पहली बार उससे सारे देश में यह महसूस किया जाने लगा कि गणराज्य व राज्यों में गहरी खाई पैदा हो गयी है। दक्षिण के प्रतिनिधि स्वाभाविक तौर पर अपने हित के प्रश्नों पर कई उत्तरी प्रतिनिधियों के मत प्राप्त करने में सफल रहे। अमरीकी इतिहास में इन्हें 'अपमानित चेहरे वाले' कहा गया है। परन्तु शीघ्र ही अगले चुनावों में इस तरह का मतदान करने वाले सभी पराजित हो गये। मिसूरी को गणराज्य में एक दास-बहुल राज्य के रूप में स्वीकार किया गया। मेन भी उसी समय स्वतंत्र राज्य के रूप में माना गया और यह कानून बनाया गया कि शेष भूभाग में जो फ्रांस से खरीदा गया है, ३६°-३०° अक्षांश देशान्तर उत्तर में दास-प्रथा अवैध रहेगी; इसके दक्षिण में वह समझौते के अनुसार जारी रहेगी।

यह मिसूरी समझौता था। पहले-पहल उत्तरी राज्यों ने इसे अपमानजनक माना; परन्तु बाद में वे समझ गये कि यह उनके लिये स्वतंत्रता के अधिकारपत्र के समान है। इसको स्वीकार कर लेने का अर्थ यह हुआ कि ३४ वर्षों तक सभी प्रमुख महत्वाकांक्षी अमरीकी राजनीतिज्ञों का यह सिद्धान्त बन गया तथा प्रत्येक दल-संचालक इस लक्ष्य को सामने रखने लगा कि राजनीति में दास-प्रथा ज्वलंत प्रश्न बना रहे। १८५४ में इस स्थिति के अंत ने ११ वर्षीय लिंकन के जीवन में, जब यह कानून पारित किया गया था, एक महत्वपूर्ण घटना की तरह काम किया।

[५]

लिंकन के युवाकाल के नेता, दल और प्रवृत्तियाँ

१८३० के आसपास, जब लिंकन ने इलिन्यास में अपना जीवन प्रारंभ किया, राष्ट्रीय जीवन में कई बड़े आंदोलन आरंभ हो गये थे। इन आन्दोलनों के साथ कई प्रख्यात व्यक्तियों के नाम जुड़े हुए थे।

तरुण राजनीतिज्ञ के रूप में लिंकन जिन दो नेताओं से अधिक प्रभावित हुआ, उनके नाम वेबस्टर और क्ले थे और उसके राजनीतिक शैशवकाल के अंत तक ये दो व्यक्ति अमरीकी राजनीतिक जीवन के क्षितिज पर चमकते रहे। इनमें से डेनियल वेबस्टर महान व्यक्तियों में से था। उसका नाम सदा ही राष्ट्रपति-पद के लिए दिया जाता रहा, इसलिए नहीं कि इस व्यक्ति में विशाल व्यक्तित्व व उदार चरित्र था, वरन् उस समय के दिखावटी दलीय मसलों पर ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी जो स्वयं में कम सैद्धान्तिक हों। इसका कारण यह था कि उस समय महत्वपूर्ण मसलों पर समझौते की नीति अंगीकार की जाती थी। यह व्यक्ति अपनी महानता की ख्याति इसलिए अधिक नहीं पा सका क्योंकि उसके हृदय में राज्यों की एकता के प्रति सुदृढ़ भावना थी और वह ऐसा कोई भी संकट-भरा कदम उठाने को तैयार नहीं था जिससे कि मतभेद पैदा हो जाय; अन्यथा बुद्धिमानी और ईमानदारी की उसमें कहीं कोई कमी नहीं थी। उसने दो बार विदेश-मंत्री-पद पर काम करते हुए अपनी राजनीतिज्ञता का परिचय दिया। वह एक कुशल वक्ता था और ऐसा कुशल वक्ता मुश्किल से मिल पाता जो अपने भाषणों के बल पर ही काम करा ले। उसका भाषण देने का तरीका इंगलैंड के पार्लियामेंट-सदस्यों की तरह का था परन्तु सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह गंभीर तर्कपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किया करता था। अपनी इस शक्ति का उपयोग उसने जनता को राष्ट्रीयता की दिशा में शिक्षित करने तथा उसकी महानता दर्शाने के लिए किया। एक वकील की हैसियत से उसने सुप्रीम कोर्ट में भी कई महत्वपूर्ण मामलों में बहस की। १८०१ से १८३५ तक प्रमुख न्यायाधीश जान मार्शल ने संविधान के विवादग्रस्त मसलों को वैधानिक ढंग से सुलझाया। एक राजनीतिज्ञ के सदृश उसके इन निर्णयों से संयुक्त राष्ट्र अमरीकी सरकार के हाथ भी मजबूत हुए; साथ ही जनता में भी उसके प्रति विश्वास की जड़ें जमने लगीं। यह एक महत्वपूर्ण कार्य था, क्योंकि अमरीकी सरकार

ी शक्ति नव संविधान के अनुसार अधिकतर न्यायालयों के हाथों में निहित
। तरुण वकील वेबस्टर के तर्क व उसके पेशे ने इस तरह के कार्यों में
हान योग दिया। बाद के दिनों में वेबस्टर और उसके अनुयायी सदा ही किसी
शेष पर्व या उत्सव के अवसर पर देशभक्तिपूर्ण सारगर्भित धाराप्रवाहित
षण देते थे और वेबस्टर ने यह पद्धति अपना कर अच्छा ही किया।
से ही एक महत्वपूर्ण अवसर पर उसने अपना सर्वोत्तम भाषण दिया, जो
यं अपने-आप में एक घटना बन गया। लिंकन ने इसी भाषण से अपने
जनीतिक सिद्धान्तों का मार्गदर्शन चुना। यह कहना उपयुक्त ही होगा कि
बस्टर और इंग्लैंड का बर्क एक ही श्रेणी के महान कोटि के वक्ता थे।

दूसरा राजनीतिज्ञ हेनरी क्ले इतना अधिक प्रख्यात व्यक्ति नहीं था, परन्तु
सका व्यक्तित्व अधिक आकर्षक था। स्पष्टतया वह एक ऐसा अमरीकी नेता
। जिसके बारे में वहाँ वाले उसे 'चुम्बकीय व्यक्ति' कहते थे। राष्ट्रपतिपद के
म्मीदवारों के चुनाव में एक-दो बार उसे हारना पड़ा, जिससे उसमें अस्थिरता
समस्याओं से कतराने की प्रवृत्ति पैदा हो गयी। पश्चिमी प्रदेशों से वही एक
ा प्रमुख साहसी तरुण व्यक्ति था जिसने ब्रिटेन को दूसरा युद्ध लड़ने
बाध्य किया। यह युद्ध १८१२ से १८१४ तक चला भी। यद्यपि युद्ध
ड़ने योग्य पर्याप्त कारण भी उस समय नहीं थे तथा इसका अंत भी स्पष्ट
र पर निर्णायक नहीं रहा, परन्तु इस युद्ध के कारण ही लोगों की
मरीका के प्रति देशभक्ति की भावना में वृद्धि हुई। वृद्धावस्था में यह व्यक्ति
समझौतों के निर्माता' की तरह माना जाने लगा, यद्यपि इसने स्वयं अपने प्रदेश
न्टकी में दास-प्रथा से मुक्ति के निरंतर प्रयास किये और अफ्रीका में दासों
बस्तियाँ बसाने की सुन्दर काल्पनिक योजनायें भी बनायीं; फिर भी उसे
तर व दक्षिण के मध्य संघर्ष को टालने की चिन्ता रहती थी और वह इस
र्ष को टालने के लिये सैद्धान्तिक बलिदान देकर भी समझौते को कायम
रने के पक्ष में था। इस मामले में वह अपने काल के राजनीतिज्ञों में विलक्षण
क्ति था। १८३० में क्ले "अमरीकी नीति" का आधारस्तम्भ माना जाने
गा। यह वही नीति थी जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय सरकार के अधिकारों से देश
अपार शक्ति स्रोतों को विकसित करना था। क्ले ने इस दिशा में राष्ट्रीय बैंक-
द्धति को विकसित किया। बड़े-बड़े सार्वजनिक कार्यों के लिये राष्ट्रीय सरकार
धन खर्च किया गया। इसके अतिरिक्त तटकर लगा कर छोटे उद्योगों को
रक्षण दिया गया तथा अमीरों की भोगविलास की सामग्रियों पर कर लगाया

गया। इस नीति से चाहे कैसा ही लाभ क्यों न हुआ हो, परन्तु कुछ वर्षों तक इसके बारे में असंतोष अवश्य व्यक्त किया जाता रहा। हम अब यह सरलता से समझने की स्थिति में हैं कि लिंकन के युवाकाल में इस तरह की नीति ने उसकी राजनैतिक चेतना को कितना प्रभावित किया होगा। हमें लिंकन की तरुणाई के समय का विस्तृत वृत्त उपलब्ध नहीं हो पाया है।

इस काल के महापुरुषों में तीसरा नाम दक्षिणी कारोलीना के जान काटवेल काल्होन का है जो अपने प्रदेश में अधिक शक्तिशाली था। अपने समकालीन व्यक्तियों में यही एक ऐसा व्यक्ति था जो अपनी विद्वत्ता के कारण प्रसिद्ध था। लिंकन ने इस सज्जन की तर्कपूर्ण, सारगर्भित वाणी की भूरि-भूरि सराहना की है। एक अंग्रेज महिला ने इसे साक्षात् बुद्धिमत्ता का स्वरूप भी ठहराया। उसमें इस तरह की प्रतिक्रियाजनक विद्वत्ता के सभी गुण मौजूद थे जिनके प्रति अमरीकी सार्वजनिक जीवन में श्रद्धा की कमी थी। उसे इतिहासकारों व जनता ने सराहा नहीं, क्योंकि वह सदा सच्चा और कठोर रहा; इसके अतिरिक्त वह परिवार व दासों के प्रति सदा दयालु रहा। उसके लिये यह भी कहा जाता है कि सार्वजनिक जीवन में उसने सदा उच्च सिद्धान्तों का पालन किया; परन्तु यह उसके कार्यों से बताना अत्यंत कठिन है। अन्डर जेक्शन ने उसके लिए लिखा कि वह "निर्दयी, स्वार्थी और सही माने में कायर" था।

सचमुच में वह बड़ा ही प्रतिभाशाली रहा होगा, परन्तु उसने इसका उपयोग केवल तर्कवितर्कों में ही किया। वह भी ऐसे अवसरों पर जब कि श्रीवृद्धि नहीं होकर उससे कुछ-न-कुछ कमी ही हुई, और इसमें भी उसे प्रसन्नता रही। सामान्य व अस्थिर मानसिक स्थिति वाले लोग जिन निर्णयों को सुनते ही होश गँवा बैठते हैं, उनको भी वह निर्भयतापूर्वक स्वीकार कर लिया करता था। सत्य की तीव्र जिज्ञासा के लिये उसमें स्वस्थ भावना, उच्चादर्श और अनंत तार्किक बुद्धि थी जो कभी उसके मस्तिष्क को विचलित नहीं होने देती थी। प्रायः ऐसे व्यक्तियों के अनुयायिओं को वह अनादर व अश्रद्धा प्राप्त होती है, जिससे उनके नेता किसी तरह बच सकते थे। ये लोग बुद्धि की प्रखर प्रतिभा व उच्च विचारों को ऐसे क्रिया-कलापों व कारणों से सम्बद्ध कर देते हैं कि उससे इनकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। उत्तरी प्रदेश का एक सैनिक घायल होकर युद्ध क्षेत्र से १८६५ में लौट आया और एक दूसरे सैनिक को अस्पताल में बताने लगा कि चार्ल्सटन में काल्होन का स्मारक कैसा बना हुआ है। दूसरे सैनिक ने उसे बताया—"तुमने जो देखा था वह सच्चा स्मारक नहीं है, परन्तु मैंने

उसे देखा है—क्षतविक्षत उजड़ा हुआ दक्षिण प्रदेश......यही काल्होन का सच्चा स्मारक है।"

काल्होन उग्र विचारधारा का था तथा जफरसन के अनुयायियों में माना जाता था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी उग्र विचारधारा केवल दक्षिण में प्रचलित संकीर्ण नारों तक ही सीमित थी। वह राष्ट्रीय एकता में श्रद्धा रखता था, परन्तु सदा ही वह यह चाहता था कि दक्षिण प्रदेश के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के हाथों देश का संचालन हो, जो संकीर्ण दक्षिणी हितों का रक्षण करते रहें। उसने अपना कोई मूल सिद्धान्त नहीं प्रस्तुत किया वरन् उसने पुरानी विचारधारा व भावनाओं को ऐसा स्वरूप व प्रतिपादन प्रदान किया कि दक्षिण के लोगों में एक लम्बे अर्से तक उसका प्रेरणादायी प्रभाव बना रहा। इस समय के अमरीकी राष्ट्रीय आत्मचेतना के इस मसले पर विलक्षण रूप से संगठित थे। यद्यपि ऊपर से वर्ग-विभेद नहीं दिखायी देता था, परन्तु दक्षिणी राज्यों में बहुत से किसानों के लिए 'एक अमरीका' की गर्वपूर्ण घोषणा नाम-मात्र लगती थी। उन लोगों के लिए 'एक अमरीका' का अर्थ—अपने प्रतिष्ठित व्यक्तित्व, उनके अनुकूल बसा हुआ स्वतंत्र जीवन या उनके दृष्टिकोण के अनुसार संतुष्ट दास जो उनके नीचे काम करते हों—ऐसा ही कुछ था। उनमें कई ऐसे सरल व्यक्ति थे जो निस्संदेह ही जैसी स्थिति थी उसे यथावत् स्वीकार कर रहे थे और इसमें उन्हें किसी भी तरह के परिवर्तन की विशेष रुचि नहीं थी। इन लोगों ने कभी यह भी दिखावा नहीं किया कि वे अपने-आप में पूर्ण हैं। परन्तु यह स्पष्ट झलकने लगा कि उन्नीसवीं सदी के प्रथम पचास वर्षों में दक्षिण में चतुर तरुणों की प्रवृत्ति सदा ही दक्षिणी हितों के ही उद्देश्य को आगे रखने की हो चली थी। इस दृष्टिकोण के अनुसार वे जीवनयापन का अपना ढंग ही श्रेष्ठ मानने लगे, जिसका आधार दास-प्रथा था। अतएव इन लोगों के लिये दास-प्रथा अच्छी चीज़ थी। यहाँ तक कि इस प्रथा की आलोचना मात्र करना ही शरारतपूर्ण माना जाता था और इसमें सुधार के प्रति अपील, गिड़गिड़ाने का द्योतक थी तथा उसमें सुधार की आवश्यकता पर जोर देने का अर्थ कमजोरी से लिया जाता था। दक्षिण के बहुत से गिरजाघरों के लिए यह सरल काम हो गया था कि वे दास-प्रथा के पक्ष में सदा ही ईश्वरीय देन की दुहाई देते। बाद में कहीं जाकर कुछ बुद्धिजीवी लोगों के मध्य इस प्रथा के प्रति एक अटपटी विचारधारा आरंभ हुई और ये लोग भी उसी स्वार्थ-सिद्धान्त की पुष्टि करने लगे। यदि इस तरह की बात कुछ ही लोग करते तो उसका महत्त्व

अधिक नहीं था। काल्होन जैसे दक्षिण के महान बुद्धिजीवी दिग्गज ने इस विचारधारा को दृढ़ किया और लोगों के दिलों में एक सिद्धान्त की तरह इसे गहरा जमा दिया। दक्षिण के राजनीतिज्ञों का प्रमुख सिद्धान्त अपनी गौरवशाली प्रथाओं का रक्षण करना हो गया। नीग्रो समस्या समाधान की दिशा में रहे-सहे प्रयत्न भी इन दिग्गजों के प्रभावशाली विरोधी तर्कों में गौण हो गये।

भलें ही काल्होन ने ऐसा अज्ञान व संकट से पूर्ण मार्ग चुना, परन्तु वह कुशल व्यक्ति था। इसने पहले ही यह समझ लिया था कि दास-प्रथावाले राज्यों का समान हित इसी में निहित है कि गणराज्य से प्रत्येक राज्य के लिए पृथक हितों की माँग की जाय। इस तरह का विचार प्रस्तुत करना कि असंतुष्ट राज्य अपने हितों की रक्षा के लिए गणराज्य से पृथक् भी हो सकता है, उचित नहीं कहा जा सकता। इंगलैंड के विरुद्ध संघर्ष के समय न्यूइंगलैंड में भी इसी तरह की विचारधारा रखी गयी थी और आश्चर्य तो यह है कि इसे फेडरेलिस्ट दल के बचे-खुचे लोगों ने प्रचारित किया। परन्तु इस विचारधारा को सर्वत्र ही ठुकरा दिया गया। काल्होन ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने इसे पहले-पहल प्रमुखता प्रदान की। उसने इसे साफ-साफ नहीं रखते हुए राजनैतिक सिद्धांतों की लपेट में तह करके रखा। इस समय दास-प्रथा का कहीं कोई संदर्भ भी नहीं था। इसका सीधा सम्बन्ध 'स्वतंत्र व्यवसाय' से था। यह मसला काफी महत्वपूर्ण था परन्तु इतना विशाल और उग्र नहीं कि गणराज्य से इसके लिए सम्बन्ध-विच्छेद किया जाय। परन्तु काल्होन उस अवसर की तलाश में था जिसके मिलते ही वह शस्त्र उठा कर गणराज्य से अपने राज्य के लिए अधिक-से-अधिक रियायतें प्राप्त कर सके। १८२८ में संरक्षित तटकर लागू किया गया था, दक्षिणी राज्यों को भी यह कर चुकाना पड़ता था, और उन्हें इससे कोई लाभ भी नहीं था, अतएव वे इससे घृणा करने लगे थे। काल्होन और उसके जैसे अन्य कुशल राजनीतिज्ञों ने कानूनी बारीकी से इस मामले को प्रस्तुत किया। उनक कहना था कि संविधान के अंतर्गत गणराज्य को राजस्व-कर लगाने का अधिकार है, परन्तु संरक्षण के लिए कर लगाने का अधिकार काँग्रेस को नहीं है। इसके लिये यदि कानून बनाना ही है तो सभी राज्यों के तीन-चौथाई मत प्राप्त करना आवश्यक होगा। काल्होन ने यहाँ तक चेतावनी दी कि यदि इस तरह का कानून बन भी गया तो इससे असहमत होने वाले राज्य को गणराज्य से पृथक् होने का भी अधिकार है। इस तटकर को लेकर

चार वर्ष तक विवाद चलता रहा और यह अपने समय का एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया। १८३० में सीनेट में पृथक्करण के सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श किया गया और काल्होन के दृष्टिकोण को हापने नामक सदस्य ने विस्तार-पूर्वक प्रस्तुत किया। वेब्सटर ने एक सारगर्भित भाषण द्वारा इसका उत्तर देते हुए गणराज्य के लिये हार्दिक अपील की। उसका यह भाषण जनता में बहुत लोकप्रिय हो गया। उसने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए राज्यभक्ति के स्थान पर राष्ट्रीय विचारधारा व भावना को बल प्रदान किया तथा इतने प्रभावशाली ढँग का भाषण दिया जैसा उस समय तक अमरीकी सीनेट में नहीं दिया गया था। राष्ट्रपति विल्सन ने लिखा है— "उसके भाषण ने पूर्वी व उत्तर राज्यों में सनसनी पैदा कर दी और यह सनसनी गौरवपूर्ण आह्लाद की सनसनी थी। उसने जो कुछ कहा उसके लिये वहाँ वालों के हृदय में सराहना थी। उसने राष्ट्रीय आत्मचेतना को छू लिया, उसे जागृत किया, तथा उसके प्रति महान कर्तव्यों के लिये गंभीर व हृदयग्राही अपील की।" बाद में राष्ट्रपति पद पर अन्डर जेक्सन चुने गये। लिंकन और जफरसन के मध्यवर्ती काल में यह व्यक्तित्व अत्यंत सुलझा हुआ दृढ़चरित्र और स्मरणीय है। जेक्सन बहुत कम बोला करता था। जफरसन के जन्मदिन पर शुभेच्छा प्रकट करते हुए उसने कहा—"हमारी संघीय एकता की रक्षा की जानी चाहिए।" परन्तु १८३२ में कांग्रेस द्वारा रियायतें देने पर भी दक्षिणी कारोलीना में एक अधिवेशन तटकर की समाप्ति के लिये आमन्त्रित किया गया था। जेक्सन ने परिस्थिति को बिगड़ने नहीं देने और तटकर को निरर्थक करने के निर्णय लेने पर उत्पन्न स्थिति से मुकाबला करने के लिये सेना को आदेश दे दिये। यह भी कहा जाता है कि जेक्सन ने काल्होन को व्यक्तिगत तौर पर कहला भी भेजा था कि देशद्रोह के अपराध में वही पहला व्यक्ति होगा जिसे फांसी पर लटकाया जायेगा। तटकर के निरर्थीकरण का मामला पूर्णतया असफल रहा। उत्तरी राज्यों में इससे इतनी अधिक सजगता की लहर फैली जितनी वेबस्टर के भाषणों से भी नहीं पैदा हुई थी। दूसरे एक भी दक्षिणी राज्य ने कारोलीना का समर्थन नहीं किया और इसके बाद उत्तरी प्रदेशों में यह निश्चित मान्यता हो गयी कि कानून के अंतर्गत संघीय एकता को भंग करना संभव नहीं है। वेबस्टर ने भी पहले यही विश्वास व्यक्त किया था। फिर भी विघटन की विचारधारा जन्म ले चुकी थी और वह भी उसके अनुकूल वातावरण में।

जनरल जेक्सन महान विद्वान व्यक्ति नहीं था। परन्तु उसका दृढ़ व

लौहपुरुष-सा चरित्र सजीवता लिये हुए था। जेक्सन पश्चिमी राज्यों की की देन था, उन पश्चिमी राज्यों से भी विशाल प्रदेशों की देन जिन्होंने लिंकन को नेतृत्व की भावना प्रदान की। प्रारंभिक जीवन में वह पहले वकील के रूप में तथा आदिवासियों से संघर्ष में शारीरिक दृढ़ता की ख्याति भी प्राप्त कर चुका था। न्यू आरलियन्स में जो शानदार विजय ब्रिटेन के विरुद्ध प्राप्त की गयी, उसमें जेक्सन भी महान श्रेय का भागीदार था। वह सच्चा प्यूरिटन मतावलंबी था तथा सधे हुए तौर-तरीके पसन्द करता था, परन्तु उसकी शीघ्र ही नाराज होने की भी प्रवृत्ति थी। अपने निर्णय को थोपने में वह कभी आगापीछा नहीं करता था। द्वन्द्वयुद्ध वह सदा मरणान्तक ही पसन्द करता था। उसके ऐसे शौर्यपूर्ण द्वन्द्वयुद्धों में एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें यह द्वन्द उसने एक महिला से वीरतापूर्वक विवाह करने के लिए लड़ा था जिसे उसने अंतिम दम तक हृदय से प्रेम किया। राष्ट्रपति के कार्यकाल में उसने अपनी ही इच्छा से जितने भी निर्णय लिये, वे सदा ही न्यायोचित और ईमानदारीपूर्ण पाये गये।

१८२४ में जब जेक्सन के राष्ट्रपति चुने जाने की संभावना थी, उस समय अमरीकी कार्यपद्धति के अनुसार (जिसका अब कोई मूल्य नहीं है) भूतपूर्व राष्ट्रपति जान क्विन्सी एडम्स राष्ट्रपति बना दिया गया, यद्यपि इसका व्यक्तित्व भी उल्लेखनीय था। जेक्सन ने प्रतिक्रियास्वरूप वरजीनिया राज्य के देहाती क्षेत्रों के गण्यमान्य सभ्यों और बोस्टन सिटी मजिस्ट्रेटों के सत्तारूढ़ वर्ग को उखाड़ फेंकने का निश्चय कर लिया। उसकी मान्यता थी कि यही लोग सरकार का नियंत्रण करते हैं। उसने सच्चे जनतंत्र को सजीव करने का निर्णय लिया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उसने नये दल को जन्म दिया, यद्यपि उसके इस दल के विरोध में भी एक दूसरे विरोधी दल का गठन साथ-साथ उठ खड़ा हुआ।

इन दोनों दलों में न तो कोई विशेष जनतांत्रिक ही था और न कोई अभिजातवर्गीय दल ही। डेमोक्रेसी या डेमोक्रेटिक नामक दल तभी से चला आ रहा है और लिंकन के जीवनकाल में उस दल ने बहुत समय तक शासन भी किया। प्रारम्भ में इस दल ने व्यवसायी जगत में सरकार के हस्तक्षेपीय कदमों के विरुद्ध संघर्ष किया। विशेषतया यह दल 'राष्ट्रीय बैंक' का विरोधी था। जेक्सन की मान्यता थी कि यह बैंक, धनीवर्ग और प्रशासन के मध्य खतरनाक गठबंधन था। अमरीकी राजनीति में पूंजीपतियों की तथाकथित शक्ति के उदय के प्रति जेक्सन गंभीर रूप से सशंकित था। मार्टिन वान बुरेन जो उसका मित्र तथा उत्तराधिकारी था, चाहे जैसा ही क्यों न रहा हो, वह अपने समय का मान्य

अर्थशास्त्री था। उसने अपने कार्यकाल में वित्तीय मसलों पर इतने महत्वपूर्ण कदम उठाये जितना शायद ही कोई दूसरा उठा सकता था। उसने अपने सिद्धान्तों के प्रतिपालन में लोकप्रियता का बलिदान कर दिया। इसके अतिरिक्त इस दल का झुकाव प्रगति की ओर नहीं रहा; इसके जो भी कारण रहे हों, वे स्पष्ट नहीं हैं। विशेषकर दल ने संविधान के नियमन का चाहे वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता हो अथवा राज्यों के हितसम्बंधी हो, समर्थन किया। यह प्रवृत्ति प्रारम्भ में जेक्सन के क्रिया-कलापों में अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि अब तक के जितने भी राष्ट्रपति हुए, उनमें जेक्सन ही एक ऐसा राष्ट्रपति था, जिसमें लोकप्रिय निरंकुश शासक की भावना पायी जाती थी। राज्यों के अधिकारों, तथा संरक्षणता के प्रति विरोध के कारण दक्षिणी राज्यों के राजनीतिज्ञ इस नये दल के प्रति आकर्षित हुए और शीघ्र ही ऐसे व्यक्ति इसके प्रमुख सलाहकार बन गये, यद्यपि बाद में इन लोगों ने यह कार्य सुदूर उत्तर के प्रतिनिधियों से लेना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ये दल उत्तरी या संपूर्ण दक्षिणी थे, क्योंकि दक्षिण में भी बहुत से प्रजातंत्रवादी उदारदली थे और उत्तर में भी कई डेमोक्रेट थे। यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि राज्यों के अधिकारों के पक्ष में होते हुए भी उत्तर के डेमोक्रेट लोगों का झुकाव शायद ही कभी पृथक्करण की दिशा में रहा हो। दूसरी ओर कतिपय डेमोक्रेट यह मान्यता रखते थे कि गणराज्य के अधिकारों का नियंत्रण ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा राष्ट्र को दृढ़ और चिरस्थायी बनाया जा सकता है। दास-प्रथा के बारे में दोनों दलों में ऐसे लोग थे, जिनमें से कतिपय उसके पक्ष में थे, तो बहुत से विरोधी भी। एक सामान्य उदार प्रजातंत्रवादी का जैसा भी स्वरूप रहा हो, लिंकन जैसे व्यक्ति के हृदय में राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रति चेतना इन्हीं से प्रवाहित हुई, जबकि डेमोक्रेट दलवालों ने इसी चेतना को कानूनी और सैद्धान्तिक स्वरूप प्रदान करने में योग दिया।

इन उदार प्रजातंत्रवादियों (विगदली) के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है, और यहाँ आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि राष्ट्रपति-पद के सात चुनावों में केवल दो बार उनके दल का उम्मीदवार चुना गया और दोनों की ही शीघ्र मृत्यु हो गयी। १८५४ में इन लोगों का दल सदा के लिए समाप्त हो गया। कुछ समय के लिए इन लोगों को क्ले की 'अमरीकी नीति' के आधार पर लोकप्रियता मिली भी; परन्तु जब वह लोकप्रियता समाप्त हो गयी तो उसके साथ-साथ इनका भी आधार नष्ट हो गया। इन्होंने कभी भी नयी नीति के आधार

पर अपने-आप को खड़े रखने का प्रयत्न नहीं किया, न नीतिसम्बन्धी कोई स्पष्ट रुख ही अपनाया। तथापि इस दल में देश के सुयोग्य व्यक्तियों का विश्वास था, और सत्तारूढ दल के विरोध में विरोधी पक्ष बनकर इस दल ने आलोचना का धरातल उन्नत करने के साथ ही उदार विचारवाले तरुणों को भी आकर्षित किया।

डेमोक्रेटों ने तत्काल ही तथा उदार प्रजातंत्रवादियों (विग) ने कुछ समय बाद विशालदलीय प्रक्रियातंत्र की स्थापना कर ली। जेक्सन ने सदा ही इसके लिए जोर दिया तथा कहा कि सामान्य व्यक्तियों को प्रभाव में लाने के लिए यही एकमात्र तंत्र है। एक कस्बे, शहर या देहात में एक दल के लोग इकट्ठे होते, अपनी राय निर्धारित करते और बड़े क्षेत्रों में प्रतिनिधि बनाकर नीति-सम्बंधी निर्देशन के साथ भेज दिया जाता। ये लोग बाद में राज्यस्तरीय अधिवेशन में अपने प्रतिनिधि भेजते, व राज्यस्तरीय अधिवेशन से भी राष्ट्रीय स्तर पर दल के अधिवेशन में प्रतिनिधि भेजे जाते। राष्ट्रपति-पद के लिए अथवा अन्य निर्वाचित पदों के लिए दलीय उम्मीदवार इस तरह चुने जाते थे, और इस तरह दल का राजनीतिक मंच अथवा उनकी नीतिसम्बंधी घोषणा निर्धारित की जाती थी। ऐसा दलीय तंत्र, जैसा कि इंग्लैंड में भी है, शीघ्र ही बदनाम हो जाता है क्योंकि ये सदा तो महत्वपूर्ण भाग अदा नहीं करते हैं और यह डर बना रहता है कि इस तरह के घोषणापत्र, जिनका उद्देश्य विरोधी दलों में से मतदाताओं को अपने पक्ष में लाने का होता है, अविश्वसनीय प्रमाणित होते हैं। इसके कारण सक्रिय जनमत नीतिसम्बंधी स्पष्टता प्राप्त करने की अपेक्षा उलझन में अधिक पड़ जाता है। यह भी भय बना रहता है कि उम्मीदवार के रूप में यदि ऐसा व्यक्ति प्राप्त किया जाय, जो निष्कलंक रहा हो, और जिसके लिए कहीं से भी विरोध की संभावना नहीं हो, तो इन्हीं कारणों से यथार्थ में उसे कोई भी पसन्द नहीं करता, क्योंकि उससे लाभ अथवा भय की तो कोई बात ही नहीं रहती। परन्तु यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि जिस तेजी से ऐसे संगठनों का गठन हुआ, उसके कारण राजनीतिक मामलों में विशाल पैमाने पर सही अभिरुचि पैदा हो गयी।

तब तक बड़े-बड़े धनपतियों के संकुचित स्वार्थों व निम्नस्तर के भ्रष्टाचार का जन्म नहीं हो पाया था, परन्तु दल पद्धति के जन्मदाता ने ही जाने-अजाने एक आचारहीन दुष्प्रणाली को इन दलों पर थोप दिया। जेक्सन अपनी बदमिजाजी के कारण भी इसमें विश्वास करता था कि सत्तारूढ दल में जो

व्यक्ति पदाधिकारी होते हैं और जो किन्हीं कारणों से असफल हो जाते हैं, निश्चय ही वे भ्रष्टाचारी जमात के चट्टे-बट्टे ही होते होंगे और इस तरह वह उन्हें दल से निकाल बाहर करता। उसे इस दिशा में प्रोत्साहन भी मिला कि वह न्यूयार्क में प्रचलित ऐसी दलीय पद्धति अपने यहाँ भी लागू करे, तथा इस पद्धति से वान बुरेन भी पूर्णतया परिचित था।

श्री मार्सी जैसे एक गण्यमान्य व्यक्ति का कहना है कि "विजयी व्यक्ति ही लूट का अधिकारी होता है।" इसके अनुसार शीघ्र ही बड़े व छोटे पैमाने पर पुराने डेमोक्रेट सदस्यों को दल से निकाल दिया गया और उनके स्थान पर दूसरे डेमोक्रेट नियुक्त कर दिये गये। एक बार जब विजयी के हाथ सब-कुछ सौंपने की यह प्रवृत्ति आरंभ हुई तो फिर वह रोकी नहीं जा सकी। इसके पश्चात् सदा ही यह भय बना रहा कि दल का प्रक्रियातंत्र मौकापरस्तों, राजनीतिक उखाड़-पछाड़ करने वालों व गुण्डों के हाथ में नहीं चला जाय। यद्यपि इंगलैंड में भी यह प्रथा पहले थी और आज भी इसी तरह की प्रक्रिया अवश्य है, परन्तु वह इतनी निम्न स्तर पर नहीं चली गयी है। हम लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि ऐसे प्रक्रियातंत्र को जारी रखने के लिए कितने छद्मपूर्ण कौशल की आवश्यकता है। उस समय निष्पक्ष प्रशासनतंत्र की परम्परा भी नहीं पनप पायी थी। जहाँ तक विभागों के प्रमुखों का प्रश्न है, यह उचित ही है कि प्रधान मंत्री के मंत्रिमंडलीय सदस्यों की तरह वे राष्ट्रपति की विचारधारा या उसकी नीति से सामञ्जस्य रखने वाले हों। जहाँ तक छोटे-छोटे पदों का प्रश्न है—मसलन् हजारों गाँवों में पोस्टमैनों का काम ऐसा है जिसे एक या दूसरा कोई भी कर सकता था और उस समय उस पद से अलग कर दिये जाने पर भी उसे शीघ्र दूसरा रोजगार मिल जाया करता था—उस समय अच्छी नीति वही मानी जाती थी जिसमें एक के बाद दूसरे को अवसर मिलता रहे।

अब राजनीति में बहुत कम विवादग्रस्त प्रश्न शेष रह गये थे। उस समय विवादग्रस्त प्रश्नों पर समझौते की नीति ऊँचे दर्जे की राजनीतिज्ञता मानी जाती थी। संविधान स्वयं भी इस दिशा में अपनी रुकावट व नियंत्रण की विशेषता के कारण किसी भी मसले को निर्णायक रूप देने में असमर्थ था। स्थिति को और भी अवरुद्ध बनाने में वहाँ की राजनीतिक दलीय प्रथा का भी दोष है क्योंकि एक तो ये स्वाभाविक तौर पर शक्तिहीन थी, दूसरे इसका आरम्भ भी असंतोष से हुआ था। अमरीका के राष्ट्रीय जीवन की ऊपरी सतह पर तैरने-

वाला यह राजनीतिक जीवन निरर्थक-सा लगने लगा था तथा इसमें सड़ांध की बू भी आने लगी। अठारहवीं सदी के सामन्तशाही भ्रष्ट व कमजोर शासन की तुलना कुछ सीमा तक तत्कालीन अमरीकी जनतंत्र से की जा सकती है। यह याद रखने की बात है कि लोकप्रिय प्रशासन की सर्वोत्तम प्रक्रिया, जिसके द्वारा जनता का सही निर्णय क्रियान्वित किया जा सके, धीरे-धीरे व कई भूलों में से गुजरने के बाद ही स्वरूप ग्रहण करती है। उस समय लोकप्रिय सरकार का शैशवकाल था और आज भी यह प्रणाली वयस्क नहीं हुई है। उन दिनों की राजनीति के बारे में इतना कहना ही पर्याप्त है।

१८३० में एक सुधारक लुंडी, न्यू इंग्लैंड की भीषण सर्दी में बर्फ में १२५ मील का रास्ता काट कर, एक गंभीर समस्या के समाधान के लिए विलियम लायड गेरिसन से मिला। गेरिसन फ्रैंकलिन की ही तरह गरीब आदमी था और वह अपने-आप धीरे-धीरे उन्नति कर के कामचलाऊ मुद्रक बन गया था और उन दिनों दयापूर्ण व उदार कार्यों में जीवन व्यतीत कर रहा था। लुंडी की प्रेरणा के फलस्वरूप वह १ जनवरी १८३१ को 'लिबरेटर' (उद्धारक) का पहला अंक बास्टन से प्रकाशित करने में सफल हुआ। इसके लिए उसे कई बार जेलों में तथा उपद्रवी भीड़ के बीच भयानक और अपमानजनक कष्ट सहने पड़े, परन्तु वह विचलित नहीं हुआ। पत्र में उसने घोषणा की—'मैं तब तक संतुष्ट नहीं होऊँगा और संघर्ष करता रहूँगा जब तक कि सभी दास जनता को मताधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। मैं सत्य की तरह अटल रहूँगा और न्याय-युक्त सिद्धान्तों के लिए सौदेबाजी नहीं करूँगा। मैं द्विअर्थी अस्पष्ट बात नहीं कहूँगा, न बहाने करूँगा, मैं एक इंच भी पीछे नहीं हटूँगा और मेरी बात सुननी ही पड़ेगी।' दास-प्रथा के अंत के लिए यह नया आंदोलन था। दास-प्रथा को समाप्त करने के आंदोलन करने वाले मुख्यतया अव्यावहारिक व्यक्ति थे। गेरिसन अंत में दूसरे ही ढंग का व्यक्ति प्रमाणित हुआ। संविधान के अंतर्गत वे केवल यही प्रस्तावित कर सके कि स्वतंत्र राष्ट्रों ने 'जो मृत्यु और नर्क के साथ रहने का समझौता' किया है, उससे वे पृथक् हो जायँ। दूसरे शब्दों में ये राज्य गणराज्य से पृथक् हो जायँ। इस तरीके से ये एक भी दास को मुक्त करने की स्थिति में नहीं थे। इन लोगों ने ऐसे ही कई विचित्र तरीके अपनाये जिनका अर्थ यह था, कि दूसरों के किये पापों का स्वयं प्रायश्चित किया जाय। परन्तु इतना करने पर भी ये लोग अपने पक्ष में जनमत नहीं तैयार कर सके, क्योंकि इस समय तक राजनीतिज्ञ, सभ्य संसार, जनसमुदाय और धार्मिक

गिरजाघर (यहाँ तक कि बोस्टन में भी) भी इस खतरनाक विषय को केवल टालना ही नहीं चाहते थे, वरन् क्रोध से उन्होंने इनका बहिष्कार ही कर दिया। दास-प्रथा समाप्ति के आंदोलनकारियों ने अपनी जान हथेली पर रख कर आगे कदम बढ़ाया। कई लोगों को जीवनोत्सर्ग भी करना पड़ा। केवल दो व्यक्तियों ने उनको सहयोग दिया। पहला व्यक्ति महान उपदेशक चाँनिंग था जिसने इसका समर्थन किया। फलस्वरूप उसे महत्वपूर्ण धार्मिक पद खोना पड़ा। दूसरा व्यक्ति भूतपूर्व राष्ट्रपति एडम्स था, जो सरल व निष्कपट व्यक्ति था। यही एक ऐसा भूतपूर्व राष्ट्रपति था, जिसने बाद में भी काँग्रेस में अपना राजनीतिक जीवन जारी रखा। १८५२ में इन लोगों की सहायतार्थ एक गरीब महिला लेखिका श्रीमती बीकर स्टोव आगे आयी और उसने 'टाम चाचा की कुटिया' नाम की पुस्तक लिखी। यह पुस्तक वर्तमान युग में लिखी गयी दास-प्रथा-सम्बंधी पुस्तकों में सर्वश्रेष्ठ विचार-प्रधान पुस्तक है, जिसने लोगों की विचारधारा में अपने-आप परिवर्तन पैदा कर दिया। मोटे तौर पर इन आंदोलनकारियों ने दो सफलतायें प्राप्त कीं। यदि इन्हें उन क्षेत्रों में जहाँ इन्होंने स्नेह पाने की आशा की थी, असफलता प्राप्त भी हुई तो क्या! शत्रुओं ने इनके प्रति जो घृणा का प्रदर्शन किया वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस आंदोलन के कारण दक्षिणी राज्यों के राजनीतिज्ञों में पागलपन व क्रोध की तीव्र लहर फैल गयी, जिसका परिणाम इस रूप में सामने आया कि उन्होंने आंदोलनकारियों द्वारा कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत प्रार्थनापत्रों को कुचलने का प्रयत्न किया। जो भी हो, अपने तीस वर्ष के इस आंदोलन-काल में इन्होंने एक ऐसी विचारधारा को जन्म दे दिया जो भले ही इनका अक्षरशः समर्थन करने वाली नहीं थी, परन्तु विद्रोह के उस ज्वालामुखी के समान थी जो सदियों से जारी असमानता को मिटाने के लिए किसी भी दिन विस्फोट कर सकता था।

[६]

दास-प्रथा और दक्षिणी समाज

इस विकासशील अमरीका के इतिहास के मध्य एक भाग ऐसा भी है जो पूर्णतया इससे अलग नहीं किया जा सकता है और अंत में सम्पूर्ण अमरीकी जीवन का अंग बनकर एक विशिष्ट व्यवस्था के रूप में सामने आता है। इस व्यवस्था का १८३० या उसके बाद क्या स्वरूप था? अब हम इस पर विचार करेंगे।

दास रखनेवाले मालिकों ने यह स्वीकार किया कि दास-प्रथा का जन्म एक घृणित व्यवसाय से हुआ और हीन सिद्धान्तों के आधार पर इसे कानूनी रूप दिया गया है—भले ही दक्षिण के नेतागण सदा ही यह स्वीकार करने में आनाकानी करते रहे हों। दास-प्रथा का व्यावहारिक स्वरूप उस समय कैसा था इस विषय में दो तरह के चित्र हमारे सामने आये हैं। इन दोनों में कहीं भी सामञ्जस्य की सम्भावना नहीं है, परन्तु हैं ये दोनों ही सही। यदि कोई इंगलैंड-वासी अथवा उत्तरी राज्यों का नागरिक किसी दक्षिणी प्रदेश या वेस्ट इण्डीज़ में पर्यटन के लिए दास-प्रथा की रोमांचकारी भयावह स्थिति को देखने की धारणा लेकर जाता, तो उसको मात्र भ्रामक दृश्य ही देखने को नहीं मिलते। एक तरुण ब्रिटिश अधिकारी ने लिखा था कि इन गरीब व्यक्तियों की जो दुर्दशा है उससे कोई भी धोखा नहीं खा सकता। यह पढ़ कर वह यात्री तत्काल अपने मन में धारणा बना लेगा कि जिस तरह एक दक्षिणवासी को अपने बूढ़े घोड़े से काम लेने के लिए चाबुक के प्रयोग का कानूनी अधिकार है, ठीक उसी तरह उसे अपने दासों पर अत्याचार करने का भी अधिकार है। परन्तु वहाँ जाने पर वह देखेगा कि सामान्य दासों के मालिक अपनी इस मानवीय संपत्ति के प्रति जिम्मेदारी की गहरी भावनाएँ भी रखते हैं। अपने मेजबान के घर के आसपास उसे दिखायी देगा कि मालिक के बच्चों को एक हब्शी आया प्यार से थपकियाँ दे रही है। ये बच्चे काले बच्चों के साथ खेल रहे हैं या किसी स्नेहशील वृद्ध नीग्रो के चारों ओर घिरे हुए हैं। उसे ऐसा ही वातावरण संभवतया अन्यत्र भी मिलेगा। इसके फलस्वरूप कई तरुण दक्षिणवासियों में दक्षिण की इस व्यवस्था के प्रति यह भावना बन गयी कि दास-व्यवस्था बुरी नहीं है। विशाल खेतों में घुड़सवारी करते समय उसके सामने ठीक इसी तरह के दृश्य आयेंगे, जिन्हें देखकर जनरल शर्मन भी दंग रह गया था। बागानों में काम करनेवाले जितने भी हब्शी दास उसे मिले वे पूर्ण संतुष्ट थे। जांच करने पर उस पर्यटक को यह भी पता चलेगा कि वृद्ध हो जाने पर इन हब्शी दासों को भोजन व शरण मिलने के साथ-साथ काम से भी मुक्ति मिल जाती है। जैसे-जैसे वह वृद्धावस्था के निकट पहुँचेगा उसके काम का भार भी घटता जायेगा। जीवन के किसी भी क्षण कठोर परिश्रम से अभिभूत होने की स्थिति के कारण वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि इन अफ्रीकियों के समूह पर यथार्थ में अधिक कठोरता लादना कोई सरल खेल नहीं है। उसे विश्वास दिलाया जायेगा—जो बहुधा सही नहीं है—कि उत्तरी राज्यों में काम करने वाले श्रमिकों

की अपेक्षा इन दासों को अधिक भोजन व आराम मिलता है। वह यह भी मानेगा कि उस समय इंगलैंड के खेतों में काम करने वाले श्रमिकों की अपेक्षा इन दासों के अभाव बहुत कम हैं। इस विषय में न्यूयार्क के एक खेत-मालिक फ्रेडरिक ला आमस्टीड ने विशद जाँच व तथ्यपूर्ण अध्ययन किया। उसके यात्रा-वर्णनों में इस पीड़ाजनक विषय का सच्चा चित्रण मिलता है। यह सही है कि वह हमारे सामने निकम्मे, लक्ष्यहीन पशुवत् जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है, परन्तु उसमें भीषण दरिद्रता व आये दिन की पाशविक बर्बरता के दर्शन नहीं होते। कोई भी वृद्ध दक्षिणवासी, जिसने दास-प्रथा का युग देखा है, इस विवरण की सत्यता को अस्वीकार नहीं करेगा, परन्तु इतना और कहने पर जोर देगा कि इस अन्वेषक ने जीवन का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उससे अधिक सुखपूर्ण मानवीय जीवन वहाँ था, यहाँ तक कि सुदूर दक्षिण के बागानों में जहाँ मालिक कभी-कभी कुछ समय के लिए रह पाते थे और काम ठेकेदारों को सौंपकर जाते थे, उस स्थिति में भी 'उनकी स्थिति ऐसी बुरी नहीं थी जैसी कि आशंका हो सकती है।'

दूसरी ओर हमारे सामने लाँगफेलो की दर्दपूर्ण कविता है जिसमें एक नीग्रो के शिकार किये जाने का चित्रण है। यह वरजीनिया के दलदली क्षेत्रों में दास-मालिकों द्वारा नीग्रो शिकार के समय भागे हुए लोगों का सच्चा चित्र है। बड़े-बड़े शिकारी कुत्तों से जान बचाकर अपने छिपने के लिए ये लोग ऐसे रक्षण-स्थल ढूंढते फिरते जहाँ पहुँचना असंभव हो जाता। नीलामघरों के वे दृश्य, जहाँ कदाचित् उनके मालिकों की मृत्यु या किसी असफलता के कारण पति, पत्नियों, मातापिता और बच्चों को लगातार कोड़ों से पीटा जाता था, हब्शी महिलाओं का वहाँ सदा ही अधिक व अच्छी नस्ल के बच्चे देने वाली घोड़ियों के रूप में प्रदर्शन किया जाता था। उस व्यक्ति को जिसने पहले अपने सगे भाई को बेचा हो निर्लज्जता के अपराध में सुदूर दक्षिण में भेज जाता था। दासों द्वारा भाग छूटने के इस विद्रोह को कितनी पाशविक क्रूरता से कुचला गया उसका रोमांचकारी चित्रण इस कविता में मिलता है। जो लोग उत्तर की ओर भाग जाते उन हब्शियों का, शिकार के पशुओं की तरह पीछा किया जाता, उन्हें पकड़ा जाता और उन्हें जंजीरों में बांधकर लौटाया जाता। यही दशा अन्य राज्यों में अपने-आप को मुक्त घोषित करने वाले हब्शियों की हुई। ऐसे भगोड़ों को पकड़ने के लिये विज्ञापन निकाले जाते, जिनमें उनके हुलिये या शरीर के चिह्नों का विशद वर्णन होता था। ऐसे कई विज्ञापन

प्रसिद्ध उपन्यासकार डिकन्स ने एकत्रित किये थे। वरजीनिया के कपास के खेतों में काम करने के लिए बाक़ायदा गुलामों की नस्ल बढ़ाने के प्रयत्न होते थे। अफ्रीका से पुनः दास-व्यापार जारी करने की माँग दिनोंदिन उग्र होती जा रही थी। यह सब कुछ सत्य था। राष्ट्रपति विल्सन के शब्दों में, "दक्षिण-वासी यह जानते थे कि उनका जीवन गौरवशाली है, उनका अपने दासों के साथ व्यवहार मानवीय है और उनमें दास-प्रथा बनाये रखने की जिम्मेदारी भी ऐतिहासिक है।" जब दास-प्रथा की एक दो वीभत्स घटनाओं के लिए सारे दक्षिण को जिम्मेदार ठहराया जाता था तो वे लोग क्रोध से तिलमिला उठते थे। परन्तु लॉंगफेलो जैसे सहृदय कवि व विचारक ने सबको एक साथ ही बिना किसी भेदभाव के उन घटनाओं के लिए दोषी ठहराया जो उसकी जानकारी में आयीं अथवा उन अत्याचारों के लिए, जो सीमा क्षेत्रों में किये गये थे। कभी-कभी किये जानेवाले ये अत्याचार दक्षिण की राजनीति की उस अभिव्यक्त अभिरुचि का प्रदर्शन था जो दास-प्रथा का ही एक अंग बन गयी थी। दक्षिण के सम्माननीय व प्रतिष्ठित व्यक्ति दासों के शिकारियों और दास-व्यापारियों से तीव्र घृणा करते थे। 'टाम चाचा की कुटिया' पर मत प्रकट करते हुए दक्षिण के एक दास-स्वामी ने एक स्थल पर महत्वपूर्ण आपत्ति उठाते हुए उसे अनुचित ठहराया। उसने कहा कि भले ही एक आर्थिक विपन्न दासों का स्वामी अपने दास लेग्री जैसे नीच के हाथ बेच सकता है, परन्तु वह कभी भी उससे हाथ नहीं मिलायेगा। लिंकन ने भी पुरज़ोर शब्दों में कहा है, "तुम्हारे बच्चे छोटे-छोटे हब्शी बच्चों के साथ खेल सकते हैं, परन्तु वे दासों का व्यापार करने वाले के बच्चों के साथ नहीं खेलेंगे, न वे दासों को हाँकने वाले या दासों को पकड़ने वालों के बच्चों के पास फटकेंगे।" केवल इसी एक तथ्य के आधार पर—जिसे उसने बार-बार जोर देकर परन्तु अकाट्य रूप से प्रस्तुत किया—दक्षिण के सारे सभ्य समाज ने दास-प्रथा की हीनता को स्वीकार कर लिया जो कभी उनके जीवन का आधार समझी जाती थी।

यहाँ इस पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि अमरीका में प्रचलित दास-प्रथा के व्यावहारिक स्वरूप का भला-बुरा चित्रण किस तरह का होना चाहिए। इस बारे में लिया गया सामान्य निर्णय निर्विवाद है। पहली बात यह है। जैसा कि दास-प्रथा के समर्थक कहते थे, मान लो एक नीग्रो को मुक्त करके उसे मजदूरी पर रखा गया तो उसके सुख-सुविधा में अचानक कैसे वृद्धि हो जायेगी। उसके लिये यह मुक्ति सन्देहास्पद थी क्योंकि न्याय की हमेशा यह

माँग रहेगी कि ऐसा जो भी परिवर्तन लाया जाय उसके साथ-साथ उसके भले की भी व्यवस्था हो। दूसरी कल्पना यह कीजिए। मान लो एक नीग्रो दास अधिक चालाक या शारीरिक शक्ति से सुसम्पन्न हो जो अपने अन्य साथियों की अपेक्षा अधिक विद्रोही हो। ऐसी विद्रोही प्रकृति के व्यक्ति से काम लेने के लिए केवल पशुवत् व्यवहार के अलावा और क्या चारा हो सकता है? तीसरी बात यह है कि दुर्भाग्यवश यदि मालिक का देहान्त हो जाय अथवा वह गरीबी की हालत में चला जाय तो नीग्रो परिवार के छिन्नभिन्न होने व आर्थिक संकट में फँसने का भय बना रहता है। नीग्रो इस अवसर पर मालिक के लिए दुखपूर्ण कातर रुदन करते हैं। इतना करने पर भी वे इस संकट से बच सकेंगे, यह सन्देहजनक ही होता है। चौथी बात यह है कि दासता का भार नीग्रो के मस्तिष्क व उनके चरित्र को कुंठित करता है और उनमें जो श्रेष्ठ व्यक्तित्व है वह पनप नहीं पाता। यद्यपि उस समय नीग्रो लोगों की योग्यता व विकसित होने की गति का अनुमान लगाना कठिन था, फिर भी यह बात उनमें थी अवश्य। परन्तु दक्षिण की नीति ने इस विकास के द्वार बंद कर दिये थे। इस प्रथा के कारण बहुत से निम्नस्तरीय श्वेतांगों में पाशविक प्रवृत्ति पैदा हो गयी, और विशेषकर गरीब श्वेतांगों या निम्न कोटि के व्यक्तियों को जिनको औद्योगिक क्षेत्रों में स्थान नहीं मिल सकता था, उन्हें इसी कार्य में लगे रहने को बाध्य किया गया।

लिंकन के इस निर्णय को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि "यदि दास-प्रथा गलत नहीं है तो दुनिया में कोई भी चीज़ गलत नहीं है।" परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उस भूल को सुधारने का मार्ग सरल था और तात्कालिक या बिना किसी अंकुश के शीघ्र मुक्ति देना ही सही मार्ग था। परन्तु इसकी असफलता दर्शाने के साथ-साथ दक्षिण के राजनीतिज्ञों पर यह निर्भर करता था कि वे ऐसी नीति प्रस्तुत करते जिससे दास-प्रथा में व्याप्त भयंकरता को समाप्त किया जा सकता, और इसके साथ ही सतर्कतापूर्वक दासों के आर्थिक स्तर को उन्नत किया जाता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम उन लोगों की भी निंदा करें जो दासों के प्रति मानवीय थे, भले ही वे दास-प्रथा की हीनता से अपरिचित रहे हों। इससे यह पता चल गया कि जानबूझ कर इस प्रथा को बनाये रखना और सभी तरह के सुधारों को ठुकरा कर दास-प्रथा को किसी भी मूल्य पर जारी रखना तथा उसे दूसरे क्षेत्रों में भी फैलाने की प्रवृत्ति दक्षिण की पाशविकतापूर्ण नीति थी। उन दिनों राजनीतिज्ञों के समक्ष इस दिशा में यही

एक प्रस्तुत नीति थी, और यथार्थ में यही दक्षिण के राजनीतिज्ञों की सर्वोपरि नीति बन गयी। "दक्षिण" का राजनैतिक अर्थ उन दिनों भूमि व दासों के मालिकों तथा उनके राज्यों से लिया जाता था, जहाँ दास-प्रथा कानूनन थी। दक्षिण के निर्धन कभी भी अपने ही पड़ौसी उत्तर के श्रमजीवी श्वेतांगों की राजनैतिक स्थिति नहीं ग्रहण कर पाये और इसीलिये उनका इस सारे इतिहास में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है। उत्तरी सीमा पर बसे कई दास राज्यों ने उत्तर में व्याप्त स्थिति व विचारों को धीरे-धीरे ग्रहण किया परन्तु उनसे सुदूर दक्षिण की तुलना करना संदेहास्पद है। इसके अलावा भी अटलांटिक महासागरीय तट और मिसिसिपी के कछार के मध्यपर्वतीय क्षेत्र है। यह पर्वत-माला दक्षिण में जोर्जिया और अलबामा तक पहुँच गयी हैं। इस पर्वतीय प्रदेश के स्वाधीन व्यक्ति दूसरे ही स्वभाव के थे जो दक्षिण के दास-स्वामियों से जरा भी मेल नहीं खाते थे। ये लोग स्वाभिमानी होते थे तथा अपने पारिवारिक विवादों को आइसलैंड वालों में प्रचलित प्रथा के ही ढंग से हल करते थे। इन प्रदेशों को छोड़कर अन्यथा दक्षिण में सर्वत्र लोकतांत्रिक राजनीति थी और इनके कुछ नेता अपने आपको जफरसन के उग्र अनुयायियों में गिनते थे। परन्तु इन लोगों में सामंतकालीन अभिजातवर्गीय परम्पराओं की गहरी भावना भरी थी। दक्षिणी अधिकतर अपने-आप को सभ्य मानने लगे थे और उनकी यह मान्यता बन गयी कि उत्तर के 'यांकी' व्यवसायियों में उनके जैसे धनी व अभिजात बहुत ही कम होंगे या होंगे ही नहीं। ऐसा दावा उन लोगों की ओर से किया जा रहा था जिनमें इस बात का जरा भी हौसला नहीं था। जैसे-जैसे उत्तर व दक्षिण में मतभेद बढ़ने लगा इन अभिजातवर्गी कहलाने वालों के व्यक्तिगत जीवन की बेहूदगी भी उनके राजनीतिक जीवन और यहाँ तक कि कांग्रेस में भी झलकने लगी। परन्तु उत्तर वाले पर्यवेक्षक यह जानते थे कि इस नकलीपन के पीछे भी कुछ तथ्य था। कोई भी यूरोपीय व्यक्ति उन दिनों इन अमरीकावासियों से मिलता तो उसे उनमें स्पष्ट ही परिवर्तन के संकेत दिखायी देते। यह उत्तरी व दक्षिणी लोगों में समान था परन्तु दक्षिण के लोगों में जो परिवर्तन नज़र आता था उसमें एक विशेष आकर्षण था। यह आकर्षण ठीक वैसा ही था जैसा औद्योगिक क्रांति के प्रति यूरोप के दक्षिण क्षेत्रों में मिलता था और जो बहुत-कुछ आदि कृषि-सभ्यता की स्थिति में पाया जाता है। उस समय बुरे ढंग से उपार्जित धन अथवा नवीन संपत्ति को दक्षिणी प्रदेशों में उतना ही घृणित माना जाता था जितना कि न्यूयार्क शहर में। सारे दक्षिण में गंभीर निर्देशन अथवा

बौद्धिक क्रियाकलापों का पूर्णतया अभाव था। आर्मस्टेड ने जो उपरोक्त चित्रण प्रस्तुत किया है उसकी प्रमाणिकता प्राप्त करने के लिए दक्षिण में ऐसा कोई गंभीर साहित्य भी नहीं मिलता है। उत्तर व दक्षिण के जिन खाते-पीते समृद्ध परिवारों के संपर्क में वह आया, उसे कहीं भी उस विशिष्ट निर्लज्जता के दर्शन नहीं हुए जैसी उसने तत्कालीन ब्रिटिश परिवारों में चित्रित की है। उसने दोनों ही प्रदेशों के निवासियों के गंभीर आचरण व व्यवहार में ईमानदारी और बेईमानी दोनों के दर्शन किये। उसके अनुसार उत्तरवासी सुशिक्षित तथा चतुर थे। वह बताता है कि उत्तर के लोक स्फूर्तिवान व सदा आगे आने वाले व्यक्ति थे, जबकि दक्षिणी लोगों में इसका अभाव था। उसके अनुसार दक्षिणवासी युवकों में अपने घरों या छात्रावासों से ऐसे प्रभाव पड़े जिनके कारण उनमें अधिक जागृति नहीं आयी, वरन् उनका व्यवहार अधिक सच्चा, अधिक गंभीर, अधिक आत्मविश्वासी व गर्वीला बनने लगा। इस तरह की यह लाभजनक प्रतिक्रिया दक्षिणी लोगों में अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक हुई। इस दिशा में आर्मस्टेड ने दक्षिणी कारोलीना के परिवारों का उदाहरण दिया जिनका प्रेरणा-स्रोत कतिपय पुराने औपनिवेशिक काल के परिवार थे। यद्यपि ऐसे लोग संख्या में बहुत थोड़े थे; जो थे वे निस्संदेह धनी, अधिक उदार, सुसंस्कृत, साजसज्जायुत, अपने रीतिरिवाजों व परम्पराओं के प्रति श्रद्धा से विश्वास रखने वाले समृद्ध कृषिजीवी लोग थे। जहाँ तक रक्त की पवित्रता का प्रश्न है निस्संदेह दक्षिण में उस दिशा में बहुत अधिक ध्यान दिया जाता था। रक्त की पवित्रता की यह भावना गृहयुद्ध के दिनों में भी काम कर रही थी। वे लोग निम्न श्वेतांगों (उत्तरी लोगों) के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। इस भावना ने संघर्ष को अधिक वीरतापूर्ण भी बना दिया, जिसमें सारे दक्षिण प्रदेश की जनता जूझने को तत्पर हो गयी। यद्यपि अपने-आप को पवित्र मानने की भावना पूर्ण गलत थी, फिर भी सार्वजनिक नेताओं की राजनीति व प्रशासन की उच्चता में भी इस भावना की पहुँच थी और दक्षिण के सभ्य समाज में तो यह इस तरह भर गयी कि वे यह समझने लगे कि अमरीका के सामान्य जीवन में वे सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान देने योग्य हैं। यही कारण था जिससे बाद में इस सभ्य समाज के शक्तिहीन हो जाने पर सारे दक्षिण को राजनीतिक पतन का अनुभव करना पड़ा। ऐसा अक्सर तभी होता है जब सत्ताच्युत समाज—जिसके अपने स्पष्ट स्वार्थ होते हैं—अपने से होड़ में आगे बढ़ने वाले वर्गों के हितों, विचारधाराओं और संपर्क से पूर्णतया पृथक हो कर

जीने लगे। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाय कि सभी दक्षिणवासी व्यक्तिगत रूप से उस नीति को पसन्द करते थे, जो वे भेड़ों की तरह जनसमूह में सिर हिला कर स्वीकार कर लिया करते थे। अपने नेताओं में भक्ति अथवा विश्वास बनाये रखने के महत्त्वपूर्ण गुणों के कारण ही उन्होंने उन राजनीतिक सिद्धान्तों और तरीकों को स्वीकार कर लिया जिनका उल्लेख भी आजकल खेदजनक समझा जाता है।

उन दिनों दास-प्रथा और राजनीति का यह सम्बंध था। जैसे-जैसे दक्षिण में जनसंख्या बढ़ी और पुराने राज्यों में कृषिभूमि की कमी महसूस की जाने लगी, वैसे-वैसे नये भूप्रदेश जिनमें दासों से खेती करवा कर समृद्ध हुआ जा सकता था, प्राप्त करने की इच्छा दिनोंदिन बढ़ने लगी। यही एक ऐसा संकुचित स्वार्थ था जिसको लेकर दक्षिण में राजनैतिक हलचल की वृद्धि हुई। अन्यथा दूसरे कई मामलों में, सार्वजनिक हितों, व्यापार-व्यवसाय, तथा सामान्य व्यवहार उत्तर व दक्षिण के मध्य बिना किसी रुकावट के निर्बाध रूप से जारी थे। यह निश्चित है कि सारे दक्षिण प्रदेश में—केवल दक्षिणी कारोलीना के अतिरिक्त—इस तरह की राजनैतिक चेतना व देशभक्ति की भावना थी जिसके कारण दास-प्रथा को छोड़कर अन्य मामलों में गणराज्य से पृथक् होने का विचार मात्र ही असहनीय था। इस विवादग्रस्त मसले को लेकर एक अजीब विचित्रता सामने आयी। यह संघर्ष उत्तर और दक्षिण के आपसी कड़े विरोध के कारण नहीं बढ़ा, वरन् दक्षिण के लोगों की शासन करने की आदत तथा उत्तरी राज्यों द्वारा सदा ही इस प्रवृत्ति के सम्मुख झुक जाने के कारण पैदा हुआ।

इस दुर्घटना को जन्म देने के लिए उत्तरी राज्यों की दीर्घ काल तक सहते रहने की प्रवृत्ति भी दोष देने योग्य है, और गृहयुद्ध का इतिहास लिखने वालों ने (राष्ट्रीय सरकार के समर्थक) इसके लिए उत्तर के राजनीतिज्ञों को सर्वाधिक दोषी ठहराया है। दक्षिण वाले इससे फूल कर मनमानी करनेवाले और बद-मिजाज बन गये और दक्षिण ने बाद में चलकर जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया उसके पक्ष में ऐसा कोई सबूत नहीं दिया जा सकता जिससे उसका औचित्य सिद्ध किया जा सके।

परन्तु उत्तर का पतन हो चुका था। उसके सपूतों के हृदय में यह धारणा बन चली थी कि उनके लिए आत्मचेतना व पुरुषत्व ग्रहण करना निरर्थक है। साथ ही उत्तर अपने ही बनाये राजनैतिक तंत्र के चंगुल में बुरी तरह फँसता गया। यह कहा जा सकता है कि उन दिनों निश्चित ही उत्तरी राजनीतिज्ञों का रुख

दक्षिण के प्रति खुशामदपूर्ण रहा, और दक्षिण के राजनैतिक नेताओं में उत्तर-वालों पर शासन करने की प्रवृत्ति पैदा होने के कई दूसरे कारण भी थे। दक्षिण में लोकप्रिय सरकार का जैसा स्वरूप था उसके कारण वही लोग आगे आ सके जो उच्च परिवारों के थे। इनमें से कतिपय उस सीमा तक पहुँच गये कि नेता बन गये। ये ही लोग कॉंग्रेस में प्रतिनिधि के रूप में भेजे जाने लगे। इसके विपरीत उत्तर के गैरआबाद लोगों ने लोकप्रिय सरकार को इस तरह बच्चों का खिलवाड़ समझा कि वे सदा ही बदल कर अयोग्य व्यक्तियों तथा कई बार पतित व्यक्तियों को भी कॉंग्रेस में चुन कर भेजने लगे। उत्तर की जनता के हृदय में इन घटनाओं को लेकर किस तरह की प्रतिक्रिया हुई होगी यह समझना कठिन है। परन्तु इस अचानक आक्रोश से जिस समय उसने स्थिति से निपटने की तत्परता दर्शायी, समूचा दक्षिण प्रदेश आश्चर्यचकित रह गया। इस आत्मगाथा से उत्तर की इस भावना का गहरा सम्बंध है।

[७]

बौद्धिक विकास

तत्कालीन राजनैतिक आंदोलनों के बारे में विचार करते समय एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना की ओर ध्यान देना जरूरी हो जाता है, परन्तु कारणवश उसका उल्लेख बाद में किया जायेगा। १८३० से लेकर लिंकन की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् तक अमरीकी साहित्य में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इनमें से कतिपय ग्रंथ आज भी विश्व-साहित्य में चिरस्थायी हैं। अमरीकी शिक्षा व साहित्य का केन्द्र केम्ब्रिज शहर के समान ही बोस्टन और हार्वार्ड विश्वविद्यालयों में था। इन स्थानों पर कवियों, इतिहासकारों व लेखकों ने विचित्र परिस्थितियों में सुदृढ़ शारिरिक व्यायाम, ज्ञानार्जन, व्यवसायी व धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में चेतनाशील जीवन व्यतीत करते हुए नये राष्ट्र के निर्माणकारी गुणों को अंगीकार किया। अमरीका में यह विश्वविद्यालयी क्षेत्र ही ऐसा था जिसकी तुलना इंगलैंड से की जाती थी। अन्यथा कोई भी विदेशी यह कह सकता था कि अमरीका केवल राजनीति ही नहीं, अन्य कई मामलों में पश्चिमी जगत से भिन्न था। यही एक ऐसा शहर था जिसने पश्चिम के अनुकूल मानसिक व भौतिक सिद्धान्तों को जन्म दिया। अमरीकी लेखकों की मजबूरियाँ ही उनको उच्च साहित्य प्रदान करने में सफल बना सकी। विश्व इतिहास में ऐसा कहीं कोई

उदाहरण नहीं मिलता जहाँ एक राष्ट्र जो अभी भी अस्थिरता की स्थिति में हो अपने आरम्भिक काल में ही इतना उच्च कोटि का साहित्य—जो पूर्णतया उसका अपना है और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है—प्रस्तुत करने में सफल हो जाय। साथ ही यह और भी आश्चर्यजनक है कि स्वतंत्रता-संग्राम से लेकर उस काल तक राष्ट्र को कितनी ही पेचीदगी और व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में जुट जाना पड़ा, परन्तु बाधाएँ भी सजीव कल्पना-भरे सत्साहित्य और वैज्ञानिक रचनाओं के निर्माण में रुकावटें नहीं पैदा कर सकीं। इस काल के प्रारंभ में जो साहित्य रचा गया वह अधिक महत्वपूर्ण है। बोस्टन पहले कभी कठोर ईसाई-मतावलंबी लोगों का घर रहा होगा, स्वाधीनता के संग्राम में यहाँ जो विद्रोह हुआ उससे सामान्य उथलपुथल व कटुता की भावना पैदा हो गयी थी। परन्तु इमर्सन के समय से लेकर फिलिप्स ब्रुक्सकालीन बोस्टन में मानवीय, उदार तथा स्पष्ट व्यावहारिक भावनाओं का समुदय हो गया था। इस काल के लेखकों में लाँग-फेलो नाम का कवि अधिक प्रख्यात है तथा तत्कालीन लेखकों में उसका स्थान निर्विवाद है। लाँगफेलो के विषय को देखने से ऐसा लगता है कि वह शायद ही अमरीकी हो। यह उसका ही निश्चित और मननपूर्ण कार्य था जिसने नव-राष्ट्र के साहित्य को यूरोपीय साहित्य के सुरुचिपूर्ण तथा गंभीर रस से ओतप्रोत किया। परन्तु लाँगफेलो ही एक ऐसा लेखक था जिसने विस्तार से अपने घर के निकटवर्ती देहात न्यूइंगलैंड का सजीव वर्णन किया। वही एक ऐसा लेखक था जिसने सारे अमरीका के बारे में सही चित्रण प्रस्तुत किया, जिसका न्यू इंगलैंड एक अंग-सा था। इस लेखक के साथ-साथ एक अन्य लेखक वाल्ट व्हिटमेन का नाम जोड़ना अजीब अवश्य लगता है, परन्तु यह सम्बंध जताना सही है। इस उदार व विद्वान लेखक के साहित्य की पश्चिमी जगत की शुष्क विचारधारा के साथ कहाँ तुलना की जा सकती है? अमरीकी लेखकों ने लाँगफेलो की प्रशंसा करते हुए वाल्ट व्हिटमेन से उसके साहित्य को पूर्ण रूप से विभिन्न ठहराया।

अमरीकी इतिहास का विद्यार्थी ठीक ऐसा ही कुछ अनुभव करेगा जैसा कि कोई पर्यटक अमरीका की यात्रा करते समय करता है। जब ये पर्यटक घर लौटते हैं तो अपने मित्रों को यह बताने में असमर्थ रहते हैं कि किस चीज से वे प्रभावित हुए हैं। इन लोगों द्वारा प्रस्तुत विवरण में असुन्दर व शुष्क बातों का वर्णन है जैसा कि अमरीकी व्यंगकारों की कहानियों में होता है। जो प्रभाव वे अपने पाठकों पर डालते हैं वह विस्तृत, बोझिल, एकरस, जटिल व

अस्पष्ट होने के अतिरिक्त असहनीय रूप से उबा देने वाला होता है। परन्तु इसमें वह बात नहीं होती है जो वे बताना चाहते हैं। उन लोगों को इसके लिए निश्चित उदाहरण देकर अपने को स्पष्ट करना भी जरूरी नहीं है। जब वे लोग यह कहेंगे कि उनके दृष्टिकोण से अमरीका एक विशाल भूभाग है जो एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक एक ही देश के रूप में है तो इस बात को सभी समझ लेंगे और इस पर विश्वास भी करेंगे। यह एक ऐसा सम्माननीय राष्ट्र है जिसके लिये वहाँ के लोगों के हृदय में उतना ही प्रेम है, जितना दूसरे देशवासियों का अपने राष्ट्र के प्रति होता है। वह देश जहाँ विशिष्ट नर-नारी पाये जाते हैं, जो विभिन्न स्वरूपों में अपना योगदान दे रहे हैं, उनके द्वारा प्रदर्शित दया, साहस और सच्चाई के कारण मानवसमाज में उन्हें प्रशंसनीय स्थान प्रदान किया जा सकता है। इस समूचे जनसमाज में, एक छोटे-से-छोटे प्राचीन शहर में भी एक ही राष्ट्रीय स्वरूप के सर्वत्र दर्शन होते हैं। इस देश को निरंतर संघर्षरत रहना पड़ा। नये लोग वहाँ लहरों की तरह प्रवाहित होकर छा गये। ऐसा देश, जहाँ बार-बार बाधाओं ने रुकावटें डालीं, ऐसी बाधाएँ जो दूसरे देशों में नहीं आयीं, फिर भी यह अदम्य उत्साह तथा विवेकयुत आशा के साथ आज भी संघर्षरत है।

अमरीकावासी अमरीकी जीवन की चर्चा में विशेष रुचि रखते हैं। इसके लिये उदाहरणस्वरूप अब्राहम लिंकन का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। ऐसा व्यक्ति, जिसने उत्तर को एक बनाये रखा जबकि उसके पैतृक गुण व स्वभाव दक्षिण-वासियों के थे। चाहे वैसी विशिष्टता उसमें थी अथवा नहीं, इस जीवनी का केन्द्रबिन्दु यही है कि अब तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ था जिसने अपने ही तरीकों द्वारा गंभीरता के साथ विचार किया हो या दृढ़ता के साथ इस सवाल का उत्तर दिया हो कि क्या यथार्थ में अमरीकी राष्ट्रीयता नाम की कोई चीज भी थी, कि जिसे सुरक्षित रखा जाय?

तीसरा अध्याय

लिंकन का प्रारंभिक जीवन

[१]

न्यू सालेम की जिन्दगी

इन विशाल राजनीतिक आंदोलनों की चर्चा छोड़कर अब हम अपना ध्यान उस तरुण श्रमशील युवक की ओर आकर्षित करते हैं जिसे कभी शायद ही पाठशाला में अध्ययन का समय प्राप्त हुआ हो, जो अपने स्वभाव से ही पूर्णतया विचित्र था, और जिसके आकर्षणहीन व्यक्तित्व में किसी भी तरह की रद्दोबदल की गुंजायश नहीं थी, परन्तु उसमें एक आश्चर्यजनक और अत्यन्त ही सरल, सहृदयतापूर्ण क्षमता थी जो लोगों को प्रभावित कर देती; ऐसी क्षमता, जिसे उसने अपने संपर्क में आने वाले साथियों के प्रति प्रकट किया। एक ऐसी विचित्रता थी उसमें जो भाग्य से ही लज्जाशील व्यक्तियों को प्राप्त होती है, और वह विचित्रता—कि जिसका उपयोग जीवन के संघर्षों में किया जा सकता है। नये बसने वाले प्रदेशों में जहाँ अभी तक राजनीतिक समानता की भावना शेष थी, उसने २५ वर्ष की आयु में ही राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया। परन्तु ठीक उसके बीस वर्ष बाद उसने महत्वपूर्ण घटनाओं में शानदार हिस्सा लिया।

इन दो अध्यायों में सार्वजनिक क्रियाकलापों के बारे में जो कुछ भी लिखा गया है, वह उसके शिक्षणकाल से सम्बंध रखता है, न कि उसके जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों से, और केवल दृष्टिपात से ही उसके निर्धनतापूर्ण बाल्यकाल तथा रोमाञ्चकारी कठिनाइयों से उसके बाद के यशःप्राप्त जीवन का अंतर समझा जा सकता है। बहुत से निर्धन व्यक्तियों ने भी इतिहास में नाम कमाया है। परन्तु सामान्य रूप से उन्होंने शिक्षण या साहसिक कार्य अथवा व्यावसायिक जगत में जीवन के प्रथम चरणों में ही प्रवेश किया होगा। परन्तु जिन मामलों में लिंकन अपने प्रारम्भिक जीवन में उलझा रहा वे महत्वहीन हैं। सुशिक्षित समाज के दृष्टिकोण में—प्रारम्भ के उसके साथी या प्रतियोगी—जिन्हें उसने विद्वत्ता में

अपने से श्रेष्ठ ठहराया—निश्चय तौर पर उजड्ड और संकीर्ण विचारों के लगेंगे। सचमुच ही लिंकन का, जब तक कि उसके हाथों बड़ी समस्यायें हल करने की शक्ति प्राप्त नहीं हुई, किसी भी महान प्रशासनिक व्यक्ति या बड़े विद्वान से सम्पर्क नहीं सध पाया। परन्तु उसके विशाल मस्तिष्क ने, जो शायद ही कभी परिस्थितियों अथवा वातावरण के समक्ष झुका हो, उस समय के उठते हुए इलिन्यास से बहुत-कुछ ग्रहण किया जो स्फूर्तिदायक था। वहाँ चतुर बुद्धिवाले और विशाल चरित्र के बहुत से व्यक्ति थे, जिनसे मिला जा सकता था। उसे ऐसा बौद्धिक वातावरण मिला जो जीवन में पूर्ण रस देने वाला कहा जा सकता है। इलिन्यास के वकीलों और छोटे-मोटे राजनीतिज्ञों में लिंकन का चरित्र आश्चर्यजनक रूप से ऊपर उठा हुआ है, ठीक उसी तरह का, जैसा कि विशाल समूह में किसी भी महापुरुष का होता है। परन्तु इतिहास में महत्वहीन, अजाने ऐसे व्यक्तियों की भी सराहना आवश्यक है जिनके द्वारा उदारतापूर्वक प्रोत्साहन पाकर एक निर्धन, अटपटे युवक ने तेजी के साथ राष्ट्र के विशाल रंगमंच पर प्रवेश किया और अन्ततोगत्वा जन-नेता बन गया।

१८३१ में बाईस वर्ष की आयु में लिंकन अपनी न्यू आरलियन्स की नौका-यात्रा से लौटने के बाद न्यू सालेम में बस गया। यहाँ वह अपने संरक्षक डेंटन आक्फुट की प्रतीक्षा करने लगा, क्योंकि वे नये स्टोर के लिये सामान लाने गये थे। यहाँ लिंकन को उनके सहायक के रूप में नौकरी करनी थी। इस गाँव को बसे भी तीन वर्ष ही हुए थे। जनसंख्या कभी भी यहाँ की सौ से अधिक नहीं बढ़ी और पश्चिम के कई छोटे नगरों की तरह आज इसका नामोंनिशां भी शेष नहीं रहा। परन्तु उस समय वह एक व्यस्त स्थान था। यद्यपि इसका नाम ठीक विपरीत ही क्यों न रहा हो, इस ग्राम ने शीघ्र ही तरक्की की। लिंकन ने जिस समाज में अपना डेरा डाला, वे लोग मुर्गी लड़ानेवाले और शराबी थे। उसने इस समाज के अन्य कार्यों में तो हिस्सा पूरी तरह बटाया परन्तु भूलकर भी वहाँ कभी शराब नहीं छुई। इस सुरापान-रहित जीवन में केवल एक अवसर ही ऐसा अपवाद है जब लिंकन ने अपना शारीरिक जौहर दिखाने के लिए घुटनों पर शराब की टंकी उठा ली और उसके छेद में मुँह सटाकर वारुणीपान किया। परन्तु इस दिशा में यही केवल एकमात्र घटना है। आक्फुट को सामान लेकर वहाँ पहुँचने में कुछ विलम्ब हो गया। इस दौरान में लिंकन ने तरह-तरह के काम कर के जीवननिर्वाह किया। आरम्भ में एक अध्यापक मेंटोर ग्राहम ने चुनाव-अधिकारी के पद पर कार्य करते हुए उसे

एक किरानी के स्थान पर नियुक्त कर दिया। थोड़े ही दिनों में इस किरानी की ख्याति ग्राम भर में कहानी सुनाने वाले के रूप में फैल गयी। इसके बाद उसने पटरियाँ व छड़ें काटने का काम किया। फिर संगामन नदी पर नाव चलाने की नौकरी की। अंत में जब आफ्ट्ट का स्टोर खुला, वह वहाँ सहायक बन गया। एक साल तक इस महत्वपूर्ण विभाग के सहायक को सारे न्यूसालेमवासियों से बातचीत करने का अपूर्व अवसर मिला। उपरोक्त शाला-अध्यापक मेन्टोर ग्राहम से लिंकन ने व्याकरण सीखने की इच्छा दर्शायी और उसने इन्हें 'किरखम की व्याकरण' पढ़ने का सुझाव दिया, जिसे लिंकन कुछ मील पैदल चल कर भी अपने एक पड़ौसी से उधार माँग लाया। इस व्याकरण को उसने दूकान में 'काउण्टर' पर चित लेट कर तथा कपड़ों के गट्ठर का तकिया लगा कर पढ़ा। फालतू समय में वह गणित के सवाल किया करता था। आफ्ट्ट ने उसके स्वभाव को देखकर इस ओर उदारतापूर्वक ध्यान दिया, जिससे वह अन्य दूसरे भी काम बहुत कुछ सीख सका। न्यूसालेम के निकट ही क्लेरीग्रोव में कुछ शरारती लोग रहते थे, इन पर काबू पाना सरल नहीं था। लिंकन जैसे इतिहास के महान, नायक के लिए उनको चुनौती देने का स्वभाव उसके युवाकाल की अत्यंत आनन्ददायिनी घटनाओं में से है। वे लोग न्यू सालेम में आने वाले किसी भी व्यापारी का पाटिया गोल कर देते थे जो उनसे दब कर नहीं चलता था। अतएव संभवतया इसी भावना के वशीभूत, डेन्टन आफ्ट्ट महाशय ने लिंकन को आर्मस्ट्रांग नाम के पहलवान से कुश्ती लड़ने की प्रेरणा दी। लिंकन ने उसे पछाड़ दिया, इसके अतिरिक्त उसने अपने आकर्षक स्वभाव से क्लारीग्रोववालों को इतना प्रभावित किया कि वे लोग घृणा करने के बजाय उससे प्यार करने लगे। आर्मस्ट्रांग लिंकन को विशेष चाहने लगा था। हन्ना आर्मस्ट्रांग उसके कपड़े रफू कर दिया करती थी। इसके बदले में बहुत वर्षों बाद लिंकन-जैसे वकील ने बिना फीस लिये ही मुकद्दमा लड़ कर उसके पुत्र को हत्या के अपराध से मुक्त करवाया; क्योंकि ऐसे कारण मौजूद थे जिससे संभावना प्रकट होती थी कि संभवतया उसने यह हत्या नहीं की। यों ही यहाँ इस बात का भी जिक्र कर देना संगत है कि एक बार उसके ग्राम में बड़ा दंगल जुड़ा, जिसमें लिंकन महोदय पछाड़ खा गये। जैसी कि देहातों में यह आम बात है, लिंकन के साथियों को यह विश्वास था कि उसकी हार नहीं हुई, वरन् कुछ बेईमानी की गई है और जैसा कि लिंकन का स्वभाव था, वह इसका स्पष्ट खंडन करता रहा।

सालभर के अंदर ही ऑफ्फ्ट की दूकान ठप्प हो गई और लिंकन महोदय बेकार हो गये। परन्तु क्लारीग्रोव के विजेता और किरखम व्याकरण में पारंगत लिंकन महोदय सार्वजनिक जीवन में उतरने के लिए परिपक्व हो गये थे। पहले उसने सांगमन नदी के ऊपर जो काम किया था उसमें उसने आसपास के क्षेत्रीय सिंचाई के गंभीर मसले पर अपना ध्यान दिया। पानी का सवाल वहाँ के लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण समस्या बन गया था। एक समस्या यह भी थी कि सांगमन नदी पर नौका-रोहण भी संभव है या नहीं। उसने इस दिशा में अपनी खुद की एक योजना बनायी। १८३२ के वसन्त में स्थानीय समाचारपत्र में लड़खड़ाहट भरा परन्तु सरल व विचारपूर्ण भाषा में एक पत्र लिखा, जिसमें उसने अपनी योजना व विचारों पर प्रकाश डाला और साथ-ही-साथ यह भी घोषणा कर डाली कि वह आगामी चुनाव में राज्य की विधायिका परिषद् की सदस्यता के लिए खड़ा होने जा रहा है।

इसी दौरान में लिंकन महोदय को सैनिक की तरह काम करने का भी अनुभव प्राप्त हो गया। आदिवासी नेता ब्लेक हाक, जिसने यह स्वीकार किया था कि वह मिसीसिपी के पश्चिम में रहेगा, अपना समझौता तोड़ कर सदलबल उत्तरी इलीनॉयस में अपने पुराने शिकारगाह में लौट आया। राज्य के गवर्नर ने इस संकट के लिए स्वयंसेवक आमन्त्रित किये और लिंकन ने अपना नाम इसके लिए लिखा दिया। वह अपने दस्ते का कप्तान चुना गया और उस वीर-साहसिक परन्तु अनुशासनहीन सैनिक टुकड़ी को काबू में रखने का प्रयत्न करने लगा। उसने कोई लड़ाई नहीं लड़ी, परन्तु उसे कुछ महीनों के लिए जीवन बसर करने का सहारा मिल गया। इस दौरान में उसने जो अनुभव प्राप्त किया उससे बाद में काँग्रेस में जनरल कास के समर्थकों द्वारा राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार के पक्ष में किये गये सैनिक गौरव के बखान को सफलतापूर्वक निरर्थक सिद्ध कर दिया। इन दिनों उसने अपने एक गरीब आदिवासी मित्र की जान भी बचायी, जो उसके सैनिकों के हाथ पड़ गया था। उस असहाय व्यक्ति ने अपनी पहचान सिद्ध करने लिए प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जिसे सैनिकों ने जाली ठहराया। उसे भेदिया ठहराकर फाँसी दी जाने वाली थी। तभी लिंकन घटनास्थल पर पहुँच गया। वह दृढसंकल्प और क्रोध से तिलमिला उठा। उसने जैसे-तैसे अपने इन अनुशासनहीन सैनिकों के पंजों से उस शिकार को छुटकारा दिलवाया।

युद्ध समाप्त होते ही उसकी धारासभा के लिए उम्मीदवारी का अल्पकालीन अवसर आरंभ हुआ। इस अवसर पर उसने अपने पक्ष में जो भाषण दिये उनको

उसके एक समर्थक ने लिपिबद्ध कर लिये। उसका अंतिम महत्वपूर्ण भाषण अन्य कारणों से अन्यत्र पूरा प्रस्तुत किया जायेगा। इस समय एक छोटे-से भाषण का नमूना देखिये जिसमें सौ शब्द भी मुश्किल से ही होंगे। "नागरिक भाइयों! मेरी मान्यता है कि आप मुझे जानते ही होंगे कि मैं कौन हूँ। मैं विनम्र अब्राहम लिंकन हूँ। मुझे मेरे कई मित्रों ने यह सुझाया कि मैं धारासभा के लिये उम्मीदवार बनूँ। मेरी राजनीति छोटी-सी है, और बुढ़िया के नृत्य की तरह मनोरंजक भी है। मैं राष्ट्रीय बैंक के पक्ष में हूँ। मैं आंतरिक विकास-पद्धति और उच्च तटकर का पक्षपाती हूँ। ये मेरी भावनायें और राजनीतिक सिद्धान्त हैं। यदि चुन लिया गया तो मैं आपका शुक्रगुजार हूँ और यदि नहीं चुना गया तो भी मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं।"

चुने शब्दों में की गई इस लघु घोषणा के साथ उसका पत्र यदि और जोड़ दिया जाय तो ज्ञात होगा कि वह अधिक ब्याज लेने के विरुद्ध था तथा शिक्षा-क्षेत्र में तरक्की चाहता था और इस दिशा में कानून बनाने का पक्षपाती था। उसके भाषण में ठीक वही सिद्धान्त हैं, जो नये 'विग' दल (उदार दल) वाले डेमोक्रेटिक दल के विपक्ष में प्रचारित कर रहे थे। लिंकन के पड़ोसी सामान्यतया इल्लीयनॉस के लोगों की तरह ही डेमोक्रेटिक दल के पक्षपाती थे। यह बड़ी मजे की बात है कि लिंकन के ये आरंभिक विचार कैसे भी क्यों न हो, वे इल्लीनॉयस में उस दल के थे, जो तनिक भी लोकप्रिय नहीं था; यह और भी मजे की बात है, जैसा कि लिंकन के लिये स्वाभाविक था कि वह धारासभा के चुनाव में हार गया, परन्तु वह अपने निकटवर्ती पड़ोस के लोगों के लगभग सभी मत प्राप्त करने में सफल रहा। चुनाव हार कर—अब एक-एक पैसे को मोहताज लिंकन वकील बनने के लिये इधर-उधर भटकने लगा। तथापि उसने यह भी महसूस किया कि यदि वह लुहार का धंधा करे तो अधिक व्यवहारिक होगा। अकस्मात् ही वह एक ऐसा ही व्यवसाय करने को ललचागया जो व्यवसायिक क्षेत्र में अपने ढंग का अनूठा था। दुर्भाग्य से वह भी असफल रहा। हर्नडोन नाम के दो सज्जन पुरुषों ने (लिंकन की जीवनी लिखनेवाले के चचेरे भाई) न्यू सालेम में एक दूकान खोली और शीघ्र ही उससे ऊब भी गये। एक ने अपना हिस्सा बेरी को बेच दिया। दूसरे से लिंकन ने सौदा पटा लिया। लिंकन ने यह सारा माल उधार लिया। उस समय कोई रक़म नहीं चुकायी गयी, क्योंकि पैसा था ही कहाँ, जो चुकाया जाता। इस तरह सौदा बेचने वाले ने बाद में बताया कि उसने अपना दाम लिंकन की ईमानदारी पर छोड़

दिया था। उसे अपनी पूरी रकम प्राप्त करने के लिये लम्बे समय तक बाट देखनी पड़ी। परन्तु न्यू सालेम में दूकान खोलने के मामले को देखते हुए उसने यह बहुत अच्छा किया कि दूकान से छुटकारा पा लिया। 'मेसर्स बेरी एण्ड लिंकन' ने इसी तरह उधार पर दूसरी दो दूकानों के मालिकों का सामान खरीद लिया; क्योंकि उनमें से एक क्लारीग्रोव के लोगों का शिकार हो चुका था। अब इस फर्म के बड़े भागीदार बेरी महोदय ने दूकान में रखे शराब का व्यक्तिगत उपभोग आरंभ किया। दूसरे छोटे भागीदार लिंकन दूकान में आनेवाले पुरुष ग्राहकों से बौद्धिक अथवा मजाकिया गपशप में समय बिताने लगे। परन्तु एक मरणान्तक लज्जा उनमें ऐसी समायी हुई थी कि वे महिला ग्राहकों से बातें करने में झेंपते थे। दूकान के बाद जो समय बच रहता, वह आप पुस्तकें बटोरने के लिये दूर-दूर तक चक्कर काटने में बिताते। इन्हीं दिनों उसने गिब्न को पढ़ लिया। रोलिन्स का विश्व इतिहास तथा ब्लेकस्टन के ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया और उपन्यास पढ़ने की आदत डाल ली। अध्ययन तो चल निकला परन्तु व्यापार चौपट हो गया। १८३३ में बेरी और लिंकन ने अपनी दूकान ऐसे ही एक दूसरे साहसी 'व्यवसायी' के हाथों बेच डाली। यह भी उधार का ही सौदा था। खरीददार बिना किसी अधिक विलम्ब के ही असफल हो गया और दाम चुकाये बिना ही लापता हो गया। बेरी महोदय शराब के नशे में दूसरा पावना चुकाने परलोक सिधार गये और जाते जाते अपनी भी भागीदारी की उधार की जिम्मेदारी लिंकन पर डाल गये; क्योंकि अब वही तो, दूकान का मालिक या भागीदार सब कुछ अकेला रह गया था। लिंकन भी यदि चाहता तो बिना किसी झंझट या बिना किसी तरह के अपयश के अपने को दिवालीआ घोषित कराके छुटकारा पा सकता था। सत्यता यही है कि बाद में उसने एक-एक पाई चुका दी, परन्तु इसके लिए उसे १५ वर्षों तक कठोर श्रम व हार्दिक वेदना से पीड़ित रहना पड़ा।

बहुत-से सार्वजनिक चरित्रों में लिंकन एक ऐसा महत्वपूर्ण व्यक्ति है, जिसके साथ 'ईमानदार' शब्द जुड़ा हुआ है। इस बारे में केवल उसको उधार देनेवाले लोग ही सच्चे साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमाण उसके जीवनी लेखक विलियम हर्नडन का है, जो बहुत दिनों तक उसके साथ भागीदारी में वकालत करते रहे। हर्नडन का कहना है कि 'उसे पैसे की परवाह नहीं थी।' परन्तु इसको दूसरे ढंग से नहीं समझा जाय। वह अपने ही ढंग से लोगों को चुकाया करता था और उधार तो जरूर ही चुका देता था। यद्यपि उसने अपना

सारा बाल्यकाल निर्धनता में व्यतीत किया, फिर भी उसमें धनवान बनने की स्वाभाविक रुचि कभी नहीं पैदा हुई। उसके दृष्टिकोण में सम्पत्ति सदा ही 'एक ऐसी विलासिता रही जिसकी किसी को जरूरत ही नहीं होनी चाहिये'। वह सदा ही गणित में रुचि लेता रहा; कुछ तो अपने विचारों को अनुशासित करने और दूसरे यान्त्रिक समस्याओं में रुचि रखने के कारण। अपने जीवनकाल में उसने एक आविष्कार भी पेटेन्ट करवाया। गणित में ऐसी रुचि होते हुए भी वह हिसाब-किताब अथवा बड़े पैमाने पर आर्थिक या वित्तीय योजनाओं से घबराया करता था। बाद के दिनों में जब कभी वकालत की उसे फीस मिलती, वह उसी समय उसमें से अपने भागीदार का हिस्सा चुका दिया करता था और मकान व दफ्तर का भी किराया चुका देता। बची हुई रकम किरानेवाले को चुका दी जाती। उसमें से भी यदि रकम बच जाया करती तो वह दूसरी चीजों की खरीद तत्काल ही कर लेता था। लंबे समय के बाद जरूरत हुई, तो वह नया टोप भी खरीदता था। ये उसके व्यक्तिगत जीवन के छोट-मोटे उदाहरण हैं। परन्तु ये उसकी राजनीतिज्ञता की सीमा प्रकट करते हैं। इल्लीनॉयस धारासभा में मुख्य प्रश्न आर्थिक थे और संघीय नीति को लेकर 'विग' और 'डेमोक्रेटिक' दलों में चहलपहल थी ही। लिंकन ने यद्यपि इन मामलों में भी युवक की भावनाओं के साथ हाथ बटाया, परन्तु ऐसा लगता है कि इन मामलों में उसकी पकड़ नहीं थी। उसके एक प्रशंसक ने लिखा, "केवल इसी मामले में लिंकन को मैं सदा ही कमजोर व्यक्ति समझता रहा।" उसकी राजनीति में तभी आनंद आता था, जब या तो संवैधानिक समस्याएँ होती अथवा कोई नैतिक मसला सामने होता। हम उन कारणों का भी अनुमान लगा सकते हैं कि लिंकन क्यों 'विग' दल (उदार दल) वालों के साथ जुड़ा। एक तो सत्ताहीन दल होने, दूसरा इल्लीनॉयस में लोकप्रिय नहीं होने के कारण—उन्हें अपने पक्ष में कतिपय लाभ नज़र आते थे। तत्कालीन महान विद्वान वेब्स्टर और क्ले जैसे व्यक्ति भी इस दल के साथ थे। लिंकन द्वारा 'संरक्षण' के समर्थन में दिये गये सरल और निष्कर्षहीन तर्क हमें उसके भाषणों में मिलते हैं। कुछ का कहना है कि आंतरिक विकास की योजनायें उसके विचारों को प्रज्वलित कर दिया करती थी।

अपने व्यापार में असफल होने के बाद लिंकन ने खेतों पर तरह-तरह के काम करके थोड़े दिन गुजारा किया, परन्तु शीघ्र ही देहातों में 'सर्वे' करने वाले जॉन काल्हन के सहायक के तौर पर काम करने लगा। ये सज्जन—जिन्होंने

वकालत की शिक्षा पायी थी, परन्तु पाठशाला में पढ़ाना इन्हें अधिक पसन्द था—राजनीतिक विचारों में पक्के डेमोक्रेट थे। इन्होंने लिंकन को विश्वास दिलाया कि उसके सहायक के रूप में काम करते समय उसके लिए यह कतई आवश्यक नहीं है कि वह अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का त्याग करे। वे बड़े चलते पुर्जे थे और लिंकन ने सदा ही इन्हें बहस में अपने मुकाबले का प्रतिद्वन्द्वी माना। मेन्टोर ग्राहम की सहायता से लिंकन ने सर्वेयर की किताब पूरी कर ली और जब तक वह वकील नहीं बन गया, उसने यह काम जारी रखा। इस बात के प्रमाण भी मिले हैं कि उसके सर्वे पूरे सही होते थे। शीघ्र ही कुछ दिनों बाद वह स्थानीय पोस्टमास्टर के पद पर काम करने लगा। लिंकन ने अमरीकी सरकार में, अपने जीवन में केवल दो बार ही काम किया। एक तो पोस्टमास्टर का, दूसरा राष्ट्रपति का। पोस्टमास्टर वाली नौकरी अधिक कष्टसाध्य नहीं थी; क्योंकि डाक वहाँ कभी कदाच ही आती थी और "उसका दफ्तर उसके टोप में पड़ा रहता था।" हमें यह कहते हुए भी खुशी होती है कि 'उसका प्रशासन पूर्णतया संतोषजनक रहा।'

एक बार उस पर विपदा का पहाड़ टूटते-टूटते बचा। एक कर्ज उगाहनेवाले ने उसका घोड़ा और सर्वे के यंत्र आदि छीन लिये। परन्तु लिंकन का नाम अपने क्षेत्र में सभी की सहायता करनेवालों में शुमार था और मित्र लोग भी उसे सहायता देने को तैयार थे। इन लोगों ने उसके लिये घोड़ा और यंत्र पुनः खरीद दिये। इन्हीं दिनों में उसने अराजक विचारधारावाले कुछ लेखकों के ग्रन्थों का अध्ययन किया, जिनमें टाम पेन, वाल्तायर और वौलने प्रमुख थे। इन लेखकों को उन दिनों खतरनाक लेखक समझा जाता था। मुर्गे लड़ाना, शारीरिक शक्ति प्रदर्शन, कुल्हाड़ी, हथौड़ा या आरे के उपयोगी कौशल या नकल करने की मजाकिया प्रवृत्ति इन दिनों बदस्तूर जारी रही। १८३४ में वह पुनः उम्मीदवार बना। एक राह चलते राहगीर ने उस की शक्ल देख कर कहा कि क्या दलवाले इससे अच्छा व्यक्ति नहीं खड़ा कर सकते थे। अभी तक लिंकन ने अपना भाषण आरंभ नहीं किया था। उसका भाषण सुनने के बाद वही राहगीर चिल्ला उठा कि यह भाषणकर्ता सभी उम्मीदवारों से ज्यादा जानकारी रखनेवाला है। इस बार वह चुन लिया गया। उस समय वह पच्चीस वर्ष का था। इसके बाद भी वह लगातार तीन बार धारासभा के लिये चुना गया। अपने दूसरे चुनाव के कुछ ही समय पहले राज्य की राजधानी उसके अपने ही क्षेत्र स्प्रिंगफील्ड में चली गयी थी। १८३७ में लिंकन ने

यहीं अपना घर बसाया। कई दिनों से वह कानून का यदा-कदा अपने ढंग से अध्ययन करता रहा था और बिना लायसेंस के वकील की तरह छोटी-छोटी अदालतों में मुकदमे भी कभी-कभी लड़ा करता था। अब उसे लायसेंस मिल गया और शीघ्र ही स्प्रिंगफील्ड में उसके एक पुराने मित्र ने उसे अपना भागीदार बना लिया।

[२]

इलीनॉयस की धारासभा में

यहाँ लिंकन की किशोरावस्था समाप्त हो जाती है। स्प्रिंगफील्ड न्यू सालेम की अपेक्षा दूसरे ही ढंग की जगह थी। इस शहर में गाड़ियाँ थीं और महिलाएँ यहाँ काव्य और फैशन का अध्ययन किया करती थीं। वरजीनिया और केन्टकी के कतिपय संभ्रान्त परिवार यहाँ बसे हुए थे, जो अपने पूर्वजों की आनबान बनाये रखने में विश्वास रखते थे। उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र से गंभीर और प्रगतिशील लोग भी यहाँ बसने लगे थे जिन्होंने दक्षिणी लोगों को अल्पसंख्यक बना दिया। ये लोग सदा ही इनकी भ्रामक प्राचीन आनबान की मजाक उड़ाया करते थे। यहाँ गिरजाघरों, सोसायटियों में होड़ लगी रहती थी। ऐसी ही एक संस्था 'यंग मेन्स लेजियम' थी, जो घुड़दौड़ और मुर्गबाजी में अपनी सानी नहीं रखती थी।

और...स्प्रिंगफील्ड में बसने के लिये आया हुआ यह अब्राहम लिंकन, मानों दूसरा ही लिंकन था। कानूनी व्यवसाय में भागीदारी तय होने के एक या दो दिन पूर्व ही वह वहाँ पहुँचा था। वह एक तरुण व्यवसायी जोशुआ स्पीड़ की दूकान में गया और सबसे सस्ते बिस्तर व ऐसे ही अन्य सामानों के बारे में पूछताछ करने लगा। लिंकन के पास एक भी पाई नहीं थी, उसने उधार लेना चाहा और शीघ्र इसकी व्यवस्था भी हो गयी। सारी रकम लगभग १७ डॉलर थी। परन्तु इतनी बड़ी राशि उधार लेने की भावना मात्र से ही लिंकन विचलित हो उठा। उसके चेहरे पर आये इस तरह के भावों को देख कर स्पीड ने तत्काल दूसरी व्यवस्था सुझायी जिसमें एक भी पैसे का व्यय नहीं था। वह उसे ऊपर ले गया और अपने बड़े बिस्तर पर बिठाते हुए बोला कि यह पश्चिमी ढंग की व्यवस्था स्वीकार कर लो। तुम भी मेरे बिस्तर में हिस्सा बटा लो। परंतु लिंकन ने प्रत्युत्तर में यही कहा, "नहीं, श्रीमान् स्पीड! मैं चल दिया!" स्पीड ने

बाद के दिनों में आगे चल कर लिंकन के लिये इसी तरह की दयाद्र भावनाएँ दर्शायी। परंतु इस समय हमारा सम्बन्ध केवल इसी बात से है कि ऐसा क्या था जिसने स्पीड को भी दयार्द्र कर दिया। कई दिनों बाद उसने बताया, "मैंने उसकी ओर देखा और तभी मैंने सोचा, जैसा कि आज भी मेरा विचार है, कि मैंने अपने जीवन में ऐसा उदास व पीड़ाभरा चेहरा कभी नहीं देखा।" महत्वाकांक्षा और निर्धनता के संघर्ष की छाप लिंकन के चेहरे पर जरूर रही होगी, परन्तु इसके अतिरिक्त प्रेम की एक दुःखान्त घटना की छाप भी स्थायी रूप से उसके चेहरे पर अंकित रही होगी। (यह कहानी बाद में कही जायेगी।) हम यह कल्पना कर सकते हैं कि इन प्रभावों ने दुख व सुख की घड़ियों में भी सदा उसके चेहरे पर एक से ही भाव छोड़े होंगे। उसके सारे जीवन में पुरुषों से मिलने-जुलने की मिलनसार आदत बनी रही, परन्तु इसके साथ-साथ उसमें एकान्तप्रियता या अपने में ही खो जाने की प्रवृत्ति पनप उठी। यह अपने में लीन हो जाने की प्रवृत्ति भी इसी ढंग की थी मानों वह यदि पढ़ने की इच्छा करता, तो भीड़ या शोरगुल अथवा रास्ते चलते हुए भी मनोयोग से पढ़ता चला जाता। लिंकन एक व्यवसायी व्यंग कथाकार के समान था। उसे कई आश्चर्यजनक कहानियाँ याद थीं, जो सुननेवाले को गुदगुदा देती थीं, परन्तु लिपिबद्ध करने पर संभवतया ऊबा देती। यह मानी हुई बात है कि इस तरह के गुण उदास या पूर्णरूपेण गंभीर व्यक्तियों में भी समान रूप से पाये जाते हैं, जैसे सामान्य व्यक्ति में मिलते हैं।

१८३४ से १८४२ के समय में इल्लीनॉयस की धारासभा, जिसका सदस्य लिंकन भी था, यद्यपि अधिक योग्य नहीं थी, परन्तु थी शक्तिशाली। उन दिनों की स्थिति को देखते हुए पहाड़ी और अल्प जनसंख्यावाले प्रदेशों की धारासभा को अपने हाथों में करना बड़ी टेढ़ी खीर थी जिसमें कि समाज के न तो अप्रतिष्ठित तत्व थे और न ऐसे पेशेवर राजनीतिज्ञ ही, जो (सही हो या गलत) बाद में अमरीकी सरकार में छाने लगे थे। लिंकन जिस तरह से चुना गया, उसे देखते हुए यह भी आशंका की जा सकती है कि कोई कुख्यात व्यक्ति भी सरलता से चुना जा सकता था, परन्तु इससे यह भी पता चलेगा कि वहाँ के समाज में ठीक इसके विपरीत ढंग के मतदाता थे।

कहा जाता है कि उस धारासभा में सीमा क्षेत्रों के तरुण, उग्र और विद्रोही तत्व थे। इन सदस्यों में डेमोक्रेटदलीय स्टीफ़न डगलस था, जो बाद में अमरीकी राजनीति में महान् शक्तिशाली व्यक्तित्व प्रमाणित हुआ। उस समय

लिंकन को कोई जानता भी नहीं था। इनमें से बहुत से लिंकन के उदार-दलीय साथी थे, जिन्होंने बाद में राजनीति और युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। हम इसके अधिक विस्तार में नहीं जायेंगे और केवल उन्हीं लोगों की चर्चा करेंगे, जिनके विशेष सम्पर्क में आकर उसे पूर्णतया आनन्द प्राप्त हुआ था। आरंभ में धारासभा के समझदार तरुण सदस्य की तरह वह थोड़े दिनों तक चुपचाप सुनता रहा, और उसने कदाचित् ही कभी भाषण दिया। बाद में उसने अपना मार्ग प्रशस्त कर लिया। १८३८ और १८४० में 'विग' सदस्य—जो कि अल्पसंख्या में थे—उसे चुन नहीं सके, परन्तु उन्होंने उसे धारासभा का अध्यक्ष बनाने के लिये सर्वसम्मत मत प्रदान किया। १८३८ तक धारासभा आंतरिक विकास व राज्य के प्राकृतिक स्रोतों के उपभोग के विकास के मसलों में संलग्न रही। ये मसले महत्वपूर्ण थे। यह स्वाभाविक भी था कि सरकारी व्यय से नहरों, रेलों और सार्वजनिक कार्यों को आगे बढ़ाया जाय। अन्य नये राज्यों की तरह—इस मामले में कड़ा अनुभव होने पर भी—बिना किसी बहाने, अथवा ऊँचा-नीचा देखे ये लोग कदम उठाने लगे, यद्यपि गवर्नर ने इसका विरोध भी किया। इल्लीनॉयस धारासभा, 'विग' और 'डेमोक्रेट', लिंकन और दूसरे लोग सभी इस दिशा में बहुत आगे बढ़ गये। फल यह हुआ कि आर्थिक संकट के दिनों में इल्लीनॉयस की यह स्थिति हो गयी कि उसने सार्वजनिक ऋण पर १८४० से कई वर्षों तक कोई ब्याज नहीं चुकाया। राज्य कर्ज में इतना डूब गया कि उसकी स्थिति वैसी हो गयी जैसी पहले कर्जदार लिंकन की स्थिति थी।

धारासभा में लिंकन के कार्यों के बारे में बहुत कम उल्लेख मिलता है। जो भी वर्णन मिलता है, वह दर्शाता है कि लिंकन और उसके क्षेत्र के अन्य सदस्य—जो मिल-जुल जाने पर "नौ बड़े लोग" के नाम से जाने जाते थे—अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में पसन्द की जानेवाली योजना पर कार्य करते अथवा अपने मन से इस दिशा में नई योजनाएँ प्रस्तुत किया करते थे। इस तरह वॅन्डालिया से अपने क्षेत्र स्प्रिंगफील्ड में राजधानी हटाने के मामले में उसका भी हाथ था। इल्लीनॉयस का मानचित्र देखने पर ज्ञात होगा कि वॅन्डालिया की अपेक्षा राजधानी के लिए स्प्रिंगफील्ड अच्छा स्थान था। यह उतनी ही अच्छी जगह थी जितनी जाक्सनविले और पेवोरिया, जिसे उसके प्रतिपक्षियों ने सुझाया था। उसके भाषण बहुत कम लिखे गये थे। परन्तु इनमें से एक भाषण महत्वपूर्ण है, जो उसने राज्य बैंक के शेयरों के तथाकथित अनुचित विभाजन पर प्रस्तावित जाँच के सिलसिले में दिया था। सचमुच में यह एक साहसी व्यक्ति

का भाषण है। उसने यह तर्क प्रस्तुत किया कि इसके पूर्व, प्रमुख नागरिकों की एक समिति इस मामले में जाँच कर चुकी है और उसके सभी सदस्य अपनी ईमानदारी के लिए प्रख्यात हैं, लेकिन धारासभा सदस्यों की इस प्रस्तावित समिति में (जिसके समक्ष लिंकन भाषण दे रहा था) ऐसे सदस्य होंगे, जो हो सकते हैं कि ईमानदार हों अथवा नहीं भी हों।

'विग' दल के सदस्य के रूप में लिंकन ने उस समय की गणराज्यीय सरकार की नीति में हिस्सा बँटाया, परंतु हम इस अवसर पर उस दिशा में विचार नहीं करेंगे। 'विग' दल (उदार दल), जिसमें लिंकन ने सदा मातहती का काम किया, दुर्भाग्यपूर्ण दल था। १८४० में आर्थिक संकट का दोषारोपण सर्वशक्तिसंपन्न 'डेमोक्रेटिक' दल के मत्थे मढ़ा गया—राष्ट्रपति पद के लिए 'विग' उम्मीदवार चुना गया। इनका नाम जनरल हेरिसन था और इन्होंने पिछले युद्ध में काफी नाम कमाया था। इनकी तुलना महान शूरवीर सिनसिनाटस से की गयी और इस तरह के अजीब मूर्खतापूर्ण शौर्य विवरण रखे गये या प्रदर्शन किये गये, जो पहले कहीं भी अमरीकी इतिहास में देखने को नहीं मिलते थे। राष्ट्रपति हेरिसन को अपना कार्यभार सम्हाले, कठिनाई से एक माह ही हुआ होगा कि उसका देहान्त हो गया। कुछ लोग कहते हैं कि सरकारी पदों के लिए दौड़धूप करनेवालों की भारी भीड़ के कारण चिन्तित होकर वह मर गया जबकि सच्चाई यह है कि उसे शीत ज्वर का प्रकोप हुआ था। यह संतोष की बात है कि इन सज्जन के पौत्र ने ४८ वर्ष के बाद राष्ट्रपति पद सम्हाला और सफल संचालन भी किया। परंतु जनरल हेरिसन का तात्कालिक उत्तराधिकारी उपराष्ट्रपति टेलर, जिसने हेरिसन की उम्मीदवारी का कड़ा विरोध किया था, राष्ट्रपति बन गया, इसलिये नहीं कि उसे 'विग' दलवालों का समर्थन प्राप्त था। यह व्यक्ति सुसंस्कृत था परंतु अत्यधिक संकीर्ण विचारधारा का था, पूर्णतया स्वच्छन्द और सदा ही विपरीत निर्णयों का पक्षपाती। इसने 'विग' दल द्वारा प्रस्तुत महत्वपूर्ण भावनाओं की तनिक भी पूर्ति नहीं की और सफलतापूर्वक आगामी चुनाव में विजयी होने के लिए डेमोक्रेटिक दल के उम्मीदवार का मार्ग निष्कंटक कर दिया। इन वर्षों में लिंकन वकालत करता रहा। जैसे-जैसे प्रदेश का विकास होता गया, इस धन्धे में अधिक परिश्रम व शिक्षा की जरूरत पड़ने लगी। धारासभा की बैठकें ज्यादा दिन नहीं चलती थीं और राजनैतिक सम्मेलन कभी-कभी होते थे। भले ही लिंकन अपने धन्धे में जुटा हुआ था, परन्तु वह सदा समाज के तरह-तरह के कार्यों में पूरी-पूरी रुचि दर्शाया करता था

तथापि इस तरह की राजनीति, अन्य दूसरे महत्वपूर्ण मसलों के अलावा भी सदा उसे आकर्षित करती रही। लिंकन अपने काल का सर्वोत्तम तार्किक था। उसने ऐसी प्रवृत्ति पैदा कर ली थी जिसे यूनानी दार्शनिक द्वन्द्वात्मक कहा करते थे। एकाकी विचार करते समय इस शक्ति का उसने विकास किया, जो उसकी सबसे महान व उल्लेखनीय शक्ति कही जा सकती है। इस शक्ति के साथ साथ उसमें यह इच्छा भी बलवती होने लगी कि वह अपने विचारों को इस स्वरूप में ढाल दे कि दूसरे भी उसके निर्णय से प्रभावित हो जायें। यद्यपि दल-व्यवस्था का काम उन दिनों गन्दा माना जाता था, फिर भी लिंकन में दल व्यवस्था सम्हालने की स्वाभाविक इच्छा पैदा हुई, जो उसकी बुद्धिमत्ता का परिचय देती है। अंत तक उसने विभिन्न व्यक्तियों को समझने का सहज ज्ञान कभी नहीं दर्शाया। उसके हार्दिक मित्रतापूर्ण इरादे, अकाट्य तर्क की शक्ति, कहानी के रूप में दृष्टान्त देने की अनोखी सूझ, ऐसी बातें थीं जो सीनेट सदस्य शर्मन और जनरल मेकलीन को भी पसन्द आया करती थीं। जनता में से व्यवस्थाकुशल व्यक्तियों को छाँटने की शक्ति, किस स्थान पर कौन-सा उम्मीद-वार प्रभावशाली है, कौन कहाँ लोकप्रिय है, कौन नहीं, आदि इस तरह का काम है जिसमें काफी गंभीरता और सूझबूझ की जरूरत होती है। यह लिंकन की रुचि के अनुकूल था। हम बाद में देखेंगे कि लिंकन ने इस तरह की शक्ति का उपयोग कितने बड़े पैमाने पर और किस महान् लक्ष्य के लिए किया।

इस मामले में उसका प्रारम्भिक दलीय अनुशासन कोई रुचिकर विषय नहीं है। केवल यही रुचिकर है कि इस महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने किस तरह अपने सहयोगियों और प्रतिद्वन्द्वियों के अधिकारों के बारे में अपूर्व ईमानदारी का परिचय दिया।

लिंकन के चरित्र के बारे में किसी तरह का फैसला करने के पहले यह जान लेना चाहिए कि जब वह राजनीतिज्ञ बनता जा रहा था, उस समय लोकप्रिय सरकार का जैसा ढाँचा था, वह नये नेतृत्व व उठनेवाली महान् हस्तियों के अनुकूल कतई नहीं था। जेक्सन के नेतृत्व में जो डेमोक्रेटिक पार्टी बनी, उसने इसलिये अंकुश अपने पर लगाये जिनसे जनता के लिये जनप्रिय सरकार का गठन हो सके; लेकिन इसके कारण दल में अनुशासनबद्ध एक ही ध्वनि या एक से ही विचारों को प्रोत्साहन मिल पाता था। इस एकता को भंग करना उतावलापन ही नहीं, वरन् उसे अनुचित भी माना जाता था।

शुरू के दिनों में एक स्थानीय पत्र ने यह माँग की कि सभी उम्मीदवार

अपने मत दर्शायें। लिंकन ने लिखा, "स्वीकार है" यह मेरा मत रहा। इसके बाद एक नवयुवक का विकासशील विचारों के विषय में धाराप्रवाह प्रवचन आरंभ हो गया। उसने लिखा कि वह सभी गोरे लोगों को मतदान का अधिकार देगा, जो सरकार को कर देते हैं या हथियार रखते हैं, इनमें महिलाएँ भी शुमार होंगी। लिंकन का समकालीन डिज़रायले भी इन्हीं गुणों से प्रसिद्ध था और इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों की मान्यता रही कि साहस के साथ उत्तर देने या कोई बात कहने से नुकसान नहीं पहुँचा करता है। इस अवसर पर (१८३६ में) लिंकन अपने-आप को नुकसान में डालने की स्थिति से कभी का छुटकारा पा चुका था। 'विग' दलवाले अभी तक विचारधारा में अनुशासन नहीं ला पाये थे। कई वर्षों बाद जाकर उन्होंने इस बारे में डेमोक्रेटिक दल का अनुकरण किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि लिंकन की इस घोषणा को उसके एक मित्र ने 'भविष्य में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले' के लिए, अत्यधिक स्पष्ट व प्रभावशाली ठहराया। उस मित्र को इस पर भी प्रकाश डालना था कि लिंकन का मत उस समय जो वातावरण था उसके अनुकूल कैसे रहा जब कि वह वातावरण शीघ्र ही बाद में बदल भी गया। शीघ्र ही यह सवाल लिंकन के मित्रों के सामने आया कि क्या कोई प्रस्ताव या भावना समय के अनुकूल है अथवा समय से आगे है। इस पर बहुत वादविवाद व तर्क-वितर्क भी हुआ। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि लिंकन के दिमाग में ऐसे प्रस्तावों ने अधिक परेशानी नहीं पैदा की। प्रश्न यह उठता है कि क्या उसकी राजनीति में—जबकि उसे बड़े-बड़े कामों को करना था—कहीं अवसरवाद की भी झलक थी?—हो सकता है वह अत्यंत निम्न स्तर का न होकर कुछ-न-कुछ सस्ती भावनावाला ही रहा हो? क्या यह कहा जाय कि वह औसत मनुष्य के धरातल पर आ गया था, जहाँ महानता के साथ-साथ मानवीय कमजोरियों के होते हुए भी उसने राजनीति में बुद्धिमानी से संतुलित अवसरवाद को स्थान दिया, जो समयानुकूल सर्वोतम राजनीतिक गुणों को प्रकट करने के साथ साथ अपने-आप को काबू में रखने के शानदार गुण को प्रकट करता है।

इल्लीनॉयस और काँग्रेस में उसकी राजनीति से उसे यह सहायता मिली कि वह अपनी विचारधारा निर्धारित कर सका। एक ओर उसने अपने-आप को सभी परिस्थितियों में ठहरने योग्य बना लिया। उसने अपने मित्रों द्वारा दी गयी सामयिक सलाह पर सतर्कता से ध्यान दिया, जिससे वह शीघ्र ही नाराज हो जाने की प्रवृत्ति पर कुछ काबू पा सका। उसके एक अंतरंग मित्र ने बताया कि लिंकन

जब कभी ताव में आकर कोई निर्णय लेता था, तो वह अच्छा नहीं होता था और खुद लिंकन भी शायद इस बात को मानने लगा था। हमें पता चलेगा कि किस तरह लिंकन के अत्यन्त प्रभावशाली भाषण ऐसे मित्रों की भयभीत होने की प्रवृत्ति के कारण संकटकालीन दो वर्षों तक प्रकाश में नहीं आ पाये। जिस समय उन्हें प्रकाशित किया गया, उस समय भी यह कार्य अधिक साहसिक योग्यता का माना जाता था। अपने विकास के लिए उसने जो भी निश्चित कदम उठाये, वे गंभीर विचार करने व रुके रहने की उसकी शक्ति को दर्शाते हैं। सचमुच में इस तरह की प्रवृत्ति से उसे स्वयं को और सारे देश को लाभ पहुँचा; क्योंकि उसकी विचारधारा, भावना व चरित्र पर इस तरह का जो अंकुश लगा, वह अमरीकी राजनीति में अधिक लाभप्रद ही सिद्ध हुआ, हानिकर नहीं। उसे अपने को केवल इसी क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि दूसरे मामलों में भी काफी धैर्य्य-वान और सहनशील व्यक्ति सिद्ध करना पड़ा। कई बातों में, उसके विचार अपने पड़ोसियों की विचारधारा के विपरीत हुआ करते थे, परन्तु उसने कभी इन्हें छिपाने अथवा हठपूर्वक आगे लाने की चिंता नहीं की। उसने अपने मित्रों को बताया कि इन दिनों उसकी सामाजिक विचारधारा किस दिशा में बह रही थी। वह सामाजिक सुधारों में दास-प्रथा के अंत और कड़ी सहनशील नीति लागू करने के पक्ष में था। परन्तु उसमें यह भावना घर कर गयी थी कि कुछ भी हो अंत में न्याय की ही विजय होगी। अतएव वह राजनीति में समय से पूर्व के आंदोलनों की उपयोगिता को निरर्थक व नुकसानदेह मानने लगा था। एक बार उसने यह कहा बताते हैं, "ऐसे सभी प्रश्न उन सभी विकसित आत्माओं में स्थान पा लेंगे और उनपर स्वीकृति की छाप लग जायेगी जब सद्बुद्धि का युग भगवान् लायेगा, तब वे कानून का रूप ले लेंगे और हमारे जीवन के ताने-बाने में मिल जायेंगे।" यह विचारधारा कुछ निराशाजनक अवश्य लगती है, परन्तु इससे हम उस व्यक्ति को समझ सकते हैं जो समय आने पर सदा सही मार्ग पर रहा और जिसने बुराइयों से सदा ही पूर्ण अनुशासित रह कर हृदय से घृणा की तथा उन्हें अपना भयानक शत्रु माना।

ऐसे कई अवसर आये हैं, जब उसे कसौटी पर कसा गया कि क्या लिंकन जैसा राजनीतिज्ञ सच्चा व्यक्ति था?

१७८७ के अध्यादेश के अनुसार इल्लीनॉयस स्वतंत्र (दासप्रथाहीन) राज्य माना गया था और काँग्रेस ने भी उसे विलीन करते समय स्वतंत्र राज्य ही माना। परन्तु यहाँ के अधिकांश लोग दक्षिणवासी थे। इस तरह के अंकुश लगाने

की नीति के विरुद्ध कई आंदोलन हुए। लोगों की भावना दासप्रथा के कट्टर पक्ष में थी। १८३६ में अल्टन नामक स्थान पर एलावजा लवजॉय नामक दासप्रथा-समाप्ति समर्थक एक आंदोलनकारी शहीद हो गया। उसे एक क्रुद्ध-उत्तेजित भीड़ ने मार डाला। इन लोगों के साहसिक आंदोलन का इल्लीनॉयस में भारी विरोध हो रहा था और धारासभा ने इस आंदोलन की निंदा करते हुए एक विधेयक पारित किया जिसमें कहा गया कि संविधान के कारण वे लोग दक्षिण राज्यों में दासप्रथा के मामले में हस्तक्षेप करने में असमर्थ हैं। लिंकन ने स्वयं—भले अथवा बुरे इरादे से जिसकी बाद में जाँच की जायेगी—दास-प्रथा-समाप्ति आंदोलन को अस्वीकार करते हुए विरोध किया, साथ ही विधेयक का भी विरोध किया। परन्तु यह विरोध केवल कानूनी दृष्टिकोण तक ही सीमित था और एक शब्द "पवित्र" के विरुद्ध था अन्यथा इस विधेयक में ऐसा कुछ भी उसके विपरीत नहीं था, जिसे वह स्वीकार करने की स्थिति में न हो। उसका विरोध विधेयक के उद्देश्यों से था जिसके कारण उसे पारित किया गया। लिंकन ने आगे बढ़कर धारा सभा में इन प्रस्तावों के विरुद्ध अपना संशोधन प्रस्तुत किया। उसने अपनी पुरानी तार्किक शैली में ही इसकी व्याख्या की। उसने यह इसलिये किया, क्योंकि इन प्रस्तावों से दासप्रथा के घटने-बढ़ने की अपेक्षा उसकी बुराइयों को प्रोत्साहन मिलता था। उसने सदन के रिकार्ड में लिखवाया, "दास-प्रथा का आधार अन्याय व बुरी नीति है।" इस विरोधपत्र पर वह केवल एक ही व्यक्ति को हस्ताक्षर करने के लिए राज़ी कर सका और जिस व्यक्ति ने इस पर हस्ताक्षर किये थे, वह दुबारा चुनाव में नहीं खड़ा होने जा रहा था।

१८४२ तक लिंकन एक समझदार-वयस्क व्यक्ति बन गया था और यह समझ गया था कि लोगों को निरर्थक उकसाने में कोई लाभ नहीं है। उसने गिरजाघर में इन दिनों जो साहसपूर्ण भाषण दिया, उसका संभवतया बहुत ही थोड़ेसे समझदार धार्मिक व्यक्तियों ने स्वागत किया। वाशिंगटन के जन्मदिवस पर वह एक प्रेसबिटीरियन गिरजाघर की सभा में भाषण दे रहा था। श्रोताओं में उसी शहर के गँवठी व्यक्तियों में से चुने हुए कुछ धैर्यवान लोग थे और वे पुराने शराबी भी थे, जो अपने को सुधारने के इच्छुक थे। वहाँ यह विचारधारा प्रबल थी कि सुसंस्कृत लोग ऐसे लोगों से वास्ता नहीं रखें, जो अधार्मिकता या अधःपतन की ओर आकर्षित करते हों। लिंकन ने इसका विरोध किया। उसने कहा—"यदि वे यह विश्वास करते हैं—जैसा कि वे कहते हैं— कि सर्वशक्तिमान

प्रभु ने स्वयं निम्न व पतित व्यक्तियों में भी अपना स्वरूप प्रकट किया है, तो ऐसे व्यक्तियों की निंदनीय मृत्यु होने पर भी उन्हें अंत में मुक्ति प्रदान करने में उसे अस्वीकृति नहीं होगी। मेरी राय में हम लोग जो ऐसे दुर्व्यसनों से बचे हुए हैं, उसका कारण यह है कि हम में इस तरह की भूख नहीं जागी है। इसका अर्थ यह तो नहीं है कि जिन लोगों में ये व्यसन हैं, उनसे हम बुद्धि और चरित्र में सर्वोपरि हैं। सचमुच यदि देखा जाय, मसलन् शराबी वर्ग को ही लिया जाय, तो उनकी बुद्धि और हृदय की विशालता की दूसरे वर्गों से तुलना की जा सकती है।" कई दिनों के बाद में पता चला—जो अमरीका के लिये सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ—कि लिंकन जैसा पवित्र चरित्रवान व्यक्ति—जिसने कभी भी सुरापान या धूम्रपान तक नहीं किया—निम्न वर्ग के व्यक्तियों के विषय में इस तरह के विचार रखता था। परन्तु उस समय इस भाषण पर बहुत ही होहल्ला मचा। एक ने कहा, "यह शर्म की बात है कि उसे भगवान् के घर में हमें इस तरह बदनाम करने की अनुमति दी गयी।" यह मानी हुई बात है कि नवोदित राजनीतिज्ञ के रूप में लिंकन ने इस तरह की बातें कह कर नुकसान ही उठाया। परन्तु साथ ही उसने अपना परोपकारी सेवा-कार्य निरंतर जारी रखा, जो ईसाईयत की बड़ी-से-बड़ी भावना से किये गये कार्यों से कम नहीं था।

[३]

विवाह

लिंकन का निजी जीवन कई वर्षों तक एकाकी और सामाजिक विरोधाभासों के बीच से गुजरता रहा। उसके जीवन में सुख और शांति की झलक कभी नहीं दिखायी दी। उसके तरुण जीवन के अंतराल में प्रसन्नता की जो झलक शेष थी, वह किशोरावस्था की मस्ती की समाप्ति के साथ ही महत्वाकांक्षा के धूमिल हो जाने से फीकी पड़ गयी। कुछ दिनों के लिए जीवन भर की सँजोई महत्वाकांक्षा केवल दब ही नहीं गयी, वरन् उसकी पूर्ति भी उसे सन्देह-जनक लगने लगी। कुछ भी हो; लिंकन मौज शौक के लिये नहीं ढाला गया था। उसके परिजन भी कभी उसके जीवन में सुख की लहर पैदा नहीं कर सके जैसा कि घर की कलहपूर्ण स्थिति व निकटतम लोगों के स्नेहहीन वातावरण से हम अंदाज लगा सकते हैं। शादी के पूर्व लिंकन को एक ऐसा अनुभव हुआ, जिसने उसे सदा के लिये उदासी में डुबा दिया। जब उसने अपना किशोर

जीवन आरंभ किया तो महिला जगत् के प्रति उसका दृष्टिकोण गंभीर व संकोची था। महिला मात्र के वास्तविक सम्पर्क से वह घबरा जाता था। न्यू सालेम में वह सारे-सारे दिन भूखा रह जाता, जब कभी उसे यह पता चलता कि होटल में कोई महिला ठहरी हुई है। उसकी प्राकृतिक कुरूपता के साथ-साथ उसके वस्त्र और स्वभाव में एकाकीपन की झलक इस वातावरण को और भी गंभीर बना देती थी।

इतना होने पर भी लिंकन 'नारी के प्रेम के चक्कर' में भी पड़ा। केन्टकी के एक दूकानदार और सरायवाले की पुत्री कुमारी एन रुटलेज के लिए वह कहा जाता है कि वह अतीव रूपवती थी। १८३३ में लिंकन यहीं रहता था। भले ही कुछ लोग इस सुन्दरता के बखान को बढ़ाचढ़ा कर कहा गया बताते हैं, फिर भी वे यह स्वीकार करते हैं कि लड़की सचमुच में सुन्दर व आकर्षक थी। एक महिला जो उसे जानती थी, उसके बारे में निम्न जानकारी देती है। "कुमारी रुटलेज के सुनहले केश, नीले नयन और गोरा रंग था। वह सुन्दर थी, कुछ-कुछ दुबली, परंतु सभी मानों में सहृदय महिला। उसकी ऊँचाई पाँच फुट दो इंच थी और वज़न लगभग १२० पौंड था। जो भी उसके सम्पर्क में आये, उन्होंने उसकी सदा सराहना की।" उसकी मृत्यु शोक के कारण हुई। उसकी मृत्यु और जहाँ वह दफनाई गयी उसका जिक्र करते हुए लिंकन ने एक बार मुझे कहा, "यहाँ मेरा हृदय गड़ा हुआ है।......" कुमारी रुटलेज लिंकन के सम्पर्क में आने के पूर्व ऐसी घटनाओं से गुजर चुकी थी जिसके कारण उसके हृदय में शोक व्याप्त हो गया था। बेचारी लड़की का संबंध एक तरुण युवक से था, जो अचानक ही पूर्वी राज्यों में अपने घर चला गया। उसने लड़की को बताया कि वह वहाँ छद्म नाम से रह रहा था और अपने घर लौटने के जो कारण बताये, उससे रुटलेज को संतोष हो गया। परंतु उसकी सहेलियाँ यह सब मानने को तैयार नहीं थी। ऐसा लगता है कि उसे लौटने में बहुत विलम्ब हुआ और रुटलेज को भी एक लम्बे समय तक कहीं से भी उसके बारे में किसी तरह का समाचार इन दिनों नहीं मिला। जब बाद में उसके पत्र फिर आने लगे तो वह बड़ी दुविधा में पड़ गयी। बहुत दिनों तक वह उसका आसरा ताकती रही। परन्तु अंत में उसे सहेलियों की ही बात माननी पड़ी जिन्होंने ऐसे मामलों में गुजरनेवाली सन्देह-जनक घटनाओं का उसे हवाला दिया। कुछ सबूत ऐसे भी मिलते हैं कि उस युवक के हृदय में सच्चाई थी और उसे किसी मजबूरी की वजह से रुकना

पड़ा। परन्तु रुटलेज को इसकी जानकारी लिंकन से संबंध पक्का हो जाने के बाद मिली। लिंकन से संबंध पक्का होने के कुछ दिनों बाद ही वह बुरी तरह बीमार पड़ गयी। बीमारी के दिनों में लिंकन उसके पास ही रहता था और इससे रुटलेज को बहुत संतोष भी मिला। दो चार दिन में ही उसका देहान्त हो गया। कुछ लेखकों ने उपरोक्त कहानी की सत्यता के बारे में संदेह किया है। एन. रुटलेज के पुराने प्रेम की जो कहानी है, वह कपोलकल्पित है और अनिश्चित है। यह तथ्य सही है कि लिंकन का पहला संबंध पक्का होने के बाद शीघ्र ही उसकी प्रियतमा की मृत्यु हो गयी। यदि कोई सामान्य प्रेमी होता तो, इसका सदमा उसके दिल पर भयंकर होता। लिंकन ही अकेला ऐसा था जो इसे सह सका। हर्नडन की इस बात में बहुत कुछ सच्चाई है कि इसका लिंकन पर गहरा और चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। कोई संदेह नहीं कि लिंकन की जो शोकपूर्ण आकृति थी, वह इसके कारण और भी गहरी हो गयी। उसके मित्रों का कहना है कि यह प्रभाव उसपर इतना गहरा पड़ा कि वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। उसे सदा ही अच्छे मित्र मिले। जिनमेंसे एक श्री बोलीन ग्रीन भी थे। ये उसे ऐसी हालत में अपने एकान्त मकान में ले गये और ध्यान से उसकी सेवाशुश्रुषा करते रहे। उन्होंने कहा कि लिंकन इस विचारमात्र से ही गहरे शोक में डूब जाता था कि उसकी प्रेयसी की कब्र पर बर्फ या बरसात गिर रही होगी। दो वर्ष बाद लिंकन ने अपने एक धारा-सभाई मित्र को बताया, "लोग यह सोचते हैं, मैं जीवन का आनन्द उठा रहा हूँ, परन्तु सच्चाई यह है कि एकाकी होते ही मैं मानसिक पीड़ाओं से घिर जाता हूँ। उस समय मेरा साहस नहीं होता कि मैं अपने जेब में चाकू भी रख सकूँ।" बाद में जब उसके घनिष्ठ मित्र ग्रीन का देहान्त हुआ और उसकी समाधि पर शोकसूचक भाषण देने के लिये लिंकन खड़ा हुआ, तो वह अपने जीवन में पहली बार बुरी तरह से पस्त-हिम्मत हो गया। उसके पीले और झुर्रियों भरे गालों पर अविरल अश्रुधारा बह रही थी। उसने बार बार बोलने की कोशीश की पर वह एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सका। अंत में वह लड़खड़ा गया और सुबकियाँ भरता हुआ सिसकने लगा।"

ऐसा व्यक्ति, जिसे आरंभ में ही इस तरह के शोक में डूबना पड़े और जब कि वह शोक केवल गंभीर ही नहीं आंतरिक भी हो—यदि बिना इस प्रभाव से मुक्त हुए—पुनः प्रेम के चक्कर में पड़े, तो वह पागलपन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। कुमारी मेरी ओवेन्स लिंकन से उम्र में थोड़ी ही बड़ी थी।

सदा कृपा रही थी। इन श्रीमतीजी को यह चाहिये था कि वह इस पत्र को पढ़ कर जला देती, परन्तु उसने संभवतया यों ही मजाक बनाने या कभी बातचीत में जिक्र के लिए उस पत्र को सुरक्षित रख छोड़ा। लिंकन की मृत्यु के बाद इस पत्र को लेकर काफी चर्चा रही। इस पत्र में उसके प्रेमाभिनय का मजाकिया वर्णन भरा पड़ा है जो अरुचिकर है। उसमें लिंकन ने बताया कि न्यू सालेम में जब मेरी ओवेन वापिस आई, तो लिंकन को उसकी तरुणाई के आकर्षण के बारे में जो भ्रम थे वे समाप्त हो गये, और अपने भौंचक्केपन की अच्छी खासी मजाक बनाते हुए लिंकन ने लिखा कि उसके द्वारा ठुकरा दिये जाने पर उसे कैसा शोक व हार्दिक संताप पैदा हुआ। हम इसे उसके व्यक्तिगत निजी जीवन-संबंधी छोटे-मोटे मामले की तरह यहीं छोड़ते हैं। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि इन मामलों में उस व्यक्ति के दर्शन होते हैं, जो भले ही इस तरह मजाक बनाकर छुटकारा पा जाय परन्तु शादी-विवाह के नाम से ही उसमें अजीब-सी करुणाजनक मानसिक संताप की हालत पैदा हो जाती थी।

यह १८३८ की बात थी और एक वर्ष बाद ही केन्टकी से मेरी टोड स्प्रिंगफील्ड आकर रहने लगी थी, अपने जीजा निनियन एडवर्ड के साथ जो इल्लीनॉयस में धारासभा का सदस्य था और लिंकन का निकटतम मित्र भी। उसकी उम्र २१ वर्ष की थी और वज़न १३० पौंड था। वह अच्छी पढ़ी-लिखी और प्रतिष्ठित परिवार की लड़की थी। मेलजोल निभाने में वह चतुर थी। जरा रोबीली और कुछ अधिक बातूनी भी थी। एडवर्ड के यहाँ आमन्त्रित किये जाने पर जो तरुण आकर्षित होने लगे थे, उनमें लिंकन भी था। "वह आकर बैठ गया और अजीब ढंग से कुमारी टोड को टकटकी लगा कर देखने लगा। श्रीमती एडवर्ड ने शायद दो तीन-बार कहा बताते हैं कि यह आदमी टोड के उपयुक्त नहीं जँचता है।" परन्तु कुछ भी हो, बातचीत पक्की हो गई। उसके बाद क्या हुआ, यह लंबी-चौड़ी बात है। पहले उसके या कुमारी टोड के दिमाग में शंका हुई या जैसा कुछ लोग कहते हैं कि स्टीफ़न डगलस टोड में रुचि लेने लगा, परन्तु बहुत दिनों बाद जाकर उसने अपना इरादा बदला। ये सब अनिश्चित व अस्पष्ट हैं। परन्तु यह सत्य है कि एक दिन लिंकन ने टोड से संबंध तोड़ने के लिये पत्र लिखकर अपने अंतरंग मित्र जोशुआ स्पीड को बताया, जिसने उसे सलाह दी कि यदि आदमी की तरह वह हिम्मत रखता है तो मेरी टोड के आमने-सामने जाकर सारी बातें साफ़-साफ़ कह दे। उसने वही किया। "वह खूब रोयी। लिंकन ने

उसका चुंबन लिया और उसे दिलासा भी दिया।" स्पीड का कहना है कि लिंकन ने इस तरह अपने इस संबंध को और भी मजबूत बना लिया। १ जनवरी १८४१ को शादी की तैयारी दोनों पक्ष से की गयी, और जब लिंकन की तलाश की गयी, तो वे अस्तव्यस्त, मानसिक संतुलन खोये हुए विक्षिप्त हालत में भटकते हुए मिले। इस हालत में रातदिन उसकी निगरानी करनी पड़ती थी और चाकू या हथियार उससे दूर रखे जाते थे। यह बात कहाँ तक सही है, नहीं कह सकते; परन्तु इतना सही है कि लिंकन ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि १ जनवरी १८४१ को उसकी मानसिक स्थिति बहुत बिगड़ गई थी। कुछ सप्ताह बाद उसने अपने भागीदार को एक पत्र में लिखा, "मैं नहीं कह सकता कि कभी मेरी हालत में सुधार भी होगा या नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि मैं सम्हल नहीं सकूँगा। जिस हालत में मैं हूँ उसमें जीवित रहना असंभव है। या तो मुझे मर जाना चाहिये या ठीक हो जाना चाहिये। मुझे इस समय भी यही महसूस होता है।" कुछ समय बाद स्पीड उसे केन्टकी स्थित अपने घर लाने में सफल हुआ, जहाँ उसने और उसकी माँ ने लिंकन को सम्हाला, जिससे उसकी सोचने-समझने की शक्ति फिरसे पहले जैसी लौट आयी।

१८४१ में स्पीड स्वयं अपना विवाह रचाने की उधेड़बुन में लग गया और उसे भी नये तरुण प्रेमी की तरह ऐसी ही शोकसंतप्त हार्दिक आदान-प्रदान की क्रियाओं में से गुजरना पड़ा। उसने लिंकन से कुछ नहीं छिपाया। इस अवसर पर लिंकन ने दृढ़तापूर्वक अपने मित्र के मामले में वह ज्ञान दर्शाया जिसकी उसके अपने मामले में सदा ही कमी रही। उसने स्पीड को लिखा, "मैं जानता हूँ कि तुम्हारा दर्द किस स्थान पर है। यह केवल तुम्हारा भ्रम मात्र है; तुम यह सोचते हो कि जिससे तुम्हारा प्रेम है, उसे तुम पूरा-पूरा प्रेम नहीं कर पा रहे हो यह कैसी अजीब बात है! यदि यह बात नहीं होती तो वह तुमसे विवाह के लिये कैसे राजी हो सकी। जब तुम खुद ही यह स्वीकार करते हो कि तुमने यह सब जानबूझ कर किया है। इससे तुम्हारा क्या मतलब है? इसका तो अर्थ यही हुआ कि तुम स्वयं इससे छुटकारा पाने का कारण नहीं पा सके और जब पहली बार तुमने उसे देखा, प्रेम किया—उस समय किस कारण से यह किया था पहले नहीं सोचा था क्या कि तुम उससे विवाह के लिये ही प्रेम कर रहे हो?" कुछ दिनों बाद स्पीड की हृदयसम्राज्ञी बीमार हो गयी। लिंकन ने स्पीड को लिखा, "मैं आशा करता हूँ और मुझे विश्वास है कि तुम्हारी प्रियतमा के स्वास्थ्य के बारे में जो चिंता तुम्हारे हृदय को अशांत किये हुए है, वह और

अन्य भयावने संदेह, जो तुम्हारे मन में हैं, वे समाप्त हो जाने चाहिये—ये संदेह मैं जानता हूँ कि उसके प्रति अगाध आकर्षण के कारण तुम्हारे हृदय में छाये हुए हैं......... कदाचित् तुम्हारे सामने ऐसा सवाल नहीं भी हो, और मेरे द्वारा इसे उठाने के कारण तुम्हारी भावनाओं को ठेस भी लगी होगी। यदि ऐसा है, तो मुझे क्षमा कर देना। तुम स्वयं जानते हो कि इस मामले में मेरे पर क्या नहीं गुजरी और मैं इस पर कितना संवेदनशील हो जाता हूँ।" इस पत्र को देखने से पता चलता है कि लिंकन अपनी विक्षिप्त स्थिति से छुटकारा पा चुका था। परन्तु वह अपनी उस स्थिति की याद आते ही स्पीड के लिये चिन्तित हो उठा था। विवाह के पूर्व उसने लिखा, "अब तुम ऐसे क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हो, जिसपर मैं कभी काबू नहीं पा सका, फलस्वरूप यदि किसी तरह की सलाह की आवश्यकता पड़ी, तो मैं इसके अयोग्य हूँ। फिर भी मेरी हार्दिक अभिलाषा यह है कि तुम्हारे निजी जीवन में बाहरी सलाह व समझौते की आवश्यकता नहीं पड़े। मैं कभी-कभी इस तरह सोचने लगता हूँ कि शायद कुछ समय के लिये कहीं तुम्हारी भी मानसिक शक्ति जवाब न दे बैठे। यदि तुम दृढ़ता से जमे रहे, तो सदा के लिये खतरा टल जायेगा। यदि तुमने विवाह की रस्म शांति से अदा की अथवा किसी भेंट को देख कर उत्तेजना नहीं दर्शायी तो तुम पूर्ण सुरक्षित माने जा सकते हो, और दो या तीन महीनों में—मैं अधिक-से-अधिक यही कामना कर सकता हूँ कि—सबसे सुखी मनुष्य बन जाओगे।" परन्तु उसे इस बारे में पुनः विश्वास दिलाया गया और बताया गया कि उन दोनों को देख कर उसे ईर्ष्या होती है। "तुम दोनों एक दूसरे में इतने खो जाओगे कि मेरा ध्यान तुम्हें जरा भी नहीं रहेगा। मैं तुम्हारे बिना अपने को अधिक एकाकी महसूस करने लगूँगा।" कुछ दिनों बाद लिंकन ने लिखा, "तुम्हें यह कहते हुए सुनकर कि जितनी तुम्हें आशा थी, उससे अधिक तुम पा गये हो, मैं आनन्द के अतिरेक से रोमांचित हो उठता हूँ। यह पूरी तरह व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे स्वप्न कितनी उडान-भरे थे और यदि वास्तविकता उससे भी बढ़ कर है तो उस भगवान् को धन्यवाद है।" इसके बाद वही हुआ जिसकी पहले से ही संभावना थी। "१ जनवरी १८४१ के दुर्भाग्यपूर्ण दिवस से लेकर आज तक तुमने मुझे जितने भी पत्र लिखे, उन सबको मिला कर भी मुझे इतनी खुशी नहीं हुई जितनी तुम्हारे इस अन्तिम पत्र को पाकर हुई। मैं भी पूर्णतया सुखी रह सकता हूँ, परन्तु रह-रह कर यह विचार मुझे दुःखी करता रहता है कि एक और भी व्यक्ति

सुखी नहीं है और उसका कारण मैं हूँ। यह सदा रह रह कर मेरी आत्मा को कचोटता है। मैं अपनी ही आत्मा को कोसता रहता हूँ और कर भी क्या सकता हूँ, जब मुझे यह ज्ञात होता है कि तुम सुखी नहीं हो।" उसने अपने मित्रों से कई बार खुद चलाकर पूछा कि उसे जेक्सनविले की रेलयात्रा में आनन्द आया था नहीं और तब उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया, जब यह पता चला कि उसने वहाँ पूर्ण आनन्द प्राप्त किया।

यह १८४२ के हेमन्त ऋतु की बात थी। कोई तीन महीने बाद उसने स्पीड को लिखा, "मुझे अपनी योग्यता में यह विश्वास क़ायम करना ही होगा कि जो भी निर्णय मैंने लिये हैं, मैं उन पर क़ायम रहूँगा। इस योग्यता को लेकर मैंने एक बार अपने-आप को गौरवशाली माना कि मेरा चरित्र रत्न के समान उज्ज्वल है। इस रत्न को मैंने कहाँ और कैसे खोया, इसे तुम अच्छी तरह जानते हो। मैं उसे फिरसे आज तक भी नहीं पा सका हूँ और जबतक मैं यह गुण नहीं पा लूँगा, मैं महत्वपूर्ण मामलों में हाथ डालते हुए भी अपने-आप पर विश्वास नहीं कर सकता। मुझे अब यह विश्वास हो चला है कि यदि उस समय तुम मामले को समझ सकते—जैसा कि बाद में मैंने तुम्हारे मामले को समझा था—और मुझे मदद करते, तो मैं भी पार हो सकता था।......। मैं सदा ही से अन्धविश्वासी था। मेरा विश्वास है कि भगवान् ने मुझे तुम्हारे और फ़ैनी के सुखी जीवन को सँजोने के लिये बनाया है और तुम्हारा यह गठजोड़ा विधाता ने पहले से ही रच डाला था। मेरे लिये जैसा भी प्रारब्ध उसने रचा है, वह होकर रहेगा। आजकल मेरा सिद्धान्त यही है कि शांत खड़े रहो और ईश्वर का चमत्कार देखते जाओ। जैसा कि तुम कहते हो कि फ़ैनी को तुमने मेरी सारी बातें बता डाली हैं, यदि तुम मेरा यह पत्र भी उसे दिखाओ तो मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है।" इसी वर्ष के अंत में लिंकन अपने मित्र से एक ऐसा अजीब और साहसिक सवाल कर बैठता है जो शायद ही कभी कोई व्यक्ति—कितना ही अंतरंग क्यों न हो—अपने मित्र से पूछने की हिम्मत नहीं कर सकता है। "सितंबर से लेकर फरवरी के मध्य तक (जिस दिन तुम्हारा विवाह हुआ) तुम्हारे हृदय पर जो कुछ भी बीता, वह तुमने मुझसे कभी नहीं छिपाया, और मैं इस बात को अच्छी तरह समझता भी हूँ। अब तुम एक प्रियतमा पत्नी के पति बन चुके हो। तुम्हारे दाम्पत्य जीवन के आठ महीने भी गुजर चुके हैं। तुमने जिस दिन से उससे विवाह किया है अधिक सुखी हो। परन्तु मैं एक गंभीर प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या तुम अपनी भावनाओं और इस निर्णय से

प्रसन्न हो कि तुम्हारी शादी तुम्हारे अनुकूल हुई है? मुझे छोड़कर दूसरे किसी भी व्यक्ति के लिए यह बेवकूफी-भरा सवाल है, जिसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु मैं जानता हूँ कि तुम मुझे इसके लिये क्षमा कर दोगे। कृपया इसका शीघ्र ही उत्तर देना; क्योंकि मैं इसको जानने के लिये उत्सुक हूँ।"

स्पीड केन्टकी में ही टिका रहा। लिंकन के पास इतना पैसा नहीं था कि वह सुखप्रद यात्राएँ कर सकें, और स्पीड ऐसा व्यक्ति था जिसे राजनीतिक जीवन की चिंता नहीं थी। परन्तु उसके स्मृतिग्रन्थ में, जिसमें से ये उद्धरण लिये गये हैं, लिंकन की स्पीड के साथ अंत तक मित्रता रही। उसकी माँ और दयालु पत्नी—जिसने पति के मित्र को अपना बना लिया—उसे सदा प्यार करते रहे। स्पीड द्वारा लिखे गये लिंकन के एक पत्र में, जब वह बंद कर रहा था, फ़ैनी का फूल गिर गया जिसे लिंकन ने सँजोकर रखते हुए उसे अन्य फूलों से सर्वोत्तम बताया। इस घटना से लिंकन के मन की गहराइयों का कोना-कोना प्रकाशित होता है कि उसका मानस कितना संवेदनशील था!

जैसा कि पहले से ही अनुमान था, मेरी टोड और लिंकन पुनः एक दूसरे के संपर्क में आये। एक महिला ने इनमें दोस्ती करने का काम किया, परंतु ऐसा लगता है कि लिंकन द्वारा यह इच्छा जाहिर कराने पर ही भेंट संभव हो सकी। इस समय वह अपने कानूनी धन्धे में बहुत अधिक व्यस्त था; क्योंकि पिछले मानसिक संताप के कारण वह इस ओर पूरा ध्यान नहीं दे सका था। इन्हीं दिनों उसने सहनशीलता-संबंधी अपना प्रसिद्ध भाषण दिया। मेरी टोड के संपर्क में आने के बाद वह शीघ्र ही एक दूसरे ही तरह के राजनीतिक बखेड़े में पड़ गया। ऐसा लगता है कि उसने इस महिला के मनबहलाव के लिए करों के मसले पर कुछ राजनीतिक तानाकशी लिख डाली। इसपर उसे अचानक ही एक उग्र स्वभाववाले सरकारी अधिकारी की चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। उक्त अधिकारी कर्नल शिल्ड डेमोक्रेटिक दल का सदस्य था। लिंकन को चुनौती दी गयी थी, अतएव इस संघर्ष की शर्तें भी उसने ही तय कीं। वे साधारण तथा मजाकिया थीं। फिरभी उसने इतना ध्यान रखा कि उस प्रतिद्वन्द्वी को बिना किसी तरह की क्षति पहुँचाये ही हराया जा सके। इस पेचीदगी में अब कोई सार नहीं है कि किसकी भूल से और कैसे यह संघर्ष हुआ; जैसे-तैसे मामला निबट गया था। परंतु इस प्रतिष्ठाहीन बखेड़े से लिंकन को बहुत झुँझलाहट हुई और उसे परेशान होना पड़ा। यह ऐसे दिन थे, जब वह पुनः अपनी खोयी खुशी प्राप्त करना चाहता था। अंत में चार

नवम्बर १८४२ को जब लिंकन लगभग तैंतीस वर्ष का था, उसकी शादी निर्विघ्न संपन्न हो गयी। शादी घर पर ही हुई तथा समारोहपूर्वक की गयी और उसमें प्रतिष्ठित लोगों ने भाग लिया। अंतिम क्षण में उसका ईर्ष्याजनित भाग्य एक सुखदायी घटना में परिवर्तित हो गया। उस समय विवाह पद्धति के लिए पादरी ने कानूनी भाषावाली अमरीकी प्रार्थना-पुस्तक पढ़ते हुए लिंकन से कहलवाया, "इस अंगूठी के साथ ही मैं अपनी सारी संपत्ति, चीजें, भूमि और मकान, आदि सब तुझे सौंपता हूँ।" तब इल्लिनॉयस सुप्रीम कोर्ट के वृद्ध न्यायाधीश जिन्होंने इसके पूर्व इस तरह की विधिवत् शादी नहीं देखी थी, उत्कंठा से बीच में ही बोल उठे, "हे भगवान्! लिंकन! कानून पहले से ही सबकुछ तय किये दे रहा है।"

इस विषय को कुछ अधिक विस्तार से कहना पड़ा, इसके कई कारण भी हैं। लिंकन के वैवाहिक जीवन के बारे में ऐसी कोई बात नहीं है, जो उल्लेखनीय हो। पहले से ही इस विषय में बहुत-कुछ अन्यत्र कहा जा चुका है, परन्तु उससे विषय की गहराई में नहीं पहुँचा जा सकता है और न उसे केवल गप्पें समझ कर टाला भी जा सकता है। श्रीमती लिंकन का स्वभाव उग्र था। इसके लिए उस बेचारी को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। जब से उसके पूर्व पति की हत्या उसकी बगल में ही कर डाली गयी, वह पागलपन की सीमा पर पहुँच गयी थी। इस मामले में क्या सही है और क्या नहीं, हमें जानकारी अधिक नहीं है। वह अपने पति से उम्र में बहुत छोटी थी और लिंकन के कारण उसे कई कटु अनुभव भी प्राप्त करने पड़े। वह स्वयं महत्वाकांक्षिणी तथा सामाजिक सौजन्यता के वातावरण में पली हुई थी। उसके पति की बाहरी कठोरता ने उसमें कड़ुवाहट पैदा कर दी, फिर भी वह लिंकन जैसे पति को पाकर गर्व महसूस किया करती थी। श्रीमतीजी और दर्जी दोनों मिल कर खूब पैसा खर्च करने के बाद भी लिंकन को सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित करने में असमर्थ रहे। उन्होंने एक नौकर भी रखा था। एक बार दो सभ्य महिलाओं के आने पर लिंकन मित्रता प्रदर्शित करने के नाते कमीज पहने खुद ही दरवाजा खोलने चला गया। ऐसे ही मौकों पर अथवा इससे कम उत्तेजक मामलों को लेकर सदा ही श्रीमतीजी का मिजाज गर्म हो उठता था। यह निश्चित सा लगता है कि लिंकन उससे केवल व्यवहार के नाते, उदास वातावरण में संघर्ष की स्थिति को टालते हुए मिला करता था। उसके साथी वकीलों ने भी यह महसूस किया कि काम नहीं रहने पर वे लोग एक-दो दिन के लिए अपने घर

जाकर मौज करते थे, परन्तु लिंकन घर से दूर रहना पसन्द करता था। विवाह के पन्द्रह वर्ष बाद उसने अपने इन दुःखों को प्रकट किया, वह भी पत्नी को लांछित करने के लिहाज से नहीं। बात यह हुई कि एक व्यक्ति श्रीमती लिंकन के व्यवहार से काफी क्षोभित हुए, उन्हें केवल संतोष प्रदान करने के लिये लिंकन ने अपना दृष्टान्त दिया। इस तरह के कुछ-कुछ संकेत भी मिलते हैं कि कष्ट और पीड़ा-भरे वातावरण ने उसका मृत्यु के दिनों तक पीछा नहीं छोड़ा। ठीक इसके विपरीत अपने बच्चों के प्रति यह दम्पति असीम स्नेह प्रदर्शन से सुखी होते थे। ऐसा कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता, जो यह बताता हो कि मियाँ-बीबी में कभी गंभीर झगड़ा या उस सीमा तक पहुँचने की नौबत ही आयी हो। जो कुछ इस दिशा में हमें बताया गया है, हो सकता है कि सभी सत्य हो; परन्तु मित्रों ने उसकी स्थिति पर जो करुणा दर्शायी है, वह संगत नहीं ठहरायी जा सकती। संभवतया श्रीमती लिंकन अपने पति के व्यवसाय में भागीदार और उसके आत्मचरित्र के लेखक हर्नडन को पसन्द नहीं करती थीं–जिसने लिंकन के चरित्र के बारे में तथा उससे प्रभावित होने से सम्बन्धित घटनाओं के संकलन में कड़ा परिश्रम किया। दूसरी ओर हर्नडन ने स्पष्ट लिखा है कि कुछ मामलों में श्रीमती लिंकन अपने पति के दृष्टिकोण में आदर्श पत्नी थी। उसने साहस और दृढ़ता के साथ गरीबी का मुकाबला किया। दूसरे कई क्षेत्रों से भी यह जानकारी मिलती है कि वह अतिथि-सत्कार में कोई कसर नहीं छोड़ती थी। इससे भी बढ़ कर यह बात थी कि वह विवाह के प्रथम दिन से ही अपने पति की योग्यता में पूरा विश्वास रखने लगी। ऐसा लगता है कि वह यह भी जानती थी—जो कि दूसरे लोग बहुत कम समझ पाये थे—कि लिंकन अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी डगलस से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा था। हर्नडन को यह विश्वास हो चला था कि वह और श्रीमती लिंकन ही दो ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने लिंकन का निकट से अध्ययन किया है। श्रीमती लिंकन अपने पति की महत्वाकांक्षा को बहुत महत्व देती थी और उसे बनाये रखती थी। इसके अतिरिक्त उसके निजी जीवन में उपस्थित पशोपेश के समय उसने साहस के साथ आगे आकर लिंकन को एक शानदार सरकारी नौकरी स्वीकार करने से मना कर दिया। यदि लिंकन उसे स्वीकार कर लेता, तो उसका राजनीतिक जीवन ही चौपट हो जाता। सच्चाई के साथ इस बारे में जो कड़ी-से-कड़ी बात कही जाती है वह यह है कि लिंकन ने महसूस किया कि "विवाह एक संघर्ष क्षेत्र है, फूलों की सेज नहीं।" ऐसा संघर्ष-क्षेत्र जिसमें

हमें यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि उसने अपना कर्त्तव्य पूरी तरह नहीं निभाया।

लिंकन की महिला समाज के प्रति अगाध श्रद्धा थी; उसने उन्हें मताधिकार दिलाने के लिए संघर्ष भी किया। परन्तु जहाँ किसी एक विशिष्ट महिला को सुख पहुँचाने का सवाल है, लिंकन इसमें असफल रहा। कदाचित् हम यह कहने में सही ठहरेंगे कि इस तरह का विरोधाभास उसके जीवन में मृत्युपर्यन्त रहा। यह कहा जा सकता है कि लिंकन का झुकाव सदा ही नकारात्मक पक्ष की ओर रहा। हम उसकी तात्कालिक व अत्यधिक शक्ति के बारे में सुनते हैं, परन्तु वह तभी प्रकट होती थी जब कि मामला सत्य हो अथवा आवश्यक ही हो। जहाँ वह अपना निर्णय निर्धारित कर लेता, उस पर पूर्णतया स्वतंत्रता और दृढ़ता के साथ टिका रहता था। जहाँ उसे किसी बात पर और भी अधिक प्रकाश की जरूरत होती, शांति के साथ घटनाचक्र के परिवर्तन की बाट देखता या अपने मित्रों से सलाह लिया करता था। मानवीय निर्णय करने की शक्ति का उसमें सरलता से उदय नहीं हुआ था। कुमारी ओवेन्स से संपर्क पुनः साधने के लिए तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता पड़ी। इस संबंध के बारे में भी उसने महिला के निर्णय पर ही सारी बात छोड़ी और उसने अपने निर्णय को दोनों के लिए उचित नहीं माना। स्पीड को उससे कहना पड़ा कि वह कुमारी टोड के सामने जाकर बात करे और बाद में स्पीड को ही यह स्पष्ट समझाना पड़ा कि उसके द्वारा बात करने का क्या प्रभाव पड़ा है। यह निर्णय उसे ही करना पड़ा कि वह किन भावनाओं में बह रहा है, परन्तु यह भी उसमें स्पीड द्वारा प्रोत्साहित करने के स्वरूप पैदा हुई। अंत में ऐसा लगता है कि वह अपने विवाहित जीवन की तकलीफों को शांतिपूर्वक टालता रहा। उपरोक्त बातें लिंकन के उस जीवन का अंग हैं, जिसके कारण उसके मस्तिष्क पर गहरे आघात पहुँचे। परन्तु ये इस दिशा में—उसकी संभावित कमजोरी के साथ ही—दूसरी दिशा में उसकी शक्ति की ओर भी इशारा करते हैं। उसने ऐसे ही मायाजाल का संकेत स्पीड को लिखे एक पत्र में दर्शाया। उसने लिखा, "मुझे जरा भी संदेह नहीं है कि मेरे और तुम्हारे विलक्षण दुर्भाग्य का कारण यह है कि हम ऐसे सपने देखते हैं, जो पृथ्वी पर साकार नहीं हो सकते।" ऐसे सभी व्यक्तियों को जीवन के अथाह सागर से गुजरना पड़ता है और इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें अंत में सफलता या सुख मिल ही जाय। लिंकन के जीवन की कसौटी भी शायद यही थी। वाशिंगटन के लिए किपलिंग द्वारा लिखी गयी ये पंक्तियाँ लिंकन पर भी

लागू होती हैं। "यदि तुम स्वप्न देख सकते हो—देखो! कहीं स्वप्न में मत खोना।" यदि तुम स्वयं सोच सकते हो, सोचो! कहीं विचारों में न खोना।" उसने यह साबित कर दिया कि वह ऐसा कर सकता है। अगले अध्यायों में हम देखेंगे कि उसने कितने बड़े पैमाने पर ऐसा किया। इसी दौरान में लिंकन के बारे में एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। लिंकन द्वारा स्पीड को लिखे गये पत्रों की यदि कोई कड़े-से-कड़ा परीक्षक भी सावधानी से जाँच करेगा, तो वह यह बात स्वीकार करेगा कि भले ही वह व्यक्ति कितनी ही भूलें करे; बुनियादी तौर पर वह विश्वास का पात्र था। सचाई यह है कि यही उसके जीवन का लक्ष्य था। स्पीड और दूसरे व्यक्ति, जो भी उसके सम्पर्क में आये, उन्होंने उसे सामयिक घटनाओं से आँका और महसूस किया कि जिस मामले में उसने सच्चाई पेश की उसे पूर्णरूपेण ग्राह्य बना दिया। भले ही यह प्रश्न उसके व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक मसले से क्यों न संबंधित रहा हो, और यदि कहीं कोई सफाई उसने पेश नहीं की है, तो निश्चित ही उसका खास मकसद वही था।

चौथा अध्याय

काँग्रेस में लिंकन और उसका अवकाशकाल

[१]

मेक्सिको-युद्ध और लिंकन का काँग्रेस में कार्य

लिंकन ने अपने विवाह के पूर्व ही इल्लीनॉयस धारासभा में भाग लेना छोड़ दिया था। उसने अपनी महत्वाकांक्षा की दिशा में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। कानूनी व्यवसाय में उसका एक भूतपूर्व भागीदार काँग्रेस का सदस्य बन गया था और वह भी उसका अनुकरण करने की सोच रहा था। परन्तु इसमें उसे कुछ वर्षों का विलम्ब सहन करना पड़ा। इसके भी अजीब कारण थे और यह बड़ी गौरवपूर्ण कहानी है। उसके निर्वाचन क्षेत्र से इसके लिए दो प्रतिद्वन्द्वी 'विग' दली बेकर और हार्डिन थे। इन दोनों ने बाद में मेक्सिको युद्ध में शानदार भाग लिया। लिंकन का दोनों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार था। उसके निर्वाचन क्षेत्र में १८४३ में 'विग' दल की एक बैठक में, लिंकन के बजाय बेकर को पसन्द किया गया। लिंकन को इससे कुछ अरुचि हो गयी। उसका एक पत्र बताता है कि कई गिरजाघरों के प्रतिनिधियों ने शरारतपूर्वक कैसे यह जोड़तोड़ लिंकन के विरुद्ध बिठायी। साथ ही इसमें सतर्कतापूर्वक यह भी उल्लेख किया गया कि ये प्रतिनिधि कितने शक्तिशाली थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि लिंकन स्वयं भी स्वीकार करता है कि बेकर को इस सारी जोड़तोड़ का पता ही नहीं था। स्थिति को और भी कटु बनाने के लिए यह किया गया कि उसे इस बैठक द्वारा दल के अधिवेशन में भेजा गया, जहाँ सारे निर्वाचन-क्षेत्र से प्रतिनिधि नामजद होते थे। वहाँ उसका काम केवल बेकर के लिए नामजदगी प्रस्तुत करने का रह गया था। बैठक में यह स्पष्ट झलकने लगा कि हार्डिन चुन लिया जायेगा, उस हालत में बेकर के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता था। परन्तु लिंकन ने—अपनी इच्छा बेकर के हितों के विरुद्ध होने के कारण—बेकर के दावे को

रखते समय सौदेबाजी में उतरना पसन्द किया और इस तरह दो वर्ष के बाद कॉंग्रेस में जाने के लिए स्वयं हार्डिन का उत्तराधिकारी बन गया। उस समय के दल की व्यवस्था-संबंधी जितने भी पत्र हैं, वे यह बताते हैं कि भले ही लिंकन अपनी महत्वाकांक्षा के प्रति पूर्ण सजग रहा हो, उसने ऐसे रुचिहीन मामलों में कभी भी किसी तरह का उत्साह नहीं दिखाया। दूसरी ओर उसने धारासभा का प्रतिनिधि बनना स्थगित कर दिया और अपने कानूनी व्यवसाय की ओर ध्यान दिया। १८४७ में जाकर उसने कहीं दो वर्ष के अल्पकाल के लिए ही वाशिंगटन में कॉंग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर ली। उस महासभा के मामलों को पूरी तरह समझने के लिए दो अधिवेशनों की अवधि बहुत थोड़ी होती है। उसने शायद ही कहीं अपना प्रभाव दिखाया। संभवतया उसने वहाँ की गतिविधि का अधिक अध्ययन किया और फुर्सत के समय में अपने साथी राजनीतिज्ञों के चरित्र-विश्लेषण में समय काटता रहा। उसे फिर भी कई बड़े-बड़े लोगों से प्रोत्साहन मिला, और उसने वहाँ अपने गँवठी पश्चिमी प्रदेश का अत्यंत हृदयग्राही, ईमानदार और सरल आदर्श प्रस्तुत किया। अन्य तरुण कॉंग्रेस सदस्यों की तरह उसे भी वेबस्टर के सहभोजों में भाग लेने का अवसर मिला। कॉंग्रेस में इस अल्पकालीन कार्यकाल से उसे काफी असंतोष हुआ और निश्चय ही उसके निर्वाचन-क्षेत्र के लोग इससे बहुत असंतुष्ट हो गये होंगे। उसने वहाँ जो भाग लिया उससे हम प्रभावित हो सकते हैं; परंतु निर्वाचन क्षेत्रवाले नहीं हो सकते थे। परन्तु यह भी बहुत ही थोड़े समय के लिए हुआ और इसके लिए भी ऐतिहासिक विश्लेषण की आवश्यकता है।

१८२६ में मेक्सिको स्पेन से अलग हो गया और १८३३ में टेक्सास का प्रदेश मेक्सिको से अलग हो गया। टेक्सास में अधिकतर उन लोगों की आबादी थी, जो अमरीका से वहाँ जाकर बसे। इन लोगों की अपनी कुछ शिकायतें भी थीं। इनमें से एक यह थी कि मेक्सिको ने दास-प्रथा समाप्त कर दी थी, परन्तु वहाँ अव्यवस्था भरी पड़ी थी और विद्रोह की क्रूरतापूर्ण घटना घटी, जिसमें अलामाँ में, विद्रोहियों का कत्ले-आम अमरीकी इतिहास में सदा छाया रहेगा। टेक्सास रिपब्लिक ने १८४५ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका में विलय होना चाहा, परन्तु अमरीकी राज्यों ने इसका विरोध किया और इस मामले में मेक्सिको और अन्य राज्यों के कारण कुछ पेचीदगी भी थी। अंत में १८४५ में राष्ट्रपति टेलर ने विलय के मसले को अपने 'व्हिग' दली सदस्यों के विरोध के बावजूद भी आगे बढ़ा दिया। मेक्सिको ने कूटनीतिक संबंध

विच्छेद कर लिये। यदि नये राष्ट्रपति पोल्क और उसके सहयोगी दक्षिणी राज्यों के नेता चाहते, तो शांति बनायी रखी जा सकती थी। इन लोगों ने अपनी दृष्टि मेक्सिको की बची-खुची भूमि केलिफोर्निया और पूर्वी प्रदेश को हड़पने के लिए जमायी थी। उस समय इस मसले पर बहस नहीं हुई और नहीं की जा सकती थी। दक्षिणी राज्यों का यह इरादा था कि मेक्सिको के विशाल उपजाऊ भूभागों में गुलामों से खेती करवाकर लाभ उठाया जाय। परन्तु इन लोगों को अपने इस षड्यंत्र को उत्तर में जनप्रिय बनाने में कोई कठिनाई नहीं आयी। उस समय बस इतना ही कहना पर्याप्त था कि हमारा महान लक्ष्य अमरीका को प्रशान्तसागर तट तक पहुँचाने का है। बस यही नारा उनमें शराब का-सा उन्माद पैदा करने के लिए काफी था। परन्तु यह देखने में कितना सरल लगता है कि उत्तरवाले इससे प्रभावित हो गये। सही बात तो यह है कि ये लोग भी उत्तर-पश्चिम में अपना विस्तार करना चाहते थे। ये लोग पोल्क से इस लिए भी संतुष्ट नहीं थे कि उसने १८४६ में ब्रिटेन से समझौता करके अमरीका की सीमा आरेगन सीमा प्रदेश तक तय रखी।

पोल्क ने जब यह समझौता स्वीकार किया तब तक वह खुद युद्ध छेड़ चुका था। उस समय युद्ध-निर्णय के समाचार 'बिगलो पेपर्स' में प्रकाशित हुए तो किसीने सवाल नहीं उठाया। परन्तु यह एक ऐसा युद्ध था, जिसे सैनिकों ने निंदनीय ठहराया। इसकी कड़ी आलोचना करनेवालों में ग्रान्ट भी था, जो इस युद्ध में बड़ी बहादुरी से लड़ा भी। इस युद्ध के तथ्य ठीक वहीं है जिन्हें बाद में लिंकन ने काँग्रेस में दुहराया। अमरीका ने टेक्सास प्रदेश की सीमा के लिए रियो ग्रान्ड पर अधिकार बताया। मानचित्र को देखते हुए यह उचित भी प्रतीत होता है। टेक्सास में जो अमरीकी बसे हैं उनका भूभाग न्यूसेस नदी तक फैला हुआ था, जो रियो ग्रान्ड के पूर्व में है। इस प्रदेश में जनसंख्या छितरी हुई थी, घनी नहीं। वहाँ पानी भी अधिक नहीं था, ऐसी हालत में सीमा-निर्धारण के लिये लक्ष्य कोई नदी न होकर बस्तीवालों की सुविधा के अनुसार ही होना चाहिए था जिससे उन्हें पानी भी प्राप्त हो सके। यह सीमा दोनों नदियों के पानी को विभाजित करनेवाला क्षेत्र हो सकता था। परन्तु मेक्सिको ने रियो ग्रान्ड नदी के दोनों तटों पर दावा पेश किया जिसके दोनों ओर स्पेनवासी बसे हुए थे। राष्ट्रपति पोल्क ने जनरल टेलर को आदेश दिया कि वह बिना किसी तरह का हीलाहवाला किये सेना लेकर रियो-ग्रान्ड पहुँच जाये और वहाँ जाकर मेक्सिको के डटे हुए सैनिकों से आमने-सामने

मोर्चाबंदी कर ले। मेक्सिको सेनापति ने अपनी सेना की यह स्थिति देख आक्रमण करने का आदेश दिया। इस तरह मेक्सिको द्वारा युद्ध आरंभ हुआ। पोल्क इस बहाने से कि उसे अपना कर्तव्य पूरा करना है, युद्ध जारी रख सकता था। जब सारी स्थिति का पता चला, उसके आलोचकों ने उसे आड़े हाथों लेना चाहा कि केवल काँग्रेस को ही युद्ध छेड़ने का अधिकार है। उसकी कार्य-वाही आक्रामक कार्यवाही है। कई दिनों बाद जब सचमुच ही विवाद उठ खड़ा हुआ तब स्थिति बदल गयी थी। जनरल टेलर और जनरल स्काट ने मेक्सिको पर विजय प्राप्त करनी आरंभ कर दी। अमरीका के कुछ अनुशासित सैनिकों ने मेक्सिको के अधिक परन्तु अकुशल सैनिकों को हराना आरंभ कर दिया जिससे सारी आलोचना का स्वतः मुँह बन्द हो गया। सितंबर १८४७ में स्काट ने मेक्सिको शहर पर कब्ज़ा कर लिया। मेक्सिको के विशाल भू-भाग को अमरीका में मिला देने की शर्तें पूरी होने पर, मई १८४८ में वहाँ शांति स्थापित हुई।

युद्ध के इस तरह आरंभ हो जाने के बाद 'विग' दलवालों की यह नीति हो गयी थी कि वे वित्तविधेयक अथवा युद्धसंचालन राशिसंग्रह के सम्बन्ध में पक्ष में मत दिया करते थे; परन्तु राजनैतिक स्थिति को अपने पक्ष में बनाये रखने के लिए पोल्क की आलोचना करते रहते थे। इस मामले में लिंकन ने दृढ़तापूर्वक उनका साथ दिया। १८४८ में, काँग्रेस में उसने ऐसे ही मामलों पर दो बार लम्बे-लम्बे भाषण भी दिये। उस समय यह विषय इतना ठंडा पड़ चुका था कि उन भाषणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, परंतु आज भी ये भाषण विशेष रूप से स्पष्ट, दृढ़ और अप्रिय युद्ध से उत्पन्न पेचीदगी की स्थिति के पूर्ण विरोधी हैं। उसके दूसरे भाषण में इसी तरह की राजनीतिक बल्लेबाजी के अलावा कुछ स्थलों पर संक्षिप्त शानदार ढंग से सही स्थिति का उल्लेख किया गया है। परन्तु यह निर्धारित समय के अंतर्गत मजाकिया भाषण लगता है। सभा की उस समय यह परम्परा हो गयी थी कि जब अधिवेशन समाप्त होता हो और राष्ट्रपति का चुनाव निकट हो, तो दोनों पक्ष अपने निर्वाचन क्षेत्रों के हितों को ध्यान में रखते हुए आपसी छींटाकशी के भाषण दिया करते थे, खूब गरमागरमी रहती थी। 'विग' दलवाले इसलिए भी प्रसन्न थे कि उन्होंने युद्ध की भीषण गड़गड़ाहट के मध्य डेमोक्रेटिक दलवालों को नीचा दिखाने के लिये जनरल टेलर को राष्ट्रपति पद के लिए अपना उम्मीदवार नामजद कर दिया। जनरल टेलर को भी यह कभी मालूम नहीं था कि वह 'विग' दली है अथवा डेमोक्रेट।

यह व्यक्ति युद्ध का शूरमा होने के अतिरिक्त दक्षिणी राज्यों के विरुद्ध भी नहीं था; क्योंकि वह लुईसियाना में रहता था और उसके खुद के कई दास थे। उस समय की सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि डेमोक्रेटिक दलवाले, जिनके नेतृत्व में दक्षिणी राज्य थे, इन दिनों अपनी शतरंज के मोहरे उत्तरी राज्यों के राजनीतिज्ञों को चुनने लगे थे। इस बार उन्होंने मिशिगन के जनरल कास को चुना, जिसे युद्ध क्षेत्र की ख्याति प्राप्त थी। काँग्रेस के डेमोक्रेटिक सदस्यों ने इस बाजी में 'विग' दलवालों को बेवकूफ बनाया और उनके युद्ध के नायक को लेकर खूब मजाक बनाने लगे; परन्तु लिंकन ने दृढ़ निश्चय के साथ उन्हें बताया कि कैसे इस खेल में उन्हीं तरीकों से डेमोक्रेटिक दल को हराया जा सकता है। ऐसा लगता है, इसमें उसे अच्छी सफलता भी मिली —उसने जनरल कास की शूरवीरता की अपने सैनिक अनुभवों से मजाकिया ढंग से तुलना आरंभ की और खुल कर पश्चिमी राष्ट्रों में जैसे आरोप-प्रत्यारोप की भाषा प्रणाली है, उसका प्रयोग किया।

कोई भी व्यक्ति जिसने अब तक सदा ही लिंकन के गंभीर और समझदारी-पूर्ण भाषण पढ़े हैं, इन्हें भी राजनैतिक घुड़दौड़ के अवश्यम्भावी अंग समझकर बिना किसी तरह की आलोचना के स्वीकार कर लेगा। परन्तु लिंकन का केवल यही स्वरूप शेष नहीं रह गया था, कुछ आगे बढ़ने से ही ज्ञात होगा कि कोलंबिया राज्य में दास-प्रथा की शनैः शनैः समाप्ति की दिशा में उसने खुद एक छोटा-सा प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। यह उसने अपनी ही इच्छा से रखा था और उस पर न तो दासप्रथाविरोधी या पक्ष के लोगों का प्रभाव ही था। इस विधेयक के साथ ही एक छोटासा वक्तव्य भी था, जिसमें यह बताया गया कि इस राज्य के प्रतिनिधि व्यक्ति निजी तौर पर इसके पक्ष में हैं, परन्तु उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वे इसे जनमत के समक्ष प्रस्तुत करें। काँग्रेस में यह विधेयक परास्त हो गया। दासप्रथा के बारे में जो विचार और भावनाएँ उसने लंबे समय से ही बना रखी थीं, उनकी पूर्ति और क्रियान्विति का अवसर उसे इन वर्षों में नहीं मिल पाया। उसने ऐसे अवसरों को हाथ से भी नहीं खोया, परन्तु उसे अधिकतर अकेला ही आगे बढ़ना होता था। काँग्रेस सदस्य के तौर पर उसका कार्यकाल शीघ्र समाप्त हो गया। उसे फिर से चुन लेने के लिए कोई आन्दोलन नहीं हुआ और 'विग' दलवालों के हाथ से वह निर्वाचन क्षेत्र निकल गया। मेक्सिको युद्ध के विपरीत उसने जो भाषण दिये उससे उसके मित्रगणों की भावनाओं को ठेस लगी। यहाँ तक कि उसका भागीदार हर्नडन जो दासप्रथासमाप्ति

अभियान का सक्रिय सदस्य था, वह भी युद्ध की सफलताओं में इतना खो गया कि उसे लिंकन की स्पष्ट युद्ध-विरोधी बातें व उसके विरुद्ध मत देना देशद्रोह की तरह लगा। लिंकन ने उसे दृढ़ता से उत्तर अवश्य दिया; परन्तु उसमें पीड़ा की झलक थी। उसने समझाया कि उसकी यह मान्यता रही है कि राजनैतिक स्थिति अनुकूल नहीं होने तक उस दिशा में भावी राजनैतिक अभियान निरर्थक हैं। उसे राजनैतिक अनुशासन की सीमा में रहकर कई बार इससे पीछे हटना भी पड़ा और कई बार उसे कठोर भी होना पड़ा। उसने यह आश्चर्य भी व्यक्त किया कि लोग उसे किसी बात पर स्पष्ट राय प्रकट करने को बुलाते हैं और साथ ही यह भी चाहते हैं कि वह 'असत्य का ही अनुकरण' करे; यह कैसे संभव होता।

अवकाश प्राप्त काँग्रेस-सदस्य के रूप में उसे पूर्वी राज्यों में टेलर के समर्थन में भाषण देने को बुलाया गया और टेलर के चुनाव के बाद उसने अपना यह दावा प्रस्तुत किया कि इल्लीनायस में नियुक्तियाँ करते समय दूसरे लोगों के साथ-साथ उससे भी इस बारे में राय ली जानी चाहिए। टेलर ने पूरी तरह ध्यान रखते हुए पदों का विभाजन किया। उसने इस प्रश्न को एक सैनिक दृष्टिकोण से सुलझाया। उसने कहा कि वह तो नेता होने के नाते राष्ट्रपति पद पर चढ़ जाये और 'विग' दली सामान्य सदस्य, सैनिकों की तरह जो कुछ भी मिल सकता है, उससे कैसे वंचित रह जाये। लिंकन का दृष्टिकोण इस दिशा में दिलचस्पी-भरा है। एक नमूना देखिये। लिंकन ने राष्ट्रपति को किसी स्थान के पोस्टमास्टर पद का हवाला देते हुए लिखा—"मैं यह नहीं जानता हूँ कि राष्ट्रपति इन पदों को दलगत राजनीति के अनुसार बदलना चाहते हैं और न मैं इस दिशा में कोई राय ही प्रकट करना चाहता हूँ। 'अ' एक 'विग' है और स्थानीय 'विग' दली सदस्य उस पद पर उसकी नियुक्ति चाहते हैं। यह व्यक्ति प्रतिष्ठित भी है। लिंकन के अनुसार 'ब' दूसरा व्यक्ति है, जो इस पद के अधिक उपयुक्त है, परन्तु वह इतना लोकप्रिय नहीं है। 'क' जो मौजूदा पोस्टमास्टर है, डेमोक्रेट है; परन्तु उसकी राजनीतिक विचारधारा के अलावा वह सभी मानें में इस पद के लिए उचित व्यक्ति है। उसने खुद भी वाशिंगटन में खोले गये नये विभाग में, जो पश्चिम में सरकारी भूमि के बन्दोबस्त को देखता था, कमिश्नर-पद पर नियुक्ति की इच्छा प्रकट की। वह इस पद के योग्य भी था, परन्तु उसकी अर्जी वहाँ देर से पहुँचायी गयी; क्योंकि इल्लीनायस में उसके मित्रों में से कुछ लोग ऐसे थे, जो यह पद चाहते थे। बटरफील्ड नाम के एक वकील को, जो अपने व्यंग और विनोद के कारण प्रसिद्ध थे, वह पद मिल गया। और

इस तरह इस पद से हताश लिंकन के कंधों पर बाद में यह भार पड़ा कि लोगों ने जब बंटरफील्ड पर लांछन लगाये, तो उसे उसकी रक्षा करनी पड़ी। ओरेगन के गवर्नर का पदग्रहण करने के लिए लिंकन से कहा गया। यह पद सभी दृष्टियों से अधिक अच्छा था, परन्तु वह इस पद को अस्वीकार करे या नहीं इस असमंजस में कई दिनों तक झुलता रहा। इस पद को स्वीकार कर लेने का साफ मतलब यह था कि जब उसके जीवन का सर्वोत्तम अवसर उपस्थित होता तो वह उससे बहुत ही दूर खड़ा रहता। कहने का तात्पर्य यह है कि लिंकन के राष्ट्रपति बनने की फिर कोई संभावना ही नहीं रहती। श्रीमती लिंकन ही एक ऐसी महिला थीं, जो यह नहीं चाहती थी कि उसका पति राजनीति से पूर्णतया विलग हो जाय। लिंकन इस पद का लोभ मुश्किल से संवरण कर पाया। इस समय वह थका हुआ व्यक्ति था जो अपने भविष्य व गतिविधियों के बारे में हताश हो चुका था। संभवतया राजनीति के प्रति भी वह निराश हो चुका था और इसमें उसका उत्साह मंद हो गया था। उसे राजनीतिज्ञ के तौर पर अच्छी सेवाएँ करने की संभावनाएँ भी कम दिखती थीं। संभवतया यही कारण थे कि अमरीकी राजनीति के संकटकाल में भी उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया।

[२]

केलिफोर्निया और १८५० का समझौता

यह कहा जाता है कि मेक्सिको का भूभाग जीतने के पीछे दास-क्षेत्र प्राप्त करने की भावना काम कर रही थी। इस भूभाग का सबसे आकर्षक प्रदेश केलिफोर्निया था। एरीज़ोना और न्यू मेक्सिको पहाड़ी बंजर प्रदेश हैं और तब तक नेवाडा की खनिज संपत्ति सामने नहीं आयी थी। ओरेगन का सुदूर उत्तरी भूभाग जो शांति से प्राप्त किया गया था उसका उल्लेख अनावश्यक है। ओरेगन १८५९ में स्वतंत्र राज्य बन गया। युद्धकाल के समय सीनेट व काँग्रेस में, उत्तरी व दक्षिणी सदस्यों में यह विवाद उठा कि जीते गये प्रदेश में दास-प्रथा को स्वीकार किया जाय अथवा नहीं। उत्तरी राज्यों के डेमोक्रेटिक काँग्रेस सदस्यों ने युद्ध-सम्बंधी माँग की स्वीकृति के समय यह प्रस्ताव रखा कि विजित भूभाग में दास-प्रथा की स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए। यथा समय जब भी बाद में अवसर मिलता, उत्तरवासी डेमोक्रेट डेविड विलमोट के इस

तरीके को दुहराया करते। लिंकन ने सदा ही काँग्रेस-कार्यकाल में दृढ़ता के साथ इसका समर्थन किया, परन्तु मतदान में इसे अस्वीकार कर दिया जाता था। कास ने इस समस्या का दूसरा हल यह सुझाया कि उस प्रदेश के लोगों के जनमत पर ही यह बात छोड़ दी जानी चाहिए कि वे लोग ही इसका निर्णय करें कि दासप्रथा जारी रखी जाय या नहीं। अमरीकी जनता ने "विभाजित सार्वभौमिकता" के विरोधी होने के कारण कास के सिद्धान्त ठुकरा दिये। कोल्हन और उसके समर्थकों ने कहा कि यह संविधान के विपरीत है कि एक अमरीकी नागरिक अपनी संपत्ति के साथ, जिनमें दास भी शामिल हैं, जीती हुई भूमि में जाकर बसने में स्वतंत्र नहीं हैं। जीती हुई भूमि संयुक्तराष्ट्र अमरीका के क्षेत्र में मिला ली गयी और दास-समस्या उलझी ही रही। तभी घटनाचक्र में अकस्मात् परिवर्तन हुआ।

१८४८ में, केलिफोर्निया में सोने का पता चला और फिर १८४९ में दुनिया के हर कोने से सोना प्राप्त करनेवालों की भीड़ यहाँ आकर बसने लगी। इन उजड्ड व्यक्तियों के स्वभाव व चरित्र साहित्य के विषय बन चुके हैं। ये लोग आरंभ में पूर्ण अस्तव्यस्त जीवन बिताते थे और अनुशासनहीन थे, परन्तु इन लोगों ने शीघ्र ही अपने यहाँ किसी तरह की सरकार बनाने का फैसला कर लिया। १८४९ में इन्होंने एक प्रतिनिधि-सभा चुनी और उसके जिम्मे संविधान बनाने का काम सौंपा और सब ने आश्चर्य किया कि संविधान बनाते समय प्रतिनिधि-सभा ने सर्वसम्मति से दास-प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया। अब निकट भविष्य में ऐसी कोई आशा ही नहीं रही कि यदि और भी इसी तरह के लोग वहाँ बसे, तो संविधान की इस धारा में परिवर्तन किया जा सकेगा। अब यह देखना है कि क्या केलिफोर्निया इसी तरह के संविधान को रखते हुए गण-राज्य में मिला लिया गया। यह संविधान वहाँ की जनता के बहुमत ने पसंद किया था।

दक्षिणी राज्यों में प्रचलित विचारधारा में पले राजनीतिज्ञ सीधा यही कहते कि केलिफोर्निया को विलय की स्वीकृति नहीं दी जाय। इन लोगों को कोल्हन का यह तर्क सही मालूम होता था कि एक सभ्य नागरिक जैसे अपनी घड़ी, टोप और घूमने की छड़ी-जैसी चीजों पर अधिकार रख सकता है, तो उसी तरह दासों पर भी वह अपना अधिकार बनाये रख सकता है। उन्हें इससे कोई दुःख नहीं हुआ कि वे लोग ऐसे समाज पर दास प्रथा थोप रहे थे, जो यह पसन्द नहीं करता। क्या इसी तरह उत्तरी राज्यों वाले स्वतंत्र व्यवस्था उन पर

नहीं थोप सकते थे? एक प्रमुख दक्षिणी सीनेट सदस्य ने उत्तरी सीनेट सदस्य को विजय-गर्व से कहा—"अच्छा! यह बात है। ठीक है, तुम जितनी चाहे स्वतंत्रता (दासरहित क्षेत्र) थोपो, परन्तु हमें तो सावधान रहना है कि किस तरह हम दासप्रथा लागू कर पावें!" और उसे यह जान कर आश्चर्य भी हुआ कि उत्तरी प्रतिनिधि ने खुशी से उसकी यह चुनौती स्वीकार कर ली। भले ही दक्षिणी राजनीतिज्ञ अपने निजी जीवन में कैसा ही क्यों न सोचते रहे हों, उनकी यह राजनैतिक धारणा बन चली थी कि दास प्रथा ऐसी व्यवस्था है, जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति गलत नहीं ठहरा सकता। उनके सभी राजनीतिक कार्यों में, बाद में इसकी झलक मिलती है।

टेलर अपने उद्घाटन-भाषण के बाद १६ माह तक ही जीवित रह सका। वह राजनीतिज्ञ था ही नहीं, फिर भी राष्ट्रपति पद पर बिठा दिया गया था जिस पद के लिए सच्चाई और महानता जैसे गुण होने जरूरी हैं। उसमें केवल एक ही विशेषता थी कि वह अपनी ही समझ से सोच-समझ कर निर्णय किया करता था। जब वह वाशिंगटन आया तो यह धारणा लेकर आया था कि ये विवाद जो उठ खड़े हुए हैं, वह उत्तरवालों की आक्रामक नीति के कारण हैं। परन्तु थोड़े ही दिनों में उसे दूसरी ही तरह से सोचना पड़ा। वह खुद दासों का स्वामी था, अतएव उसे केलिफोर्निया में दास-प्रथा थोपने की दक्षिणवालों की बात घमण्ड से भरी बकवास लगी, और जहाँ तक उसके हाथ में मामला था, वह इस तरह की बातों में नहीं आनेवाला था। उसने काँग्रेस में एक संदेश भेजा जिसमें सुझाया कि केलिफोर्निया को उसके संविधान-सहित विलय कर लेना चाहिये। परन्तु सीनेट में दक्षिणी राज्यों के प्रतिनिधि शक्तिशाली थे, उन्होंने इस पर जोर दिया कि इस मामले में समझौता व सुलझाव के लिए बीच-बचाव की जरूरत है और इस दिशा में एक योजना भी तैयार कर ली गयी। परन्तु राष्ट्रपति ने उसे दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया। उसने अपना सारा प्रभाव उनके इस समझौते की नीति के विरुद्ध काम में लिया और यह विश्वास किया जा सकता है कि वह मुख्य प्रस्ताव पर 'वीटो' विशेषाधिकार का प्रयोग भी कर लेता, यदि भगवान उसे अपनी नीति जारी रखने को जीवित रखता। कुछ राज्यों ने इस पर अलग होने की भी धमकी दी थी जिनमें वर्जीनिया प्रमुख था। परन्तु यह निश्चित है कि वह जिस पद पर और जैसी स्थिति में था, इस मसले को निपटा लेता। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जो यह बताता हो कि टेलर विलक्षण बुद्धिमान था, परन्तु यह कहा जा सकता है कि वह चरित्रवान था,

और उस समय राजनैतिक जीवन में इसकी बड़ी जरूरत की थी। हम देखेंगे कि इस मसले को उस समय के सबसे बड़े राजनीतिक विचारक ने दूसरे ही ढंग से देखा। परन्तु जो कुछ बाद में घटा उससे संकट की सूचना मिल गयी थी। साथ ही भयानक भूल भी सामने आ गयी थी। उस समय दक्षिणी राज्यों में विद्रोह की भावना स्पष्ट शक्ल में ढल चुकी थी। जब कि यह विद्रोह की भावना अनुचित थी, उस समय भी दृढ़ता के साथ उत्तर नहीं दिया गया वरन् दक्षिण को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया गया। टेलर की मृत्यु १८५० में हो गयी थी और उपराष्ट्रपति न्यूयार्कवासी मिलार्ड फिलमोर राष्ट्रपति बना। फिलमोर को देखने से ऐसा लगता था, मानों यह गम्भीर और बुद्धिमान आदमी था। उसके बाहरी स्वरूप को देख कर एक फ्रांससी ने तो यहाँ तक कह दिया कि वह अमरीकी गणराज्य का आदर्श शासक है। परन्तु उसमें यह तड़कभड़क ऊपरी ही थी, उसमें न तो हृदय ही था और न चरित्र अथवा सूझबूझ ही। अमरीका के लिए उस समय ऐसी बातें राजनैतिक दीवालियापन या निर्णयशक्ति की कमी से भी अधिक खतरनाक थीं। मुख्य बात केवल इतनी ही है कि केलिफोर्निया के गणराज्य में विजय के लिए दक्षिणी राज्यों को दूसरी दिशा में कई रियायतें देकर उत्तर को सौदेबाजी करनी पड़ी। यह प्रस्ताव हेनरी क्ले का था, जो सदा से समझौता-प्रिय रहा और उसीने 'मिसूरी समझौता' तीस वर्ष पहले किया था। परन्तु बोस्टन में क्ले के प्रशंसकों का कहना है कि वेबस्टर ने क्ले के समर्थन में अपने प्रभाव और भाषण-शक्ति का खुल कर प्रयोग किया। दक्षिण को दो खास रियायतें दी गयीं। सबसे पहले न्यू मेक्सिको और यूटा में जा प्रादेशिक सरकारें बनायी गयीं उनमें दास-प्रथा पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया। उत्तर में इसका विरोध किये जाने पर यह कहा गया कि इन रियायतों का कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि वहाँ दास-प्रथा से खेती किया जाना असम्भव है। परन्तु यह उस सिद्धान्त की हत्या थी, जो विल्मोट प्रस्ताव के रूप में पिछले चार वर्षों से रखा जा रहा था; और दक्षिणी नेताओं ने इन रियायतों का अर्थ भी उसी दिशा में लेकर अपने संकुचित दायरे को स्पष्ट कर दिया। पहले जब दास प्रथा को जारी रखने की सहूलियतें दी गयीं उसमें और कारण थे; क्योंकि उन क्षेत्रों में पहले से ही दास-प्रथा जम चुकी थी, परन्तु अब ऐसी कोई बात नहीं थी। दूसरी रियायत यह दी गयी कि नया कानून बनाकर स्वतंत्र राज्यों में जितने भी भगोड़े दास थे, उन्हें वापस लौटाने का निर्णय लिया गया। इस तरह की माँग कुछ मक्कारी-भरी थी; क्योंकि इस पर सबसे अधिक जोर सुदूर दक्षिणी राज्य

ने दिया था, जहाँ से दासों के भागने का सवाल ही नहीं उठता था। परन्तु दक्षिणी नेताओं ने भी उत्तरी प्रतिनिधियों को अपमानित करने के लिए इसे मंजूर कराने की हठभरी नीति अपना ली। इस तर्क को नहीं टाला जा सकता—जैसा कि लिंकन ने खुद भी मंजूर किया कि संविधान के अंतर्गत ऐसे कानून बनाने की गुंजाइश है। परन्तु जो कानून पास किया गया वह न्याय के सभी सिद्धान्तों के विपरीत था। इसके पास हो जाने से एक स्वतंत्र नीग्रो के लिये अपनी स्वतंत्रता सिद्ध करने के सभी अवसर समाप्त हो गये, क्योंकि गुलामों की टोह में फिरने वाले ठेकेदारों के लिए यह बहुत ही सरल काम था कि वे किसी भी गुलाम को भगोड़ा ठहरा देते। यह एक ऐसा कानून था जिसे राष्ट्रपति यदि चाहता तो संविधान के सिद्धान्तों को झुठलाने के प्रयत्न के रूप में लेकर विशेषाधिकार (वीटो) का प्रयोग करके रोक सकता था। जैसा कि सभी समझौतों में होता है, वे ऊपर से कुछ और ही नज़र आते हैं। उसी तरह जो मूल समझौता था, वह नग्न अन्याय से भरा था। परन्तु वेब्स्टर और क्ले ने अपने प्रभाव से उसे लागू करवा ही लिया।

यह घटना एक ऐतिहासिक काल की समाप्ति बताती है। वेबस्टर और क्ले का यह आखिरी प्रयत्न था। १८५२ में दोनों व्यक्ति दिल में यह संतोष लेकर इस दुनिया से चल बसे कि उन्होंने जो कुछ किया उससे गणराज्य में शांति बनी रही। डेमोक्रेटों का महान सामयिक नेता कोल्हन १८५० में ही स्वर्ग सिधार चुका था। मरते दम तक वह दुख के साथ इस बात की शिकायत करता रहा कि गणराज्य के सामने भावी संकट पैदा हो गया है, ऐसा संकट जिसे उसने खुद ही अपने कारनामों से रचा था। कुछ समय के लिए वेबस्टर और क्ले का यह सुख स्वप्न साकार बना रहा कि गणराज्य में शांति कायम हो गयी है। उत्तर में भगोड़े नीग्रो के विरुद्ध बने कानून का बड़ा विरोध हुआ। कुछ स्थानों पर नीग्रो की गिरफ्तारी के समय विरोधस्वरूप शक्ति का भी उपयोग किया गया। कुछ राज्यों ने इस कानून को शक्तिहीन बनाने के लिए अपने वहाँ नागरिक स्वतंत्रता कानून भी पास किये। परन्तु जैसी अकस्मात् उत्तेजना इससे पैदा हुई थी, उसी तरह अकस्मात् ही वह शांत भी हो गयी। १८५२ में राष्ट्रपति-पद के चुनाव के अवसर पर उत्तर ने यह दर्शाया कि वे शांति से रहना चाहते थे और यह शांति उन्हें डेमोक्रेटिक दल ही प्रदान कर सकता, यह धारणा अंत में व्यर्थ साबित हुई। 'विग' दलवालों ने इस बार टेलर से भी महान शूरमा जनरल स्काट को उम्मीदवार बनाया। परन्तु यह आदमी

निकम्मा साबित हुआ और सभी परम्पराओं को भंग करते हुए वह अपने ही सिद्धान्तों से फिर गया। न्यू हेम्पशायरवासी फ्रांक्लीन फिर से राष्ट्रपति चुन लिया गया, जो हाथर्न का मित्र भी था। उस काल के जितने भी महत्वहीन, मौक़ापरस्त राष्ट्रपति हुए, उनमें यह अपने-आपको कुछ प्रतिष्ठित समझने का दावा कर सकता था। उसके समकालीन लोगों का कहना है कि वह भला आदमी था, परन्तु उसके सभी नेक इरादों व योग्यताओं पर दक्षिणी सामाजिक वातावरण की छाप पड़ी हुई थी। इन दिनों राजनैतिक मोर्चे पर नयी पीढ़ी के नेताओं के रूप में कई महत्वपूर्ण व्यक्तिओं का आगमन हुआ। दक्षिणी सीनेट-सदस्यों के दल में मिसीसिपी के जफर्सन-डेविस ने शक्तिशाली और गौरवपूर्ण भाग लेना आरंभ कर दिया था। इल्लीनायस का स्टेफन डगलस डेमोक्रेटिक दल का प्रमुख नेता बन गया था। न्यूयार्क का भूतपूर्व गवर्नर विलियम सेवार्ड और ओहायो के भूतपूर्व गवर्नर सालमन चेस डेमोक्रेटिक सदस्य ने सीनेट में, वेब्सटर और क्ले के समझौते के विरोध में डट कर शान से भाग लिया। अब हम आगे से दास-प्रथा के विरुद्ध नये रूप से जारी संघर्ष में इन दो व्यक्तियों से अधिक सम्बन्धित रहेंगे। बाद में मेसाचुसेट्स के चार्ल्स समनर ने सहयोगी बन कर इस संघर्ष में योग दिया। परंतु इस संघर्ष काल में लिंकन का योग केवल नाममात्र का था।

[३]

लिंकन का अवकाशग्रहण

सेवार्ड और चेस या समझौता-विरोधी अन्य लोग सही रहे हों (जैसा कि बाद में ज्ञात हुआ कि वे सही थे) या नहीं, लिंकन ऐसा व्यक्ति नहीं था जो अपने पुराने नेता वेब्सटर और संविधान के महान ज्ञाता क्ले के विरुद्ध १८५० के इस आकस्मिक राजनीतिक संकट में विद्रोह कर बैठता। इल्लीनायस में उसे ऐसा करने के लिए किसी भी तरह का अवसर नहीं था। परन्तु क्ले की मृत्यु पर १८५२ में उसने दोनों दलों की सभा में जो भाषण दिया, वह बताता है कि लिंकन समझौते का समर्थक था। यह भाषण उस समय उसकी जो विचार-धारा थी, उसकी पूरी झलक प्रदान करता है। इसमें लिंकन के पहले के दिये गये भाषणों व बाद में जो भाषण उसने दिये, वैसी स्पष्टता व सीधी बात रखने जैसी कोई चीज़ नहीं है। उसने दास-प्रथा का अंत चाहनेवाले आंदोलनकारियों

को कड़े हाथों लिया, जिससे ऐसा लगता है, मानों सारा भाषण दास-प्रथा के पक्ष में दिया गया था। सतर्क श्रोताओं के दिमाग में इस भाषण का प्रभाव दास-प्रथा के अंत को उत्तेजित करने की दिशा में विपरीत पड़ा। ऐसा लगता है कि भाषण देनेवाला खुद क्ले की समझौते की भावना से संतुष्ट था अथवा वह क्ले के दृष्टिकोण को इस तरह से दास-प्रथा के विरुद्ध प्रस्तुत करने के प्रयत्न में था, जितना क्ले स्वयं दास प्रथा के अंत की दिशा में नहीं कर सका था। कैसा भी मामला क्यों न हो, हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उदार, गंभीर, और दृढ़ विचारधारा के साथ उसने बाद में राजनैतिक कलह के दिनों में पुनः मंच पर प्रवेश किया। यह महत्वपूर्ण निर्णय उसने १८४८ से लेकर १८५४ तक के अवकाशकाल में किया। ऊपरी सतह पर लिंकन की विचारधारा दासप्रथा की निंदा और संविधान की स्वीकृति की पूर्व धारणा तक ही सीमित नज़र आती है। १८५४ में जनमत उस विचारधारा के प्रतिकूल भी नहीं था जिसने नये दल को जन्म दिया। केवल इतना ही भेद था कि उस समय तक लिंकन ने सारी समस्याओं के सभी स्वरूपों को पहचान लिया था और अपने दिमाग को किसी भी अवसर या घटनाचक्र से निपटने के लिए तैयार कर लिया था। हम देखेंगे और यह जरा भी आश्चर्य-जनक नहीं होगा कि कैसे समय की गति से पिछड़ा लिंकन जब जनमत प्रबल हुआ तो उसके साथ-साथ बढ़ा और जब जनता का उत्साह ठंडा पड़ गया तो भी वह आगे बढ़ता रहा। इन वर्षों में उसके निजी जीवन के बारे में हमें जो भी सामग्री मिलती है, उसके कानूनी धंधे के भागीदार हर्नडन से प्राप्त होती है, जो उसके साथ १८४४ में काम करने लगा और जिसने लिंकन की मृत्यु तक स्प्रिंगफील्ड में अपना धंधा जारी रखा। बासवेल की ही तरह हर्नडन की यह मान्यता थी कि शीशे की सजावटी अल्मारी में रखे चित्र की तरह महान व्यक्तियों को चित्रित नहीं किया जा सकता। वह लिंकन के साथ रहा, उसकी अजीब आदतों पर बड़बड़ाता रहा और उसे इसके बावजूद भी पसन्द करता रहा। उसका सम्बंध लिंकन के राष्ट्रपति बनने के १७ वर्ष पहले से था। उसकी मृत्यु के बाद वह लिंकन की जीवन-सम्बंधी सामग्री जुटाने में लग गया, और उसने लिंकन का पुराना ऊँचा टोप खोज ही निकाला जिसे देख कर पहले हर्नडन चिड़चिड़ा हो जाता था। इस टोप की सिलवटों में कई महत्वपूर्ण कागज़ पत्र थे।—डा० जानसन की जीवनी लेखक बासवेल में जो कलात्मक गुण थे, वे हर्नडन में नहीं थे। उसमें

इतनी गहराई तक पहुँचने की शक्ति व चारित्रिक अध्ययन-सम्बंधी विशेषताएँ भी नहीं थीं। कुछ भी हो, उसे अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त हुई, और जिस ढंग से उसने लिंकन का स्वरूप हमारे समक्ष रखा है, वह संजीव प्रेम-पूर्ण चित्र है। इस जीवन-चरित् में लिंकन की पीड़ा-भरी तस्वीर, जीवन का रूखापन, बिना झाड़े-बुहारे दफ्तर में पैर फैलाये बैठने की आदत तथा घुमक्कड़पन की प्रवृत्ति को भी दर्शाया गया है। हर्नडन ने अपना काम जरूरत से ज्यादा बुद्धिमानी से किया; उसने लिंकन के जीवन से सम्बंध रखनेवाली उन बातों को टाल दिया जिनसे उसके स्वभाव या चरित्र का नीरसपन अधिक टपकता हो। सब यह मानते हैं कि लिंकन ने ठीक ऐसा ही व्यवहार किया होगा जैसा सभी समझदार व्यक्ति करते हैं। परन्तु निष्कर्ष यह है कि लिंकन के इस जीवन-काल के प्रति लोगों ने जिस सतर्कता से छानबीन व जाँच जारी रखी, वैसी सतर्क परीक्षा में से शायद बहुत ही कम लोगों को गुजरना पड़ा होगा।

हर्नडन की यह जाँच-पड़ताल इस बात पर/ प्रकाश नहीं डाल सकी कि जीवन के प्रति उसकी विचारधारा या राजनैतिक समस्याओं के प्रति उसकी धारणा उन दिनों किस तरह की थी, जिनमें उसे बाद में गोता लगाना पड़ा। इसके विपरीत उसके राष्ट्रपतिकाल के संस्मरणों से पता चलता है कि किसी भी महत्वपूर्ण समस्या के प्रति उसके विचार जल्दी प्रकट नहीं होते थे, भले ही अंतरंग लोगों के सामने ऐसे ही कभी अचानक वह प्रकट कर देता तो दूसरी बात थी। वह सामाजिक तौर पर अधिक मिलनसार हो गया था, फिर भी इतना होने पर भी विचारों व सिद्धान्तों में वह दृढ़ ही रहा। जब वह लोगों से रात को देर तक बैठकर बातें किया करता, उदाहरण देता, घटनाएं प्रस्तुत करता, तो इसका यह मतलब नहीं था कि वह खुद का और अपने साथियों का दिलबहलाव किया करता था। वह मानवीय जीवन की बारीकियों और गहराई का अर्थपूर्ण अध्ययन करना चाहता था—लोकभावनाओं का अन्तर्दर्शन, व्यक्तिगत मानवीय स्वरूप का मंद परन्तु दृढ़ स्वरूप का अध्ययन—जिन्हें वह जानना चाहता था। वह सामान्य मानव-स्वभाव की जानकारी इकट्ठी कर रहा था। अपने विकास के लिए प्रयत्नशील लिंकन की यह बात हर्नडन के लिये आश्चर्यजनक थी कि उसने उन दिनों बहुत ही कम पुस्तकें पढ़ी और इनमें से ऐसी बहुत ही थोड़ी थीं, जिन्हें उसने पूरा पढ़ा हो—बाइबिल, शेक्सपियर और बर्न्स की कितावें पढ़ कर उसने अपना मानसिक विकास किया। कम-से-कम पुस्तकें और अधिक से अधिक व्यक्ति उसके अध्ययन के विषय बन गये थे। जहाँ तक

उसका अध्ययन और विचारधारा राजनीति की ओर उन्मुख हुई, वह इस फैसले पर पहुँचा कि इस समय किसी भी तरह की महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं की जा सकती। १८५४ में उसने खुद अपने बारे में कहा—"मेरे कानूनी धंधे ने दिमाग में से राजनीति को दूर ढकेल दिया है।" परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी महान काम को पूरा नहीं करने की पीढ़ागत भावना या अपने महान सौभाग्य की कल्पना उसके दिमाग से हट चुकी हो। उसने यह अवश्य ही महसूस किया होगा कि उसकी राजनैतिक प्रसिद्धि का अवसर समाप्त हो चुका है। अतएव उसे अपने धन्धे की ओर ध्यान देकर कुछ-न-कुछ जमा करना चाहिये। परन्तु इस अध्ययन-काल में उसने व्यवसायिक चतुरता प्राप्त करने की अपेक्षा मानवीय अध्ययन पूरा कर डाला। अधेड़ आयु में वह प्रवेश कर चुका था और अपने दृष्टिकोण से वह असफल हो चुका था। ऐसी स्थिति में वह अपने-आपको इससे भी ऊँचे स्तर का व्यक्ति प्रमाणित करने के काम में लग गया।

इस दिशा में यह कहा जा सकता है कि वह बहुत हद तक सफल भी रहा। उसकी बाहरी विलक्षणताएँ इन दिनों बहुत ही कम हो गयी थीं। फिर भी वह अपने दफ्तर में सफाई व अच्छे तौर-तरीके लागू रखना नहीं सीख सका; न वह सही माने में पूरा वकील ही बन सका। कानून का विशद अध्ययन करने के बजाय वह उसके ऊपरी सिद्धान्तों व काम की बातों तक ही निर्भर रहा और इस दिशा में उसने अधिक सीखने व पढ़ने के साधन नहीं जुटाये। वह शोरगुल और होहल्ले के बीच भी तन्मयता से पढ़ कर किसी बात को याद भी रख सकता था। वह अपने दिमाग में किसी बात को बनाये रखने के लिए जोर-जोर से बोल कर पढ़ता था। वह यह तरीका किसी भी समय अपना लेता था, चाहे भले ही उसका भागीदार उसके इस तरीके से झुँझला क्यों न उठे। उसने अपने विचारों को अनुशासित ढंग से रखने और उन्हें संक्षिप्त रूप से सीधे-सादे रूप में प्रकट करने की दिशा में पूरी सफलता पा ली और वह भी चालीस वर्ष की आयु में केवल अपने ही अध्ययन-मात्र से। यह कम आश्चर्यजनक नहीं है। इन वर्षों में उसने यूक्लिड के पहले छः ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर लिया। यदि हम उसके संतुलित व अनुशासित मस्तिष्क व चरित्र के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करें, तो वे काल्पनिक-मात्र नहीं सिद्ध होंगे। उसमें पहले जो अपने विचारों को स्पष्ट व संक्षिप्त रूप देने की प्रवृत्ति थी, उसे उसने इतना दृढ़ बना लिया कि इस मामले में उसकी तुलना में बहुत ही कम

व्यक्ति ठहर पाते हैं। इस तरह विचारों का सही और सरल विश्लेषण वह केवल शांतिपूर्ण क्षणों में नहीं करता था, वरन् किसी भी तरह के संघर्ष, विपदा अथवा उथलपुथल के दिनों में भी इसी तरह के प्रभावशाली फैसले करने में सिद्धहस्त हो गया था। यद्यपि उसकी प्रवृत्ति इन दिनों अधिक से अधिक लोगों से मिलने-जुलने की थी, परन्तु अपनी मानसिक चेतना की दिशा में वह एकाकी ही रहा। हर्नेडन—जिसने अपने मित्र की कई मनोरंजक बातों का अध्ययन किया—उसके लिए भी "लिंकन का मास्तिष्क उत्साहहीन और कवित्वहीन था।" यह उस मस्तिष्क के लिए और भी विलक्षण था, जिसने शेक्सपियर और बर्न्स का अध्ययन किया हो। ये दोनों मित्र एक बार अलग-अलग नियागरा गये। हर्नडन को यह जानने की उत्सुकता थी कि नियागरा का उसके मित्र के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा था। लिंकन ने जो उत्तर दिया, उससे उसे काफी दुख हुआ। लिंकन ने कहा—"मुझे यह आश्चर्य है कि इतना सारा पानी कहाँ से आता है।" हर्नडन के लिए यह भौतिकवादी सूझहीन दृष्टिकोण था। लिंकन के विचारों में कवित्व था—एक बड़े ही पैमाने पर और विलक्षण ढंग का। उसने पहले कभी-कभी कविताएँ भी लिखीं। ये कवितायें उदासी से भरी हुई थीं और एक ऐसे मित्र के लिये लिखी गये, जो पागल हो गया था। इन कविताओं में आश्चर्य व्यक्त किया गया कि जब कितने ही सुखी जीवन समाप्त हो गये, तो भी उसका यह मित्र अपने मस्तिष्क को समय से अधिक जीवित रखे हुए है। इन्डियाना के खेतों के बारे में अपने भ्रमण-सम्बन्धी कई दुःखपूर्ण कविताएँ उसने लिखीं। जहाँ वह मानसिक संताप की हालत में भटकते हुए कहता है :—

"जब सभी स्वर मृत्यु के निनाद हो गये
—और जहाँ सभी स्थल समाधियाँ"

ये कोई अच्छी कविताएं नहीं हैं, परन्तु यह कहा जा सकता है कि इनमें कवित्व है। ये उस व्यक्ति की कविताएं हैं जिसके लिए कवियों की संगत अस्वाभाविक थी। ये उस व्यक्ति की कविताएं हैं जिसके विचारों के अंतराल में पीड़ा की धारा प्रवाहित हो रही थी।

लिंकन के जीवन के ये क्षण बताते हैं कि बच्चों में मिल-जुलकर सुखी होने की चेष्टाओं के अलावा उसके मस्तिष्क में एक महान शक्तिशाली भविष्य धीरे-धीरे जन्म ले रहा था। यह विशालकाय व्यक्ति अपनी महत्वाकांक्षाओं में निराश, और घर में सुखी नहीं होने पर, उजड्ड जनसमूह में मिलजुल रहा था और

उनकी भावनाओं को प्रकट करते हुए, निरंतर विनोदप्रिय स्वभाव बनाने की चेष्टा में लीन था। फिर भी उसका दिमाग चुपके-चुपके आनेवाले भविष्य की लक्ष्य-प्राप्ति के लिये तैयारी कर रहा था। उसके इस स्वरूप में भी ऐसी दो-तीन बातें थी, जिनके उल्लेख का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता है। यद्यपि वह एक अजीब विनोदप्रियता का पुतला लगने लगा था, जो लोग उसे जानते थे उनके लिये वह पहले जैसा दृढ़ शक्तिशाली लिंकन नहीं था, फिर भी वे लोग उसे चाहते थे, प्यार करते थे और उसमें उनका विश्वास था। वह अपनी ईमानदारी से भरे कामों और दयालुता के कारण प्रसिद्ध था। ऐसा लगता था, मानों उसके चेहरे पर जो पीड़ा सदा के लिये अंकित हो गयी थी वह घटने लगी थी। उसके मित्र यह जानते थे कि उसे भारी दुःखों में से अपना रास्ता ढूँढ़ना पड़ा, उसके व्यवसायिक साथी यह भी जानते थे कि कैसे अन्याय और क्रूरता को देख कर उसका गुस्सा आग की तरह फूट पड़ता था।

इन दिनों उसने अपने कानूनी व्यवसाय पर इतना ध्यान दिया कि सभी लोग यह समझने लगे कि अब केवल वही उसके जीवन का लक्ष्य रह गया है। फिर भी उसका स्वाध्याय जारी रहा। एक प्रसिद्ध अमरीकी वकील श्री शोएट ने विश्वासपूर्वक कहा कि इल्लीनायस-न्यायालय में कई मुकदमे ऐसे थे, जिनमें लिंकन को टक्कर के वकीलों से सामना करना पड़ा और इसके लिए बुद्धि और प्रशिक्षण की आवश्यकता थी। एक साधारण व्यक्ति भी यह कह सकता है कि वकील बनने के साथ-साथ जो सोलिसिटर का काम भी करता है, उसे साधारण वकील की अपेक्षा अधिक कानून के ज्ञान की आवश्यकता रहती है। इल्लीनायस का यह वकील केवल अपने मुवक्किलों के मुकदमे ही नहीं लड़ा करता था, वरन् वह उन्हें व्यक्तिगत सलाह भी दिया करता था। वह कुछ सीमाओं में रहते हुए, यह फैसला कर लेता था कि जो मुकदमा उसे दिया गया है उसके लिये खुद पैरवी करे अथवा दूसरों को सौंप दे। इस मामले में उसकी कोई पूर्वनिर्धारित नीति नहीं थी। लिंकन का तरीका सदा यही रहता था कि जिस मामले को उसकी आत्मा स्वीकार नहीं कर लेती, उसकी पैरवी करने से वह इंकार कर दिया करता था। अदालत में खड़े होने पर जब उसे पता चलता था कि मामले में कुछ ऐसी नई बातें भी हैं जो उसे नहीं बतायी गयी थीं और जिन्हें उसकी आत्मा स्वीकार नहीं करती, वह उस मुकदमे के कागजात फेंक दिया करता था। लिंकन ऐसी हालत में उस सीमा तक पहुँच जाता था जितनी कानून उसे अधिक-से-अधिक प्रदान कर सकता था।

एक मुक़दमे की सुनवाई थी। अदालत में आवाज़ पड़ी। वह गैरहाज़िर था। न्यायाधीश ने उसके होटल पर आदमी भेजा और वह यह संदेश लेकर लौटा—"उन्हें कह दो, मैं अपने हाथ धो रहा हूँ।" इसी तरह की सलाह एक बार उसने अपने मुवक्किल को दी। "मैं तुम्हारा मुक़दमा जीत सकता हूँ। मैं तुम्हें ६०० डालर दिला सकता हूँ। मैं इस तरह एक ईमानदार परिवार को तबाही में डाल सकता हूँ। परन्तु मैं तुम्हारा मुक़दमा नहीं लड़ूँगा और न कोई फीस ही तुमसे लूँगा। मैं तुम्हें एक सलाह बिना फीस के ही देना चाहता हूँ। घर जा गंभीरता से यह सोचो कि क्या तुम ऐसे ही ६०० डालर ईमानदारी से नहीं कमा सकते हो?" उसकी यह मानसिक प्रवृत्ति उसके नियंत्रण के बाहर थी। उसके साथियों का—जिन्होंने उसे कई मुक़दमे सौंपे थे-यह कहना था कि जिस मुक़दमे से उसकी सहानुभूति उठ जाती फिर वह उसके बस का रोग नहीं रहता था। परन्तु इन तौर-तरीकों से क्या पैसा कमाया जा सकता है? लिंकन ने यही प्रवृत्ति जारी रखी और शीघ्र ही इलीनायस के वकीलों में वह आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। बहस में पूरी ईमानदारी तथा मामले को सच्चाई से रखने की आदत के कारण वह कई न्यायाधीशों की निगाह में विश्वास का पात्र बन गया, और चाहे कैसा ही गंभीर व जटिल मुक़दमा क्यों न होता, यदि वह उसे सच्चा मान लेता तो उसे रखने में वह अपने तर्कों और विलक्षण बुद्धि का एक एक कोना खोलकर सामने रख देता। समय पर कैसी चोट करना और क्या तर्क रखना, इस दिशा में लिंकन कमाल का आदमी था। एक वकील ने लिंकन के बहस के नोट देखे, जब वह किसी हृदयहीन मुवक्किल के मामले में पैरवी करने को खड़ा था। मुक़दमे के नोट के अलावा उसमें नीचे लिखा था, 'प्रतिवादी की चमड़ी उधेड़ दो'। इलीनायस के वकीलों में यह घटना बहुत दिनों तक चर्चा का विषय बनी रही। इसी तरह एक युवक को—जो वकील बनना चाहता था, परन्तु इससे हिचक रहा था कि इस धंधे में थोड़ा-बहुत बेईमान तो बनना ही पड़ता है—लिंकन ने समझदारी और सच्चाई के साथ लिखा कि "तुम्हारा कानून के बारे में यह भ्रम गलत है!" परन्तु अंत में उसे समझाया कि यदि वह यह सोचता हो कि कानून का पेशा उसे धूर्त और बदमाश बना देगा तो उसे इस व्यवसाय में हाथ नहीं डालना चाहिए।

ऐसे ही एक-दो दिलचस्प मुक़दमे हैं, इसलिये दिलचस्प नहीं कि लिंकन ने उन्हें सम्हाला था। उसने बिना किसी तरह की फीस लिये अपने पुराने प्रतिद्वन्द्वी और मित्र जेक अन्डरसन और हन्ना का मुक़दमा—जिसने उसके पायजामे

में पेबन्द लगाये थे—लड़ा था। उनके लड़के पर हत्या का अभियोग लगाया गया था। छः गवाहियों ने सौगन्ध खाकर बयान दिया कि अमुक रात को अमुक स्थान पर रात के ग्यारह बजे उन्होंने अभियोगी को हत्या करते देखा था। जिरह हुई। उन्होंने बताया कि उन्होंने उसे स्पष्ट देखा। वे उसे साफ़-साफ़ इसलिए देख सके, कि चांदनी रात थी। बचाव पक्ष की ओर से सबूत में केवल पंचांग प्रस्तुत किया गया और बताया गया कि उस रात को चांद निकला ही नहीं था। दूसरा मामला बड़ा दिलचस्प है। दो युवकों ने एक खेत ठीक किया, और एक गरीब बूढ़े किसान से हल और घोड़ों की जोड़ी खरीद लाये। लिंकन के इन मुवक्किलों ने उसे पैसा नहीं चुकाया। मुकदमा चला। जिस समय उन्होंने कर्ज लिया था, उस समय उनकी उम्र २१ वर्ष से नीचे थी। उन्हें कहा गया कि वे अपने आपको नाबालिग बतायें। अदालत में मौजूद एक दर्शक ने इस सारे दिलचस्प मामले का आँखों-देखा हाल बताया। उसने बताया कि इस शरारतभरी कहानी का एक-एक तथ्य सामने आने लगा और लिंकन कुर्सी में आराम से बैठे हुए हर तथ्य और कानूनी मुद्दे के रखने पर यह कहते थे; "हाँ, मैं यह मानता हूँ।" अंत में जब जूरी के सदस्यों को संबोधित करने का समय आया, लिंकन अपनी कुर्सी से उठा, कपड़े सम्हाले और उन दो युवकों पर दयादृष्टि डालते हुए जूरी के सदस्यों से कहने लगा—"जूरी के सम्माननीय सभासदों! क्या आप इसके लिए तैयार हैं कि ये दो युवक, जो शीघ्र अपने जीवनक्षेत्र में प्रवेश करनेवाले हैं, अपने भावी जीवन पर सदा के लिए बेईमानी का कलंक लादे फिरते रहें।" इस तरह उसने शेक्सपियर के ढंग की कई नाटकीय दलीलें ईमानदारी व दया के बारे मे पेश कीं। इस भावनापूर्ण तर्क का नतीजा भी स्पष्ट था, वे दोनों छोड़ दिये गये। कोई भला दूसरा जूरी होता, तो इस अपील के विरुद्ध दृढ़ रहता और उस वृद्ध गरीब किसान को रकम लौटाने पर जोर देता। ऐसी सरल परन्तु सामयिक सूझ-बूझ बहुत ही कम महान व्यक्तियों में मिलती है। हम यहाँ भी इस मामले में लिंकन की चालाकी प्रस्तुत करने का मोह नहीं रोक पाये, यद्यपि इसमें गंभीरता नहीं है। हम उसके नोट और अन्य सूत्रों से जान सकते हैं कि कैसे उसने इन दो युवकों को दया का पात्र मान कर ही कानूनी सहायता दी, जिससे वे पतन की ओर नहीं गिरे। दया के पात्र ये दो व्यक्ति उस किसान से कहीं अधिक थे, क्योंकि उसे केवल कुछ डालर ही खोने पड़ते, जबकि इनका जीवन ही कलुषित हो जाता। लिंकन को उन युवकों के कारण सचमुच ही दुःख हुआ

और उसने उसे वहीं प्रकट भी कर दिया। उसमें यह सहानुभूति इतनी स्वाभाविक थी कि उस समय लगभग ऐसे एक दर्जन व्यक्ति तैयार हो गये, जो उस किसान को ढूँढ़ लाने और पैसा चुकाने को तैयार थे। यह साफ झलकने लग गया था कि बाद में उसकी शक्ति का सबसे प्रमुख कारण यह था कि उसे लोगों के मानसिक वातावरण का पूरा पूरा अध्ययन हो चुका था।

इस तरह यदि किसी भी उदात्त चरित्र का हम विश्लेषण करने लगे और यह ज्ञात करना चाहें कि उसका किस तरह विकास हुआ, तो हम सही लक्ष्य को नहीं पा सकेंगे। परन्तु कुछ भी हो, यह साफ है कि अब्राहम लिंकन १८४९ में राजनैतिक जीवन से विरक्त हो गया। उस समय वह ख्यातिप्राप्त, स्वाध्यायी तथा गम्भीर विचारशील व्यक्ति था, परन्तु इतना अधिक विकसित नहीं कि उसके समकालीन व्यक्तियों से वह ऊपर उठा हुआ हो। अचानक ही आह्वान आने पर उसने १८५४ में पुनः राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। उस समय उसमें एक असामान्य गुण पैदा हो गया था, जिसके साथ उसके गंभीर विचार भी जुड़े हुए थे।

[४]

मिसूरी-समझौते में संशोधन

दक्षिण इस समय ऐसे राजनीतिज्ञों के चंगुल में फँस गया था जिनमें कतिपय ख्यातिप्राप्त व कुशल व्यक्ति भी थे, परन्तु उन्होंने वहाँ के लोगों के स्वाभाविक अन्धविश्वास को एक विचारधारा का रूप दे दिया—ऐसी विचारधारा जो अस्वाभाविक और संकीर्ण थी। ये लोग—जैसा कि ऐसे मामलों में स्वाभाविक ही है कि वह भ्रष्ट और वहशीपन का रूप ले ले—इस विचारधारा को व्यवहारिक रूप देने का कौशल भी नहीं जानते थे। इसके विपरीत उत्तर में—यद्यपि कुछ राजनीतिज्ञ सतर्क और नेक इरादेवाले भी थे—जनमत का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था और अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करनेवाले लोग निम्न स्तर के थे। ऐसे समय में किसी भी सामान्य साहस वाले व्यक्ति के लिए यह बहुत अच्छा अवसर था और वह उसका लाभ भी उठा सकता था।

स्टेफन डगलस, जो लिंकन से चार वर्ष छोटा था, पूर्वी राज्यों से आकर उन दिनों इल्लीनायस में बसा गया। जब लिंकन धारासभा का सदस्य चुना

गया। उस समय न तो उसके पास पैसा ही था और न उसके कोई मित्र ही थे। परन्तु उसने शीघ्र ही अपने-आपको आगे बढ़ाने की प्रवृत्ति के कारण धारासभा में क्लर्क की जगह पा ली। लिंकन की तरह वह शीघ्र भी ही वकील और धारासभा का सदस्य बन गया। वह डेमोक्रेटिक दल का सदस्य था और १८४७ में इल्लीनायस से सीनेट का सदस्य चुन लिया गया। सीनेट में वह सीमाक्षेत्र-सम्बंधी समिति का अध्यक्ष बना और इस नाते उसे मिसूरी के पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी जिले कंसास और नेब्रास्का में सरकार बनाने के काम को देखना पड़ा। इन क्षेत्रों में मिसूरी समझौते के अनुसार दास-प्रथा पर रोक लगा दी गयी थी। डगलस कुछ अराजक प्रवृत्ति का था और एक बार ब्रिटिश कोलंबिया के प्रश्न को लेकर ब्रिटेन से युद्ध तक के लिए आमादा हो गया था। उसका छोटा कद स्फूर्ति और शक्ति से भरा था। लोग उसे 'नाटा दैत्य' कहने लगे थे। उसमें कोई महान गुण नहीं था। इसके विपरीत वह एक सामान्य तेजतर्रार भाषण देनेवाले की तरह था, जिसके भाषणों में सिद्धान्तहीन, निर्लज्ज, सस्ती भावनाएँ रहती थीं। साथ ही वह पार्लियामेन्ट्री ढंग का वक्ता भी था और उत्तर के लोगों पर तथा सीनेट पर उसी तरह छा गया, जिस तरह वह इल्लीनायस के लोगों पर छाया था। निस्संदेह वह उल्लेखनीय व्यक्ति था और उसमें लोगों को आकर्षित करने का गुण भी था। उसके एक राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी ने बताया कि पहली ही दृष्टि में डगलस उसे एक खतरनाक मक्कार की तरह परन्तु शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी के रूप में दिखायी दिया। परन्तु एक महिला श्रीमती बीचर स्टोव की यह धारणा थी कि डगलस से घृणा की जाय ऐसी कोई बात नहीं थी। उसने जो कुछ किया, वह एक खिलाड़ी की भावना से किया।

१८५४ के दिनों में जब कंसास में सरकार-गठन का विधेयक तैयार करने का काम उसके हाथों में था, उसने उसे दूसरा रूप दे दिया। विधेयक में कंसास और नेब्राइस्का के लोगों को यह अधिकार दिया गया कि वे जब चाहें तब यह निर्णय कर सकते हैं कि दास-प्रथा को स्वीकार किया जाय या नहीं। इस तरह खुले रूप में मिसूरी समझौते को संशोधित कर दिया गया। तत्कालीन राष्ट्रपति पिरसे का प्रभाव, दक्षिणी सदस्यों के उत्साहवर्धक समर्थन और अपने लच्छेदार भाषणों के द्वारा उसने इसे पास भी करवा दिया।

यह बात कैसे संभव हुई, उसके कारण अस्पष्ट हैं। परन्तु इसके पीछे जो लक्ष्य था, वह साफ नज़र आ गया। डगलस के लिए किसी भी सिद्धान्त

पर बने रहने का सवाल ही नहीं उठता, वह उस साहसी व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखने लगा, जो अचानक ही बड़ा आदमी बन जाता है। उसने इस बात की कोई परवाह नहीं की कि नीग्रो गुलाम बने रहें अथवा स्वतंत्र हों, और इस मामले में उसने दक्षिणी व उत्तरी राज्यों की भावनाओं के साथ समान रूप से खिलवाड़ किया। जैसा-कि उसने खुद इस मसले पर साफ़-साफ़ कहा कि जहाँ तक नीग्रो और गोरे लोगों के बीच का सवाल है, वह गोरे लोगों के साथ है, और जहाँ तक नीग्रो और नरभक्षी मगरों का सवाल है, वह नीग्रों के साथ है। डगलस ने पश्चिमी राज्यों की राष्ट्रीय परम्परा के विकास की ओर समुचित ध्यान दिया और इस दिशा में देशभक्तिपूर्ण विचारों से अनुप्रेरित रहा। उसे शायद यह संतोष हुआ होगा कि अब उत्तरी व दक्षिणी राज्यों के वहाँ जाकर बसनेवाले लोग राष्ट्रीयता में समान स्तर के रहेंगे और वहाँ की गोरी बस्तियों की स्वतंत्रता पर कोई अंकुश नहीं रहेगा। कुछ भी हो, उसका यह काम सिद्धान्तहीन और अटपटा साबित हुआ। १८५० में उत्तरवासी यहाँ तक तो तैयार थे कि वे अपने भूतपूर्व सिद्धान्तों पर इस तरह किये गये आक्रमण को शांति से बर्दाश्त कर सकते, परन्तु उस पवित्र कानून में—जिसमें उनके सिद्धान्त निहित थे—हाथ डालना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। फलस्वरूप उत्तेजनात्मक वातावरण बनना स्वाभाविक ही था। इससे शीघ्र ही दुहरे नतीजे निकले। पहले तो कंसास में दक्षिणी लोग भारी संख्या में बसने के लिए पहुँचे। बाद में उत्तरी लोग और भी अधिक संख्या में वहाँ जा पहुँचे (इस मामले में उन्हें उत्तर-पूर्व में बनी आव्रजन संस्था से अच्छी सहायता मिली)। पहले-पहल तो इन लोगों में यह होड़ लगी रही कि कन्सास को स्वतंत्र राज्य अथवा दासप्रथावाला राज्य बना लिया जाय। परन्तु जब यह दिखने लगा कि स्वतंत्रता के समर्थक अधिक संख्या में हैं, तो वहाँ उत्तरी और दक्षिणी लोगों में प्रादेशिक सरकार पर अधिकार प्राप्ति करने की दिशा में गृहयुद्ध-सा छिड़ गया और यह संघर्ष शरारतपूर्ण और हिंसक तौर पर तीन या चार वर्षों तक चलता रहा।

दूसरी मुख्य बात यह हुई कि दल-पद्धति में इन दिनों क्रान्ति पैदा हो गयी। पुराना 'विग' दल चाहे उसकी प्रवृत्ति कैसी ही रही हो, दासप्रथा-सम्बंधी मसले को सैद्धान्तिक स्वरूप देने से टालता रहा। अब उसके मरने की घड़ी आ चुकी थी। इसके पहले भी एक बार यह प्रयत्न किया गया था, विशेषकर डेमोक्रेटिक दल वालों की ओर से कि एक 'स्वतंत्र-भूमि' नाम का नया दल बनाया जाय।

परन्तु यह सफल नहीं हुआ। अब की बार उत्तर के कतिपय पुराने 'विग' दली सदस्यों और डेमोक्रेटिक दल से अलग होनेवाले सदस्यों के बीच स्थायी कड़ी कायम की जा सकी और इस तरह एक नये दल—'रिपब्लिकन' दल—का जन्म हुआ। यह संगठन इसी नाम से आज तक काम कर रहा है। उस समय उसका सरल और सीधा सिद्धान्त यही था कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका की भूमि में मौजूद या भविष्य में मिलनेवाले प्रदेशों में दास-प्रथा को आगे के लिये गुंजाइश नहीं दी जाये। परन्तु ऐसे लोगों के लिये जो न तो डेमोक्रेट बनना चाहते थे और न रिपब्लिकन ही जो इस तरह के विचारों को अशुभ मान कर दूर रहना चाहते थे, उन्हें एक अजीब नये दल में शरण मिली, जिसका दास-प्रथा के बारे में किसी भी तरह का कोई दृष्टिकोण नहीं था। यह एक 'अमरीकी' ढंग का दल था, जिसे लोग 'कुछ नहीं जाननेवाले दल' के नाम से पुकारते थे; क्योंकि इसका संगठन मजाकिया और गुप्त ढंग से संचालित होता था। इसका सिद्धान्त था विदेशी आव्रजकों से घृणा करना, विशेषकर वह भी रोमन केथोलिक लोगों के प्रति। इन लोगों में भूतपूर्व राष्ट्रपति फिलीमोर भी शामिल होकर अपने समय की मूर्खता सिद्ध कर बैठे। जबकि मनुष्य को दास प्रथा जैसे मसले पर हाँ अथवा 'नहीं' कहने का साहस होना चाहिए, उन्होंने उससे- बचने के लिये यहाँ शरण ढूँढी। ये राष्ट्रपति-पद के लिए इस दल के उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए।

रिपब्लिकन दल के जन्मदाता के रूप में १८५४ में लिंकन ने पुनः राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया। परन्तु इस स्थान पर दल-सम्बंधी दो एक घटनाओं की चर्चा कर लेनी चाहिए, यद्यपि लिंकन का उनसे कोई विशेश सम्बंध नहीं है। रिपब्लिकन दल ने १८५६ में राष्ट्रपति पद के लिए दक्षिणवासी आकर्षक व्यक्तित्ववाले जान फ्रेमोंट को अपना उम्मीदवार चुना। फ्रेमोंट ने ओरेगान में साहसिक व महत्वपूर्ण सफल अनुसंधान किये थे। इस व्यक्ति का मेक्सिको से केलिफोर्निया प्राप्त करने में भी कुछ हाथ था, (कदाचित् बहुत ही महत्वपूर्ण हाथ) और केलिफोर्निया को दास-प्रथा-रहित स्वतंत्र राज्य बनाने में इसने प्रमुख भाग लिया था। डेमोक्रेटिक दलवालों ने सदा की तरह इस बार भी उत्तर को मोहरा बनाया और पेन्सील्वेनिया के जेम्स बुकैनन जैसे संभ्रान्त वृद्ध पुरुष को राष्ट्रपति पद के लिये अपना उम्मीदवार चुना। इनके बारे में यह समझा जाता था कि ये ऊँचे कूटनीतिज्ञ व सरकारी मामलों के जानकार थे। पिरसे की अपेक्षा यह और भी अधिक उल्लेखनीय साबित हुए। इसके

बारे में प्रचलित सभी मैत्रीपूर्ण प्रशंसाओं का समवेत गायन यही बताता है कि इनके सभी कामों से कमजोरी टपकती थी।

बुकैनन राष्ट्रपति चुन लिया गया। परन्तु नया दल होते हुए भी रिपब्लिकन पार्टी ने कड़ा मुकाबला किया। उस समय उनमें अपूर्व चेतना थी, जबकि १८५७ में बुकैनन द्वारा काँग्रेस के उद्घाटन के बाद ही इस दल पर विपदा का पहाड़ टूट पड़ा; वह भी उस क्षेत्र से जहाँ से कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायाधीश और अन्य बहुत से न्यायाधीशों ने यह घोषणा की कि गणराज्य की भूमि के किसी भी कोने में दास-प्रथा पर प्रतिबंध लगाना संविधान के सिद्धान्तों के विपरीत है। इस तरह की भविष्यवाणी आठ या दस वर्ष पहले कोल्हन ने भी की थी। रिपब्लिकन दल के तो सारे सिद्धान्त ही दास-प्रथा-समाप्ति पर आधारित थे। यह निर्णय उन पर करारी चोट साबित हुआ।

ड्रेड स्काट नाम का एक मिसूरी दास था। उसकी यह दुर्भाग्यपूर्ण कहानी अमरीकी कानून के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना बन गयी। स्काट के नये मालिक ने उसे सपरिवार मुक्त कर दिया। मिसूरी समझौते में संशोधन के कुछ समय पहले उसका यह मालिक उसे एक बार मिन्नेसोट ले गया। वहाँ उसने यह अधिकार जताया कि 'मिसूरी समझौते' के अंतर्गत वह स्वतंत्र व्यक्ति हो गया है। गणराज्य की अदालत में उसने अपने मालिक पर मुकदमा चलाने के अधिकार को जताने के लिए यह दलील रखी कि वह अब मिसूरी का नागरिक है, जब कि उसका मालिक दूसरे राज्य का है। इस तरह बुनियादी तौर पर पहले यह फैसला किया जाना था कि क्या वह नागरिक था। उसके बाद ही यह सवाल उठाया जा सकता था कि क्या वह स्वतंत्र था। यदि अदालत अपनी पद्धति के अनुसार काम करती और उसके नागरिक होने के दावे को अस्वीकार कर देती, तो दूसरा मसला जिसमें जनता की अभिरुचि थी उठता ही नहीं।

सर्वोच्च न्यायाधीश रेगे टैने—जैसाकि उनके चित्र और उनके प्रसिद्ध फैसलों की सीधी भाषा से पता चलता है—काफी उल्लेखनीय व्यक्ति थे। इस समय उनकी आयु ८३ वर्ष की थी, परन्तु उनकी बौद्धिक शक्ति में कहीं कोई शिथिलता नहीं थी। इस फैसले में उनके पाँच सहयोगी न्यायाधीशों ने पक्ष में तथा दो ने विपक्ष में राय प्रकट की। फैसले के अनुसार ड्रेड स्काट नागरिक नहीं माना गया। यदि यहीं तक यह निर्णय सीमित रहता तो ठीक था, परन्तु परिपाटी के

विपरीत न्यायाधीशों ने यह भी घोषणा कर दी कि 'मिसूरी समझौता' संविधान के विपरीत है और गैरकानूनी है। दो न्यायाधीश मेकलीन और कर्टिस ने टैने के तर्कों का सारगर्भित गम्भीर उत्तर दिया जो युक्तिसंगत भी था। उस समय बहुत से वकीलों की यही राय थी और 'अक्लमंद फिलीमोर' भी इसी पक्ष के थे। ऐसे मामले बहुत ही कम हुआ करते हैं, जिन पर सामान्य व्यक्ति भी अपनी राय दर्शाये। ड्रेड स्काट का मामला भी इसी तरह का था। टैने ने अपने फैसले का आधार पूर्णतया ऐतिहासिक रखा और नीग्रो व उनकी दासता के बारे में अपनी राय संविधान और स्वाधीनता की घोषणा के निर्माताओं के दृष्टिकोण से प्रस्तुत की। जहाँ तक स्काट की नागरिकता का प्रश्न था, टैने के अनुसार संविधान रचनेवालों ने हब्शी को मनुष्य नहीं माना और मनुष्य, व्यक्ति और नागरिक की परिभाषा में कहीं उसका उल्लेख भी नहीं किया। इसका मतलब यह कि नागरिकों व मनुष्यजाति में हब्शी लोग शुमार नहीं हैं। हम देख चुके हैं कि इस दृष्टिकोण से वह सही नहीं था। एक दक्षिणी इतिहासकार ने जिसने घोषणापत्र के शब्दों को 'स्वयंसिद्ध असत्य' ठहराया, वह टैने से कहीं अधिक सही था। एक और मजेदार बात इसके साथ जोड़ी जा सकती है। संविधान, जिसके रचयिता—टैने के मत के अनुसार—नीग्रो को नागरिक नहीं ठहराते हैं, कतिपय ऐसे राज्य थे, जहाँ नीग्रो को नागरिकता के अधिकार प्राप्त थे। इसी तरह की कई स्पष्ट दलीलें इस बारे में प्रस्तुत की जा सकती हैं कि उसने 'मिसूरी समझौते' को संविधान के विपरीत ठहराया, वह सही नहीं था; परन्तु इतना ही कहना यहाँ काफी है कि जब संविधान बना तो पहले चार राष्ट्रपति इस विश्वास के अंतर्गत काम करते रहे कि काँग्रेस को यह पूर्ण अधिकार है कि वह अपने प्रदेशों में दास-प्रथा को जारी रखे अथवा नहीं। पाँचवें राष्ट्रपति जान क्वीन्सी एडम ने 'मिसूरी समझौते' के सिद्धान्त सम्बधी कानूनों को जब हाथ में लिया तो उसने संवैधानिकता के प्रश्न पर सारे मन्त्रिमंडल से विचार विमर्श किया और उनकी स्वीकृति के बाद उन पर हस्ताक्षर किये। बाद में पोल्क ने भी इसी दृष्टिकोण से काम लिया। इस तरह ड्रेड स्काट सम्बंधी फैसले से यह अंदाज लगाया जा सकता है कि दक्षिण की मूर्खतापूर्ण विचारधारा का प्रवेश कितना गहरा हो चला था।

टैने को अपने फैसले के प्रति जनमत से सराहना पाने की आशा थी, वह व्यर्थ रही। उक्त फैसले के कारण भयकर उत्तेजना फैल गयी। फैसले में जिन छः न्यायाधीशों ने स्वीकृति दी, वह अन्य आधारों पर निर्धारित थी।

परन्तु रिपब्लिकन दल वालों की—जो सदा ऐतिहासिक परम्परा की दुहाई देते थे—इस फैसले के कारण ऐसी भयावह स्थिति हो गयी कि उनका सारा राजनीतिक मंच, विचारधारा और सिद्धान्त ही अवैधानिक हो गये। बहुत दिनों बाद निस्संदेह टैने ने स्वतंत्रता के हित में सहयोग दिया। उसने इन दुर्भाग्यपूर्ण व्यक्तियों के बारे में अपनी हार्दिक सहानुभूति की भावना प्रकट करते हुए यह मत व्यक्त किया कि उसने इनके बारे में पुरानी धारणाओं से काम लिया था। परन्तु वह इसमें असफल रहा और इसके विपरीत वह यह सिद्ध करने में सफल रहा कि संविधान के अनुसार दास कुछ नहीं, परन्तु बेचने-खरीदने की चीजें हैं। यह एक ऐसा आतंक था, जो उसके देशवासी हजारों नर-नारियों के उदार हृदयों पर छा गया। कुछ समय के लिए रिपब्लिकन दल में निराशा छा गयी और उसके बाद वे एक दूसरी उलझन में पड़ गये। कन्सास राज्य में वहाँ के बहुमत द्वारा दास-प्रथा अस्वीकार कर देने के बाद भी दासव्यवस्था लागू करने का प्रयत्न किया गया। (इस पर विस्तार से बाद में चर्चा की जायेगी) इस प्रयत्न के विरुद्ध डगलस ने—जिसके विरुद्ध ही रिपब्लिकन पार्टी का जन्म हुआ था—अपनी पुरानी प्रतिष्ठा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और इस अवसर पर वह स्वतंत्रता के समर्थन मे मुखिया बन कर आगे आ गया। राजनीति के इसी उलझनभरे अंधकारमय युग में अब्राहम लिंकन की यह जीवन-कहानी सारे अमरीकी जनजीवन की कहानी बन गयी।

पाँचवा अध्याय

लिंकन का उत्थान

[१]

राजनीतिक जीवन में पुनः प्रवेश

हमारे सामने लिंकन का एक चिरपरिचित पत्र है जिसमें उसने राजनीति के बारे में अपना हृदय खोल कर रख दिया है। यह उस समय लिखा गया था, जब पुराने राजनीतिक सम्बंध पूरी तरह नहीं टूटे थे और नये गठबंधनों का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया था। यह पत्र उसने अपने एक पुराने प्रिय मित्र को लिखा था जो राजनीति में उसका सहयोगी नहीं था। हम उसे यहाँ प्रस्तुत करने जा रहे हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि इस संकट के युग में उसका मत क्या था। लिंकन के संघर्षरत दृढ़ विचारों का यह पत्र अच्छा परिचय प्रदान करता है।

"२४ अगस्त, १८५५

"—जोशुआ स्पीड,

"तुम यह जानते हो कि मैं पत्र-व्यवहार के मामले में कितना पिछड़ा हुआ हूँ। जबसे मुझे तुम्हारा २२ तारीख का पत्र मिला, मैं पत्र लिखने का विचार कर ही रहा था। तुमने सुझाया है कि अब राजनीतिक क्षेत्र में हम एक दूसरे से अलग हो जायेंगे। मैं भी यही महसूस करता हूँ, परन्तु इतना अधिक नहीं जितना कि तुम सोचते हो। तुम जानते हो कि मैं दासप्रथा पसन्द नहीं करता हूँ और तुम खुद भी उसकी नग्न बुराइयों को स्वीकार करते हो। यहाँ तक मतभेद का कोई कारण नहीं है। परन्तु तुम यह कहते हो कि दासों को अपने कानूनी अधिकार देने के बजाय—विशेषकर उन लोगों के कहने से जिनकी इसमें जरा भी रुचि नहीं है—तुम गणराज्य का भंग होना अधिक पसन्द करोगे। मैं नहीं जानता कि कौन तुम्हें इस अधिकार को छोड़ देने के लिए बाध्य कर रहा है। निश्चय ही,

मैं तो नहीं। मैं यह सारा मामला तुम पर ही छोड़ता हूँ। संविधान के अनुसार मैं दासों के प्रति तुम्हारे अधिकार और अपने कर्त्तव्यों को भी स्वीकार करता हूँ। मैं सौगंधपूर्वक कहता हूँ कि मैं इन असहाय गरीबों को शिकार होते देख, उन्हें पकड़े जाते और कोड़ों की मार और असहनीय मजदूरी पर वापस ढकेले जाते देख नफरत से भर उठता हूँ, परन्तु गुस्सा पीकर चुप रह जाता हूँ। १८४१ में मैंने और तुमने दोनों ने नदी में लुइविले से सेंट लुई तक स्टीम-बोट में कमरतोड़ यात्रा की थी। तुम्हें भी वह याद होगी, जैसा कि मुझे आज भी याद है कि हमारी नाव पर लोहे की बेड़ियों और जंजीरों से कसे दस या बारह दास भी थे। वह दृश्य आज तक मेरे हृदय को कुरेदता रहता है और जब भी, मैं ओहायो अथवा किसी भी दास-प्रथा वाले राज्य का तट छूता हूँ, तब मुझे उसी तरह के दृश्य देखने को मिलते हैं। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है कि तुम ऐसी धारणा मेरे बारे में बना लो कि इस चीज से मेरा कोई वास्ता नहीं है, जबकि दास-प्रथा की ये घटनाएँ इतनी शक्तिशाली हैं कि मेरी बुरी स्थिति हो जाती है। तुमको तो बल्कि इस बात के लिए उत्तर वालों की सराहना करनी चाहिए कि वे अपनी भावनाओं का केवल संविधान और गणराज्य में वफादारी बनाये रखने के लिए कितना बलिदान कर रहे हैं। मैं दास-प्रथा को बढ़ाने का विरोध करता हूँ क्योंकि मेरी भावनाएँ और मेरा निर्णय मुझे ऐसा करने को प्रेरित करते हैं और इसके लिये मैं देश के किसी भी बंधनों से नहीं बँधा हूँ। इसके कारण यदि तुम्हारे और मेरे बीच मतभेद होता है तो ठीक है, यह मतभेद होना चाहिए।......

"तुम कहते हो कि कन्सास स्वतंत्रतापूर्वक दासप्रथा-हीन राज्य के पक्ष में मत देगा। एक ईसाई के तौर पर तुम्हें इससे खुशी होनी चाहिए। सभी भले व्यक्ति, जो दासों के स्वामी हैं, इसी तरह की बातें करते हैं और मैं उनकी सज्जनता के प्रति शंका नहीं करता हूँ, परन्तु ये लोग इस बात को आधार मान कर कभी मत नहीं देंगे। यद्यपि किसी निजी पत्र या बातचीत के दौरान में तुम खुद इस बात को महत्व दोगे कि कन्सास स्वतंत्र राज्य हो, परन्तु तुम उस व्यक्ति को काँग्रेस में भेजने के लिए मत नहीं दोगे, जो खुले आम यही बात कहेगा। दासप्रथा-वाले राज्यों से ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं चुना जा सका। .... तुम्हारे बीच ही दासों की नस्ल बढ़ाकर उन्हें पालनेवाले दासों के व्यापारियों का एक छोटा-सा, घिनौना और समाज से अलग वर्ग है। राजनीति में यही लोग तुम्हारा मार्ग निर्धारित करते हैं मानों पूरी

तरह तुम्हारे स्वामी हैं, ठीक उसी राह जिस तरह तुम अपने नीग्रो दासों के मालिक हो।

"तुमने मुझसे पूछा कि मेरा राजनैतिक मत इन दिनों क्या है? मैं कहाँ खड़ा हूँ? मैं सोचता हूँ कि मैं 'विग' दली हूँ। परन्तु दूसरे लोग कहते हैं कि अब 'विग' दल जैसी कोई चीज नहीं है और मैं दासप्रथा-समाप्ति-आंदोलनकारी हूँ। जब मैं वाशिंगटन में था, मैंने लगभग चालीस बार विल्मोट प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया और मैंने यह कभी नहीं सुना कि इस के लिए मुझे 'विग' दल छोड़ने को कहा गया हो। आजकल मैं दासप्रथा-वृद्धि के विरोध के अलावा कुछ नहीं करता हूँ। मैं 'कुछ नहीं जानने'वाली संस्था का सदस्य नहीं हूँ, यह निश्चित है। मैं बन भी कैसे सकता हूँ? यह कैसे सम्भव हो सकता है कि कोई आदमी जो नीग्रो के प्रति किये जानेवाले अत्याचारों से घृणा करता हो वह गोरे लोगों के इस पतित वर्ग के पक्ष में हो जाय? मुझे प्रतीत होता है कि पतन की ओर बढ़ने की हमारी गति तेज़ हो गयी है। एक राष्ट्र के तौर पर हमने यह घोषणा की थी कि सभी व्यक्तियों को भगवान ने समान बनाया है। आजकल हम व्यवहार में यह पढ़ते हैं कि 'सभी समान हैं' केवल नीग्रो को छोड़कर।' परन्तु जब 'कुछ नहीं जानने वालों' के हाथ सत्ता आयेगी, तो यह घोषणा इस तरह पढ़ी जायेगी—"सब लोगों को भगवान ने समान बनाया है—केवल नीग्रो और रोमन कैथोलिक लोगों को छोड़कर।" जब ऐसा दिन आयेगा तो मैं यह पसन्द करूँगा कि किसी दूसरे देश में जा रहूँ जहाँ लोग स्वतंत्रताप्रेमी होने का बहाना नहीं करते हों।—मसलन रूस में, जहाँ तानाशाही स्पष्ट रूप में है और उसके पीछे कोई निम्न स्तर का ढोंग भी नहीं है। अक्टूबर माह में मेरी शायद एक-दो दिन के लिए मेरीविले आयेगी। श्रीमती स्पीड के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। इस पत्र के प्रमुख विषय पर मुझे तुम्हारी अपेक्षा उनकी सहानुभूति अधिक प्राप्त है, तथापि मैं हूँ, तुम्हारा चिर मित्र—अब्राहम लिंकन"

यह पत्र, जिसमें संदेह की झलक दिखायी पड़ती है, राजनैतिक दलों के गठन और राजनैतिक शक्तियों के दलबंदी के बारे में है, लेकिन लिंकन के सिद्धान्तों के बारे में कतई नहीं, जो उसके क्रियाकलाप के आधार हैं। उसने खुद यह उल्लेख किया है कि 'मिसूरी समझौते' में संशोधन का अर्थ यह है कि वह और दृढ़ता के साथ राजनीतिक क्षेत्रों में डट जाय। इसके साथ हम उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को भी जोड़ सकते हैं। उसके हृदय में जो विचार-

धाराएँ जड़ जमा चुकी थीं, इस कारण लिंकन शांत नहीं बैठ सकता था। वे उसे शीघ्र ही तेजी से काम करने को प्रेरित कर रही थीं। पिछले दिनों उसने राजनीतिक संगठनों में जो वादविवाद का अनुभव प्राप्त किया था, उसका उपयोग अब उस कार्य के लिए किया जा सकता था, जो उसकी सूझबूझ और हार्दिक भावनाओं के अनुकूल था।

१८५४ के बाद हम लिंकन को राजनीतिक सम्मेलनों, सार्वजनिक सभाओं, पत्र-व्यवहार व आपसी गुप्त सलाह-मशविरे में व्यस्त पाते हैं। केवल एक ही लक्ष्य उसके सामने था—इल्लीनायस में और जहाँ तक अवसर मिले, पड़ौसी राज्यों में भी रिपब्लिकन दल के आंदोलन को शक्तिशाली बनाना। १८५४ से १८५८ के बीच में उसने कई सर्वोत्तम भाषण दिये जिनमें से कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। तथापि इन वर्षों में उसके काम का प्रमुख अंग नेपथ्य में ही किया गया और यही उसके उस भाग्य के रूप में जारी रहा जिसने उसे अपना अस्तित्व मिटा देने का निमन्त्रण दिया।

इल्लीनायस में उसने प्रमुख नेता बनने के लिए किस तरह कड़ा परिश्रम किया, इसकी बारीकियों में जाना जरूरी नहीं है। केवल दो उदाहरण चुन लेते हैं जो उस परोपकारी, कार्यकुशल व्यक्ति के तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। पहली मिसाल बहुत छोटी है और केवल उसकी दक्षता प्रमाणित करती है। स्प्रिंगफील्ड में "कन्जरवेटिव" नामक उदारपक्षी व सभ्य रुचिवालों का एक समाचारपत्र था, जो उन दिनों दास-प्रथा की वृद्धि के पक्ष में धुँआधार प्रचार कर रहा था। पत्र प्रभावशाली भी था। दासप्रथा-समाप्ति संगठन का सदस्य हर्नडन उस पत्र के संचालक का मित्र था। एक दिन उसने लिंकन को दक्षिण के किसी पत्र में प्रकाशित एक लेख बताया, जिसमें दृढ़ता के साथ दासप्रथा को उचित ठहराया गया था, भले ही वे दास गोरे हों या काले। लिंकन ने सोचा कि कितनी अच्छी बात हो, यदि इल्लीनायस के दासप्रथा-समर्थक पत्रों को भी इस सीमा तक पहुँचा दिया जाय। हर्नडन ने शरारत के तौर पर अपने मेलमिलाप का लाभ उठा कर संपादक को उस लेख के प्रकाशित करने के लिए राजी कर लिया। सचमुच में यह ऊँचे दर्जे की पत्रकारिता का साहसिक प्रयोग था, परन्तु 'कंजरवेटिव' को इतना लांछित होना पड़ा कि वह नष्ट हो गया। पत्र के उस सम्पादक के लिए, जिसका हर्नडन में विश्वास था, यह अत्यंत कड़ी सज़ा थी और लिंकन के लिए भी यह शोभा की बात नहीं थी कि उसने यह चाल सुझायी या खुद ने यह चालाकी खेली। परन्तु यह

व्यर्थ-सी बात दो पहलूओं पर अच्छा प्रकाश डालती है। पहली बात यह है कि लिंकन को अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कठोर श्रम के साथ-साथ सतर्क काम करना पड़ता था। उसकी कार्यवाही छोटी-से-छोटी बातों से लेकर बड़ी बातों तक भी उनमें सभी इसी तरह की आलोचना की पात्र नहीं थी परन्तु सतर्कतापूर्ण थी। वह यह काम छोटे-छोटे कार्यकर्त्ताओं के हितैषी और सलाहकार के रूप में सफलतापूर्वक पूरा भी कर लेता था। दूसरी बात यह है कि यदि किसी जीवन चरित् लिखनेवालों को यह काम सौंपा जाय कि वह उस विषय पर कड़े से कड़ा निर्णय लेने वाली सामग्री जुटाये, उसे भी उस जैसे आदमी के लिए जिसकी ख्याति उसकी ईमानदारी के कारण है, परन्तु इस तरह की छोटी-छोटी चालें खेलने में जिसे रुचि थी और उसे इनसे विनोद और आनन्द प्राप्त होता था, इस कार्य के लिए उसे उसके जीवन के सैकड़ों महत्वहीन दृष्टान्तों को कुरेदना पड़ेगा। बात का बतंगड़ नहीं बनाने के लिए इतना ही कह सकते हैं, जैसा कि उसके जीवन के सभी कार्यों का उनकी परिस्थिति के साथ अध्ययन करने के बाद कहा जायेगा, कि लिंकन ने जो 'कंजरवेटिव' पत्र के साथ चाल चली, वह सीधा मार्ग न अपना कर गलत तरीका अख्तियार करने की हद थी। हममें से बहुत से लोग खुश होते यदि जीवन में कभी भी कोई इससे बड़ी बेइमानी नहीं की होती।

दूसरी घटना का विवरण अधिक उल्लेखनीय है। १८५६ में इल्लीनायस के एक सीनेट-सदस्य का कार्यकाल समाप्त हो गया और यह एक ऐसा अवसर था, जब डगलस का प्रतिद्वन्द्वी चुना जा सकता था। इल्लीनायस के पुराने 'विग' जो अब रिपब्लिकन थे, यह चाहते थे कि इस पद पर लिंकन चुना जाय। परन्तु उसके लिये बहुत से 'डेमोक्रेटों' और इधर-उधर बह जाने वाले लोगों को राजी करना पड़ता। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सीनेट सदस्यों को वहाँ के राज्यों की धारासभाएँ चुनकर भेजती हैं जिस तरह कि पोप का चुनाव विभिन्न गिरजाघरों के पादरियों द्वारा किया जा जाता है। मान लो बहुत से उम्मीदवार हैं और जो पहला मतदान हुआ है उसमें यदि किसी को पूर्ण बहुमत नहीं मिला है भले ही उसको अधिक मत मिले हों, तो वह नहीं चुना जायगा। फिर मतदान दुहराया जायेगा, एक दो बार नहीं, कई बार; उस समय तक जबकि किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत न मिल जाय। अंतिम निर्णय उस स्थिति में हो जाता है जब एक उम्मीदवार अपने प्राप्त मत दूसरे उम्मीदवार को दे देता है। ऐसी स्थिति में चतुर और सतर्क जोड़तोड़ बैठानेवाले को अपनी कार्यकुशलता

का शानदार अवसर मिल जाता है। इस चुनाव में कई बार मतदान हुआ और आरंभ में लिंकन को औरों से अधिक मत मिले। उसके समर्थक आशान्वित हो उठे। लिंकन ने देखते-देखते ही गंभीरतापूर्वक अंदर-ही-अंदर एक ऐसी धारा प्रवाहित कर दी जिसके कारण डगलस-समर्थक उम्मीदवार के विजय की संभावना बढ़ गयी। उसने भी यही निर्णय लिया कि इसको रोकने का सर्वोत्तम तरीका यही है कि उसके सभी मित्र शीघ्र ही डेमोक्रेटिक उम्मीदवार लायमन ट्रमबुल के पक्ष में मतदान करें जो दास-प्रथा का कट्टर विरोधी था। उसने अपने समर्थकों को बड़ी कठिनाई से राजी करके अपने लिए प्राप्त अवसर का परित्याग कर दिया। वे पहले इसके लिए कतई तैयार नहीं थे, परन्तु इसने उन्हें मना लिया। लिंकन के एक मित्र ने इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखा कि उसको इतना सच्चा और दृढ़ निश्चयी पहले कभी नहीं देखा गया। वही मित्र आगे लिखता है कि लिंकन के चरित्र की प्रशंसा में यह लिखा जा सकता है कि उसे अपनी व्यक्तिगत निराशा और असफलताओं से जो पीड़ा होती थी वह महान थी। लिंकन ने इस मामले में सही कदम उठाया था। ठीक ऐसा ही कदम उसने प्रतिनिधिसभा के चुनाव के समय पहले उठाया था। फिर इसी तरीके से और इतनी ही करारी चोट से उसे आगामी वर्ष यह मार्ग अपनाना था। बहुत से मामलों में छोटी-छोटी बातों को लेकर आलोचना करना निरर्थक है, जबकि हम यह देखते हैं कि उसने किस चातुर्य्य से तीन बार प्राप्त ऐसे अवसर छोड़ दिये और दूसरे अवसरों पर कड़ी चोट की। यह उसकी कार्यकुशल चतुराई के ज्वलंत उदाहरण हैं।

'चार वर्षों तक', जिनके बारे में हम जिक्र कर रहे हैं, लिंकन का प्रभाव और उसके कार्य इल्लीनायस की सीमा के बाहर नगण्य से रहे। १८५६ के रिपब्लिकन दल के सम्मेलन में जब फ्रिमोंट को राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार चुना गया था, ऐसी संभावना बढ़ गयी थी कि लिंकन को उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिये नामजद किया जायेगा, तब भी उसका महान भाषण इल्लीनायस की सीमा के बाहर तक नहीं पहुँच पाया और उत्तरी राज्यों में उसका नाम बहुत कम लोग जानते थे और वह भी उसे पश्चिम के एक स्थानीय नेता के रूप में। परन्तु १८५८ में उसने समूचे राष्ट्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इल्लीनायस से फिर सीनेट के सदस्य का स्थान रिक्त हुआ। डेमोक्रेटिक दल का एकमात्र उम्मीदवार डगलस था। लिंकन उसके स्पष्ट प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आगे आया। उस समय इल्लीनायस-धारासभा के चुनाव नहीं हुए थे

जो सीनेट सदस्य का चुनाव करती। ये चुनाव भी डगलस और लिंकन की प्रतिद्वन्द्विता के बीच लड़े गये। हेमन्त ऋतु में इन प्रतिद्वन्द्वी नेताओं ने एक ही मंच से सात सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये। जो पहले बोलता, बाद में उसे अंत करने का अवसर मिलता था। ये सभाएं प्रमुख नगरों में खुले स्थानों पर हुईं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अलग-अलग अपनी सभाओं में भाषण देता था; कम से कम प्रतिदिन एक बार। यह क्रम तीन माह तक चलता रहा। अंत में डगलस सीनेट का चुनाव जीत गया और लिंकन को अभी तक रिपब्लिकन नेताओं में भी स्थान नहीं मिला। कुछ भी हो, लिंकन और डगलस की यह प्रतिद्वन्द्विता अमरीका के इतिहास की निर्णायक घटनाओं में से एक है। एक तो यह बात थी कि उस समय यही पहला अवसर था, जब डगलस का किसी ने विरोध किया था, दूसरा लिंकन ने डगलस से प्रतिद्वन्द्विता के दौरान में अपने दासप्रथाविरोधी व राष्ट्रीय एकता के सिद्धान्त समूचे राष्ट्र के सामने भाषणों के रूप में रखे। लिंकन ने खुद चलकर डगलस से अपनी हार ग्रहण की, उसने डगलस को ऐसे प्रश्नों से बाँध लिया जिनके उत्तर देने पर निश्चय ही उसका राजनैतिक अंत हो जाता और इस तरह आगामी चुनाव में उसने अपने भावी को सुनिश्चित कर लिया।

—————[२]—————

लिंकन के सिद्धान्त और उसका वाक्चातुर्य

'मिसूरी समझौते' के संशोधन काल के बाद लिंकन द्वारा सार्वजनिक काम करने की भावना और उसके सिद्धान्तों की यदि हम ध्यान से जाँच करें, तो यह अच्छी तरह समझ सकेंगे कि कैसे अचानक लिंकन राष्ट्रीय महत्व का व्यक्ति बन गया। उस समय नया रिपब्लिकन दल जो खड़ा हुआ उसकी सामान्य विचारधारा केवल यही थी कि दास-प्रथा केवल वहीं बर्दाश्त की जाय, जिन राज्यों में वह जारी है; क्योंकि संविधान व गणराज्य को बनाये रखने की आवश्यकता के कारण यह जरूरी है। परन्तु उसे अपनी मौजूदा सीमा से आगे नहीं बढ़ाया जाय, क्योंकि यह बुनियादी तौर पर गलत है। यह ठीक ऐसी ही बात थी जो उत्तर में 'विग' और बहुत से 'डेमोक्रेट' कहा करते थे। परन्तु इस मसले को लेकर किसी दल द्वारा राजनैतिक मंच तैयार करना और ऐसा दल जिसे अपने सारे सदस्य उत्तर से प्राप्त

करने थे, कठिन काम था। क्योंकि बहुत कम लोगों ने इस मसले पर गंभीरता से कभी शायद ही विचार किया होगा। वह लोग जो दास-प्रथा से घृणा करते थे, सामान्यतया इधर-उधर हो जाते थे, या झुकने के बहाने ढूँढ़ा करते थे, जब कभी उनके सामने यह सवाल रख दिया जाता था कि इससे गणराज्य संकट में पड़ेगा। वह लोग जो गणराज्य को चाहते थे, दास-प्रथा की पेचीदगी से छुटकारा पाने के लिए शायद ही अंतिम दौर में उसे छोड़ने को तैयार हो पाते, या उसे गृहयुद्ध में झोंक कर बचाये रखने की अनिच्छा से ही राजी हो पाते। इस तरह की संघर्षरत भावनाएँ और राजनैतिक जटिलताएँ किसी भी रिपब्लिकन के विश्वास को डिगा सकती थी, जो इस माने में निश्चित नहीं थी कि उसको कितनी चिन्ता गणराज्य की होनी चाहिए और कितनी चिन्ता दास-प्रथा की, और इन दोनों सिद्धान्तों में किसके प्रति पूर्ण वफ़ादारी होनी चाहिए। लिंकन में ऐसे कई गुणों का अभाव था जो एक राजनीतिज्ञ में जरूरी है। वह कई मामलों में भारी भूलें करनेवाला और हिचकिचाहट से काम करनेवाला व्यक्ति था, परन्तु यह लिंकन की ही योग्यता थी कि वह ऐसे गंभीर प्रश्नों पर दुविधा या हिचकिचाहट प्रकट किये बिना ही ऐसे भ्रामक और आतंकभरे वातावरण में भी अपने कठिन मार्ग पर चलता रहा और अपने साथ सामान्य अमरीकी जनता के विचारों को भी उसी ओर ले जाता रहा।

क्ले के औपचारिक स्मृति-दिवस पर उसने अपने छोटे-से भाषण में कहा—"वह अपने देश से प्रेम करता था इसलिए कि यह उसका अपना देश था, और इससे भी बढ़ कर वह इसलिए इससे प्रेम करता था कि यह स्वतंत्र देश था।" वह अपने लिए भी ठीक यही बात कह सकता था। उसके लिए अमरीका की राष्ट्रीयता, जिसे संविधान ने अक्षुण्णता प्रदान की, गौरव और त्याग का विषय था। उस देश ने जिसने मानवता का सही मूल्य-निर्धारण किया और भविष्य में भी इस दिशा में स्पष्ट सिद्धान्तों को प्रसारित किया। इस बारे में वह अपनी अंतरात्मा से पूरा परिचित था। संयुक्त अमरीका को बनाये रखने के लिए—जिसका उसके दृष्टिकोण में अधिक मूल्य था—उदाहरणतया उन व्यक्तियों से जिनके लिए अर्जेन्टायना गणराज्य का मूल्य है—वह किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा इसके लिए महान-से-महान बलिदान करने को तैयार था। परन्तु उसने गणराज्य को ऐसी स्थिति में बनाये रखना भी खुले तौर पर अस्वीकार कर दिया जबकि उसके अनुमान से इसे बनाये रखने के लिए उन

सिद्धान्तों को छोड़ देना पड़ता जिनके आधार पर अमरीका एक स्पष्ट और आत्म-सम्मानित राष्ट्र बन पाया है।

उसे ये सिद्धान्त स्वतंत्रता की घोषणा में मिले। उसकी भाषा के अटपटेपन से लिंकन को कोई कष्ट नहीं हुआ और होना भी नहीं चाहिए था। अब कहीं जाकर वह भाषा बोलचाल की भाषा नहीं रह गयी है। हम वहाँ इस तथ्य में डूब जाते हैं कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना करनेवाले जानबूझ कर ऐसे राष्ट्रीय परिवार की स्थापना करना चाहते थे, जहाँ सामान्य नर-नारियों को अन्य देशों की अपेक्षा अधिक महत्व मिले। हम यह कह सकते हैं कि वे ऐसी सत्ता चाहता थे, जो निम्न स्वार्थ व पतन की भावनाओं के विरुद्ध रहे। उसने कहा—"जनमत का सदा एक केन्द्रीय सिद्धान्त होता है और उसीसे सभी छोटे-छोटे विचार प्रस्फुटित होते हैं। हमारे यहाँ आरम्भ में जनमत का केन्द्रीय सिद्धान्त था—और अभी तक जारी भी है—वह है 'मनुष्य की समानता' और जब कभी भी सचमुच की आवश्यकता पड़ने पर असमानता पैदा हुई, तो इस सिद्धान्त ने सर नहीं उठाया। मनुष्यों की व्यावहारिक समानता लाने की दिशा में दृढ़ और प्रगतिशील कदमों से इसका निरंतर क्रम जारी है।" हमारे पितृगणों की ऐसी असत्य भावना कभी भी नहीं रही कि हमारे यहाँ सचमुच ही समानता थी या वे अपने कामों से शीघ्र ही यह पैदा कर देना चाहते थे, परन्तु उन्होंने एक मापदंड निर्धारित कर दिया था जिसका हमें औसत स्तर तो प्राप्त कर ही लेना चाहिए।"

परन्तु जहाँ तक गोरे लोगों का सवाल था, वे समानता के उस स्तर तक पहुँच गये थे। लिंकन के श्रोतागण पूरी तरह जानते थे कि संयुक्तराष्ट्र अमरीका में हजारों लोगों को अपने ढंग पर जीवन बसर करने का क्षेत्र प्राप्त हुआ है जब कि उनके पितृदेशों में रूढ़ियों, परम्पराओं तथा वहाँ की भौगोलिक स्थिति ने यह अवसर प्रदान नहीं किया। उसे इस तथ्य पर विस्तार से जाने की जरूरत भी नहीं थी। फिर भी उसके कानों में बार-बार अरुचिपूर्ण और खतरे की सूचना की तरह यह माँग सुनायी पड़ी कि यूरोप से यहाँ नये आने वालों या निम्न श्रेणी वालों को हमसे कम रियायतें दी जानी चाहिए।

ऐसे वातावरण में नीग्रो के प्रति स्वतंत्रता और समानता के विचारों को लागू करना सचमुच ही एक बड़ी कठिनाई थी। लिंकन ने कहा—"सभी गोरे लोगों के दिमागों में काले और गोरे व्यक्तियों के बिना किसी भेदभाव के मिश्रण के प्रति स्वाभाविक नफरत है। (हम कदाचित् यह भी जोड़

सकते हैं कि जैसे ही कोई नीच जाति शिक्षा पा लेती है, स्तर में बढ़ जाती है, तो वह भी इसी तरह की घृणा दूसरों से करने लग जाती है, लिंकन स्वयं भी विभिन्न जातियों के अंतर्विवाहों के विरुद्ध था। उसने यह कभी स्वीकार नहीं किया कि मुक्ति देने के साथ ही उन्हें समान राजनैतिक अधिकार भी उसी के साथ मिलने चाहिए। अफ्रीका में दासों को उपनिवेश बनाकर स्वतंत्र रूप से बसाने, और धीरे-धीरे मुक्ति के साथ उनकी शिक्षा प्रदान करना ऐसे विषय थे जिनके प्रति उसका रुख सहानुभूतिपूर्ण था। युद्ध के बाद जो व्यवस्था की गयी उसमें उसे भगवान ने भाग नहीं लेने दिया। रचनात्मक राजनीतिज्ञ के रूप में वह कितना महान योगदान देता इसका अनुमान लगाना कठिन है। फिर भी यह निश्चित है कि वह सतर्कता के साथ आगे बढ़ता और दृढ़ विश्वास और धैर्य बनाये रखता। उसके हृदय में दक्षिण के गोरे लोगों के लिए भी उतनी ही मानवीय सहानुभूति थी, जितनी कि नीग्रो लोगों के प्रति थी, और इसी ने उसे बताया कि समस्या का हल कठिन है। परन्तु जैसी कि समस्या कठिन थी उसके लिए जो हल सुझाया गया वह गलत था। वह हल था 'सदा के लिये गुलामी में प्रसन्नतापूर्वक रहना'। यदि हम उसके भाषणों को देखें, जिसमें उसने बार-बार दुहराकर इस बात का खंडन किया है, तो हमें पता चलेगा कि इस तरह सच्चाई को झुठलाने के प्रयत्नों से वह कितना क्रोधित हो उठता था, विशेषकर दासप्रथा के विकल्प में प्रस्तुत शाब्दिक समानता की चिकनी-चुपड़ी बातों से। "मैं इस बनावटी तर्क का कड़ा विरोध करता हूँ, क्योंकि यह कहा जाता है कि मैं नीग्रो महिला को दासी के रूप में नहीं चाहता हूँ तो अवश्य ही उसे पत्नी के रूप में रखना पसन्द करूँगा। मुझे उसकी इसमें से किसी के लिए भी जरूरत नहीं है। उसे अकेले ही रहने दूँगा। कुछ मामलों में वह निश्चय ही मेरे समान स्तर की नहीं है, परन्तु उसका यह स्वाभाविक अधिकार है कि जिस कड़ी मेहनत के पसीने से जो रोटी उसने कमाई है, उसे वह खा सकती है। इस दृष्टिकोण में वह मेरे बराबर है और किसी भी मनुष्य के बराबर हो सकती है।" अर्थात् जैसे दूसरे मनुष्यों को अपनी पसीने की कमाई, मेहनत का फल भोगने का अधिकार है, उसी तरह का अधिकार नीग्रो को भी होना चाहिए।

लिंकन का कहना था कि जिन लोगों ने गणराज्य को बनाया उनमें से बहुत से दास-प्रथा के बारे में भी ऐसी ही न्यायपूर्ण धारणा रखते होंगे। उसने बताया "वे लोग दास-प्रथा के लिए झुक गये, क्योंकि उस समय ऐसी ही परिस्थिति थी,

परन्तु इससे अधिक वे नहीं झुकाये जा सके।" उस समय, जैसा कि हम जानते हैं, अमरीका को एक राष्ट्र बनाने के लिए सभी राज्यों में दासों को मुक्त करना उनके लिये सम्भव न था—भले ही वे न्यायपूर्ण विचारों से नये राष्ट्र को कितना ही आशान्वित क्यों न बना देते। यह असम्भव था कि दास-प्रथा के बारे में कानून बनाने का राज्यों को जो अधिकार था उसे वे उनसे छीन लेते। जितना अधिकार उन्हें इस दिशा में प्राप्त था उसका प्रयोग उन्होंने दास-प्रथा की समाप्ति की दिशा में किया। हमने स्वयं इस बात को महसूस किया है और लिंकन ने भी लोगों के सामने उसे इसी रूप में रखा। उन लोगों का यह विश्वास होना स्वाभाविक ही था कि अब जितने भी स्वतंत्र राज्य हैं (दासहीन राज्य) उनमें जनमत की प्रवृत्ति दास-प्रथा से मुक्ति की दिशा में रहेगी, परन्तु उनका यह विश्वास गलत निकला। लिंकन ने स्पष्ट कहा—"हमारे पितृगणों ने दासता को उसी स्थान पर रहने दिया जहाँ जनमत की यह धारणा थी कि वह अब अपने अंतिम दौर में है।" अब राजनीतिज्ञों के लिए भी यही काम है कि वे उसे वापिस उसी स्थान में रहने दें, जहाँ हमारे पितृगणों ने रखी थी।"

इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता कि जिन राज्यों में दास-प्रथा जारी थी उनके आंतरिक मामलों में बाहरी हस्तक्षेप किया जाय; यानी स्वतंत्र राज्य वहाँ दास-प्रथा मिटाने का प्रयत्न करें; अथवा दासों के स्वामियों को उन अधिकारों से वंचित किया जाय, जिन्हें वे संविधान के अंतर्गत भोग रहे थे। भले ही यह कितना ही घृणित और पीड़ाजनक ही क्यों न रहा हो, भगोड़े नीग्रो दासों को पकड़ने का उनके स्वामियों को पूर्ण अधिकार था। लिंकन ने कहा—"हम दास प्रथा दास राज्यों में रखने को तैयार हैं, इसलिए नहीं कि दासता उचित है, बल्कि इसलिए कि गणराज्य को बनाये रख सकें।" हम भगोड़े दासों के विरुद्ध बनाये गये कानून को भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि इस एकता को बनाये रखने के लिए हमारे पितृगणों ने यह स्वीकार किया था। हम भी उस शर्त से बँधे हुए हैं। इस शर्तनामे और राष्ट्रीय एकता के दस्तावेज के अंतर्गत दास राज्यों और दास मालिकों के बारे में जो भी रियायतें दी गयी हैं, उन्हें हम बिना हिचकिचाहट सभी तरह से मानने को बाध्य हैं।" लिंकन दास राज्यों को यहाँ तक गारन्टी देने को तैयार था कि संविधान में ऐसा कोई संशोधन नहीं किया जायेगा जिससे दास-प्रथा के नियमन का उनका जो स्वायत्त अधिकार था, वह छिन जाय। पिछले वर्षों में वह दासप्रथा-समाप्ति-आंदोलन से शांतिपूर्वक पृथक् रहा जब कि हर्नडन और कई अन्य मित्रों ने उसे इसमें

रुचि लेने को बार-बार कहा। ऐसा लगता है कि शायद उसने यह महसूस किया होगा कि स्वतंत्र राज्यों में संविधान द्वारा प्रदत्त दास राज्यों के अधिकारों के विरुद्ध आंदोलन करना केवल अनुचित ही नहीं, वरन् निरर्थक भी है।

उसने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग कर अपने उत्तेजित मित्रों को कन्सास में स्वतंत्रता के पक्ष में सशक्त और कानून-विरोधी कार्यवाहियों में किसी भी तरह की सहायता देने से रोक लिया, भले ही यह भावना उग्र न कही जाकर उदार-वादी ही क्यों न कहलाये। उसने पुरजोर शब्दों में कहा—"स्वतंत्रता का संघर्ष सिद्धान्तों पर लड़ा जाना चाहिए—दासता मानवीय अधिकारों का हनन है, हम किन्हीं परिस्थितियों के कारण इसे बर्दाश्त करते रहे हैं, परन्तु जब तक भगवान देखता है, और स्कूलों में बच्चे पढ़ते हैं, यह हीन कलंकपूर्ण असत्य भगवान के पवित्र सत्य के सामने नहीं टिक सकेगा।" दूसरे शब्दों में दास-प्रथा से लड़ने का सच्चा और एकमात्र मार्ग सैद्धान्तिक मार्ग है जो दृढ़ और सत्य सिद्धान्तों पर आधारित है—उस मार्ग पर जनता की चेतना और सिद्धान्तों की निष्ठा उनके साथ है। उसके अनुसार उन राज्यों में, जहाँ दास-प्रथा पर प्रतिबंध था, वहाँ दासता के पक्ष में कानून को संशोधित करना इन सिद्धान्तों का हनन है। परन्तु इसी तरह दास-प्रथा-समाप्ति-आंदोलनकारियों का दास राज्यों में कानून प्रदत्त दास-प्रथा को मिटाने का प्रयत्न भी उसी तरह सिद्धान्तहीन रास्ता है। लिंकन की यह सैद्धान्तिक विचारधारा हमें कर्कश-सी लगती है। हम ठीक उसी अमरीकी इतिहासकार की तरह महसूस करते हैं कि यदि उत्तर में दासता-समाप्ति-आंदोलनकर्ताओं को नहीं पनपने दिया जाता, तो उत्तर भी सिद्धान्तहीन हो जाता और इसके लिए हमें लिंकन की शुष्क विचारधारा के प्रति सहानुभूति हो उठती है। यह ऐसी सही धारणा थी जिसे उसने कड़े शब्दों में और कई बार निर्लिप्त भाव से प्रकट की है। हमारे लिए यह सम्भव नहीं है, जैसा कि उसने भी बाद में महसूस किया कि—जेम्स ब्राउन के साहसिक कार्य को अपराध कह सकें और न हम यह आश्चर्य ही कर सकते हैं कि जब वह राष्ट्रपति था और गृहयुद्ध जारी था, उत्तर के बहुत-से लोगों ने उसे समझने में भूल की और उसे हताश व्यक्ति समझा, क्योंकि उसने सदा ही इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए जहाँ तक सम्भव हो, दास राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं किया जाये। यह उसका प्राथमिक कर्तव्य था कि जहाँ तक हो सकता है राष्ट्रीय एकता की रक्षा करे। उन ही दिनों उसने कहा था—"यदि सभी दासों को मुक्त करके मैं गणराज्य को बनाये रख सकता

हूँ, तो मैं ऐसा ही करूँगा और यदि मैं कुछ दासों को मुक्त कराके और दूसरों को मुक्ति नहीं दिला करके भी गणराज्य को बचा सकूँ तो मैं वह भी करने को तैयार हूँ।" परन्तु उसने स्पीड को आरंभ में जिस ढंग का पत्र लिखा, उससे पता चलता है कि दासता की भावना-मात्र से उसे कैसी पीड़ा होती थी। यदि हम राष्ट्रपति के रूप में अपनायी गयी नीति और व्यक्ति के रूप में उसके चरित्र का अध्ययन करते समय इस भावना का ध्यान नहीं रखेंगे जिसके आधार पर ही उसने दास-प्रथा में वृद्धि का विरोध किया तो उसे और उसकी नीति व चरित्र को समझने में भारी भूल कर बैठेंगे। बहुत वर्षों पहले उसने दासप्रथा-समाप्ति-आंदोलनकारी एक पत्रकार को लिखा—"दास-राज्यों को दास-प्रथा जारी रखने का अधिकार केवल वैधानिक ही नहीं है, मेरे दृष्टिकोण में वह स्वतंत्रता की भावना के आधार पर भी है।" दास-प्रथा ही केवल महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं था और न यह एक पृथक् प्रश्न था। परन्तु मुख्य सवाल "उस राष्ट्र को बनाये रखना था जिसने अपने आपको 'सभी मनुष्यों की समानता' के लिए अर्पित कर दिया है।" यह ऐसा राष्ट्र था जो कई स्वशासित जातियों के संगठन से पैदा हुआ था, जिसमें कई राज्य अपने यहाँ स्वतंत्रता के बुनियादी सिद्धान्त लागू करने में भी दूसरों से पिछड़े हुए थे। फिर भी यह ऐसा राष्ट्र था जिसने अपने जन्म के साथ ही मानवाधिकारों के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को अपना आधार माना।

लिंकन की संपूर्ण व्यावहारिक नीति, जिसके लिए उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी, इसी एक बात में बसी हुई है—कानून बना कर दासता की सब बुराइयों को स्वीकार करते हुए उसे मौजूदा स्थिति से आगे (गणराज्य के दूसरे प्रदेशों में) नहीं बढ़ने देना। इस तरह दास-प्रथा को एक संकुचित दायरे में बुराई मान कर बंद कर दिया जाय और यद्यपि गणराज्य उसे बर्दाश्त करता रहे, परन्तु उसमें अपना हाथ नहीं डाले अर्थात् वह दासता के पक्ष में कोई कार्य नहीं करे। दास-राज्यों में मुक्ति का कार्य समय आने पर अपने आप हो जायेगा। इससे जाना जा सकता है कि लिंकन ने दासों के साथ-साथ उनके मालिकों के लिए भी सर्वोत्तम हल ढूँढ निकाला था। परन्तु उसे इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी। "मेरा यह मतलब नहीं है कि जब पूर्ण मुक्ति की दिशा में कदम बढ़ाया जाय तो वह एक दिन में या एक वर्ष या दो वर्षों में ही प्राप्त हो जायेगी। मैं यह भी नहीं मानता हूँ कि शांति-पूर्ण तरीकों से इस प्रथा का अंत कम-से-कम सौ वर्षों के पहले हो जायेगा।

परन्तु मुझे संदेह नहीं है कि भगवान वह शुभ दिन लायेगा, जब दोनों जातियों के लिए सर्वोत्तम रूप में इस प्रथा का अंत होगा।" इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या इस नीति से यदि गणराज्य उसे शीघ्र स्वीकार कर लेता है तो दक्षिणी राज्यों में दासों को मुक्ति मिल जायेगी। इसका सबसे अच्छा उत्तर यह है कि जब इस नीति को जनता ने लिंकन को राष्ट्रपति चुन कर राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार कर लिया था तो दास-राज्यों ने स्वयं ही इसे दासता के लिए घातक मान लिया था।

दासता के अंत के लिए लिंकन बाट देख सकता, परन्तु दासता-सम्बंधी-सिद्धान्त पर निर्णय के लिए वह एक दिन के लिए भी रुकनेवाला नहीं था। इस मसले पर जो हलचल हुई उसका विरोध करना व्यर्थ था। यदि राजनीतिज्ञ इस माने में चुप रहते तो वे इस भयंकर अभिशाप से छुटकारा नहीं पा सकते थे। दास-प्रथा उचित है, यह विचारधारा तेजी से समाज के हर अंग में फैल रही थी, अतएव यदि इस पर तत्काल सैद्धान्तिक चोट नहीं की जाता तो सारा वातावरण ही दूषित हो जाता। लिंकन दासों की मुक्ति के लिए बाट देख सकता था; परन्तु दास-प्रथा-अंत के सिद्धान्त को लागू करने में एक क्षण की भी विलंब नहीं सह सकता था। दास-प्रथा के विरुद्ध उसने जो रुख अपनाया था—भले ही हम उसे उदार कहें—उसे तत्काल और सदा के लिए स्वीकार करना जरूरी था।

वे लोग जो दास-प्रथा के आदी हो चुके थे, वे यह भी नहीं समझ पाये कि उनमें और उनके पड़ोसी राज्यों में क्या अंतर है। उनके राज्यों ने दास-प्रथा को मिसूरी में लागू होने दिया, क्योंकि वहाँ वे निस्सहाय थे और कन्सास में इसे प्रवेश करने दिया जहाँ कि वे उसे रोकने में सहायता दे सकते थे। यह अंतर लिंकन के लिए मानों सबसे बड़ा अंतर था; यह खाई उतनी ही बड़ी थी, जितना भेद भलाई और बुराई के बीच में होता है। परन्तु उस समय संविधान-निर्माताओं ने इसे उसी प्रकार सहन किया जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को बुराई भी सहन करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में किसी भी तरह का हल सम्भव नहीं था और अज्ञानी व्यक्तियों द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया कि यह बुराई भी उनके लिये लाभदायक है। लिंकन और दूसरे रिपब्लिकन नेताओं में क्या भेद था इससे जाना जा सकता है। यद्यपि यह साधारण-सी बात लगती है परन्तु इसका अंतर उससे भी विशाल था जो लिंकन के सिद्धान्तों और दास-प्रथा-समाप्ति-आन्दोलनकारियों के सिद्धान्तों के बीच था। "कन्सास में दास-प्रथा पुनः लागू नहीं की जानी चाहिए—इसलिए

नहीं कि वहाँ उसे पहले से ही स्थान नहीं दिया गया था और कन्सास का प्रबल बहुमत उसे नहीं पसन्द करता है, वरन् इसलिए कि वह बुराई थी, गलत थी, और संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने जहाँ वे इसे लागू करने में स्वतंत्र थे, इसीलिए इसे लागू नहीं किया।" 'मिसूरी समझौते' के संशोधन में सबसे बड़ी बुराई यह थी कि वहाँ जनता की भावना शिथिल और अस्पष्ट हो गयी थी, फलस्वरूप वह संभव हो सका। लिंकन के शब्दों में, "धीरे-धीरे परन्तु दृढ़ता के साथ जिस तरह मनुष्य मृत्यु की ओर बढ़ता जाता है, उसी तरह हम पुराने विश्वासों को छोड़ कर नये विचारों की ओर बढ़ रहे हैं। पहले समानता का मूल सिद्धान्त अधिक प्रचलित था और कई अंशों में दास-प्रथा को 'बुरा' समझा गया था। परन्तु आज दक्षिण में साहस के साथ यह कहा जाता है कि 'दास-प्रथा सही प्रथा है, उसमें कोई बुराई नहीं है।' देश की सभी प्रभावशाली शक्तियाँ, जैसे धन (दास-संपत्ति का मूल्य एक अरब डालर से अधिक है), फैशन, दर्शनशास्त्र यहाँ तक कि उस समय की धार्मिक व्यवस्था भी इस विचारधारा के पक्ष में थी कि दास-प्रथा कोई बुरी प्रथा नहीं है और इस विचारधारा का विरोध नहीं किया गया। तुम चाहे दास-प्रथा से घृणा करते हो, परन्तु तुम्हारे पड़ोसी के पास चार या छः दास हैं, और वह तुम्हारा बहुत ही अच्छा पड़ोसी है, या तुम्हारे पुत्र ने उसकी लड़की से विवाह कर लिया है और तुमसे वह प्रार्थना करता है कि उनकी सम्पत्ति की रक्षा करने में सहायता दो और तुम अपने पड़ोसी पर अहसान करने के लिए अपने हितों और सिद्धान्तों के विपरीत मत प्रदान करते हो—यह भी मानते हो कि तुम्हारा मत हारनेवाले पक्ष में है, और फिर दलीय अंकुश, साथ ही लोगों में व्यंग्य के पात्र बनने की आशंका न्याय और स्वतंत्रता की भावना को दबा देती है। यह एक सीधी-सी बात है और सामान्य अनुभव से जानी जा सकती है कि आदमी दलीय अंकुश के भय के कारण कुछ ऐसी बातें कहने को बाध्य हो जाता है, जो अन्यथा वह किसी भी रूप में कितना ही लालच देने पर कभी भी स्वीकार नहीं करेगा। जो मनुष्य बिना हिचकिचाये भरी हुई तोप के सामने आगे बढ़ सकता है, वह भी दास-प्रथा-समाप्ति-आंदोलन का नाम लेने पर भाग खड़ा होगा चाहे उसका उच्चारण करनेवाला क्षुद्र ही व्यक्ति क्यों नहीं हो जिस पर आसानी से काबू पाया जा सकता है।" इस तरह उत्तरवासी, जो कभी यह बात स्वीकार नहीं कर सके कि दासता अच्छी प्रथा है, इस विचार में डूबे रहे कि इससे उनका कोई वास्ता नहीं है; ऐसी बात जिसके लिए वे सही रूप में

कन्सास के आव्रजकों के कन्धों पर जिम्मेदारी डाल सकते थे। लिंकन ने इस तरह की भावना (हमारा दास-प्रथा से वास्ता नहीं) के विरुद्ध कमर कसी और इसकी कड़े शब्दों में भर्त्सना की कि स्वतंत्रता के जिस सिद्धान्त का वे लोग समर्थन करने जा रहे थे, वह स्वतंत्रता उनकी अपनी तो थी ही, साथ ही नीग्रो की भी थी। एक सदी पूर्व दासों की मुक्ति के जैसे शानदार अवसर थे, वे अब बुरी तरह नष्ट हो जाने के कारण नीग्रो को अधिकार देने की भावना मृतप्राय हो गयी थी। उन्हें यह महसूस करना चाहिए था कि उन्होंने जिस उपेक्षा से नीग्रो लोगों के लिए अपने दरवाजे कस कर बंद कर दिये और इस तरह जो उन्होंने क्रूर निरंकुशता की भावना उभाड़ी, वही पलट कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर सकती थी। दक्षिण के बुद्धिजीवियों के दिमाग में यह सिद्धान्त घर कर गया कि चाहे कैसी ही चमड़ी क्यों न हो, मनुष्य द्वारा मनुष्य को गुलाम बनाये रखना बुरा नहीं है। अब यह निर्णय करना जरूरी था कि पूर्वजों द्वारा दर्शाये गये निश्चित सिद्धान्तों का पालन किया जाय, जिसके अनुसार उन्होंने सभी मनुष्यों में कुछ अधिकार स्थापित किये—या उन दूसरे सिद्धान्तों को चुना जाय जिसके विरुद्ध पूर्वजों ने विद्रोह किया। लिंकन ने इस दिशा में राजाओं की दैवी शक्ति और यूरोपीय जनता द्वारा स्वतंत्रता के लिए किये गये विद्रोहों का उदाहरण दिया। "गोरे लोग निरंकुश क्रूरता के सिद्धान्त को कैसे महसूस कर सकते हैं, जब उन्होंने स्वयं स्पष्ट रूप से दूसरों को स्वाधीन करने से इन्कार कर दिया है और इस स्वाधीनता को अपने लिए भी चिरस्थायी रखने के द्वार बंद कर दिये हैं।" लिंकन ने यह कहने का प्रयत्न ही नहीं किया; कदाचित् उसने इस दिशा में धुँधली-सी कल्पना भी की हो। परन्तु वह इससे पूर्ण सहमत था, जैसे कोई भविष्य-वक्ता यह कहे कि अमरीका अब चौराहे पर खड़ा है और उसे या तो सही सिद्धान्त चुनने होंगे अथवा गलत मार्ग पर जाकर उसके फल भोगने होंगे। बहुमत के नाम पर इस तरह की निरंकुशता को दिया गया सैद्धान्तिक रूप उन लोगों की अभिरुचि के अनुकूल था। डगलस द्वारा राज्यों को सर्वशक्तिमय सत्ता सौंपने का आकर्षक सिद्धान्त इसका प्रतीक था। ये लोग आकर्षक लगने-वाले अव्यावहारिक सिद्धान्तों के द्वारा जनता को बहुमत के निर्णयों के नाम पर शासित करना चाहते थे। ये स्वयं भी समानता और स्वतंत्रता के सिद्धान्तों के पक्ष में नहीं थे और बहुमत के निर्णय के नाम पर जनता को अंधेरे में भटकने को छोड़ देने के पक्ष में थे। इनमें किसी भी वर्ग अथवा जाति के प्रति मानवीय सहानुभूति नहीं थी। 'लोकप्रिय सत्ता' को जो स्वरूप ये देने जा रहे

थे, वह मानों किसी भी अच्छाई पर हावी होकर उसे कुचल सकने में समर्थ था। और यह सब बहुमत के नाम पर—चाहे इस तरह का प्राप्त बहुमत अधिक सीमित ही क्यों न रहा हो—किया जाता और इसे वे लोग किसी भी समय, किसी भी क्षेत्र में, चाहे उस कार्य के पीछे वैधानिकता भी न हो, लागू करने के पक्ष में थे।

डगलस इस विचारधारा का जीताजागता स्वरूप था। अमरीकावासियों ने पहले कभी भी इस तरह का अधिकार सर्वशक्तिमय सत्ता दूरवर्ती उपनिवेशों को प्रदान नहीं की थी, वे कभी करते भी नहीं। उदाहरण-स्वरूप—जैसा कि लिंकन ने भी बताया—"पहले मोरमोन जाति के लोगों ने यह दावा किया था कि जिस क्षेत्र में वे बसते हैं, वहाँ बहुपत्नी प्रथा की अनुमति दी जाय; क्योंकि जहाँ से वे आये हैं वहाँ यह प्रचलित थी और वे सभी उसके पक्ष में भी हैं, परन्तु पूर्वजों ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस बात को सिद्धान्त के रूप में ऐसे कहा जा सकता है, यदि कोई दूसरे मनुष्य को गुलाम बनाना चाहता है, तो तीसरे को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।"

यह अनुमान लगाना अभी असंभव है कि लिंकन इस बारे में कितनी गहराई तक सोचता था कि दास-प्रथा के विरुद्ध उसके रुख के कारण गणराज्य पर कितनी कठिनाइयाँ आ सकती थीं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि गणराज्य पर भावी संकट की भविष्यवाणियाँ उन्हीं डरपोक लोगों तक ही सीमित रहीं, जो किसी भी धमकी के आगे झुक जाया करते थे। लिंकन ने अपने दूसरे सहयोगियों की अपेक्षा दक्षिण के हितों को अच्छी तरह से समझा था, वह उनकी भावनाएं जानता था। परन्तु उन लोगों के लिए, जो इस विचारधारा को दूषित मान कर कभी इसके निकट सम्पर्क में नहीं आये, इनका मूल्य समझना कठिन था। लिंकन ने बहुत कुछ इसी आशा के भरोसे छोड़ दिया था कि उन्हें कभी-न-कभी समझ आयेगी। इसके अतिरिक्त उसे गणराज्य की शक्ति में पूरा भरोसा था—यदि इसी तरह का भरोसा उसके भूतकालीन राष्ट्रपति भी करते और केवल साधारण दृढ़ता ही प्रदर्शित करते, तो अबतक यह नौबत ही नहीं आती। परन्तु यहाँ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि किसी भी व्यर्थ की आशा ने उसके निर्णयों को प्रभावित किया था। वह ऐसे स्वभाव का व्यक्ति था जो यह परवाह नहीं करता था कि भविष्य कैसा होगा और दुःख झेलने की प्रवृत्ति ने उसे किसी भी तरह के संकट का सामना करने के लिए अच्छी तरह तैयार कर दिया था। उसके लक्ष्य और उद्देश्यों के बारे में हम दो बातें निश्चयपूर्वक कह सकते

हैं। एक ओर जहाँ तक गणराज्य पर संकट आने का सवाल था, वह ऐसा व्यक्ति था कि संकट में भी अपने सिद्धान्तों का समर्पण कदापि नहीं करता; क्योंकि ये ही वे सिद्धान्त थे जिससे गणराज्य की सार्थकता थी। दूसरी ओर वह किसी भी मूल्य पर गणराज्य को बनाये रखने को तैयार था। एक गंभीर और भले स्वभाव का व्यक्ति युद्ध से सदा ही घृणा करेगा, परन्तु उसके लिए युद्ध कभी भी एक व्यक्ति की मृत्यु से बढ़कर अधिक बड़ी बुराई नहीं होगी और दक्षिणी राज्यों का यह दावा उसे जरा भी प्रभावित नहीं कर सका कि वे उस समाज से (जिसकी उसकी नजरों में श्रद्धा थी) पृथक होकर नया राष्ट्र बनायें, जिसमें दास-प्रथा फले-फूले और अपने पड़ोसियों से उनकी सदा नफरत बनी रहे, यद्यपि शाब्दिक रूप में यह 'स्वतंत्रता' थी। राज्यों को पृथक् करने से सम्बन्धित आंदोलन के चार वर्ष पूर्व ही उसने अपना स्पष्ट रुख इस दिशा में क्या रहेगा, एक ही वाक्य में बता दिया था और यह वाक्य उसने समझ-बूझकर गंभीरता के साथ कहा था। ये कितने सरल शब्द हैं—"हम गणराज्य को भंग नहीं करेंगे और तुम भी नहीं कर सकोगे।"

लिंकन स्वतंत्रता व समानता के इस शानदार संघर्ष में सदा ऐसे ही महान विचारों से प्रेरणा लेता रहा। डगलस के साथ उसकी पहली टक्कर १८५५ में हुई और १८५८ की हेमन्त ऋतु तक वह इन्हीं विचारों को संघर्षकाल में विकसित करता रहा। ड्रेडस्काट निर्णय के कारण जो पेचीदगियाँ और अन्य समस्याएँ पैदा हुईं उन पर यहाँ विचार करना अनावश्यक है। अब उस काल के दो-तीन भाषणों को जरा गहराई से देख लिया जाय। ये भाषण उसने डगलस के साथ वादविवाद के दौरान में दिये थे। केवल पहले भाषण को छोड़ कर दूसरे भाषण इतने अच्छे नहीं है। चुनाव के अवसर पर जनता को लुभाने के लिए लच्छेदार बातों को सिद्धान्तयुक्त तर्कों के साथ कई बार प्रस्तुत किया जाता है। ठीक उसी तरह के ये बाद के भाषण हैं। डगलस अच्छा वक्ता था और यही कारण है कि जहाँ पहले लिंकन के एक वाक्य ने सनसनी पैदा कर दी, वहाँ बाद में डगलस की वक्तव्य-कला ने उसे तर्कों में भुला कर अपना पासा जमा लिया। देहातों में लिंकन जनता के हृदय के निकट रहता था, परन्तु शहरी क्षेत्रों में वह अपने को डगलस की तरह वाक्चातुर्य का शूरमा नहीं बना सकता था। वहाँ लोगों द्वारा यही पसन्द किया जाता था और यह लिंकन को नापसन्द था। परन्तु डगलस ऐसा व्यक्ति था जो किसी भी बात से नफरत नहीं करता था। उसके भाषणों में हल्के तर्क और साधारण वादविवाद की नीरस और सस्ती भावनाओं की झलक

मिलती है। यदा-कदा वह उभाड़नेवाले वाक्यों का प्रयोग अधिक कर बैठता था। लिंकन के भाषणों में कभी-कभी भूले से कहीं ऐसा वाक्य या नकली सहानुभूतिसूचक भावना शायद पैदा हो गयी हो तो अलग बात है। इन भाषणों में ऐसे वाक्यांश हैं, जिन्हें कोई भी साहित्यिक सराहे बिना नहीं रहेगा—अंग्रेजी की सहज सुन्दरता, ऐसी सुन्दरता उस व्यक्ति के कंठ से जिसने युक्लिड से तर्क का और बाइबिल से सरल व निष्कपट विचारों में बोलना सीखा हो। वे अपने क्षेत्र में अनोखे ढंग की निधियाँ हैं। यद्यपि लिंकन को केवल एक ही विषय पर बोलना होता था, अतएव उसे अधिक जानकारी की भी आवश्यकता नहीं थी परन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि दास-व्यवस्था को लेकर जिस तरह की भावनाएं उभाड़ी गयीं और जब जन-मत भ्रामक और इधर-उधर बहाव में भटक रहा था, ऐसी स्थिति में उसके सम्मुख यह विकट समस्या थी, वही समस्या, जिसे उसने अपने गंभीरतापूर्वक विचारों तथा हृदय की सत्यता से अपने दिमाग में सुलझा ली थी। इन गहन विचारों को उसने इतनी सरलता और स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है कि बड़े-बड़े लेखकों व विचारकों को पीछे छोड़ दिया है। १८५६ में राष्ट्रपति के चुनाव के समय उसने फिल्लमोरे के एक समर्थक को पत्र लिखा और उसे एक बात सुझायी। अमरीकी संस्थाओं से अपरिचित व्यक्ति के लिए यह बड़ा अटपटा-सा लगेगा—"फरमोंट से जो मत फिल्लमोरे को मिलेंगे वे उसके ही खिलाफ होंगे—उसके लिए वे मत लाभजनक नहीं हैं।" उसने इस पर प्रकाश भी डाला, परन्तु वह सदा गंभीर-अजनबी व्यक्तियों को शानदार भाषा की कमी से प्रभावित नहीं कर पाता था। उन्हें भी वह अपने देहाती तरीके से देखा करता था। पत्र के अंत में उसने लिखा था—"सारी बात इतनी सरल है मानों तीन सूअरों के वज़न का हिसाब लगाना है।"

यह विद्वत्तापूर्ण वाक्य उसकी प्रभावशाली परन्तु भाषा शैली के रूखेपन को प्रकट करता है। इसी ढंग से गंभीर कठिनाइयों को वह हल करता था मानों उसमें बच्चों का-सा उत्साह तथा कठोर राजनैतिक व्यक्ति की अंतर्दृष्टि रही हो।

यदि हम अंग्रेजी गद्य साहित्य में जो सर्वोत्तम कृतियाँ हैं, उनसे उसके भाषणों के कुछ गद्यांश की तुलना करें, तो उन्हें बहुत ही उत्कृष्ट पायेंगे, और यथार्थ में जिन लोगों ने उसके भाषणों की सराहना की है वे उच्च कोटि के विद्वान थे। इस बारे में हमने अभी तक लिंकन की योग्यता और उसके प्रयत्नों का अनुमान नहीं लगाया है, क्योंकि ये किसी साहित्यिक रुचिसंपन्न व्यक्ति के लेख नहीं हैं। ये एक राजनैतिक प्रचारक के राजनीति विषयक

भाषण हैं। गहराई से विचार करनेवाले व्यक्ति बहुत कम हुआ करते हैं। उनमें से ऐसे लोग और भी थोड़े होते हैं, जो अपने विचारों की अभिव्यक्ति सरल और प्रचलित शब्दों में कर सकते हैं, और ऐसे व्यक्ति तो बहुत ही कम हैं, जो इस तरह की अभिव्यक्ति करते समय विभिन्न विचार वाले विशाल जनसमूह को स्तब्ध रख सकें। लोकप्रिय सरकारों में हमें इस तरह की कमी स्पष्ट झलकती है। आजकल तो यह कमी अधिक झलकने भी लगी है। कुछ तो इसलिए कि राजनीति-जगत इस तरह के कार्यों का सही मूल्य निर्माण करने की दिशा में आँखें मूँदे रहा है। दूसरा यह है कि पहले की रोमन शिक्षा नष्ट हो गयी, जो इस दिशा में ज्ञान प्रदान करती थी। यह शिक्षा मृतप्राय पद्धति ही नहीं थी वरन् जनचेतना को पुनर्जीवन प्रदान करनेवाली मानी जाती थी। लिंकन की कुशाग्र बुद्धि को ऐसी भाषा में बोलना पड़ता था, जो उत्तेजित जनसमूह के एक कोने से दूसरे कोने तक टकरा सके। उसने उसका उद्घोष ऐसे व्यक्ति के कड़े मुकाबले में किया, जिसकी प्रसिद्धि ने उसको ढँक लिया था—ऐसे व्यक्ति के मुकाबले में जिसकी विशेष और विनोदप्रिय-लुभावनी आदतें श्रीमती बीचर जैसे व्यक्ति को भी प्रभावित कर लेती थीं, जो उसके सिद्धान्तों की सदा विरोधी रहीं। उसकी भाषणकला, भावनात्मक अपील, और तर्क प्रस्तुत करने का ढंग इतना कलात्मक था कि वह सिद्धान्तों की कमी को भी विनोदप्रियता और लुभावनी बातों से पूरी कर लेता था। तीन माह तक लगातार इस तरह के भाषण रात-दिन जारी रहे। लिंकन इतना गरीब आदमी था कि उसे किसी भी तरह की सुविधा प्राप्त नहीं थी; वह एक स्थान से दूसरे स्थान की कष्टप्रद यात्रा करता था और भीड़भरी सरायों में ठहरता था। रेलों में अधिकारी लोग उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते थे। इसके विपरीत डगलस ख्यातिप्राप्त राजनीतिज्ञ था, उसे सभी तरह की सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं। वह जब भी रेल में यात्रा करता था, तो उसके लिए आरामदेह डिब्बे रहते थे और अधिकारी भी उसकी सुविधा की ओर ध्यान देते थे। वैसे ही चुनाव का यह बुखार काफी तीव्र और उत्तेजक होता ही है, परन्तु लिंकन ने जो इस चुनाव में साधनहीन होकर भी डटकर संघर्ष किया, वह अमरीकी राजनैतिक इतिहास में अपने ढंग का एक ही है। इससे छुटकारा पाते ही इस अजाने व्यक्ति को अचानक ही महानता मिली; परन्तु वह ऐसा व्यक्ति था जिसने अपने सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में अत्यंत कठोर श्रम किया था।'

जिस माटी की काया में वह अपने गंभीर ज्ञान और स्पष्ट विचारों का रस भरे

हुए था, अब उसमें सौरभ फूट चला था। उसकी बाहरी आकृति इतनी कुरूप थी तथा ऊपरी व्यवहार इतना रुखा था कि उसे लेकर कोई ईर्ष्या नहीं कर सकता था। बहुत कम पारदर्शक व्यक्ति ऐसे थे, जिन्होंने उसके गुणों को देखते ही समझ लिया था—परन्तु एक सामान्य अजनबी व्यक्ति के लिए वह अजीब कुरूपता का पुतला था। एक ने बाद में लिखा कि—"वह इतना कुरूप और बेढंगी बनावट का था कि मैंने ऐसी आकृति आज तक कहीं नहीं देखी।" बोलते समय जिस तरह की वह हलचल करता था, वह उसकी आकृति को और भी बेढंगा बना देती थी। यद्यपि एक कुशल श्रोता को उसकी आवाज ठीक सुनायी देती थी, परन्तु जब वह अपना भाषण आरंभ करता तो कर्कश ध्वनि और ऊँची अखरने जैसी आवाज और भी आश्चर्यजनक लगती थी। परन्तु यह एक ऐसी विलक्षणता थी जो दर्शकों को आकर्षित कर लिया करती थी और एक बार जनता का ध्यान आकर्षित हो जाने पर वे उसकी हार्दिक सरलता पर मोहित होकर ठगे-से रह जाते थे।

जैसे ही वह अपने विषय में लीन हो जाता, उसकी आवाज़ और उसकी चालढाल परिवर्तित होती जाती थी। उसके शब्दों में गहराई झलकने लगती थी, ऐसी गहराई जिसकी सुन्दरता ने उसके मित्रों को भी लुभा लिया था। पीड़ा से भरी आँखों में चमक पैदा हो जाती थी और वह कुरूप दैत्य की-सी आकृति भी एक महान हस्ती के रूप में दिखायी देती थी। उसके श्रोताओं में से कईयों ने खुले दिल से स्वीकार किया कि जब वह जन-भावना को प्रेरित करने के लिए हार्दिक अपील करता, तो उसका तत्काल हृदय पर जादू का-सा गहरा प्रभाव पड़ता था। उसने एक शांत रात्रि को तारों की ओर अपने लम्बे हाथ उठा कर यह घोषणा की—"कुछ मामलों में वह निश्चय ही मेरे समान नहीं है, परन्तु उसको यह स्वाभाविक अधिकार है कि जिस कड़े पसीने से उसने रोटी कमाई है, उसे खा सके। इस मामले में वह मेरे बराबर है और जज डगलस के बराबर है और किसी भी आदमी के बराबर है।" यथार्थ में सहृदय श्रोता को उसने ऐसी परिस्थितियों में पाकर निश्चय ही इतना ही प्रभावित किया होगा—भले ही पाठक इसे पढ़ कर शायद ही विश्वास करने की स्थिति में हो। "ऐसे ही एक बार रिपब्लिकन दल के अधिवेशन में उसके दिये गये भाषण की कोई रिपोर्ट नहीं मिलती है; क्योंकि उसके द्वारा कुछ वाक्य बोलने के बाद ही संवाददाताओं ने कलम रख दी। वे मोहित-से हो गये और जैसे-जैसे उसका भाषण आगे बढ़ने लगा, लोग अपनी कुर्सियों पर से उठ खड़े हुए और

उसकी ओर अचेतन-से बढ़ने लगे। उनके चेहरे मुरझाये हुए थे और ओठ काँप रहे थे।" उसके अन्य भाषणों के बारे में भी ऐसे ही सबूत मिलते हैं। यद्यपि उसका स्वभाव शांत था, फिर भी वह किसी मसले पर विद्युत् की तरह प्रज्वलित हो उठता था। इस तरह की भाषण-शैली की हम प्रशंसा भी करें, परन्तु उसे किसी भी तरह अच्छा वक्ता नहीं ठहरा सकते।

उसके भाषण केवल रुखे, वादविवाद के ढंग के और आम सभाओं में दिये जाते हैं, उस तरह के थे। परन्तु वक्ता के रूप में उसकी सबसे बड़ी देन यही थी कि उसके शब्दों के पीछे उसका व्यक्तित्व झलकता था। एक पत्र-संपादक ने एक बार लिंकन का भाषण सुन कर लिखा—"सभी कौशल और निपुणता के अलावा श्रोताओं के ऊपर यह हृदयग्राही गंभीर प्रभाव पड़ता था कि भाषण देनेवाला भी अन्य नागरिकों के प्रति महान और नैतिक कर्तव्य से बँधा हुआ है।"

उसके बोलने की पद्धति के बारे में एक तथ्य सरलता से समझा जा सकता है। उसके भाषण में कहीं भी उपसंहार या दृष्टान्त जैसी कोई बात नहीं मिलती। भाषण देने के लिये खड़े होने के पूर्व ही वह उन्हें अन्य निरर्थक बातों की तरह या समय की कमी के कारण काट दिया करता था। वह केवल बाद में यदि समय मिल जाता, तो इन महत्वहीन बातों को भी रखता। हमारे जितने पुराने राजनैतिक वक्ता थे, उनकी भाषण-कला में सदा ही एक बात का ध्यान रखा जाता था कि वे श्रोताओं की उत्सुकता सदा बनाये रखते थे न कि उसे बुरी तरह से सतर्क-चिंतनशील रखते। वे ऐसे दृष्टान्त भी देते, जिनका यदि विस्तार से विश्लेषण किया जाता, तो संभवतया वे आधारहीन मालूम हो और इस तरह का प्रयत्न रहता कि भाषण के उपसंहार में सजी हुई सुन्दर भाषा का प्रयोग किया जा सके। परन्तु लिंकन के तर्कभरे भाषणों में कभी भी आरंभ में सुन्दर शब्दों का समावेश नहीं होता था और न वह कोई नया विषय ही किसी महत्वपूर्ण भूमिका को लेकर आरंभ करता था। ऐसा लगता है कि मानों वह आरंभ से ही जान-बूझ कर श्रोताओं पर अपना सैद्धांतिक सरल प्रभाव डालता और उनमें ऐसी सजीवता पैदा कर देता कि वे अंत तक उसके विचारों की गहराइयों व भावनात्मक वातावरण में ठगे-से रह जाते। वह अपने भाषण से उनका ध्यान तथ्यों की ओर इतना आकर्षित कर लेता कि उन्हें अपने पुराने निर्णयों के बारे में भी विचार करने को बाध्य होना पड़ता था। वह अपने-आपको ऐसी स्थिति में रखता था कि यदि उसके तर्क गहरे नहीं होते तो उसके भाषण की

असफलता सुनिश्चित रहती। मनुष्य के नाम के साथ कदाचित् ही कहीं प्रशंसा का इतना उज्ज्वल पदक लगा हुआ होगा, जितना लिंकन के नाम के साथ 'ईमानदार' शब्द जुड़ा हुआ है। यदि कोई व्यक्ति बेईमान नहीं साबित हो सकता है, तो यह समझा जाता है कि वह साधारण भला आदमी होगा। परन्तु लिंकन ने आरंभ में ही जिस कष्ट से 'ईमानदार' की ख्याति प्राप्ति की उसे उसने अंत तक निभाया। इस दिशा में उसके अपनाये गये तरीकों की शायद ही कहीं कोई मिसाल मिलती है। वह अपने जीवनक्षेत्र में भी उतना ही ईमानदार था, जितना वह भीड़ के समक्ष अपने भाषणों से लगता था। हम यह बहाना नहीं करने जा रहे हैं कि उसने कभी कोई शंकायुत तर्क नहीं दिया होगा, अथवा ऐसे अवसर से अनुचित लाभ नहीं उठाया होगा—वह एक मनुष्य था जिसके लिये यह सभी स्वाभाविक है। इल्लीनायस के एक राजनीतिक धूर्त व्यक्ति के दृष्टिकोण में लिंकन का दूसरा मूल्य था। उसने लिखा—"राज्य में जितने चालाक राज्यनीतिज्ञ थे, वह भी उनमें से एक था। उससे अच्छी तरह यह कोई भी नहीं जानता था कि लोगों के मस्तिष्क में इस समय क्या विचारधारा आंदोलित हो रही है और राजनैतिक लाभ उठाने के लिये स्थिति को कैसे बदलना चाहिए।" उसने और भी आगे लिखा है—"जिस तरह वह लोगों से उनकी जेब खाली नहीं करा सकता था, उसी तरह वह लोगों से उनके मत भी नहीं प्राप्त करता था।" लिंकन के भाषणों की सराहना के लिए उपरोक्त एक ही वाक्य पर्याप्त है।

[२]

डगलस के विरुद्ध लिंकन

अब हम इस पर विचार करें कि कैसे डगलस के विरुद्ध लिंकन ने कड़ा संघर्ष किया और इल्लीनायस क्षेत्र में उसके द्वारा किये गये इस श्रम से समूची अमरीका की राजनीतिक विचारधारा विशाल रूप से किस प्रकार प्रभावित हुई। यह हम जानते हैं कि इस समय तक लिंकन केवल स्थानीय ख्याति का ही व्यक्ति था। इल्लीनायस आयरलैंड जैसे द्वीप से कुछ ही बड़ा भूभाग था, परन्तु संयुक्त राष्ट्र अमरीका का वह बहुत छोटा भाग था और वह भी एक ऊबड़खाबड़ प्रदेश का अंग था। डगलस पहले से ही राष्ट्रीय ख्याति पा चुका था, कुछ समय के लिए

वह डेमोक्रेटिक दल का सबसे बड़ा नेता था और अब उस सिद्धान्त के कारण जिससे उसे गौरव मिला था, सभी उदारवादी रिपब्लिकनों का नेता बनने के सवाल पर वह अपने दल के बहुत-से लोगों की सहानुभूति भी खो चुका था। उस समय की राजनैतिक घटनाओं की अधिक गहराई में उतरना हम जरूरी नहीं समझते। 'मिसूरी समझौते' ने इस वातावरण को उत्तेजक रूप दे दिया। कन्सास में जारी अव्यवस्था की स्थिति ने भी इसमें योग दिया। इस संकटकाल में सीनेट में कई नये व्यक्ति नाम कमाने लगे। इन उल्लेखनीय व्यक्तियों में सेवार्ड भी एक था, जो 'मिसूरी समझौते' का कट्टर विरोधी होने के साथ-साथ रिपब्लिकन दल का सबसे अधिक शक्तिशाली सदस्य था। यह स्थान उसने दल के सिद्धान्तों के प्रति ईमानदारी के कारण नहीं प्राप्त किया था, वरन् उसके हाथ में न्यूयार्क राज्य का सारा दलीय तंत्र था। दूसरा व्यक्ति मेसाचुसेट्स का सम्नर था जो जान ब्राइट का मित्र था। उसने स्वतंत्रता के पक्ष में सदा ही अपना मत सधी हुई भाषा और विद्वत्तापूर्ण तर्कों से जारी रखा। वह सफलतापूर्वक व्यक्तिगत आक्रमण करने में मानों सिसरो के पात्र फिलिप्स के अनुरूप था। इसी पक्ष के समर्थन में साहित्य और समाचारपत्रों में बुलंद आवाज भी उठने लगी। इन पत्रों में 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' था, जो सबसे बड़े राज्य का पत्र होने के साथ-साथ राष्ट्रीय महत्व का भी पत्र बन गया था। बड़े पैमाने पर यह कहा जा सकता है कि अमरीका के युवा और वृद्ध बुद्धिजीवी रिपब्लिकनों के साथ थे। यहाँ एक छोटी-सी घटना का उल्लेख भी आनन्ददायक है कि लांगफेलो जैसे महान साहित्यिक ने रिपब्लिकन दल के राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार फिलीमोरे को मत देने के लिए यूरोप-यात्रा का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। इसके अतिरिक्त हम मोटले, लोवेल और डार्विन के अनुयायी आसा ग्रे की विचारधारा से पूर्ण परिचित हैं। परन्तु उस समय के प्रचलित फैशन और उससे प्रभावित विचार-धारा व सभ्य समाज में प्रचलित धारणा के कारण सभी प्रश्नों पर दक्षिणी रुख का समर्थन किया जाता था और इस तरह का प्रभाव अन्य स्थानों की अपेक्षा न्यूयार्क के राजनीतिज्ञों को अधिक प्रभावित किये हुए था। प्रशासन के व्यावहारिक संचालन की शक्ति दक्षिणी सीनेट सदस्यों—जिनमें जफर्सन डेविस प्रमुख था—के हाथों में थी। आनन्द-उत्सवों में अनुरक्त राष्ट्रपति पियर्स और उसके उत्तराधिकारी कमजोर सठियाये राष्ट्रपति बुकनान ने दक्षिणी सदस्यों के प्रति जो अनुरक्ति दिखायी, वह किसी भी गौरवशाली व्यक्ति के लिए उचित नहीं ठहरायी जा सकती जबकि दोनों व्यक्ति दक्षिणी राज्यों के प्रतिनिधि भी नहीं थे।

उस समय कांग्रेस में कैसा वातावरण था, यह दर्शाने के लिये एक प्रसिद्ध घटना का विश्लेषण किया जा सकता है। १८५६ में कन्सास के मामले को लेकर जो बहस हुई, उसमें सम्नर ने एक ऐसा भाषण दिया जो इतना चुभनेवाला था कि उससे दक्षिणी सदस्यों पर पागलपन छा गया। सम्नर की सूझबूझ, दृष्टिकोण और साहस सराहनीय था। उसमें प्रतिष्ठा और शक्तिसंपन्नता थी, परन्तु महानता के छोटे-से-छोटे गुणों की कमी थी। उसने अपने इस भाषण में अपने विरोधियों को कहीं स्कंक (अमरीका में पाया जानेवाला मांसभक्षी अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण पशु —नीच मनुष्य का सूचक) नहीं कहा, परन्तु उस पशु की सारी हीनता की तुलना उसने दक्षिण के सीनेट सदस्यों से कर डाली। इस अवसर पर उसने अपने इन्हीं गुणों का उपयोग किया। उत्तर के वे लोग जो लिंकन के भाषायी उजड्डपन की आलोचना करते थे, उनका ध्यान भी इस ओर नहीं गया। भले ही दक्षिणी राज्यों से दास-प्रथा-सम्बंधी नीति पर मतभेद रहा हो और इससे प्रारम्भ से लेकर अंत तक उत्तेजना बनी रही। यह अवश्य महसूस किया जाना चाहिए था कि वे स्वामी जो अपने दासों के प्रति दयावान थे और स्वयं इसे निरर्थक प्रथा स्वीकार चुके थे, उन पर इस तरह के कटाक्षों का कितना उत्तेजक और क्रोधोत्पादक प्रभाव पड़ा होगा। तथापि सम्नर के भाषण के बाद जो भयानक कुकृत्य किया गया, वह दक्षिणी राज्यों के गौरव पर नीचतापूर्ण कलंक-कालिमा पोत देनेवाला था।

दक्षिणी केलीफोर्निया का कांग्रेस सदस्य प्रेस्टन ब्रुक्स का एक चाचा सीनेट सदस्य था, जो दक्षिणी कारोलीनावासी था और सम्नर के भाषण में इस व्यक्ति विशेष के कार्यों की निन्दा की गयी। एक या दो दिन बाद जब सीनेट विसर्जित हुई ही थी और सम्नर सीनेट भवन में बैठा हुआ कुछ लिख रहा था, और ऐसी स्थिति में था कि जल्दी से खड़ा भी नहीं हो सकता था, तब प्रेस्टन ब्रुक्स ने अपने चाचा और दक्षिणी सीनेट सदस्यों की उपस्थिति में—जो यदि चाहते तो उसे रोक भी सकते थे—अपनी सारी शक्ति के साथ सम्नर के सिर पर कस कर लाठी मारी। सम्नर इसके फलस्वरूप पाँच वर्षों तक रीढ़ की हड्डी में चोट के कारण खाट पर पड़ा रहा। ब्रुक्स ने अपने इस कारनामे का शानदार और गौरवपूर्ण ढंग से कांग्रेस में वर्णन करते हुए कहा कि सम्नर को उसने असहाय अवस्था में पकड़ लिया; क्योंकि यदि वह अपनी विशाल शक्ति का प्रयोग करने में स्वतंत्र होता, तो उसे मारने के लिए रिवाल्वर का प्रयोग करना पड़ता। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी

कि सारे दक्षिण ने ब्रुक्स की मुक्तकंठ से सराहना की और इस घटना को आनन्दातिरेक से व्यक्त किया। इस तरह के कार्यों से उत्तेजित हो दक्षिणवासी उत्तरी लोगों को चुनौती देने लगे। वे यह जानते थे कि उत्तरवाले सैद्धान्तिक तौर पर द्वन्द्व युद्ध के विरुद्ध हैं; परन्तु दक्षिण से चुनौती आने पर आनाकानी करने से उत्तर को और भी अपमानित होना पड़ता था। ब्रुक्स ने खुद प्रख्यात कांग्रेस सदस्य बर्लिंगम को द्वन्द्व के लिये चुनौती दी—जिसने ब्रुक्स को उसके हीन कार्यों के लिये लथेड़ा था। (लिंकन ने बाद में बर्लिंगम को चीन में राजदूत बना कर भेजा था।) उसने चुनौती स्वीकार कर ली और उसके सहयोगी ने नियाग्रा के निर्जन प्रदेश में रायफल द्वन्द्व की योजना भी तैयार कर ली। ब्रुक्स तब पीछे हट गया, उसने यह बहाना किया—जो कदाचित् सत्य भी था—कि उत्तरी राज्यों की यात्रा करते समय रास्ते में ही उसकी हत्या कर दी जायेगी। परन्तु उत्तरवासियों को इससे थोड़ी शांति ही मिली। इस सारी अरुचिपूर्ण कहानी में केवल एक ही मनोरंजक स्थल है। प्रेस्टन ब्रुक्स को अपनी इस शूरवीरता के लिए अपार बधाईयाँ, प्रशंसापत्र, भेंटें व पदक मिले, किन्तु वह एक वर्ष बाद मर गया। मरते समय उसने आत्मा से यह स्वीकार किया कि वह दक्षिण के हर गुण्डे के लिए शूरमा बनते-बनते उकता गया है।

इस तरह दक्षिण में खतरनाक भावावेशपूर्ण वातावरण तेजी से आग पकड़ रहा था और साहसी रिपब्लिकन इसे उकसाने में भी पीछे नहीं रहते थे, जिससे यदा-कदा दास-प्रथा-सम्बंधी प्रश्नों के कारण ऊँचे राजनैतिक क्षेत्रों में भी हलचल होने लगी थी। परन्तु इससे यह नहीं मान लिया जाना चाहिए कि उत्तर में 'मिसूरी समझौते' के संशोधन को लेकर जो उत्तेजक वातावरण व जनमत बन गया था वह वर्षों तक बना रहा। १८५७ में लोगों का ध्यान भयंकर आर्थिक दुरावस्था व वित्तीय संकट ने आकर्षित कर लिया। १८५८ में एक विलक्षण परन्तु शीघ्र ही लुप्त हो जानेवाला धार्मिक पुनर्जागरण हुआ। इसी दौरान में कन्सास में जो खूनी मारकाट जारी थी, वह वहाँ के सुयोग्य गवर्नर के कारण बंद हो गयी। कन्सास की जनता का प्रबल बहुमत दास-प्रथा के विरुद्ध था और संभवतया यह मान लिया गया कि उन पर दास-प्रथा कानूनन नहीं थोपी जायेगी। ऐसी स्थिति में काँग्रेस द्वारा दास-प्रथा-समाप्ति-सम्बंधी कानून बनाना निरर्थक समझा जाने लगा और ड्रेडस्काट के फैसले के कारण भी ऐसा होना संभव नहीं प्रतीत होता था। इस तरह रिपब्लिकनों की मुख्य विचारधारा के प्रति जनता में जो उत्साह था, वह अब शिथिल होने लगा। उस दल के लिए और

भी परेशानी पैदा हो गयी जब १८५७ के अंतिम दिनों में दक्षिणी राज्यों ने एक कानूनी दुस्साहस का प्रयत्न किया। इस समय तक उत्तरी विरोध का नेता कोई रिपब्लिकन न होकर डगलस खुद बन गया था।

कन्सास में संविधान बनाने के लिए एक समिति चुनी गयी थी। इस समिति में थोड़े से ही लोगों का प्रतिनिधित्व था, क्योंकि किसी कारण से—चाहे वह कारण अच्छा हो या बुरा—दास प्रथा-विरोधी लोगों ने चुनाव में भाग नहीं लिया। परन्तु यह मान लिया गया था कि समिति कैसा भी संविधान का प्रारूप क्यों न बनाये, आम जनता के मत जानने के लिए उसे प्रसारित किया जायेगा। समिति ने जो संविधान बनाया उसमें दास-प्रथा को कानूनी स्वरूप दिया गया और इसका प्रारूप कांग्रेस के समक्ष रखा गया जिसके पीछे दक्षिणवालों को बुकनान का समर्थन प्राप्त था। "इसके अनुसार कहा गया कि कन्सास के लोगों को या तो जैसा यह संविधान है, उसी रूप में मंजूर करना पड़ेगा अथवा दूसरी स्थिति में यह स्वीकार करना होगा कि दास-प्रथा-प्रतिबंध उन दासों के प्रति नहीं लागू होगा, जो कन्सास में लाये जा चुके हैं।" उनको किसी भी रूप में सम्पूर्ण संविधान अस्वीकार करने का अवसर नहीं दिया गया जब कि वहाँ के गवर्नर वाकर ने राष्ट्रपति को यह बता दिया था कि वे लोग ऐसा करना चाहते हैं। वाकर खुद दास-प्रथा का पक्षपाती था। अंत में कड़े विरोध के फलस्वरूप इतना किया गया कि काँग्रेस ने बहुमत से एक कानून पास किया जिसके अनुसार कन्सास के लोगों को केवल इस तरह मतदान का अधिकार दिया गया कि कन्सासवासी यह संविधान या तो पूरा-का-पूरा स्वीकार करें या उसे अस्वीकार कर दें। यदि वे उसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेते हैं, तो उनके राज्य में वह विशाल सरकारी भू भाग मिला दिया जायेगा जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अधीन था। इतने पर भी कन्सास के लोगों पर इस राजनीतिक घूँस का कोई असर नहीं पड़ा और उन्होंने भारी बहुमत से संविधान को ठुकरा दिया। अस्वीकार करने के पक्ष में ग्यारह हजार मत आये और पक्ष में केवल एक हजार ही। तीन वर्ष पहले दक्षिण के नेता भी डगलस के साथ यही चाहते थे कि कन्सास की जनता ही यह निर्णय करे कि वे दास-प्रथा चाहती हैं या नहीं। इतने पर भी कन्सास के लोगों को उल्लू बनाने के लिए जो चालाकी खेली गयी वह शर्मनाक थी। यह प्रेस्टन ब्रुक्स के कारनामों से भी अधिक निर्लज्ज थी। इसमें शान जैसी कोई बात नहीं थी। सारा षड्यंत्र दक्षिण के नेताओं ने चुपचाप रचा। इनमें से बहुत से अपने-आपको सच्चरित्र और

सम्माननीय समझते थे और राष्ट्रपति बुकनान, उन्हें अमरीकी जीवन की गौरवशाली परम्पराओं का प्रतिनिधि माना करता था। परन्तु दक्षिणवासियों ने ऐसी ही कई घटनाओं में यह दर्शाया कि उनके लिये दास-प्रथा एक पवित्र कार्य है और उसकी रक्षा के लिए कोई भी तरीका अपनाना अनुचित नहीं। उस समय की राजनैतिक स्थिति को समझने के लिए इतना ही याद रखना जरूरी है।

डगलस ने इस मसले पर गौरवपूर्ण भूमिका अदा की। वह अपने सार्वभौमिक जनसत्ता के सिद्धान्त के कारण कन्सास के लोगों के साथ जो जालसाजी की गयी, उसे स्वीकार नहीं कर सका। परन्तु वह इतना चालाक अवश्य था कि यदि वह चाहता तो सुरक्षापूर्वक अपना विरोध प्रकट कर सकता था। उसने बहादुरी के साथ साहसपूर्वक राष्ट्रपति बुकनान की घृणा और अपने दक्षिणी मित्रों के क्रोध को बर्दाश्त करते हुए निरंतर इसका विरोध किया। इसको देखते हुए लिंकन द्वारा अपने मित्रों के सुझाने पर डगलस के पुनर्निर्वाचन के विरोध में खड़े होने का कार्य उचित नहीं प्रतीत होता है। इल्लीनायस के बाहर के रिपब्लिकनों में से बहुत-से, इस मत के थे कि इस समय जब कि दल के नीचे से जमीन खिसक रही थी—अन्य कोई दूसरा रास्ता पकड़ने के लिये—डगलस का एक सहयोगी के रूप में स्वागत करना चाहिए था। इस मामले में सेवार्ड तो इतना आगे बढ़ गया था कि डगलस यदि स्वतंत्रता के पक्ष में कार्य करे तो वह सार्वभौमिक जनसत्ता के सिद्धान्त तक को मानने के लिये तैयार हो गया था, परन्तु ओहयो का पवित्रहृदय गवर्नर चेस हृदय से लिंकन के साथ था। (वह भी केवल एक बार ही इस मसले पर, अन्यथा दुर्भाग्यवश लिंकन का साथ उसने कभी नहीं दिया।) पूर्वी राज्यों के रिपब्लिकन नेतागण और प्रसिद्ध रिपब्लिकन पत्र 'ट्रिब्यून' ने घोषणा करते हुए यह इच्छा व्यक्त की कि डगलस पुनः चुना जाय। तब क्यों लिंकन उसके विरुद्ध खड़ा हुआ?

इस बारे में कभी-कभी यह कहा जाता है कि लिंकन ने अपनी व्यक्तिगत दुर्भावना डगलस के प्रति होने से ऐसा किया। परन्तु कोई भी यह पूर्णतया स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि केवल व्यक्तिगत दुर्भावनाओं के कारण ही उसने डगलस का विरोध किया था। हो सकता है कि यही प्रमुख कारण हो और यह जान कर संतोष ही होगा कि इस मामले में लिंकन ने छोटी-छोटी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। निस्संदेह लिंकन अपने-आपको दूसरे व्यक्तियों की तुलना में कम नहीं समझता था और यह उसकी महत्वाकांक्षा को चोट

पहुँचानेवाली बात थी कि वह अपने से सभी बातों में घटिया—केवल शीघ्र प्रभाव प्राप्त करने में सफल—व्यक्ति द्वारा इस तरह परास्त किया जा सके। उसके दिमाग में डगलस की राजनीति के बारे में पूर्ण अविश्वास था। डगलस के लिए न तो सिद्धान्त ही थे और न समझौते निभाने की दृढ़ भावना। लिंकन ने राजनीतिक क्षेत्र के अलावा कभी भी पेशेवर वकील के रूप में डगलस का न तो अविश्वास ही किया और न ऐसा कोई कारण ही था। फिर भी उसके दिमाग में एक बात दृढ़ता से जमी हुई थी कि उसकी सिद्धान्तहीन राजनीति को समाप्त कर दिया जाय। पेवोरिया में १८५५ में उनकी संयुक्त चुनाव सभा के बाद डगलस ने—लिंकन को पटाना कठिन समझकर—यह सुझाया कि इन दिनों वे इस बात पर समझौता कर लें कि अब वे सभाएँ नहीं करेंगे। लिंकन ने अजीब ढंग से इसे स्वीकार कर लिया, कदाचित् इसलिए कि कठिनाइयाँ कम हों। इस बात को वह पहले ठुकरा भी चुका था। लिंकन ने इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह निभाया जब कि डगलस ने लालच में आकर इसे भंग भी कर दिया। इस तरह हम सभी मानों में यह कह सकते हैं कि लिंकन को अब डगलस का विरोध करने में आनन्द आ रहा था। परन्तु आगे बढ़कर यह कहना कि दोनों व्यक्ति एक दूसरे के प्रति नफरत से भरे हुए थे, दोनों के प्रति अन्याय होगा। एक आदमी को हटाने की तीव्र इच्छा और उसके प्रति नफरत इन दोनों का सम्बंध होना जरूरी नहीं है। इस तरह की स्वस्थ परम्परा अंग्रेजी राजनीतिक विचारधारा का अंग है। भले ही लिंकन ने इसे किसी भी विचारधारा से ग्रहण किया हो, उसके कार्यों का सारा इतिहास जाँच लेने के बाद भी यह कहा जा सकता है कि लिंकन ने इस परम्परा को कहीं भंग नहीं होने दिया। डगलस भी—चाहे वह सिद्धान्तहीन था—हमारा अनुमान है कि इतना अकृतज्ञ नहीं था।

इस विषय में मुख्य बात यह है कि यदि लिंकन डगलस के विरुद्ध खड़ा नहीं होता और इस मौके का लाभ नहीं उठाता, तो वह अपने दृढ़ सिद्धान्तों के प्रति विश्वासघात करता। भले ही इस अवसर पर डगलस के साथ सहानुभूति दर्शाने की जरूरत थी। यह समझ लेना चाहिए कि डगलस अपने सिद्धान्त के अनुसार काम कर रहा था। उसकी यह मान्यता थी कि दास-प्रथा का सिद्धान्त स्थानीय जनता की इच्छा पर छोड़ दिया जाना चाहिए जो इसका निर्णय करे। उसने कन्सास के गोरे लोगों के मताधिकार की सुविधाओं के लिए दावा किया और यह मिल जाने पर उसने जोर देकर घोषणा की—"मुझे इसकी परवाह नहीं है कि दास-प्रथा को स्वीकार किया जाय या उसे ठुकराया जाय।" डगलस का

सिद्धान्त दास-प्रथा के प्रति निष्क्रियतापूर्ण था। वह इसे नैतिक स्वरूप प्रदान कर चुका था। इस सिद्धान्त का तात्पर्य दास-प्रथा की बुराइयों को अपरोक्ष रूप से स्वीकृति देना था। केवल एक वर्ग विशेष तक ही स्वतंत्रता को सीमित रखना ही इसका उद्देश्य था, जो गणराज्य की इस भावना के विपरीत था कि सबको समानता प्राप्त हो। यह नया सिद्धान्त गणराज्य के प्रति विश्वासघात का सूचक था। यह ऐसा देशद्रोह था जो अमरीका में तेजी से पनप रहा था और जिस पर शीघ्र ही काबू पाना जरूरी था। लिंकन ऐसे विपरीत सिद्धान्तों के समक्ष कैसे आत्मसमर्पण कर सकता था?

लिंकन की सच्चाई के बारे में कहीं कोई संदेह नहीं है। परन्तु सम्माननीय रिपब्लिकन नेताओं के दृष्टिकोण में उस समय इस तरह का रुख अपनाना अव्यावहारिक था और अमरीकी राजनीतिक इतिहासकारों की दृष्टि में यह प्रश्न अमरीकी इतिहास के लिये निर्णायक प्रश्न था।

कोई भी यह नहीं कह सकता है कि यदि उस समय ऐसे ही अथवा अन्य कार्यों को थोड़ा दूसरे ढंग से किया जाता तो गृहयुद्ध नहीं होता। परन्तु लिंकन ने अपने सिद्धान्तों को सामने रखते हुए उन घटनाओं में एक कड़ी जोड़ दी जिनके कारण गृहयुद्ध हुआ। वह स्वयं इस बात को दूसरों की अपेक्षा अच्छी तरह जानता था कि जो वह करने जा रहा है, उसका राष्ट्रीय महत्व है और उसमें राष्ट्र के लिए गंभीर संकट भी है। क्या वह अपने सिद्धान्तों की पूर्ति के लिए —जो अभी प्रारंभिक अवस्था में थे—पागलपनपूर्ण कार्य करने जा रहा था अथवा वह परिस्थिति की गंभीरता के बावजूद भी अपने सिद्धान्तों को व्यावहारिक स्वरूप दे रहा था? जहाँ तक व्यावहारिक राजनैतिक दूरदर्शिता का प्रश्न है—इस मामले में दास-प्रथा का कहाँ तक सम्बंध है, उत्तर व दक्षिण के कैसे सम्बंध थे और लिंकन का यह सिद्धान्त कि दास-प्रथा को उसी स्थान पर रखा जाय जहाँ हमारे पित्रों ने रखा था—प्रमुख प्रश्न थे।

हर्नडन ने इन दिनों पूर्वी राज्यों के बड़े-बड़े व्यक्तियों को लिंकन का समर्थक बनाने के लिये वहाँ की यात्रा की। वे अवश्य मित्रतापूर्ण थे, परन्तु उन्हें राजी करना कठिन था। संपादक होरेस ग्रीली ने उसे कहा—"रिपब्लिकन स्तर बहुत ऊँचा है, हम कोई व्यावहारिक चीज़ चाहते हैं।" हम इस बारे में पूर्ण निश्चित हैं कि इससे लिंकन की कमर मजबूत ही हुई, वह ऐसा मनुष्य था जो अपने सिद्धान्तों की परवाह करता था—और यही कारण है कि अपने दल के कुशल संचालक के रूप में वह खड़ा हो गया। यह इस बात को प्रकट

करता है कि उत्तरवासी अपनी नीति-निर्धारण की दिशा में किस तरह खतरनाक समझौतावाद लाने जा रहे थे। १८५४ में दास-प्रथा की वृद्धि को अन्यायपूर्ण कहना माने रखता था। राजनीतिज्ञों के अनुसार उस समय ऐसा नहीं लगता था कि दास-प्रथा-वृद्धि का संकट कहीं निकट ही है। उनकी मान्यता थी कि ऐसी स्थिति में क्यों न कम उत्तेजनापूर्ण तरीका अपनाया जाय, जिसे उस समय अधिक-से-अधिक लोग स्वीकार कर सकें। उत्तर के इन राजनीतिज्ञों के सामने—जो अभी तक निर्णय की स्थिति में नहीं थे—दक्षिणी राज्यों का संगठित स्वरूप था जिनके नेतागण अब तक इसके आदी हो गये थे। वे जिस रास्ते चाहते उसी ओर गणराज्य की सरकार को ढकेल देते और अपने सिद्धान्तों के लिए कहीं भी किसी तरह के समझौते के लिये तैयार नहीं थे। लिंकन ने डगलस के चुनाव-प्रतिद्वन्द्व के बाद ही न्यूयार्क में कूपर इन्स्टिट्यूट में कहा था—"क्या तुम यह सोचते हो कि दक्षिण संतुष्ट हो जायेगा? नहीं। परन्तु प्रत्युत्तर आपको यह मिलेगा कि दास-प्रथा उचित है।......यह मानते हुए कि दास-प्रथा उचित है और प्रसारणीय है, वे उसके लिए राष्ट्रीय मान्यता माँगेंगे, कानूनी अधिकार और सामाजिक वरदान के रूप में। और न हम उसे उचित तौर पर रोक ही पायेंगे, केवल इसी विश्वास पर कि दास-प्रथा अनुचित है। इसलिए इस नीति का कोई उपयोग नहीं कि हम भले और बुरे के बीच का कोई रास्ता चुनें या ऐसी ही निष्क्रियता की नीति अपनायें। इस अवसर पर सभी भले आदमियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।" इस बात का पूरा सबूत है कि उसने दक्षिण की नीति को अच्छी तरह से समझा था। कन्सास क्षेत्र अथवा सुदूर उत्तर में दासों द्वारा खेती लाभप्रद हो सकती थी, इसमें अधिक संदेह है। परन्तु हम यह देख चुके हैं कि एक नये राज्य में दास-प्रथा को संकुचित कानूनी रूप दिलाने के प्रयत्न में दक्षिण के नेता क्या नहीं कर सकते थे। कन्सास के संविधान के मामले में उन्हें किसी तरह की सफलता नहीं मिली। परन्तु उनके सामने इससे अच्छी सफलता मिलने की और भी शानदार संभावनाएँ थीं। सर्वोच्च न्यायाधीश टैने और अन्य न्यायाधीशों का ड्रेडस्काट मामले में महत्वपूर्ण फैसला इस दिशा में उनके पक्ष में एक वास्तविक निर्णय के रूप में आया और यदि वे चाहते तो भी ऐसा ही निर्णय होता जो परिवर्तनीय नहीं हो सकता। उनका दास-प्रथा-सम्बंधी सिद्धान्त संवैधानिक नियम का रूप तब ही ग्रहण कर सकता था जब कि सर्वोच्च न्यायालय में उन न्यायाधीशों की नियुक्ति उस राष्ट्रपति द्वारा सम्भव होती जो

टैने के दृष्टिकोण को माननेवाला हो और अपने प्रशासनिक मामलों में भी वह इसी दृष्टिकोण का हो। इसके साथ-साथ बाहरी विचारधारा का भी प्रभाव न्यायकर्ताओं के विचारों पर पड़ता रहे (इस मामले में निश्चय ही यह प्रभाव पड़ा था)। यदि एक बार यह साधारण-सा सिद्धान्त अमरीकी न्यायशास्त्र में दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लिया जाता है कि दासों पर उनके मालिकों का वैसा ही अधिकार है जैसा कि उनका अपनी संपत्ति पर, तो फिर दास-प्रथा-प्रतिबंध सम्बंधी कानून को कैसे संवैधानिक ठहराया जा सकता था—केवल उन राज्यों को छोड़ कर जो संविधान के अन्तर्गत स्वतंत्र राज्य थे। यह दूसरी बात है कि जहाँ दासों का उपयोग नहीं, वहाँ किसलिए दास रखे जाते; क्योंकि औद्योगिक राज्य होने से वहाँ दासों का कोई उपयोग नहीं था। परन्तु निश्चय ही उन व्यक्तियों के विचारों को जिन्होंने दास-प्रथा को एक बार हृदय से अस्वीकार कर दिया, ऐसे कार्यों द्वारा कमजोर किया जा सकता था। दक्षिण में भी इस भावना को समाप्त किया जा सकता था कि दास-प्रथा मृतप्राय प्रथा है। यदि पश्चिम में दास-प्रथा को लाभजनक रूप से जमाना असफल भी रहता, तो भी क्यूबा और केन्द्रीय अमरीका में इसके लिए अवसर थे जहाँ कि दक्षिणवाले आक्रमण करने के विचारों को आशाजनक रूप से प्रोत्साहित कर रहे थे, और इस दिशा में उन्हें जीतने या मिलाने के लिए राष्ट्रीय सरकार पर जोर डाला जा सकता था। यहाँ तक कि जफरसन डेविस जैसे नेता कहते थे कि यदि दास-व्यापार के प्रतिबंध को शिथिल नहीं किया जा सकता है, तो भी इसकी कड़ाई टेक्सास, न्यू-मेक्सिको या भविष्य में प्राप्त ऐसे ही प्रदेशों में लागू नहीं की जानी चाहिए, जहाँ अधिक दासों की गुंजाइश थी। इन नेताओं का ऐसा ही मत था जो तत्कालीन कांग्रेस और राष्ट्रपति पर हावी हो रहा था। जब लिंकन ने यह फैसला किया कि उनकी इस नीति के विरुद्ध कड़ा रुख अपनाया जाय और उस दल के लिए ऐसा रुख अपनाना संभव नहीं है, जिसने अपने महान बुद्धिवादी सिद्धान्त दास-प्रथा-विरोध को डगलस के साथ जोड़ दिया, जिसका सिद्धान्त था—"मुझे कोई परवाह नहीं कि मतदान दास-प्रथा के पक्ष में हो या विपक्ष में।" अतएव अब यह संशय नहीं रह जाता कि वह सही था और जिन बड़े-बड़े रिपब्लिकनों ने उसका विरोध किया, वे सही नहीं थे।

जब लिंकन और उसके मित्रों ने इल्लीनायस में डगलस का मुकाबला करने का निर्णय कर लिया तो रिपब्लिकन दल के रूप में इनका साथ नहीं देना दल के और लोगों के लिये असंभव था। उस समय संकटकाल में यह अपने-

आपमें एक बहुत बड़ी बात थी। लिंकन ने अपने चुनाव अभियान के प्रथम भाषण से इसे और भी महत्वपूर्ण बना दिया। अब तक उसने जो भी भाषण दिये उनसे ये अधिक सावधानीपूर्वक कहे गये शब्द थे और अब तक कहे गये शब्दों में अत्यधिक समयानुकूल। ऐसे शब्द उसने शायद ही कभी कहे होंगे। उनमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जो स्थिति के बारे में या उसके दृष्टिकोण के बारे में पहले से प्रकट किये गये विचार नहीं हों। और ऐसा भी कुछ नहीं है, जो एक या दो वर्ष पहले हजारों लोगों ने एक दूसरे को अपनी निजी बातों में नहीं कहे हों। परन्तु एक जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा पहले भाषण में यह घोषणा कि "किसी भी दल की विजय या हार के साथ यह गंभीर मसला जुड़ा हुआ है जो या तो महान घटना बन सकता है अथवा उसके भयानक नतीजे भी हो सकते हैं।"

उसने कहा—"यदि हम पहले यह जान लें कि हम कहाँ खड़े हैं और किधर जा रहे हैं, तो यह निर्णय अच्छी तरह कर सकते हैं कि हमें क्या करना है और उसे कैसे किया जा सकता है। हमें पाँच वर्ष से अधिक हो गये हैं जब कि पहले हमने घोषणा की थी, अपने उद्देश्यों के बारे में विश्वासपूर्वक प्रतिज्ञा ली थी कि दास-प्रथा का अंत होना चाहिए। यह प्रथा समाप्त होनी तो दूर रही, वरन् और तेजी से बढ़ गयी है। मेरी राय में यह तब तक समाप्त नहीं हो जाती जब तक दूसरी चरम सीमा नहीं आ जाती है। 'एक घर अपने आप में बँट कर खड़ा नहीं रह सकता है।' मेरा विश्वास है कि यह सरकार चिरस्थायी रूप से आधी स्वतंत्र और आधी गुलाम नहीं रह सकती है। मेरी मन्शा यह नहीं है कि गणराज्य भंग हो। परन्तु मेरी यह कामना है कि यह विभाजित नहीं रहे। या तो राष्ट्र एक होगा या फिर दूसरी बात होगी। या तो दास-प्रथा के विरोधी उसके विस्तार को रोकेंगे और उस स्थान पर रख देंगे, जहाँ जनमत को यह विश्वास हो जायगा कि वह अब अंतिम साँस ले रही है या इसके समर्थक इसे उस स्तर तक ले जायेंगे कि यह सभी राज्यों में कानूनी रूप ग्रहण कर लेगी—चाहे ये राज्य पुराने हों अथवा नये, उत्तर के हों या दक्षिण के।"

यहाँ कदाचित् यह कहा जा सकता है कि अमरीकी जनमत पिछले दिनों सीधे मसलों पर निर्णय लेने में बहुत ही कायर रहा। परन्तु यह कहा जा चुका है कि अमरीका में हृदयग्राही एक वाक्य ही, जो बहुत लोगों के अप्रकाशित विचारों का प्रतिबिम्ब हो, शीघ्र ही लोगों को ग्राह्य हो जाता है, जब कि अन्य स्थानों की बात दूसरी है। यद्यपि बहुत ही कम लोगों ने जो विभिन्न राज्यों में सुदूर रहते थे

लिंकन के अन्य भाषणों या फिर लिंकन की ही ओर कभी ध्यान दिया; परन्तु यह वाक्य, "विभाजित घर वाला", एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया और उसका प्रभाव देश पर बहुत गहरा व अमिट पड़ा। इस सारे वाक्यांश में निश्चय ही सम्पूर्ण राष्ट्र के सामने दास-प्रथा के मसले को प्रस्तुत किया गया, अधिक बहादुरी के साथ, अधिक स्पष्ट और पूर्ण सच्चाई के साथ, जैसा शायद ही पहले किसी ने किया हो। इन प्रभावों का अनुमान संक्षेप में नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यह भाषण ऐसा भाषण था, जिसके साथ महत्वपूर्ण क्रियाशीलता जुड़ी हुई थी और इसके पीछे वक्ता की जो कहानी है वह वर्णनीय है। १८५६ में लिंकन ने अपने भाषण में सचमुच ही यह कहा था कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका अर्धदासत्व और स्वतंत्रता के बीच में जीवित नहीं रह सकता है। उसके मित्र ने भाषण के बाद में कहा—"भगवान के लिए, यह दुष्प्रेरणा तुमने कहाँ से ली कि तुम इस तरह की बात कहो।" लिंकन ने उत्तर दिया—"मेरी आत्मा से। मैं सोचता हूँ कि यह सही है।" और उससे बहस करके जीता नहीं जा सकता था। उसी मित्र ने कहा—"सत्य हो या नहीं; परन्तु इस समय इसके प्रचार से कोई लाभ नहीं होगा और बाद में गंभीर प्रतिक्रिया के पश्चात् लिंकन ने यह मंजूर कर लिया कि मौजूदा स्थिति में अब वह आगे यह बात नहीं कहेगा। १८५८ में जब उसने भाषण तैयार कर लिया, तो हर्नडन को पढ़ कर सुनाया। हर्नडन ने सवाल किया कि इसमें विभाजित घरवाला वाक्यांश रखना राजनीतिपूर्ण होगा।" उत्तर में लिंकन ने कहा—"इस वाक्यांश को जनता के समक्ष खुलकर रखने में और उस पर प्रकाश डालने से यदि मेरी हार होती है तो कोई बात नहीं, परन्तु मैं इसे छिपा कर जीतना नहीं चाहता।" ऐसे ही एक बार भाषण देने के पहले उसने अपने दस-बारह निकटवर्ती समर्थकों के बीच उसे पढ़ कर सुनाया; क्योंकि उसका यह अपना तरीका था कि वह अपने इरादों के बारे में पहले मित्रों से बातचीत या बहस कर लेता। कई बार अत्यंत विनम्रता से उनकी सलाह मान लिया करता था और कई बार उसे पूर्णतया अस्वीकार कर देता था। एक ने कहा—"यह समय के बहुत आगे है।" दूसरे ने कहा—"यह महज बेवकूफी का भाषण है।" केवल इस बार हर्नडन ने कहा—"यह तुम्हें राष्ट्रपति बना देगा।" उसने सबकी बात सुनी, फिर उन्हें संबोधित करते हुए बोला—"मित्रों! यह चीज पहले से ही बहुत पीछे धकेल दी गयी है! अब वह समय आ गया है जब इस तरह की भावना व्यक्त की जानी चाहिए और यदि इसका फल यह होता है कि मेरी हार होती है

तो मुझे इस सत्य के साथ हार जाने दो—मुझे सत्य और न्याय के समर्थन में मृत्यु तक स्वीकार है।" यद्यपि यह एक उम्मीदवार की अपनी समिति के सामने महत्वपूर्ण घोषणा है और जिस व्यक्ति ने इसे संग्रहित किया है वह इस बात पर तुला हुआ था कि लिंकन की चतुराई और महत्वाकांक्षा के छोटे-से-छोटे उदाहरणों को रखा जाय।

इस चुनाव-दंगल में लिंकन हार गया। बहुत-से मित्रों ने उसे पत्र लिखे और इस वेवकूफी-भरे वाक्यांश के लिये उसे आड़े हाथों लिया। परन्तु उसकी हार किसी भी रूप में उस वाक्यांश के कारण नहीं हुई। उसे अपनी हार का विश्वास था और उसने उसे इस रूप में चतुराई से ग्रहण किया, जिससे आगामी राष्ट्रपति रिपब्लिकन दल का हो सके। परन्तु उसने कभी यह अनुमान भी नहीं लगाया होगा कि वह रिपब्लिकन और कोई नहीं स्वयं लिंकन ही होगा। उन दिनों प्रत्येक उम्मीदवार को उन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था जो उसका प्रतिद्वन्द्वी उसके विरुद्ध प्रस्तुत करता था और इन सवाल-जवाबों की ओर जनता का ध्यान अधिक आकर्षित हुआ करता था। ड्रेडस्काट फैसले ने डगलस के समक्ष गंभीर कठिनाइयाँ पैदा कर दी थीं। उसे वाध्य होकर उन्हें सही मानना पड़ता था। यदि ये सही थे और काँग्रेस को राज्यों में दास-प्रथा पर प्रतिबंध लगाने के कोई अधिकार नहीं थे और न ही इसके अनुसार प्रादेशिक धारा सभा—जिसे काँग्रेस द्वारा अधिकार प्राप्त होता है—को भी इस दिशा में कोई अधिकार ही थे, यदि एक बार भी 'डैने निर्णय' को डगलस स्वीकार करता, तो उसके अनुसार राज्यों को दास-प्रथा पर अंकुश लगाने का अधिकार नहीं रहता; फिर उस स्थिति में इस सिद्धान्त "राज्यों को स्वतंत्र निर्णय करने के अधिकार" का क्या मूल्य रह जाता है—वह सिद्धान्त जिस पर डगलस महोदय डटे हुए थे? डगलस सदा ही इस प्रश्न को अपने ढंग से टाल दिया करता था। यदि कभी उसे इस प्रश्न का उत्तर देना ही पड़ जाता, तो लिंकन जानता था कि वह क्या कहनेवाला था। डगलस यही कहता कि दास-प्रथा यथार्थ में किसी भी राज्य में गैरकानूनी नहीं होगी और उस राज्य में नहीं रह सकती, यदि धारासभा उस मसले पर मतदान ही नहीं करे जैसा कि दास-संपत्ति को कानूनन् करार देने के प्रश्न पर किया जा सकता था। इस दृष्टिकोण द्वारा डगलस इल्लीनायस में अपने समर्थकों को, जो ड्रेडस्काट निर्णय से उत्तेजित हो उठे थे, शांत कर सकता था; परन्तु निश्चय ही इससे दक्षिण का क्रोध भी भड़क उठता। लिंकन ने इस तरह के प्रश्नों को चुनौती के

रूप में रख कर डगलस को ऐसी स्थिति लाने के लिए बाध्य कर दिया। जब उसने अपने मित्रों को अपनी यह महत्वाकांक्षा दर्शायी, तो सभी ने यह कहा कि वह इस चुनाव में हार जायेगा। लिंकन ने उत्तर दिया—"सज्जनों! मैं बहुत बड़े शिकार को मारने जा रहा हूँ। यदि डगलस इसका उत्तर देता है, तो वह कभी राष्ट्रपति नहीं बन सकेगा और १८६० का संघर्ष ऐसे कई संघर्षों से अधिक महत्वपूर्ण है।" दक्षिणी राज्य डगलस पर कन्सास संविधान के मत-प्रदर्शन के कारण नाराज थे; परन्तु दक्षिण का समर्थन यदि उसे १८६० में मिल जाता, तो वह अजेय उम्मीदवार होता। उसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उसका दोष केवल यही था कि उसने सीधीसादी ईमानदारी का परिचय दिया, परन्तु दक्षिणी राज्य उसके इस कार्य को दुहरी सौदेबाजी समझते थे। इन लोगों ने कसम खा ली कि उसे राष्ट्रपति नहीं बनने देंगे।

इल्लीनायस की नयी धारासभा ने बहुमत से डगलस को सीनेट-सदस्य चुन लिया। तथापि लिंकन को इल्लीनायस राज्य के सर्वाधिक मत प्राप्त हुए। संभवतया उसने इल्लीनायस को अपने भविष्य के लिए भी सुरक्षित बना लिया। उस अनुपात के अनुसार लोकप्रिय डगलस के विरुद्ध इस राज्य से लिंकन को अधिक मत प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त वह ऐसे समर्थक जुटा पाया जिनका लिंकन में पूरा-पूरा विश्वास था। परन्तु लिंकन की हार की ओर इल्लीनायस राज्य को छोड़ कर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। न पूर्वी राज्यों में ही इसकी कुछ प्रतिक्रिया हुई जबकि इल्लीनायस उसका एक प्रान्त था और इस प्रान्त का वकील लिंकन था। चुनाव-अभियान में उसके पहले भाषण के शब्दों से हलचल अवश्य पैदा हो गयी; परन्तु बाद में उसके भाषणों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। डगलस जीत गया और यह धारणा बन गयी कि वह लिंकन से अधिक अच्छा व्यक्ति था। लिंकन ने बौद्धिक क्षेत्र में एक महान कार्य किया, जिसे अब तक हेमिल्टन के अतिरिक्त कोई नहीं कर पाया था और अब यह देखा जायेगा कि भविष्य में इसका क्या परिणाम हुआ। पहला तो यह कि नया 'रिपब्लिकन' दल जो मरणासन्न था, वह बच गया और सत्तारूढ़ डेमोक्रेटिक दल, जिसने अन्याय के साथ अपना नाता जोड़ लिया था, दो गुटों में विभक्त हो गया। परन्तु ये ऐसे परिणाम थे जिन्हें चुनाव के तात्कालिक उतार-चढ़ाव में नहीं आँका जा सकता था। कुछ समय तक थक कर चूर हुए लिंकन ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। निजी रूप से वह काम में जुट गया जिससे अपने चुनाव के लिए लिया गया कर्जा साफ कर सके। वह आसानी से ५००

पौंड वार्षिक कमा सकता था और एक मकान और दो हजार पौंड की संपत्ति बनाना चाहता था, जो एक मनुष्य के भविष्य की सुरक्षा के लिए काफी है। एक सार्वजनिक नेता के रूप में उसे उदासी के साथ-साथ यह गर्व भी था कि "कुछ भी हो, उसने जो कुछ इन दिनों किया, उसका अवश्य अच्छा फल निकलेगा, भले ही उसे भुला ही क्यों न दिया जाय।" निरंतर पीड़ा की झलक और असाध्य संवेदना प्रगतिपूर्ण जीवन के साथ-साथ रह सकते हैं, और जब ऐसा कहीं होता है तो यह मिलन बहुत ही शक्तिशाली प्रमाणित होता है। उसने अपने निकटवर्ती मित्रों और राजनीतिक शुभचिंतकों को आगामी चुनाव में जो आनन्द आनेवाला है, उसकी प्रेरणा में कई पत्र लिखे, उनमें भी निराशा की झलक नहीं मिट पायी है।

[४]

जान ब्राउन

आगामी कुछ महीनों में जो राजनीतिक उत्तेजना पैदा हुई, उसका इस जीवन-चरित्र से बहुत ही कम सम्बन्ध है। सीनेट में डेविस और डगलस के बीच मतभेद की गहरी खाई पैदा हो गयी थी। रिपब्लिकन नेता सीनेट सदस्य सेवार्ड ने उत्तर को दास-प्रथा-विरोधी सभाओं में भाषण देते हुए आनेवाले अनिवार्य संघर्ष से सजग कर दिया। यह उस समय महान साहस का काम था। भूमिगत रेलों और उत्तर में दक्षिणी लोगों के मित्रों के घरों में छिपा कर नीग्रो दास कनाडा भेजे जा रहे थे। यह बात चारों ओर फैल भी चुकी थी। ओबरलीन में सुधारवादी धर्मप्रचारकों ने एक पकड़े गये भगोड़े दास को हाथापायी करके छुड़ाने का प्रयत्न भी किया। दक्षिण में एक अदालत में जूरी ने दास-व्यापार में रंगे हाथों पकड़े गये नाविकों को दंड देने के बजाय उनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों की फाइल को उठा कर फेंक दिया जबकि अमरीका में दास-व्यापार पर कानूनन प्रतिबंध था।

केलीफोर्निया के शूरवीर डेमोक्रेटों ने एक साहित्यिक सीनेट सदस्य को—जिसने डेमोक्रेट होते हुए भी कन्सास के लोगों का पूरा समर्थन किया था—शारीरिक द्वन्द्व लड़ने को बाध्य कर दिया, ऐसा द्वन्द्व जिसे हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। एक घटना ऐसी है जिसे यहाँ केवल उदाहरण के रूप में देने से काम नहीं चलेगा। उस पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालने की

जरूरत है। यह है 'जान ब्राउन का धावा और उसकी मृत्यु'। जान ब्राउन अपने पूर्वजों की ही तरह कट्टर प्यूरिटन मतावलंबी था। उसके पूर्वज मे फ्लावर जहाज़ से यहाँ आये थे। यूरोप में धार्मिक अत्याचार के दिनों में ये लोग विपदाएँ झेल कर भी धार्मिक स्वतंत्रता बनाये रहे। यदि उसके जीवन में से रक्तपात-भरे संघर्ष की कहानी छोड़ दी जाय, तो कहा जा सकता है कि उसका चरित्र ईमानदारी से पूर्ण व सराहनीय था। वह वैज्ञानिक कृषक के रूप में असफल रहा; परन्तु अपने साहसिक कार्यों के लिए उसने और उसकी लड़ाकू टोली ने जो वीरता प्रदर्शित की, उसकी तुलना ड्रेक और गेरिबाल्डी से की जा सकती है। विशेष रूप से जब कन्सास में उथलपुथल हो रही थी, उसने आक्रमणकारियों का नेतृत्व किया, नृशंसता से मारकाट की। बिना एक भी आँसू बहाये अपनी आँखों के आगे उसके बलिष्ठ युवक पुत्र मारे गये। उसने जो यह रक्तपात का निर्णय लिया, इससे उसे अंत में जाकर मरते समय पीड़ा हुई; परन्तु जिस लक्ष्य के लिए उसने यह सब किया, वह एक महान लक्ष्य था जिससे अंत तक फाँसी के समय भी वह विचलित नहीं हुआ। १८५९ के अक्टूबर में जान ब्राउन ने कुछ नीग्रो और दास-प्रथा-समाप्ति-आंदोलकों की एक टुकड़ी लेकर दास-राज्यों पर आक्रमण किया और वरजीनिया स्थित हार्पर्स फेरी में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सैन्य सामग्री पर कब्जा कर लिया। इस मामले में उसने कहाँ से सहायता प्राप्त की, किसके कहने से यह निर्णय लिया, यह अभी तक रहस्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि जान ब्राउन ने जीवन में पहली बार भयंकर भूल कर डाली। यही एक ऐसी बात थी, जो उसे आखिरी दम तक खटकती रही। वह किस तरह की विजय चाहता था, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है। प्रायः उसने न तो इस ओर कभी ध्यान ही दिया और न परिणामों की परवाह ही की। राबर्ट ली के तत्वावधान में गणराज्य की सेनाओं ने उस पर शीघ्र काबू पा लिया। उसके साथ के एक कैदी ने बताया कि वह अंत तक किस तरह मुकाबला करता रहा। उसके पास ही उसका पुत्र मरा पड़ा था, दम तोड़नेवाले दूसरे बेटे की नाड़ी वह एक हाथ से थामे हुआ था, और दूसरे हाथ में रायफल पकड़ रखी थी। बुरी तरह घायल हो जाने के कारण वह पकड़ा जा सका। दक्षिणी लोग इस बात पर विश्वास नहीं कर सके कि जान ब्राउन के तत्वावधान में नीग्रो लोग उनकी पत्नियों पर निर्लज्ज आक्रमण की योजना नहीं बनाये हुए थे। परन्तु जान ब्राउन तो उन्हें भगवान के नाम पर न्याय की तलवार से जीत कर दासों को मुक्त करने जा रहा था। जहाँ भी वह

गया, उसने दासों को मुक्त कर दिया। अतएव दक्षिणी लोग उसे खुले में लिंच (पेड़ से बाँध कर जीवित जलाना) करने की बातें करने लगे, परन्तु वरजीनिया के सभ्यजनों ने इसे अस्वीकार कर दिया। वहाँ के गवर्नर वाइज़ ने उससे भेंट की और रिचमंड में जो भाषण दिया उसमें ब्राउन के उच्च चरित्र की अपेक्षा अपनी ही प्रशंसा की। ब्राउन को फाँसी दी गयी। इस टोली के एक सदस्य स्टोनवाल जेक्सन ने उस समय के भयानक दृश्य का चित्रण किया, जो युद्ध की मारकाट से भी अधिक नृशंस था। ब्राउन को फाँसी पर चढ़ाने के पूर्व उसने घुटने टेक कर प्रार्थना की कि संभवतया ब्राउन को बचा लिया जाय। उस अवसर पर जो सैनिक अधिकारी था उसने आज्ञा दी की "मानवजाति के इन सभी शत्रुओं को नष्ट कर दो" और दक्षिण भी इस दिशा में इस तरह का ही कदम उठाने को सोच रहा था।

मृत्यु के कुछ क्षणों पूर्व ब्राउन से पूछा गया कि तुम अपने कारनामों के बारे में क्या सफाई देना चाहते हो? उसने कहा—"मैं सोचता हूँ, मेरे मित्र! कि तुम भगवान और मानवता की दृष्टि में जघन्य अपराध के दोषी हो—मैं यह बिना उत्तेजना के या द्वेष के कह रहा हूँ—और यह किसी भी व्यक्ति के लिए उचित होगा कि वह हस्तक्षेप करके उन लोगों को, जिन्हें तुमने अपनी इच्छा और चालाकी से दास बना रखा है, मुक्त करें। मैं सोचता हूँ कि मैंने ठीक ही किया है और कोई भी व्यक्ति यदि किसी भी समय इस तरह का हस्तक्षेप करेगा, तो उचित ही होगा।" अंत में उसने कहा—"मैं कुछ और भी कहना चाहता हूँ तुम सभी लोग—सभी दक्षिणवासी—अच्छा हो, समझौते के लिए तैयार हो जाओ; क्योंकि इसका हल शीघ्र ही निकलनेवाला है। उससे भी पहले—जब तक कि तुम इसके लिए तैयार होओगे—तुम मुझे सरलता से मिटा सकते हो। मैं लगभग समाप्ति के निकट ही पहुँच चुका हूँ। परन्तु इस प्रश्न का हल अभी बाकी है—मेरा मतलब इस नीग्रो समस्या से है। इसका यही अंत नहीं है।" उसने पत्र में लिखा कि जैसे महान धर्मगुरु पाल को अपने बलिदान के समय प्रसन्नता हुई थी, उसी तरह वह भी आनन्द में डूब गया है; क्योंकि "यदि वे लोग उसकी हत्या करेंगे, तो पाल की तरह वह भी ईसा मसीह के उद्देश्य को आगे बढ़ने में सहायक सिद्ध होगा।"

लिंकन ने—जिसके दृष्टिकोण में दासप्रथा और कानूनविरोधी कार्यवाहियाँ एक-सी थीं—जान ब्राउन के आक्रमण के बारे में लिखा—"यह मामला अपने सिद्धान्तों के लिए इतिहास में उसी तरह की मिसाल है, जैसे राजाओं और

सम्राटों का कत्लेआम। एक उत्साही व्यक्ति दासों के क्रूर दमन से क्रोधित होकर यह काल्पनिक साहस कर बैठता है कि भगवान ने उसे इन लोगों को मुक्त करने का काम सौंपा है। वह प्रयत्न करता है, और उसका फल केवल यही निकलता है कि उसे मरना पड़ता है। ओरसिनी द्वारा लुई नेपोलियन की हत्या के प्रयत्न और जान ब्राउन का हार्पर्स फेरी कांड एक ही तरह के सिद्धान्तों के प्रतिरूप हैं।" सेवार्ड लिंकन से कहीं अधिक ब्राउन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण बोला और वह अधिक संगत था, क्योंकि इसमें कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है जैसा कि लिंकन के जीवनचरित्र लिखनेवाले ने लिखा कि इस बारे में लिंकन ने अपने सामान्य ज्ञान से निर्णय लिया। जान ब्राउन ने उत्तर के सभी तरुण युवकों के हृदय में एक ऐसी स्मृति छोड़ी, जो युद्ध के दिनों में भी सजीव रही और आगे तक वह स्मृति बनी रही। वह एक गीत का विषय बन गया भले ही साहित्य में उस गीत का कैसा ही स्थान क्यों न हो—वह उत्साह फूँक देने वाला संगीत था। गीत-लेखक के रूप में प्रसिद्ध कवि एमर्सन ने भी उसे महान मुक्तिदाता स्वीकार किया और प्रसिद्ध लेखक विक्टर ह्यूगो ने उसकी कब्र पर यह स्मरण-लेख खुदाने का सुझाव दिया—"ईसा मसीह के लिए, ईसा मसीह के साथ"—शांतस्वभाव के कवि लांगफेलो ने २ दिसंबर १८५९, शुक्रवार को, जिस दिन जान ब्राउन को फांसी दी गयी, अपनी डायरी में लिखा—"यह हमारे इतिहास में महान दिन होकर रहेगा। अभी जब कि मैं लिख रहा हूँ वे लोग वरजीनिया में वृद्ध जान ब्राउन को वध के लिए ले जा रहे हैं; क्योंकि उसने दासों को मुक्त करने का प्रयत्न किया था। आज जो हवा बह रही है उसमें तूफान के असर पैदा हो रहे हैं और वह तूफान शीघ्र आनेवाला है।"

कोई भी व्यक्ति जिसकी लिंकन में रुचि है, वह इस विरोधाभासी परन्तु उल्लेखनीय घटना के पात्र के प्रति दयार्द्र होने को बाध्य हो जाता है। जान ब्राउन अचानक ही उस समय रंगमंच पर आ जाता है जब कि कुछ समय बाद ही दास-प्रथा-विरोधी प्रमुख अभिनेता (लिंकन) का आगमन होनेवाला था। जान ब्राउन को हम ऐसे व्यक्तियों की श्रेणी में रख सकते हैं, जिन्होंने दूर का मार्ग अपना कर क्रैंकर्स (सुधारवादियों) की तरह महत्वपूर्ण बलिदान किया। उसके लिए हिंसा और कानून का कोई बंधन नहीं था। वह अपने लंबे जीवन के अनुभवों से संचित सिद्धान्तों के लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए सर्वदा तैयार रहा। ऐसे व्यक्ति बहुत कुछ असामान्य ही होते हैं; क्योंकि कोई भी सामान्य व्यक्ति अपने जीवन को इस तरह की योजना में

डाल कर पागलपन करने को वास्तविक रूप से तैयार नहीं होता। इस तरह के व्यक्ति असामान्य ही होते हैं, उनके विचार पूर्ण विकसित नहीं होते हैं, सहानुभूति के अभाव में वे साहसिक काम कर बैठते हैं जो सामान्य परिस्थिति में कोई भी साधारण व्यक्ति नहीं कर सकेगा। परन्तु हमारी सहज बुद्धि ऐसे व्यक्तियों को बुरा ठहराने या उन्हें दोषी करार देने की प्रवृत्ति से विद्रोह कर बैठती है; क्योंकि वे हमारे समाज से निर्लिप्त रहते हैं। वे अपने ही एकाकी विचारों में लीन तथा कभी-कभी अपने अभियान में अधिक सफल भी होते हैं। वे लोग एकाकी व समाज के विरुद्ध विद्रोही भावना के कारण अपने आप पर मुक्तिदाता की जिम्मेदारी ले लेते हैं। इसे वे भगवान द्वारा दिया गया आदेश मान कर चलते हैं और भावावेश में आगा-पीछा सोचे बिना कूद पड़ते हैं। कभी-कभी वे सफल भी होते हैं, परन्तु अधिकांश में असफल ही रहते हैं। ये व्यक्तिवादी अपने ढंग के अनूठे होते हैं। हम लोग भी उन्हें इतनी सहानुभूति व सराहना बाद में प्रदान करते हैं जितनी कभी सोच-समझ कर सफलतापूर्वक समाज को साथ लेकर आगे बढ़नेवाले नेता की भी नहीं करते हैं। अब हम जान ब्राउन को यहीं छोड़ देते हैं जिसने दास-प्रथा में क्रूर दमन देख कर अत्यंत क्रोधित होकर निकटवर्ती क्रूर दास-मालिकों के साथ मारकाट की और दासों को मुक्त कर दिया। भले ही इसका लाभ कुछ ही समय के लिए ही क्यों नहीं रहा हो। अब हम अपना ध्यान उस शांत, गंभीर व्यक्ति की ओर ले जाते हैं, जो बहुत पहले अपने युवाकाल में दास-प्रथा के कारण क्रोध से उबल उठा था, परन्तु अब जिसकी सारी आत्मशक्ति पूर्ण उदार व शांतिपूर्ण मार्ग की खोज में थी। "हमें दासप्रथा को उसी स्थान पर वापस रखना है, जहाँ पूर्वजों ने उसे रखा था और उसे शांति से वहीं पड़े रहने देना है।" हमें यह देखना है कि जब उसके हाथों में सत्ता आयी तो उसने इस दिशा में किस तरह काम किया। समय आने पर उसने अपनी सैद्धान्तिक नीति को दृढ़ता और धैर्य्य के साथ किसी भी स्थिति में सही रूप में लागू किया—जबकि एक ओर युद्ध जारी था, रक्त बह रहा था, वह यह सब देख रहा था और धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था। लिंकन को बारबार अपना निर्णय इस दिशा में स्थगित करना पड़ा, उसे अपनी योजनाओं में निरंतर परिवर्तन करने पड़े। वह यह सब करता, परन्तु जब उसने देखा कि समय आ गया है, उसने प्रस्ताव के रूप में उसे रख दिया। इतने पर भी उसे किसी ने धन्यवाद तक नहीं दिया। उल्टे लोगों ने, जब वह सफल हो गया, तो कहा—"यही तो वह बात थी

जिसके लिए हम सदा कहते रहते थे कि ऐसा करना चाहिए था।" इसके अलावा नीति के इस मसले पर जिसमें हमारी सबसे अधिक रुचि है, हम यह देखेंगे कि उसने वह शस्त्र बहुत बाद में जाकर अपनाया, जिसने नीग्रो-दासता का अंत कर दिया। एक महत्वपूर्ण और बड़ी समस्या को दूसरे मसलों के समक्ष इस तरह गौण रख देने की नीति हमें पसन्द नहीं आयेगी। उस समय लिंकन की इस नीति के कारण कई विद्वान व कुशल राजनीतिज्ञों में उसके प्रति असंतोष व गहरा संदेह भी पैदा हो गया था। लिंकन की धीमी और उदार परन्तु सैद्धान्तिक नीति को राजनीतिज्ञ कायरता और इसके लिए उसे भीरु समझने लगे थे। वे कुछ तात्कालिक क्रिया चाहते थे। उस समय उनके लिए उसके पवित्र हृदय, सिद्धान्त और आत्मनियंत्रण का कोई मूल्य नहीं था। वे उसकी नीति को अनुचित समझने लगे थे और उसे साधारण व्यक्ति समझकर—भले ही निम्न कोटि का न ठहराये—अयोग्य मानने लगे थे।

आज उसका जीवन-चरित् पढ़नेवाले इन व्यक्तियों के असंतोष की अभिव्यक्ति के प्रति सहानुभूति दर्शाये बिना नहीं रह सकते हैं। उस समय हम भी यही चाहते कि यह व्यक्ति अब कूद पड़े, धैर्य की सीमा लाँघ कर अब वह कठोर होकर निर्णय करे; उसे कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए था भले ही वह थोड़ा अनुचित ही क्यों न हो। सामान्य पुरुषों में पायी जानेवाली ऐसी हार्दिक भावनाओं की कमी इस व्यक्ति में अधिक थी। हम भी इसी तरह का संदेह करेंगे—एक महान दार्शनिक के शब्दों में—कि वह "रुचिहीन किंतु सुनियंत्रित व्यक्ति था" परन्तु यही उसकी स्मृति में सबसे गंभीर और दृढ़तासूचक चिह्न था, जिसे हमें स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा। ऐसे क्षण अवश्य आये, परन्तु वे अधिक समय तक नहीं ठहर सके। ऐसी कई चीजें थीं जो ऊपर से छोटी नजर आयीं परन्तु वे बहुत ही महत्वपूर्ण थीं। उसके बाल्यकाल की सभी छोटी-मोटी घटनाएँ, उसकी युवावस्था या उसके अंतिम दिन, उसका अपने सिद्धान्तों में गंभीर विश्वास, दृढ़ भावनाओं के वशीभूत होकर दिये गये उसके कुछ भाषण, उसके चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियाँ—जिनके प्रमाण बाद में उसके चित्रों से मिले—ये सभी इस बात को पूर्णतया अस्वीकार करती हैं कि अब्राहम लिंकन ऐसा सुयोग्य व्यक्ति नहीं था, जो उस पद या समय के अनुकूल था या उस प्रतिक्रिया-काल के लिए किसी भी तरह के 'काम का आदमी ही रहा हो।' उसके कार्य निश्चय ही यह प्रमाणित करते हैं कि ऐसी कोई भावना स्थायी रूप से लोगों में उसके प्रति नहीं बन पायी थी। यथार्थ में उसके कार्यों में

कुछ ऐसी ऊपरी कमजोरियाँ झलकती थीं, जो सफल शासक में नहीं पायी जाती हैं, परन्तु यह निश्चित है कि उसने जो भी किया, उसे करते समय हृदय और मस्तिष्क के विलक्षण गुणों का परिचय दिया। यहाँ उस गुण की परिभाषा देने की आवश्यकता नहीं है। उसकी सामान्य राजनैतिक विद्वत्ता इससे भी कहीं बढ़ीचढ़ी थी और—उसकी कई भूलें महत्वपूर्ण होने पर भी उस परिस्थिति में सराही गयी थीं। यह संतुलित और गिन-गिनकर कदम रखनेवाला व्यक्ति, अपने मतदाताओं की भावनाओं का पूर्ण अध्ययन करते हुए—सभी आनेवालों के साथ विनोदप्रिय रूप में चुटकियाँ लेते अपने मान्य सिद्धान्तों व उद्देश्य की दिशा में बलिदान का प्याला छक-छक कर पी रहा था—उसी तरह के जहर का प्याला जो किसी शूरवीर या संत को बाध्य होकर अपने ओठों से लगाना पड़ा था। काश! हम उस समय यह समझ पाते!

[५]

राष्ट्रपति के रूप में लिंकन

कतिपय अचिंतनीय घटनाएं लिंकन को ऐसे उच्चतम पद की ओर उठा रही थीं जिसकी महत्वाकांक्षा उसने कभी की हो। उसे अचानक ही यह जो महानता प्राप्त हुई उसके लिये डगलस से पराजित होने के बाद के वर्षों में किये गये कार्यों को इसका सुयश कदापि नहीं दिया जा सकता। फिर भी यह उसकी शक्ति और कमजोरी को हमारे सामने रखता है। उसकी पूर्ण योग्यता जो कभी-कदाच अचानक ही प्रकट हो जाती थी कि वह उच्च पद के योग्य है, तो दूसरी ओर उसकी ऊपरी अजीब कमजोरियाँ भी थीं जो तत्कालीन महारथियों के समक्ष उसके गुणों को लंबे समय तक छिपाये रहीं।

दिसम्बर १८५९ में उसने कन्सास और पश्चिमी राज्यों में कई स्थानों पर भाषण दिये। १२ फरवरी १८६० में उसने न्यूयार्क शहर में कूपर इंस्टिट्यूट में अपना महत्वपूर्ण उल्लेखनीय भाषण दिया। उसमें शहर के सभी चेतनाशील, सजग बुद्धिजीवी मौजूद थे। उसके बाद लिंकन ने न्यू इंग्लैंड में भी कई स्थानों पर भाषण दिये। कूपर इंस्टिट्यूट में उसके द्वारा बोलने का साहस करना अत्यंत कड़ा प्रयास था और वह भी इसे ऐसा ही समझता था। पश्चिम के इस अशिक्षित व्यक्ति के बारे में वहाँ उत्सुकता होना स्वाभाविक ही थी। उसकी सूझबूझ की बढ़ा-चढ़ा कर की गयी रिपोर्ट से लोगों के मन में उसे

देख कर संभावित निराशा की भावना पैदा हुई होगी, परन्तु उसके श्रोता-गण जिस आश्चर्य में पड़ जानेवाले थे वह दूसरे ही ढंग का था। उन्हें यह संभावना थी कि वे शायद पश्चिमी ढंग का कर्णप्रिय, समयानुकूल कोई धाराप्रवाह सुसंस्कृत, भाषण सुन पायेंगे। परन्तु उन्हें दूसरे ही ढंग का भाषण सुनने को मिला जिसमें कहीं कोई साहित्यिक छटा नहीं थी। उसमें केवल इतनी ही खूबी थी कि वह सत्यता से भरा था और स्वयं वक्ता इस सचाई को महसूस कर रहा था। कूपर इंस्टिट्यूट में दिये गये भाषण में केवल एक ही खटकनेवाली बात थी जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं—जान ब्राउन का श्रद्धा के प्रति दर्शाया गया संकुचित पश्चिमी ढंग का दृष्टिकोण। इसके अतिरिक्त सारा भाषण—यद्यपि एक माने में काफी नीरस—परन्तु तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के बारे में उसका शानदार अनोखा वक्तव्य था। लिंकन ने समस्या को मूल आरम्भ से लेकर संक्षिप्त और सारगर्भित रूप में स्थिति को रखते हुए तत्काल ही इस प्रश्न पर निर्णय लेने की आवश्यकता पर बल प्रदान किया। शोएट, जो उस सायंकाल एक युवक की तरह उस सभा में मौजूद थे, बाद में अपने विविध संस्मरणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—"वह सभी मानों में ऐसा लगता था जैसा कि पश्चिम राज्यों के सामान्य जन लगते हैं, इन लोगों में उसके प्रति श्रद्धा थी और यह भी एक माने में उनकी तरह रहना पसन्द करता था। पहले-पहले देखने पर उसमें प्रभाव-शाली या असर डालनेवाली कोई भी बात नहीं दिखायी देती थी, उसके ढीले-ढाले वस्त्र, उसके अजीब विशाल शरीर को घेरे पीछे की ओर लटके रहते थे। उसके चेहरे पर गहरी झुर्रियाँ थीं, जिनमें कहीं कोई रंग नहीं था। उसके चेहरे पर पड़ी झुर्रियाँ और थकान के चिह्न यह सूचित करते थे कि वह जीवन की कठिनाइयों और संघर्षों में से गुजरा था। उसकी गड्ढों में धँसी आँखों में उदासी और बेचैनी झलक रही थी। वह जिस आरामपूर्वक ढंग से और शांति से मनमारे-सा बैठा था उसे देख कर कभी यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि क्या यह वही महान शक्ति है, जिसे उसके देशवासियों ने निम्न स्तर से उठाकर सर्वोच्च पद पर अभिषिक्त किया था। सभा आरम्भ होने के पहले जब उसने मुझसे बातचीत की तो वह परेशान-सा लग रहा था। जैसा कि हम जानते हैं कि वहाँ उसका ध्यान अपने वस्त्रों की ओर सबसे अधिक गया होगा और यही उसकी चिंता का विषय था। श्री शोएट ने आगे लिखा—"जब वह बोलने लगा, उसका स्वरूप ही बदल गया, उसकी आँखें चमकने लगीं, उसकी आवाज गूँजने

लगी और उसके चेहरे पर चमक पैदा हो गयी जिसने मानों सारी सभा को प्रकाशमान कर दिया हो। डेढ़ घंटे तक उसने अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध रखा। उसकी भाषण-शैली और बोलने का तरीका बहुत ही सीधा-सादा था।" लोवेल ने उसके लिए कहा है कि 'उसके भाषण में मानो बाइबिल की महान सरलता थी—ऐसी सरलता जो उसके जीवन में घुल-मिल गयी थी और जिसका व्यापक प्रभाव उसके भाषण व बातचीत में झलकता था।......यह अपूर्व दृश्य विलक्षण था कि कैसे इस अशिक्षित व्यक्ति ने केवल अपने आत्मानुशासन और विचारों को सुनियंत्रित रखकर सभी बनावटी मिथ्या आडंबरों को पीछे छोड़ पूर्ण सरलता और सादगी की सजीव शक्ति की ओर अपने को अग्रसर किया।'

उस दिन के पत्रों ने भी इन संस्मरणों को उसके भाषणों के बाद प्रकाशित किया था। इस अवसर पर पूर्व के सभ्य संस्कृत व्यक्तियों के मध्य अपने प्रथम सम्पर्क के समय लिंकन ने श्रोतागणों को अपनी जिस विशाल शक्ति का परिचय दिया, उसे मुक्त कंठ से स्वीकार किया गया। कूपर इन्स्टिट्यूट के भाषण में उसने सीधा-सा सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि दासता गलत है और ऐसे लोगों के साथ समान स्तर पर वार्ता करना जो दासता को सही मानते हैं निरर्थक है। यद्यपि यह आश्चर्यजनक है परन्तु यह पीड़ाजनक बात है कि उस संकटकाल में इस सरल सत्य को भी प्राप्त करना और उसे प्रस्तुत करना कितना कठिन था। ऐसे बहुत कम दृष्टान्त देखने को मिलते हैं। न्यूयार्कवासियों का आभार मानना चाहिये कि उन्होंने इस भाषण को जिसमें एक सीधे सत्य को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया था महान भाषण माना। जिस व्यक्ति ने यह भाषण दिया उसकी महानता और सरल गुणों को उन्होंने पहचाना। इसका विशेष महत्व नहीं है कि उसके बाद उनमें से बहुत से अपने अन्धविश्वासों व अन्य धारणाओं के कारण लिंकन का समर्थन नहीं कर सके। जब चुनाव व्यवस्थापकों ने राष्ट्रपति-पद के लिए उसे धकेल कर आगे लाकर खड़ा किया तो बहुत ही कम व्यक्तियों के अतिरिक्त—वह भी जो उसमें विश्वास रखते थे—किसी ने भी यह विश्वास नहीं किया कि यह व्यक्ति अपने महान गुणों के कारण कई कमजोरियों के होते हुए भी उन्हें अपने गुणों से जीत लेगा। जब पश्चिमी देहाती प्रदेश के लोगों ने यह देखा कि वह आदर्श व्यक्ति बनावट से दूर और सत्यता का कट्टर समर्थक है तो उन्होंने यह विकल्प प्रस्तुत किया कि यह सीधा-सादा भला आदमी हो सकता है। उस परीक्षा-काल में बहुत से विद्वानों की उसके बारे में यही धारणा था। केवल जब उसकी विजय और मृत्यु से लिंकन के जीवन

का महत्व सिद्ध किया तो लिंकन के लिए कहा जाने लगा—"मैं उसे तब से प्रेम और श्रद्धा करने लग गया था जब कि मैं उसे जानता भी नहीं था।" या इसी तरह की बातें की जाने लगी थी। कूपर इन्स्टिटयूट में उसका केवल एक भाषण ही पर्याप्त था जिसने उसकी महत्वपूर्ण योग्यता को सिद्ध कर दिया। और लोगों को बाद में पता चला कि जिसने यह भाषण दिया वह बहुत विद्वान था। परन्तु यह भाषण पूर्व के लोगों को इसके लिए तैयार नहीं कर पाया कि इसके बाद ही शीघ्र लिंकन के बारे में वे क्या सुनने वाले थे।

इल्लीनायस में उसके मित्रों में एक अभियान यह चल रहा था कि शिकागो में मई में होनेवाले रिपब्लिकन दल के अधिवेशन में लिंकन का नाम राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार के लिये रखा जाय। वार्षिक अधिवेशन के आरंभ होने के पूर्व ही यह निश्चित हो गया था कि जो भी उम्मीदवार रिपब्लिकन दल नामजद करेगा वही राष्ट्रपति बनेगा, और ऐसे संकेतों की कोई कमी नहीं थी कि उसे गणराज्य पर आये गंभीर संकट को भी झेलना पड़ेगा। डेमोक्रेटिक दल का सम्मेलन अप्रैल माह में चार्ल्सटन में हुआ था। वहाँ यह दल दो गुट्टों में विभक्त हो गया, उत्तरी और दक्षिणी। यह उल्लेखनीय सम्मेलन एक ऐतिहासिक नगर में हुआ था जहाँ प्रतिष्ठित लोग गंभीरता के साथ सामाजिक आकर्षण को बढ़ाते हुए एकत्रित हुए थे। आरंभ से ही उत्तरी व दक्षिणी प्रतिनिधियों के मध्य ऊँच-नीच की भावना नज़र आने लगी। उत्तरी प्रतिनिधियों को—जो पहले ही दक्षिण के प्रति सम्मान की भावना रखते थे और उसके आतिथ्य की सराहना करने को तत्पर थे—यह महसूस हुआ कि दक्षिणवासी उन्हें सामाजिक स्तर पर नीचे दर्जे का मानने लगे हैं। इससे भी बुरी बात तब हुई जबकि अधिवेशन राजनैतिक रंगमंच के प्रारम्भिक कार्य के लिये आरंभ हुआ। चाहे डगलस को लिंकन ने अपने प्रश्न से इस स्थिति में ला पटका अथवा दूसरे किन्हीं कारणों से कांग्रेस में ही दास-प्रथा के प्रश्न पर मतभेद पैदा हो गया था, यह मतभेद अधिवेशन में इतना तीव्र हो गया कि दोनों गुट्टों में समझौता होना असंभव हो गया। डगलस ने इस सिद्धान्त को सामने रखा कि राज्यों में दास-प्रथा का प्रश्न वहाँ के नागरिकों की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए। डगलस ड्रेड स्काट निर्णय को मानने के लिए बाध्य था ही जिसके अनुसार संविधान के अंतर्गत सभी राज्यों में दास-प्रथा कानूनी है तथापि यह भी कानूनी था कि कोई भी राज्य कानून बना कर दास रखना व्यावहारिक रूप में असंभव बना सकता था। दल का नीति-सम्बंधी घोषणापत्र तैयार करते समय दक्षिणी

नेताओं ने दास-प्रथा के प्रश्न को डगलस द्वारा टालने के प्रयत्नों के विरुद्ध संघर्ष का निर्णय किया। इन प्रतिनिधियों ने महत्वपूर्ण तर्कवितर्क प्रस्तुत कर यह दर्शाया कि दास-प्रथा केवल वैधानिक ही नहीं वरन् उचित है; अतएव घोषणापत्र में इसका समावेश करते हुए यह माँग की गयी कि काँग्रेस का यह कर्त्तव्य है कि राज्यों में इसकी रक्षा के लिए कानून बनाये। इसको उत्तरी प्रतिनिधियों का दल स्वीकार नहीं कर सका, उन्होंने यह संशोधन रखा कि वे लोग दास-प्रथा सम्बंधी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से बंधे रहेंगे। इस पर दक्षिण के सभी राज्य तो नहीं, परन्तु रुई-उत्पादक राज्यों—केवल जार्जिया को छोड़कर—के प्रतिनिधियों ने अधिवेशन का बहिष्कार कर दिया। दक्षिण के प्रतिनिधियों द्वारा अधिवेशन का बायकाट कर देने के बाद जो उत्तरी प्रतिनिधि वहां बचे वे उतनी संख्या में नहीं थे कि दल के नियमों के अनुसार राष्ट्रपति के लिए उम्मीदवार चुन सकते। फलस्वरूप अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। इसके बाद पुनः एकता के प्रयत्न किये गये परन्तु वे निष्फल रहे। अंत में बाल्टीमोर में जून माह में डेमोक्रेटिक दल के दो पृथक् अधिवेशन आयोजित किये गये। एक में उत्तरी प्रतिनिधियों ने भाग लिया और डगलस को अपना उम्मीदवार घोषित किया। दक्षिण वाले इस अवसर पर जरा-सी समझौते की भावना भी दर्शाते तो डगलस जैसे प्रतिनिधि को लेकर वे संगठित रूप में राष्ट्रपति-पद पर आसानी से विजय पा सकते थे। दक्षिण वालों ने केन्टकी के सी. ब्रेकिरिन्ज को अपना उम्मीदवार नामजद किया। उन्हें पहले कोई नहीं जानता था वरन् ये पहली बार ही दास-मालिकों के स्पष्ट और दृढ़ अधिकारों के झंडाबरदार के रूप में सामने आये थे।

इस तरह अमरीकी डेमोक्रेटिक दल ने २४ वर्षों के लिये सत्ता खो दी। यह दल अजीब विरोधाभासों और सिद्धान्तहीन उलझनों में उलझा रहा। इस चुनाव में एक दल और भी था उस पर भी तनिक दृष्टिपात जरूरी है। पुराने 'विग' सदस्यों का एक सम्मेलन बाल्टीमोर में ही आयोजित किया गया, जिसने अपने घोषणापत्र में कहा कि वे लोग केवल देश के संविधान, गणराज्य और कानून को क्रियात्मक रूप से लागू करवाने के पक्ष में हैं। इन्होंने राष्ट्रपति-पद के लिए टेनेसी के जान बेल और उपराष्ट्रपति-पद के लिये एडवर्ड एवरेट को नामजद किया। (एडवर्ड एवरेट को गेटिसबर्ग के युद्धक्षेत्र में वक्ता के लिए बाद में चुना गया, इस अवसर पर लिंकन ने अपना सबसे महत्वपूर्ण भाषण दिया था।) एवरेट विद्वान व दुनिया देखे हुए था, फिलीमोर के समय वह विदेश सचिव,

कुछ समय के लिए बना था और उसने क्यूबा के विवादग्रस्त मसले को दृढ़ता से और ईमानदार तरीके से हल किया। उसकी भाषणकला उल्लेखनीय थी। वह ऐसा भाषण देता था जो अमरीकी रुचि के अनुकूल था। 'विगों' के प्रति न्याय करते हुए हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने गणराज्य की अखंडता को स्वीकार करके आनेवाले भावी प्रश्न पर लिंकन के साथ रहने का मानों निर्णय कर लिया था। परन्तु यह अपने ढंग का अकेला ही राजनैतिक मंच था जिसने दृढ़तापूर्वक जानबूझकर समय की सबसे बड़ी समस्या (दास-प्रथा) के बारे में किसी भी तरह का कोई निर्णय नहीं लिया। बहुत कम राजनीतिज्ञ इस पक्ष में होंगे कि महत्वपूर्ण तात्कालिक समस्या पर जानबूझकर आँखें मूंद ली जायें अथवा डेमोक्रेटों द्वारा लिये तत्सम्बंधी ढुलमुल मध्यममार्गी रुख को ही अपनाया जाय। वे लोग इतने शिथिल हो गये थे कि न तो दृढ़ता के साथ दास-प्रथा का विरोध ही कर सकते थे और न इतने निकम्मे ही कि उन्हें दास-प्रथा के पक्ष में खरीदा जा सके। इन व्यक्तियों ने यह अवश्य ही जान लिया था कि दास-प्रथा-वृद्धि का दृढ़ विरोध कैसी स्थिति पैदा करने जा रहा है और इस कारण जो इस समस्या से आँखें उन्होंने चुरा लीं, उसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता। इतिहासज्ञ आज भी यह जानते हुए कि इसके फलस्वरूप जो घटनाएं घटीं वे अधिक भयावनी थीं, लिंकन द्वारा कन्सास में दिये इस भाषण के पक्ष में हैं। "हम चाहते हैं और यह होना ही चाहिए कि दास-प्रथा को गलत माननेवाली एक राष्ट्रीय नीति हो, जो व्यक्ति इस प्रथा को सही मान लेता है अथवा दास-प्रथा से अपना कुछ भी लेना-देना नहीं कहकर इस दिशा में निष्क्रिय हो जाता है, तो भले ही वह दास-प्रथा को राष्ट्रीय और चिरस्थायी बनाने के सिद्धान्तों के विरुद्ध हो, निष्क्रिय होने पर उसके लिए कोई माने नहीं रखते, अर्थात् दास-प्रथा से किसी भी रूप में समझौता स्वीकार कर लेना ही गलत है। रिपब्लिकन दल का गठन भी इसी सिद्धान्त पर हुआ था। अब चुनाव में विजयी होने की भूमिका तैयार हो गयी थी इसलिये नहीं कि बहुमत उनके इन सिद्धान्तों के पक्ष में था वरन इसलिए कि विरोधी दल में फूट पड़ चुकी थी। उन लोगों में कतिपय इस सीमा तक पहुँच गये थे कि वे दास-प्रथा को उचित मानने लगे और बहुत से उसके प्रति निरपेक्ष हो गये। यह कहा जा सकता है कि अमरीका का भाग्य १८६० में इस बात पर निर्भर करता था कि रिपब्लिकन दल का राष्ट्रपति-पद के लिए चुना गया उम्मीदवार अपने सिद्धान्त के प्रति अधीरता बरतेगा

या कट्टरता से दृढ रहेगा अथवा सिद्धान्तों के हनन किये बिना भी पूर्ण उदार दृष्टिकोण अपनायेगा।

जब लिंकन को पहली बार १८५८ में किसी ने सुझाया कि वह राष्ट्रपति-पद के लिए नामजद किया जा सकता है, तब उसने उत्तर दिया—"मैं अपने आपको राष्ट्रपति-पद के योग्य नहीं समझता हूँ।" संभवतया वह उसकी उस समय की हार्दिक अभिव्यक्ति हो। भले ही इसे उस काल की निष्क्रियता की झलक ही क्यों न कहा जाय। कुछ भी हो, शीघ्र ही उसकी राय में परिवर्तन हो गया। हम यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि क्या उसने खुद अपने मित्रों को राष्ट्रपति-पद के लिये उसका नाम देने को उत्साहित किया या नहीं। परन्तु यह कहा जा सकता है कि जब उसका नाम प्रस्तुत किया गया तो उसने अपने मित्रों को इस दिशा में पूरी सहायता दी। हमें हर्नडन की इस स्वीकारोक्ति को स्वीकार कर लेना चाहिए कि लिंकन सदा ही विशाल महत्वाकांक्षी रहा और यदि महत्त्वाकांक्षा का अर्थ महान अवसरों की खोज में रहना ही है तो—हमें इस शब्द की जो साहित्य में निंदात्मक परिभाषा है जो एपिक्यूरियनों (यूनानी दार्शनिकों) के समय से चली आ रही है—उसे हटा देना चाहिए। महत्त्वाकांक्षा के साथ यदि मनुष्य अपने में प्राप्त विलक्षण गुणों का समावेश कर लेता है तो इसे हमें स्पष्ट रूप से ईसाईयत के कर्तव्य का अंग समझना होगा। राष्ट्रपति-पद के लिए उसको सर्वोत्तम व्यक्ति मान कर उसके मित्रों और स्वयं लिंकन ने उचित निर्णय लिया। परन्तु यह निर्णय उन्होंने उसकी कितनी ही बाहरी कमियों के बावजूद लिया, विश्व के एक महान राष्ट्र के संकटपूर्ण समय में—अमरीका के चीफ मजिस्ट्रेट के पद के लिए नामजद इस उम्मीदवार ने जिसने कभी पोस्टमास्टर से बढ़कर—जहाँ वह अपना दफ्तर अपने टोप में रखता था—किसी अन्य प्रशासनिक पद पर काम नहीं किया था। दल के सामने दो अन्य नाम आये थे उनमें ऐसे बहुत से थे जिनसे यह कभी भी प्रशासनिक मामलों के अनुभवों में टक्कर नहीं ले सकता था। इनमें से एक सेवार्ड था। इस पद पर नामजदगी के लिए उसका अधिकार भी माना जा सकता है। चेस और सेवार्ड दोनों ही अत्यंत योग्य और कुशल व्यक्ति माने जाते थे और सीनेट में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। चेस की ईमानदारी व साहस में संदेह नहीं किया जा सकता था। सेवार्ड ने अपनी अनुपम योग्यता का परिचय दे रखा था। चेस ओहयो का गवर्नर था, सेवार्ड न्यूयार्क राज्य का गवर्नर था—और किसी राज्य में गवर्नर का स्थान, वह

राज्य जो अपने घरेलू मामलों में पूर्ण स्वतंत्र हो—सर्वोपरि था। एक राज्य के क्षेत्र में गवर्नर सर्वोपरि अधिकारी माना जाता है, ठीक वैसे ही जैसे राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रपति। किसी बड़े राज्य का गवर्नर होना अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा का पद था। इसे हम राष्ट्रपति-पद के लिए उचित शिक्षा का स्थान मान सकते हैं। परन्तु इसके अलावा भी सेवार्ड और लिंकन में, जिनमें से एक को चुनना था, सेवार्ड का पलड़ा भारी था। पिछले कुछ वर्षों से वह अनौपचारिक परन्तु यथार्थ रूप में दल का नेता बना हुआ था। वह डगलस के साथ समझौते में असफल रहा क्योंकि उसने अपने सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण दृढ़ता रखी। परन्तु यह असफलता किसी साहस की कमी के कारण न हुई वरन् उसकी आशावादिता व उदार स्वभाव के फलस्वरूप थी। १८५० से लेकर अब तक जब वह पहली बार वेबस्टर के विरुद्ध बहस में खड़ा हुआ, (उन दिनों लिंकन राजनीति से निष्क्रिय और निवृत्त-सा हो चुका था) उसने अपनी स्थिति अच्छी बना ली थी। इसके बाद भी लिंकन के सहयोगी के रूप में उसने अपने देश की महान सेवाएं कीं और ऐसे सहयोगी के रूप में प्रसिद्ध हुआ जो लिंकन को अपना नेता मानकर उसके तत्वावधान में पूर्ण विश्वास के साथ काम करता रहा। अब हम लिंकन के प्रतिद्वन्द्वियों का मूल्यांकन करने की अच्छी स्थिति में हैं। हम जानते हैं कि बचे हुए लोगों में कोई सेवार्ड के समान नहीं था और हम यह भी जानते हैं कि सेवार्ड को यदि अवसर मिलता तो वह महान उद्देश्य व सैद्धान्तिक संघर्ष को ही नष्ट कर देता। लिंकन और सेवार्ड के तुलनात्मक विवेचन को देखने पर अब लिंकन की ओर हम दृष्टिपात करते हैं। कम-से-कम लिंकन ने अपने दृष्टिकोण में तथा इल्लीनायस के कुछ मित्रों की निगाहों में अपने में राष्ट्रपति-पद की योग्यता का समावेश पाया और सेवार्ड के राजनीतिक कार्यों से—विशेषकर डगलस-सेवार्ड समझौते के दौरान में—उसने सेवार्ड का मूल्यांकन कर लिया था। भले ही सेवार्ड में उसकी अपेक्षा अधिक प्रशासनिक योग्यता थी, परन्तु लिंकन ने सैद्धान्तिक स्तर पर उससे अपने को कहीं अधिक शक्तिशाली पाया। यह केवल विचारमात्र नहीं था, उसे इसका अनुभव भी हुआ होगा। लिंकन ने सही तथ्यों को समझने में जरा भी भूल नहीं की जब उसने रिपब्लिकन दल को डगलस और निरपेक्ष रुख रखने वाली पार्टी से संघर्ष करने को बाध्य किया, जब सेवार्ड के हाथों से रिपब्लिकन दल का नेतृत्व अपने हाथों में उसने लिया। उसने उस समय भी इन्हीं विलक्षण योग्यताओं का परिचय दिया।

लिंकन पर उसके आलोचक यह दोषारोपण करते हैं कि वह अपनी महत्वा-कांक्षा पूर्ति के लिए सदा ही अवसरवादी रहा। उसके तरीकों को वे लोग सराह नहीं सके। उपरोक्त मामले में सेवार्ड को उसने पीछे छोड़ दिया जब कि उसे अवसर मिलना था; परन्तु लिंकन खुद हावी हो गया। उस जैसे महान व्यक्ति के लिए यह उचित नहीं कहा जा सकता। एक सहृदय मित्र ने लिंकन का १८६० में लिखा हुआ एक पत्र प्रस्तुत किया जिसमें कन्सास के एक व्यक्ति ने रिपब्लिकन दल के सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि बनने की इच्छा व्यक्त करते हुए एक शर्त पर अपने साथी प्रतिनिधियों को लिंकन के पक्ष में जुटाने का प्रस्ताव रखा। लिंकन का पत्र इस तरह है—"तुम्हारे दयापूर्ण पत्र और शुभेच्छाओं के उत्तर में मैं यह कहना चाहूँगा कि मैं धन के आधार पर इस संघर्ष में नहीं उतरना चाहता हूँ। क्योंकि पहली बात यह है कि यह प्रथा ही गलत है और दूसरा यह कि न मेरे पास पैसा ही है और न मैं प्राप्त ही कर सकता हूँ, परन्तु राजनीति में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए इसका कुछ उपयोग सही है और टाला नहीं जा सकता है। मेरे साथ और तुम्हारे साथ भी अधिकतर यह संघर्ष आर्थिक हानि का ही है। मैं यह स्पष्ट कह सकता हूँ कि यदि तुम शिकागो सम्मेलन के लिये प्रतिनिधि चुन लिये गये तो मैं तुम्हारी इस यात्रा के लिये सौ डालर दे सकूँगा।" कंसास के ये सज्जन वहाँ के प्रतिनिधियों को लिंकन के समर्थन में लाने में असफल रहे। फिर भी लिंकन को अपना वचन याद था। उसने राष्ट्रपति-पद पाने के बाद इन्हें अच्छे प्रशासनिक पद पर नियुक्त कर दिया। इसके अलावा कंसास में जो भी दूसरी नियुक्तियाँ की गयी उसमें इनसे सलाह ली गयी। इस सारे मामले में इतना ही सार है जो हमारी जानकारी में आया है। परन्तु जिससे यह सूचना मिली उसने इसे प्रस्तुत करते हुए लिंकन की इस कमजोरी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया कि कैसे वह उदार स्वभाव के कारण किसी भी व्यक्ति पर विश्वास कर बैठता था और अपनी इस भूल पर हठपूर्वक डटा भी रहता था। जहाँ तक अपने लिए पद प्राप्त करने की दिशा में धन का प्रयोग जिस तौर पर किया गया, उससे हममें से बहुत से इस राय के हो सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति किसी भी उच्च पद के अयोग्य है। और सौ डालर के भुगतान करने की बात हम जानते हैं कि राजनीति के नियमों का किस तरह उल्लंघन व प्रतिष्ठाहीन काम है। इसे सभी राजनीतिज्ञ समझते हैं और हमें इसके विवेचन की भी आवश्यकता नहीं है। लिंकन ने स्वयं कहा था—"सार्वजनिक कार्य के

लिए यदि किसी कार्यकर्ता को व्यय करना पड़ा तो उसका भार उठाने में कोई उल्लंघन अथवा अनीति जैसी बात नहीं है। और व्यय भी ऐसे कार्यकर्ता के लिये उठाया जाय जिनके बारे में हम जानते हैं कि उसने बहुत कुछ त्याग किया है।" परन्तु यह हमारे प्रश्न का सही उत्तर नहीं है, लिंकन ने भ्रष्टाचार की महत्वपूर्ण बात को यहाँ टाल दिया है। लिंकन जो अब तक अपने जीवन में असफल रहा—एक उच्च पद के लिए भूखा था और इसमें सफल होने के लिए वह कुछ सौदेबाजी करने तक को लालायित हो उठा था जिससे उसे कुछ सहयोग मिल सके। वह उस व्यक्ति के प्रति उदारता दर्शाना चाहता था (जितने उसके पास साधन थे) जिसके बारे में उसे विश्वास था कि उसने भी लिंकन की तरह ही जनहित में अपने त्याग किये हैं। वह ऐसा व्यक्ति था जो इन दो प्रलोभनों को नहीं ठुकरा सकता था।

बड़े अपराधों की बात जाने दो, यदि ऐसी ही छोटी-छोटी भूलों के लिए कोई साहसहीन पुरुष सत्य को झुठलाने का प्रयत्न करते समय यह स्वीकार करने में हिचकिचाहट करे तो हम बड़ी उलझन में पड़ जाते हैं, क्योंकि उस समय हम यह नहीं कह सकते हैं कि हम कहाँ हैं और सही स्थिति क्या है। परन्तु जब ये ही भूलें किसी दृढ़ चरित्रवान व्यक्ति द्वारा हो जाती हैं, तो महत्व ग्रहण कर लेती हैं और यह पूछा जा सकता है कि इनसे क्या अर्थ निकलता है। लिंकन के कतिपय कड़े आलोचक उसकी ऐसी ही बातों पर एकराय हैं—जैसाकि उपरोक्त घटना उदाहरणस्वरूप है—कि इनमें से बहुत-सी भूलें उसके स्वभाव के कारण हुई हैं और बहुत-सी ऐसी हैं जो उसके द्वारा व्यक्ति को ठीक तरह से नहीं समझ पाने के कारण की गयी हैं। यह व्यक्ति गरीबी से उठकर आया था, जिसे विभिन्न अनुभव नहीं के समान थे और उसे घर पर इस दिशा में कोई शिक्षा भी नहीं मिली थी। उसके लिए इनसे बच जाने के बहुत ही कम अवसर थे। मनुष्यों को ठीक तरह से समझने और व्यवहार करने की उसकी योग्यता एक दिशा में सर्वोत्तम थी, तो दूसरी दिशा में बहुत ही बुरी। जीवन की विशाल और सामान्य बातों में उसकी पहुँच तथा मानव-स्वभाव के बारे में उसका गंभीर व संतुलित निर्णय होने पर भी उसमें आम जनता में से सही मनुष्य की जानकारी के ज्ञान का नितान्त अभाव था। ऐसा भी वह तभी करता जब वह उस व्यक्ति को लम्बे समय से जानता रहा हो, या महत्वपूर्ण मामलों में उसके साथ अथवा उसके विरुद्ध रहा हो। एक बार व्यक्ति को जब वह जान लेता तो उस स्थिति में कभी-कभी उसमें महान अंतर्दृष्टि या उसके

प्रति निश्चयपूर्वक सही बात कह सकने की शक्ति उसमें पैदा हो जाती थी। जब कि वह हार्दिक विश्वास को योग्य होता तब वह उसमें इतना गहन विश्वास करता कि महान जनहित-सम्बंधी सेवाओं की जिम्मेदारी उसे सौंप देता था। परन्तु उन व्यक्तियों के बारे में—जिनकी बड़ी तादाद होती या ऐसे व्यक्ति जिनके साथ कभी कोई छोटा-सा काम पड़ा हो जिसको वह याद भी नहीं कर सकता—उन्हें सही समझने तथा उनके साथ क्या व्यवहार करना चाहिए यह ज्ञान उसमें जरा भी नहीं था। यदि ऐसे व्यक्ति चतुर और सन्देहजनक नहीं हो तो एक सामान्य ज्ञान के व्यक्ति को भी यह पता चल जाता है कि कौन किस तरह का है। लिंकन में इस अवगुण के साथ-साथ अत्यंत भला स्वभाव जुड़ा हुआ था—जैसा कि उसने स्वयं स्वीकार किया कि वह मुश्किल से ही किसी को कभी 'नहीं' कह सकता है। यह एक ऐसा हठीला स्वभाव था जिसे ठीक नहीं किया जा सकता था, और जब उसे यह ज्ञात होता कि उसके भले स्वभाव के कारण ही उस पर किसी तरह का दोषारोपण किया गया है तो उसका यह उदार स्वभाव और भी हठ पकड़ लेता था। इसके अतिरिक्त लिंकन की प्रशासनिक गति तेज नहीं थी, धीमी थी। वह केवल तभी नज़र आती जब कि कहीं किसी सही मसले पर बुनियादी सिद्धान्तों का प्रश्न हो अथवा उसे अन्तश्चेतना मिलती थी। परन्तु व्यावहारिक जगत के छोटे या बड़े कार्य जो उसने कभी किये नहीं अथवा जो उसके क्षेत्र के बाहर थे, अपने कार्यों के बोझ से दबे रहने के कारण उस ओर वह ध्यान नहीं दे सका या उस दिशा में वह पूर्ण सतर्कता व सजगता नहीं दिखा पाया, और यह और भी बुरी बात होती यदि वह अपनी इच्छाशक्ति की कमजोरी दिखाता। उपरोक्त उदाहरण कितना ही छोटा क्यों न हो फिर भी यह राजनैतिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार की अस्पष्ट और खतरनाक सीमा पर प्रकट हुआ है। हर्नडन ने अपनी निष्पक्ष शोधों के दौरान में यह पत्रव्यवहार प्राप्त किया और इस तरह के अवगुणों की छांट के बाद में भी उसकी लिंकन में विश्वास और श्रद्धा अधिक बढ़ गयी। लिंकन पश्चिमी राज्यों के एक छोटे से कस्बे में रहा था, न कि आजकल के दूषित बड़े नगरों में से किसी एक में। वह एक गरीब व्यक्ति था और यह भी उसने दर्शाया कि उसकी असफलताओं में धन-सम्पत्ति ने भी एक महत्वपूर्ण विरोधी भाग अदा किया। और यह भी निश्चित है कि उस समय अमरीका में जो भ्रष्टाचार व राजनीतिक जीवन में पैसे के बल पर सौदेबाजी जारी थी, उस ओर उसने स्पष्ट रूप से ध्यान नहीं दिया कि यह कितना घृणित और खतरनाक बन गया है। यह

भी निश्चित है कि ऐसे मामले को बारीकी से समझने की बुद्धि उसमें नहीं थी या दृढ़ता के साथ ऐसे मामलों पर कभी-कभी अड़ जाने का गुण भी नहीं था जो कि बहुत ही कम ईमानदार व्यक्तियों में होता है। लिंकन को जो अपनी सब से कड़ी आलोचना बाद के दिनों में सुननी पड़ी वह इन नियुक्तियों के मामले में थी। हम यह बाद में देखेंगे कि इस मामले में उसने जो कुछ किया उसके कई ठोस कारण थे। परन्तु यह बात दृढ़ धारणा के साथ नहीं कही जा सकती कि नियुक्तियों-सम्बंधी इस भयंकर भूल के करने में योग्यता की ओर ध्यान न देकर उसने दूसरी बातों पर ध्यान दिया। यदि वह ध्यान देता तो यह भार कम हो जाता, यद्यपि इस तरह की बात अधिक शिक्षित राजनीतिज्ञों पर भी सदा लागू नहीं होती। यदि वह इन मामलों में अपनी आदत के विपरीत अधिक ध्यान देता या उसे इसके लिए समय मिलता जिससे प्रशासन अधिक सफल हुआ होता तो अमरीकी सार्वजनिक जीवन में उसकी देन और भी अधिक हितकर होती। परन्तु एक शासक या एक व्यक्ति के रूप में इसके इन अवगुणों के कारण अमरीकी जनता ने उसे नहीं सराहा और न हमें भी ऐसी सराहना करनी चाहिए। लिंकन के बारे में एक कड़े आलोचक ने—जो तीन वर्ष तक सरकारी पद पर काम कर चुका था—ये उल्लेखनीय शब्द लिखे, "आप उसमें रुचि दर्शाये बिना नहीं रह सकते हैं, उसके प्रति सहानुभूति व दया का भाव भी पैदा होता है, यह महसूस करते हुए भी कि उसमें महान गुण थे, फिर भी यह डर था कि कहीं उसकी कमजोरी उसे नष्ट नहीं कर दे या किसी और को नष्ट कर दे। उसका जीवन मानों बुद्धिमत्तापूर्वक उचित निर्णयों की श्रृंखला है, शांति से वह निर्णय पर पहुँचता था, अटपटे ढंग से उन्हें कार्यान्वित करता था, प्रशासनिक महत्वपूर्ण मसलों अथवा व्यक्तियों के साथ कार्यों की दिशा में वह लगातार भूलें करता हुआ आगे बढ़ रहा था।" निश्चय ही जिस व्यक्ति ने यह लिखा है, वह चतुर आदमी था। वह बुद्धिमान व्यक्ति भी माना जा सकता यदि वह यह जानता कि जो सराहना वह लिंकन की कर रहा है, लिंकन अपनी भूलें होते हुए भी इससे कहीं अधिक महान था।

अतएव जिन लोगों ने कूपर इन्स्टिट्यूट में लिंकन को देवदूत माना, लेकिन राष्ट्रपति-पद के लिये उसकी उम्मीदवारी को हास्यास्पद समझा, उनकी स्वाभाविक पूर्वधारणा को सर्वथा अनुचित नहीं कहा जा सकता। उसके समर्थकों ने तथापि उसकी आरंभिक गरीबी का पूरा पूरा उपयोग किया, यद्यपि इसे अनुचित नहीं

कहा जा सकता। इल्लीनायस में रिपब्लिकन शिकागो सम्मेलन की तैयारी के लिए डेकाटेर में एकत्रित हुए थे। उस समय हर्ष-ध्वनियों के मध्य हमारा पुराना परिचित जान हान्क्स अपने एक अन्य सहयोगी के साथ दो लंबी छड़ें कंधों उठाये हुए आया। उन छड़ों पर लिखा हुआ था, "१८३० में सांग्मन बाटम में अब्राहम लिंकन और जान हांक्स ने जो छड़े और पटरियाँ बनायीं थीं, उनमें से दो।" अपार जनसमूह के समक्ष शोरगुल के बीच लिंकन ने कहा—"सज्जनो! मेरा खयाल है कि आप इन दो चीजों के बारे में जानना चाहते हैं। यह सच है कि मैंने और जान हांक्स ने सांग्मन बाटम में पटरियाँ और छड़ें बनायी थीं। मैं नहीं कह सकता कि ये वही हैं या दूसरी; तथापि तथ्य यह है कि इन्हें बनाने वाले को मैं अच्छा कारीगर नहीं मानता हूँ। फिर भी इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मैं उस समय छड़ें व पटरियाँ बनाया करता था और मेरा ख्याल है कि अब मैं इनसे भी अच्छी बना सकता हूँ।" यहाँ यह कहना अनावश्यक है कि इन पटरियों व छड़ों ने आने वाले संघर्ष में क्या भूमिका अदा की। 'डेमो-क्रेसी' नामक उपन्यास तथा वैसी ही अन्य पुस्तकों में छड़ें काटने, पटरी ढालने वाले काम को गर्वपूर्ण कार्य माना गया है। शायद इस प्रदर्शन के पीछे यही भावना रही हो।

रिपब्लिकन सम्मेलन शिकागो में हुआ उसके पीछे प्रतिष्ठा का वातावरण इतना अधिक नहीं था, जितना बाल्टीमोर में डेमोक्रेटिक सम्मेलनों के अवसर पर था। जुलूस थे, बाजे भी थे; उजड्ड व्यक्ति जिन्हें लिंकन के व्यवस्थापकों ने इकट्ठे किया, वे और सेवार्ड द्वारा न्यूयार्क से बुलाये गये हुल्लडबाज भी थे। सड़कों पर भारी शोरगुल था और होटल वालों ने इस अवसर पर अच्छी कमाई भी की। परन्तु वास्तविक सम्मेलन में गंभीर व्यक्ति थे। जिन्होंने गंभीरतापूर्वक कार्यवाही आरम्भ की। इनमें सेवार्ड, चेस, लिंकन पेन्सिलवेनीया के कैमरान बंधु, मिसूरी से बेट्स जिसके बारे में हम बाद में पढ़ेंगे, के नाम राष्ट्रपति-पद के लिए प्रस्तावित किये गये। इसी तरह प्रख्यात राजनीतिज्ञ डेटन व कोलामर और सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश मेक्लीन भी था जिनके कई समर्थक भी थे। प्रारम्भ में यह धारणा थी कि सेवार्ड बाजी मार ले जायेगा परन्तु शीघ्र ही सम्मेलन में यह पता चल गया कि उसके विरोधी अधिक शक्तिशाली हैं। कई बार मतदान हुआ, बार-बार बैठकें व जोड़-तोड़ हुई जिससे संभवतया परिणाम पर बहुत ही कम असर हुआ होगा। लिंकन के व्यवस्थापकों में—विशेषकर जज डेविड डेविस (जो बाद में सर्वोच्च न्यायालय

के न्यायाधीश बने)—काफी सतर्क व चतुर लोग थे। लिंकन ने उनको साफ़-साफ़ लिख दिया कि वे कैसी भी कोई जोड़तोड़ क्यों न बैठायें, लिंकन उससे बाध्य नहीं होगा। परन्तु जब कैमेरान इस घेरे में से बाहर हो गया तो उसके समर्थकों को इन लोगों ने लिंकन के मंत्रिमंडल में लेने का आश्वासन दे दिया और इसी तरह कालेब स्मिथ को भी वचन दिया गया। पेन्सिलवेनिया के प्रतिनिधि लिंकन के साथ हो गये, उसके बाद ओहयो के। और इसके पूर्व ही उसकी विजय निश्चित हो गयी थी। सम्मेलन की एक समिति (जिनमें से कुछ लोग इस पर हार्दिक प्रसन्न नहीं थे) लिंकन को निमन्त्रित करने पहुँचे। उसने अपने छोटे-से घर में सीधा-सादा परन्तु प्रतिष्ठा के साथ स्वागत किया जिसका बाद में एक ने उल्लेख भी किया। और जब वे लौट कर आये तो उन में से एक ने कहा—"चलो, हमें एक अच्छा व्यक्ति मिल गया, परन्तु मुझे संदेह है कि यह सर्वोत्तम सिद्ध होगा।"

थोड़ी देर के लिए यदि हम अपने दिमाग में से यह भ्रम निकाल दें जो लिंकन के भाषणों व पूर्व जीवन के पढ़ने से पैदा हो गया है कि लिंकन कितना महान था तो हम देखेंगे कि अमरीका में अब तक जो राष्ट्रपति-पद के लिए चयन किये गये उनमें वह सबसे अधिक आश्चर्यजनक व्यक्ति था। राष्ट्रपति-पद के दूसरे उम्मीदवार भी गरीबी में पैदा हुए थे, परन्तु गरीबी की इतनी गहरी छाप लिंकन के अतिरिक्त उनके मुख पर नहीं झलकती थी। अन्य उम्मीदवार भी, इससे भी कम ख्यातिप्राप्त रहे, परन्तु जिस समय वे उम्मीदवार के लिए खड़े किये गये, उन्हें समृद्धिशाली और प्रतिष्ठित मान कर ही खड़ा किया गया। लिंकन ने सचमुच इन दिनों डगलस के विरुद्ध बहस में शानदार भाग लिया और योग्यता का परिचय भी दिया और किसी अन्य रिपब्लिकन नेता की अपेक्षा वह मौजूदा स्थिति को राजनीतिज्ञ की तरह अधिक अच्छी तरह समझे हुआ था। इल्लीनायस के मित्रों ने—जिनमें डेविड डेविस ने भी जो स्वयं प्रभावशाली व्यक्ति था—उसके गुणों व योग्यता में विश्वास रखकर ही उसे खड़ा किया था। परन्तु अन्य राज्यों से आये हुए प्रतिनिधियों के सामने यह बात नहीं थी। उनके कार्यों के बारे में जो प्रकाश डाला गया है वह और भी विचित्र है। राष्ट्रपति-पद के लिए लिंकन की पसन्द योग्यता के आधार पर नहीं की गयी थी, दूसरी ओर न किसी सामान्य चालाक सौदेबाजी करने वाले राजनीतिज्ञ का ही इसके पीछे हाथ था। यह असंभव भी था क्योंकि सारा दलीय तंत्र सेवार्ड के लिये काम कर रहा था। यह पसन्द स्पष्ट अमरीकी जन-

प्रतिनिधियों द्वारा की गयी थी। जिन्होंने अपने सामने यह सवाल रखा कि किस उम्मीदवार के जरिये हम डगलस को परास्त कर सकते हैं। और उस समय प्रचलित प्रभाव के कारण उन्हें इसका उत्तर लिंकन और सेवार्ड में मिला (जो कि पूर्णतया गलत निकला)। सेवार्ड के बारे में पूर्वी राज्यों के प्रतिनिधियों में यह धारणा थी कि वह स्पष्ट व्यक्ति है परन्तु उसके सहयोगियों का मेलजोल शंकास्पद है, और इस कारण उसका खुला विरोध भी था। परन्तु यह विरोध ही अकेला उसे हराने में काफी नहीं था। उसकी हार इस कारण से हुई कि लोग उसे अधिक उग्र रिपब्लिकन मानते थे और यह शंका करते थे कि यह अपने कमजोर साथियों के समर्थन का दुरुपयोग करेगा। उदाहरण के लिए वह उस समय इस वाक्य "अदमनीय संघर्ष" का जन्मदाता था और उसने एक बार जो भाषण दिया उसका गलत अर्थ यह लगाया गया कि वह "संविधान से भी ऊंचा कानून" चाहता है। लिंकन ने क्रियात्मक रूप में सेवार्ड से भी अधिक प्रगतिशील मार्ग अपना रखा था। वह भी इस वाक्य "विभाजित घर" का जन्मदाता था, परन्तु जहाँ डगलस अधिक लोकप्रिय था, वहाँ लिंकन की भी बहुत अधिक प्रतिष्ठा थी। लिंकन सेवार्ड की अपेक्षा कम ख्याति का था, उसके अच्छे-से-अच्छे भाषण भी अधिक दूर तक प्रचलित नहीं हुए और कड़े-से-कड़े शब्दों से भी ज्यादा हलचल नहीं मची। इसलिए उन लोगों को खुश रखने के लिए, जो समझौते के पक्षपाती थे, अधिवेशन ने उस व्यक्ति (सेवार्ड) को अस्वीकार कर दिया जो सचमुच ही समझौता कर लेता और उस व्यक्ति को चुना जो जहाँ तक उदार दृष्टिकोण संभव था अपनाता, परन्तु अपने सिद्धान्तों से तिल भर भी विचलित होने की अपेक्षा मरना अधिक पसन्द करता। बहुत से अमरीकी लिंकन के इस तरह चुने जाने में, जब कि राष्ट्र पर भयंकर संकट आनेवाला था, भगवान का हाथ मानते हैं। इसके कारण उनके देश की रक्षा हो सकी। उनके इन विचारों पर भी ध्यान न देना विडम्बना मात्र होगी। कुछ भी हो, जनतंत्र के इतिहास में यह एक स्मरणीय घटना है। भले ही आदर्श कैसे भी रहे हों, परन्तु प्रतिनिधियों ने निराशाजनक रूप से लिंकन को कमजोर मानते हुए इस कसौटी के अवसर पर योग्य व्यक्ति का चुनाव उसकी संभावित अयोग्यता के आधार पर किया। लिंकन को इन प्रतिनिधियों ने उसके गुणों के कारण न चुनकर उसे समझौतापसन्द, सरल व उदार व्यक्ति समझ कर चुना।

'रिपब्लिकन' दल के इस निर्णय से चारों राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवारों में लिंकन की जीत सुनिश्चित समझ ली गयी। लिंकन ने तत्कालीन परम्पराओं

के अनुसार चुनाव-अभियान में भाग नहीं लिया और इन महीनों में वह क्या करता रहा उससे हमारा कुछ लेना-देना नहीं है।

सेवार्ड ने निजी तौर पर अपनी कड़ुवाहट और खीझ प्रकट की कि जो उसका अधिकार था वह कैसे 'एक इल्लीनायस के छोटे-से वकील' को दे दिया गया; परन्तु इसके बावजूद लिंकन को विजयी बनाने के लिए चुनाव-अभियान में वह बुरी तरह पिल पड़ा और कई प्रशंसनीय भाषणों का क्रम उसने जारी रखा। यह उसके लिए गौरवास्पद है। ६ नवम्बर की रात को लिंकन स्प्रिंगफील्ड में अकेला तारघर में बैठा तारबाबू से विभिन्न राज्यों से आये राष्ट्रपति के चुनाव-मतों की गणना कर रहा था। मतगणना पूरी होने के पूर्व ही वह जान गया कि उसकी जीत हो गयी है। इस मामले में उसका ज्ञान असाधारण था। तारघर छोड़ने के पहले ही उसने अपने दिमाग में मंत्रिमंडल के गठन की प्रमुख समस्या का हल सिद्धान्त रूप में निकाल लिया था। इसकी उसने बाद में घोषणा भी की थी। एक मामले में यह विजय अभी अपूर्ण थी। यदि हम चुने प्रतिनिधियों के औपचारिक मतों को न गिनकर सामान्य अमरीकी व्यक्ति के रूप में मतों की गणना करें, तो ज्ञात होगा कि लिंकन को राष्ट्रपति-पद पर चुने जाने में राष्ट्र-स्तर पर अल्प मत प्राप्त हुए थे। उसे डगलस से कहीं अधिक बहुमत प्राप्त हुआ था परन्तु यदि उसे दक्षिणी डेमोक्रेटिक दल के वे मत मिल जाते जो उनके प्रतिनिधि ब्रिकनरिज को मिले थे, तो डगलस बड़ी सुविधा से जीत सकता था। ब्रिकनरिज को लिंकन से अधिक मत मिले थे, परन्तु अमरीकी चुनाव-पद्धति के अटपटेपन के कारण वह राष्ट्रपति नहीं बन सका। दूसरे रूप में यह विजय अत्यंत ही सांघातिक महत्वपूर्ण विजय थी। लिंकन को मत केवल उत्तरी राज्यों से मिले थे, सभी स्वतंत्र राज्य उसके पक्ष में थे और दूसरे राज्य नहीं थे। अमरीकी इतिहास में पहली बार संगठित उत्तर ने दक्षिण को मतों में पछाड़ दिया। इसके कारण बहुत उत्तेजना फैली और जो व्यक्ति चुना गया उसके व्यक्तित्व के कारण यह और भी तीव्र हुई। लिंकन के चुनाव का स्वागत सारे दक्षिण में असंतुलित भाषा और गालियों की बौछार से किया गया।

छठवाँ अध्याय

गणराज्य से पृथकता

[१]

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के विरुद्ध दक्षिण का मामला

रिपब्लिकनों ने अपने मत पूरी तरह स्पष्ट मसले पर दिये, परन्तु उनमें से बहुत कम लोगों ने अनुमान लगाया होगा कि उसके क्या गंभीर परिणाम होने वाले थे। लिंकन के चुने जाने के कुछ ही दिनों बाद राज्यों को गणराज्य से पृथक करने की दिशा में आंदोलन का पहला चरण आरम्भ हुआ और जब तक कि नया राष्ट्रपति कार्यभार सम्हाले, यह स्पष्ट हो गया कि या तो असंतुष्ट राज्यों को गणराज्यों से अलग होने दिया जाय अथवा गणराज्य की रक्षा के लिए युद्ध किया जाय।

पाठकों के लिए यह अन्दाज लगाना कठिन है कि ऐसा कौन-सा कारण था जिस पर युद्ध का श्रीगणेश हुआ। वह लोग जिनकी सहानुभूति उत्तरी राज्यों की ओर थी, उनमें से कई यह मानते थे कि युद्ध दासप्रथा के कारण छिड़ा, जब कि वे लोग जो बिना किसी हिचकिचाहट के दासप्रथा के विरोधी थे, आश्चर्य करते थे कि क्या यह ऐसा मसला था जिस पर युद्ध छेड़ा जा सकता था। दूसरे लोग इसे गणराज्य के लिए युद्ध मानते थे और दासप्रथा के विरुद्ध कदापि नहीं। इनको भी आश्चर्य था कि ऐसे गणराज्य के लिए युद्ध क्या उचित था जिसे शांतिपूर्वक कायम नहीं रखा जा सकता। अब यह संभव हो गया है कि युद्ध के कारणों को संक्षित में सीधे-सीधे एक वाक्य में हम कह सकते हैं, क्योंकि दोनों ही पक्ष में ऐसे लोग थे जो दूसरे कारणों पर एकमत थे। परन्तु इस मामले में निर्णय की भविष्यवाणी करते हुए जिस पर बाद में विस्तार से जाँच की जायेगी, हम युद्ध के कारण को कुछ वाक्यों में कह सकते हैं। पहले हम यह प्रश्न करें कि दक्षिग ने युद्ध क्यों लड़ा। इसका उत्तर यह है कि दक्षिण के नेता और दक्षिणी लोगों के बहुमत के समक्ष एक सर्वोच्च सर्वव्यापी लक्ष्य

था 'दासप्रथा को चिरस्थायी बनाना' 'और यदि आवश्यकता हो तो इसका विस्तार करना।' इन लोगों ने अपने साथ ऐसे दक्षिण के लोग भी जुटा लिये, जो दासप्रथा के विरोधी थे अथवा उसके पक्ष में नहीं थे। परन्तु उनकी मान्यता थी कि उनके राज्य के इस अधिकार को मान्यता मिलनी ही चाहिए कि कोई राज्य गणराज्य में रहे अथवा नहीं यह उस राज्य की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि हम प्रश्न करें कि उत्तर ने युद्ध क्यों लड़ा? तो उसका उत्तर यह है कि उत्तर की जनता के विशाल बहुमत ने दक्षिण के विलय को इस शर्त पर खरीदने से इन्कार कर दिया कि दासप्रथा में और वृद्धि की जाय और उसका विस्तार किया जाय। और विशाल बहुमत ने इस बात को भी अस्वीकार कर दिया कि दासप्रथा अथवा किसी अन्य कारण से दक्षिण को गणराज्य भंग करने का अधिकार है।

दासप्रथा का यह सवाल तब गणराज्य से सम्बंधित एक दूसरे मसले के साथ जुड़ गया—जो अब तक केवल पृष्ठभूमि में था।

सबसे पहली बात जिस पर ध्यान देना आवश्यक है, यह है कि उत्तर और दक्षिण के आपसी स्वाभाविक सम्बन्धों में इन दिनों पूर्ण विरोधाभास पैदा हो गया था। यह मतभेद इतना धीरे से और सम्पूर्ण रूप में हुआ कि दोनों पक्ष आश्चर्य और अरुचि के साथ यह महसूस करते हैं कि उस समय एक दूसरे की विचारधारा में आकाश-पाताल का अंतर कैसे पैदा हो गया था। उत्तर में गणराज्य को चिरस्थायी और अविभाज्य राष्ट्रीय एकता का प्रतीक माना जाता था और उसमें से कुछ राज्यों अथवा कुछ व्यक्तियों के पृथक होने का अर्थ स्पष्ट विद्रोह था। दक्षिण की धारणा में गणराज्य केवल एक विशेष ढंग की संधिमात्र था जो सार्वभौमिक सत्ता-संपन्न राज्यों ने की। इन राज्यों को पृथक होने का इस नाते अधिकार हो जाता था क्योंकि संधि के समय वे सार्वभौमिक सत्ता-संपन्न राज्य थे। दक्षिण की यह मान्यता थी कि इन राज्यों को पृथक होकर रहने का अधिकार है चाहे वह कितनी ही कष्टप्रद क्रिया क्यों न महसूस हो। परन्तु राज्यों को यह अधिकार है कि जब वे यह महसूस करें कि वह कष्टप्रद समय आ गया है तो अंतिम शस्त्र के रूप में इसका प्रयोग करें। कुछ सीमान्त राज्यों में इस विषय पर विभाजित दृष्टिकोण व शंकाएँ थीं। यही एक ऐसा तथ्य था, जिसने दोनों भागों की सही राय क्या है, इसे गुप्त रहने में सहायता दी।

उत्तर में कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें इस बात में संदेह था कि गणराज्य

के लिए आपस में लड़ना श्रेयस्कर है। परन्तु इस प्रश्न को कभी भी किसी ने वैधानिक दृष्टिकोण से नहीं देखा। दक्षिण में ऐसे लोग भी थे जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि पृथक होने की घड़ी नहीं आयी है, परन्तु जब राज्यों में इनका मत अस्वीकार कर दिया गया तो वे भी हृदय से इसका समर्थन करने लगे कि राज्यों को पृथक होने का पूर्ण अधिकार है।

दोनों पक्ष संवैधानिक कानूनी धारा का अपने-अपने पक्ष में एक दूसरे के विपरीत अर्थ लगा रहे थे। यह स्वाभाविक ही है कि जब दलों में किसी राजनीतिक सिद्धान्त या नैतिक अधिकार के सम्बंध में कोई विवाद छिड़ जाय तो दोनों पक्ष किसी प्रमाणित कानूनी सिद्धान्त की दुहाई देकर या आधार लेकर उस पर अपना दावा प्रस्तुत करें। ऐसा ही ब्रिटेन में गृह-युद्ध के समय हुआ, और अमरीका में आज भी यह प्रवृत्ति घर किये है कि वे किसी भी मसले को कानूनी रूप से स्वीकार करना पसन्द करते हैं। उत्तर और दक्षिण का मतभेद कानूनी मुद्दे पर नहीं था, किसी और बात पर था—वह मतभेद उनके सिद्धान्तों के प्रति था, जिस दिशा में उनकी भक्ति और देशप्रेम की भावना बढ़ चली थी। यह मतभेद भूतपूर्व राष्ट्रपति बुकनन के मंत्रिमंडल में स्पष्ट झलक आया था, जो लिंकन के चुनावकाल से लेकर उद्घाटन काल, पांच माह, तक कार्य करता रहा। मिचीगन का जनरल काल पहले दक्षिण के समर्थन से राष्ट्रपति-पद के लिये खड़ा हुआ था और अब वह मंत्रिमंडल में इसी कारण पदासीन था कि दासप्रथा के प्रश्न पर वह दक्षिण का समर्थक था। परन्तु वह उत्तरवासी था। उसने अपने सहयोगियों को कहा—"मैं इस मसले को इस तरह देखता हूँ—तुम वर्जीनियन हो, और तुम दक्षिणी कारोलीयन, परन्तु मैं मिशीगनी नहीं हूँ; मैं अमरीकी हूँ।"

इसके पहले के अध्याय में गणराज्य का जन्म और समान राष्ट्रीय जीवन के उद्गम की रूपरेखा खींची गयी थी। उस समय गणराज्य के लिए संकट उत्तर से भी और दक्षिण से भी था और जब वह बन गया तो उसे भंग करने की दिशा में दोनों ही ओर से धमकियाँ दी जाने लगीं। परन्तु शीघ्र ही दोनों ओर राष्ट्रीय एकता की गौरवपूर्ण लहर फैल गयी। और उत्तर ने इस प्रगति में बाधा पहुँचाने की दिशा में कभी कुछ नहीं किया। इसके विरुद्ध लोवेल का तथ्यहीन प्रभाव दृष्टान्त के रूप में भी निरर्थक है। ओहायो और विस्कोनसीन राज्य के नागरिकों का गणराज्य में अटूट विश्वास था। इन राज्यों को संयुक्त राष्ट्र अमरीका के प्रदेशों में से मिलाकर बनाया गया था। उत्तर के इन राज्यों में यह भावना

इसलिए भी मूल रूप में ग्रहण हो चुकी थी कि प्रमुख व्यवसाय व्यापार होने के कारण, उनका दृष्टिकोण उदार था। बोस्टन के नागरिक को मेसाचुसेट्स राज्यसंघ में उतना ही गर्व था जितना उसे बोस्टन के प्रति था। दोनों ही व्यक्ति इस बात से गौरवान्वित थे कि इन राज्यों ने महान अमरीकी गणराज्य बनाने में योग दिया। ऐसा व्यक्ति यह अच्छी तरह जानता था कि पहले भी एक बार दक्षिणी कारोलीना ने पृथक होने की धमकी दी थी, परन्तु इसी तरह न्यू इंगलैंड के विलयवादी भी धमकी दे चुके थे। दक्षिणी कारोलीना के मसले पर वेबस्टर ने जो तर्क प्रस्तुत किये, वे अनुपम हैं और कानूनी अधिकार के तौर पर निर्णायक माने गये हैं। उस समय राष्ट्रपति जेक्सन (जो स्वयं दक्षिणवासी थे) ने जो महत्वपूर्ण उग्र घोषणा की और उसे जनता का जो समर्थन मिला, उससे उत्तर और दक्षिण के सभी राज्य, केवल दक्षिण कारोलीना को छोड़कर, रोमांचित हो उठे। इस घोषणा ने वेबस्टर के सिद्धान्तों पर सत्यता की मुहर लगा दी। उसके बाद भी पृथकता की जोरदार और अशुभ बातें होती रहीं और इस बार सभी समझ रहे थे कि यह केवल धमकी नहीं है। उत्तरवाले मुख्यतया सजग राजनीतिज्ञ थे और वे इसको सुलझाने की दिशा में बहुत-कुछ देने को लालायित भी हो उठे थे। परन्तु दक्षिण ने जो दावा किया था उसे यदि व्यावहारिक रूप दिया गया होता तो सारा उत्तर इसे प्रतिष्ठासूचक दावा न ठहरा कर उत्पात ही समझता।

यहाँ यह सूचित कर देना जरूरी है कि ऐसा मत ग्रहण करने की तैयारी दासप्रथा के विरुद्ध प्रगतिशील विचारधारा के कारण नहीं थी। दासप्रथा के अति उग्र विरोधी भी जो संविधान या गणराज्य की तनिक भी परवाह नहीं करते थे वे भी इस बारे में हिचकिचा रहे थे कि जब दासप्रथा जैसे नैतिक प्रश्न पर कुछ राज्य पृथक होना चाहते हैं, तब युद्ध की अपेक्षा शांतिपूर्ण पृथक होने की नीति अधिक क्या उचित नहीं है। दूसरी ओर ऐसे लोग थे जो दासप्रथा की तनिक भी परवाह न करके गणराज्य के लिए दासप्रथा के बारे में जो भी उसकी धारणा थी, बलि देने को तत्पर थे। ये लोग पहले-पहल जब गणराज्य की ओर आक्रमण किया गया, तो क्रोध से आग बबूला हो गये थे। इसके अतिरिक्त इस दिशा में एक सीधी-सी परन्तु महत्वपूर्ण बात भी समझ लेनी चाहिए। उत्तर के डेमोक्रेट दल के रूप में दृढ सैद्धान्तिक बन कर गणराज्य के अधिकारों के विरुद्ध राज्यों के कानूनन अधिकारों के पक्ष में थे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे रिपब्लिकनों से भी अधिक गणराज्य के भंग

हो जाने के दावे से सहानुभूति रखते थे। वे लोग राज्यों के अधिकारों पर इसलिए जोर देते थे कि उनका विश्वास था कि सरकारी निरंकुशता के विरुद्ध ये सहायक आधार सिद्ध होंगे, और यदि राज्य या प्रादेशिक सरकार को अधिक अधिकार प्राप्त होंगे तो यह राष्ट्र के माने में जनमत की सच्ची अभिव्यक्ति होगी। वे अब इस दुविधा में उलझ गये कि गणराज्य को बनाये रखने के लिए संयुक्तराष्ट्र अमरीका की सरकार क्या कदम उठाये। परन्तु उनके दिमाग में इस बारे में कहीं कोई संदेह नहीं था कि गणराज्य को बनाये रखना है। अब जिस विषय पर प्रकाश डाला जा रहा है उसका भ्रामक अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए। दासप्रथा के बारे में प्रचलित भावनाओं में मतभेद, राज्य अधिकारों के प्रश्न पर विरोधाभास, और सरकार के अधिकारों के बारे में अलग मत होने के कारण—जैसे-जैसे युद्ध जारी रहा उत्तर को इसकी कीमत चुकानी पड़ी—उत्तर को गंभीर परेशानी भी उठानी पड़ी, परन्तु बिना किसी तरह की हिचकिचाहट प्रदर्शित किये—यह सुदृढ़ और संगठित 'उत्तर' ही था, जिसने कहा कि 'दक्षिण' को पृथक होने का अधिकार नहीं है।

कुछ सीमा तक दक्षिण में भी गणराज्य के प्रति देशभक्तिपूर्ण गौरव की भावना पैदा हो गयी थी। पहले पहले जब दक्षिण ने अमरीकी राष्ट्र के राजनैतिक जीवन में महत्वपूर्ण भाग लिया था, यह भावना सर्वत्र छा गयी थी। परन्तु पिछली एक पीढ़ी से दक्षिण के पृथक हित की भावना तेजी से शक्तिशाली हो रही थी। दक्षिण का राजनैतिक प्रभाव जारी रहा, परन्तु उत्तर में अधिक जनसंख्या हो जाने के कारण उसे अपने प्रभाव के नष्ट होने का भी भय था। पहली बार दक्षिण में जिस देशभक्ति ने जन्म लिया था वह अब इस अहंभावी अचेतन भावना में परिवर्तित हो गयी कि "गणराज्य तब तक शानदार चीज है जब तक वह दक्षिण के तत्वावधान में रहे।" दक्षिणी राज्यों का समान स्वार्थ दासप्रथा में था और जब उत्तरी राज्य बहुमत में आ गये जिससे किसी दिन वे सरकार पर छा जायें तो इस समान स्वार्थ के हथियार के रूप में उन्हें प्रत्येक राज्य की अखंड सार्वभौमिकता का सिद्धान्त प्राप्त हो गया। राज्यों की सार्वभौमिक सत्ता का सिद्धान्त दक्षिण में उत्तर की संकुचित गणराज्यीय विचारधारा के रूप में लिया जाता था। दक्षिण में यह दृढ़ अविचल धारणा थी कि इस दिशा में अंगुली नहीं उठायी जा सकती है। यह जरा भी आश्चर्यजनक नहीं है कि गणराज्य की अपेक्षा राज्य में सर्वोच्च भक्ति की भावना दक्षिणी कारोलीना और वरजीनिया में बसने वाली पुरानी जातियों में, जो रूढ़िवादी विचारों व प्रभावों में पल

रही थी अधिक पायी जाती थी, जब कि उत्तर इस तरह के प्रभावों से रहित था। अल्बामा और मिसीसिपी में इस तरह की प्रादेशिक सर्वोपरिता की भावना स्वाभाविक रूप में नहीं पायी जाती थी। ये राज्य यहाँ के निवासियों के जीवनकाल में ही इन्डियाना और इलिनायस की तरह गणराज्य द्वारा अपने क्षेत्रों में बनाये गये थे। इन राजनैतिक नवनिर्मित राज्यों में प्रादेशिकता की भावना के स्वाभाविक स्वरूप का अभाव था और इनके लिए सार्वभौमिक सत्ता का सिद्धान्त केवल समानहित दासता को प्रकट करने के लिए पर्दा मात्र था। परन्तु कोल्हन जैसे विलक्षण और खतरनाक राजनैतिक बुद्धिजीवी ने राज्य की सार्वभौमिक भावना को दक्षिण के समान हितों के संरक्षण का हथियार बनाया, अन्यथा यह सिद्धान्त कभी का समाप्त हो चुका होता। ऐसे समाज में जहाँ बौद्धिक विकास संकुचित था, इस विचारधारा का प्रसार बड़ा ही प्रभावशाली और शीघ्र हुआ। कोल्हन ने प्रादेशिक सार्वभौमिकता के सिद्धान्त और राज्यों के पृथक होने के बारे में जो कड़ा अंकुश रखा था उसे उसके अनुयायियों ने उतार फेंका। इस तरह दक्षिण के राज्यों में—सामान्यतया यहाँ तक कि उन व्यक्तियों में भी जो गणराज्य से पृथक होने के प्रस्ताव को क्रियात्मक रूप देने के कट्टर विरोधी थे—यह दृढ़ भावना घर कर गयी कि राज्यों को गणराज्य से पृथक होने का (यदि कोई राज्य चाहे तो) जो व्यावहारिक अथवा कथित संवैधानिक अधिकार है, उसे चुनौती नहीं दी जा सकती और इस अधिकार को राज्यों की बहुमूल्य स्वतंत्रता के रूप में मान जाने लगा।

इस प्रश्न को टालना असम्भव हो जाता है कि इस संवैधानिक मसले पर उत्तर सही था अथवा दक्षिण (सचमुच में यह प्रश्न राष्ट्रपति द्वारा अपनी इस दिशा में नीति निर्धारित करते समय महत्वपूर्ण प्रश्न की तरह पैदा होता है जिसका समाधान भी जरूरी हैं। इस प्रश्न का हल उस समय और भी जरूरी है जब उसके सामने कोई राज्य पृथक होने की समस्या के साथ खड़ा हो। यहाँ यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि युद्ध के दिनों में किसी भी दल ने मुख्य रूप से राजनीतिक सिद्धान्तों अथवा नैतिक अधिकारों के रूप में इस प्रश्न को कानूनी सिद्धान्त नहीं बनाया। यह ऐसा प्रश्न था, जिसे न्यायालयों को उस संधिपत्र की दिशा में हल करना था जो अभी तैयार ही नहीं किया गया था।) यदि हम संविधान के मूल संधिपत्र को देखें तो उसमें गणराज्य और चिरस्थायी संगठन-सम्बंधी भावना पायेंगे, परन्तु इनमें कहीं यह नहीं लिखा मिलेगा कि जिन लोगों ने इसका स्वरूप निर्धारित किया वे स्थायी व दृढ़ संघ सरकार बनाने के इच्छुक थे। यदि हम

वास्तविक संविधान को पढ़ें तो उसमें इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है कि कोई राज्य गणराज्य से हट सकता है अथवा गणराज्य अविभाज्य है। इसके निर्माताओं के मुख्य उद्देश्य का जहाँ तक सवाल है, उसमें शक नहीं किया जा सकता कि वे लोग अविभाज्य गणराज्य की आशा व विश्वास से प्रेरित थे। साथ ही वे यह भी नहीं थोपना चाहते थे कि जो राज्य इसमें सम्मिलित हुए हैं उनका यह कदम सदा के लिए उन्हें बाधित होगा। दक्षिण ने जो दृष्टिकोण इस बारे में अपनाया उसके पीछे एक शक्तिशाली तर्क भी प्रस्तुत किया गया था—इस तर्क को जफ़रसन डेविस ने अपनी वृद्धावस्था के दिनों में अधिक विस्तार व सैद्धान्तिक आधार से रखकर अपने को आत्मसंतुष्ट किया। वह इस तरह है—"जब संविधान स्वीकार किया गया तो विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों ने वहाँ के नागरिकों में यह घोषणा की कि राज्य गणराज्य से अलग भी हो सकते हैं।" परन्तु यह निर्णायक नहीं माना जा सकता है। कोई भी व्यक्ति किसी दस्तावेज के अन्तर्गत जो जिम्मेदारियाँ उसने स्वीकार की हैं, किसी भी साक्षी के सामने यह कह कर उनसे मुक्त नहीं हो सकता कि उसका तात्पर्य इनसे बाधित होने का नहीं है। प्रश्न यह नहीं है कि वह क्या चाहता है। प्रश्न यह है कि जिसके साथ उसने यह समझौता किया है उसका क्या अभिप्राय है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के संविधान का उद्देश्य ऐसी सरकार की स्थापना करना था जिसे दुनिया की दूसरी सरकारों व राष्ट्रों के समकक्ष रखा जाय और यदि ऐसी सरकार युद्ध की घोषणा करती है तो सारे राष्ट्र की शक्ति को उस दिशा में झुकाया जा सकता है और यदि शांति अथवा संधि करती है तो उसकी शर्तें सभी प्रजाजनों पर थोपी जा सकती हैं। इसका अर्थ यह होता है कि उस सरकार का अपने देश के भूभाग पर जो अधिकार है वह अविभाज्य है। यह हास्यास्पद होगा कि इंग्लैंड से युद्ध के समय कनाडा के निकटवर्ती अमरीकी राज्य गणराज्य से पृथक् होने के कानूनी अधिकार को जताये और अपने वहाँ तटस्थ सरकार कायम करे, जिसका उद्देश्य ब्रिटेन से पुनः सम्बन्ध स्थापित करने का हो। इस मामले पर गम्भीर कानूनी दृष्टिकोण यह होगा कि पृथकता-सम्बन्धी सिद्धान्त प्रारम्भिक रूप में राष्ट्रीय सरकार के गठन के उद्देश्यों के पूर्ण विपरीत है। यदि यह उद्देश्य निहित होता तो संविधान में इसके लिए स्पष्ट लिखित उल्लेख मिलता।

तत्कालीन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में ड्यूक आरग्येल ने, जिन्होंने सारे संघर्ष का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया, इस बारे में यह लिखा—"मुझे विश्व-सरकारों में ऐसी कोई सरकार नज़र नहीं आती जो यह दावा करे कि वह अपने

विलीन राज्यों को पृथक् होने का वास्तविक अधिकार प्रदान करती हो।" भले ही राष्ट्रपति बुकनन के विरोधाभासी चरित्र को देखते हुए यह विचित्र अवश्य लगे, बुकनन ने काँग्रेस को दिये गये राष्ट्रपति संदेश में चार दिसम्बर को यही बात पुरजोर शब्दों में दुहरायी थी। कानूनी तौर पर हम कह सकते हैं कि दक्षिणी राज्यों ने विद्रोह किया, किन्तु इसका अर्थ आवश्यक रूप से यह नहीं कि उन्होंने जो कुछ किया वह गलत था। जनता द्वारा उस राजनीतिक सार्वभौमिकता से, जिसके अंतर्गत वे रह रहे थे, अलग होने का सुनिश्चित प्रयास व एक ऐसे नये राजनीतिक समाज की रचना करने की भावना, जिसके अंतर्गत उनको राष्ट्रीय जीवन के अधिक विकास व सुरक्षा प्राप्त हो सकती है, अवश्य कुछ अर्थ रखती है। यह अलग प्रश्न है कि इसके कारण उन्हें पूरी सहानुभूति, सहयोग, और कम से कम दूसरों से मान्यता, मिलनी चाहिए अथवा नहीं। यह प्रश्न किसी विशेष समस्या से सम्बन्धित कतिपय अन्य तथ्यों पर निर्भर करता है, जिनका पूर्व निर्णय राजनैतिक सिद्धान्त की चर्चा मात्र के अंतर्गत नहीं किया जा सकता। परन्तु सामान्य रूप से कहें तो जनसामान्य को अधिक-से-अधिक स्वतंत्र वातावरण प्रदान करना इसका मुख्य उद्देश्य है तो दूसरी ओर यह सामान्य जन-जीवन का भी प्रश्न है जो इसके कारण कमजोर अथवा छिन्नविच्छिन्न भी हो सकता है। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि जब निर्णायक बहुमत द्वारा जनता जिसकी आवाज में बल होता है किसी निर्धारित क्षेत्र में भविष्य के लिए एक विशेष सरकार को चुनकर उसके तत्वावधान में रहना चाहती है, तो सभी उदार हृदय व्यक्ति यह चाहेंगे कि वह अपना ही मार्ग अपनाये। यदि ऐसा ही कोई सिद्धान्त बिना किसी शर्त के अपनाया जाता तो दक्षिणी राज्यों के पृथकता-आंदोलन की अपेक्षा स्वतंत्रता के अन्य बहुत कम आंदोलनों के हम अधिक उचित ठहरा पाते। यदि हम रुई पैदा करने वाले छः दक्षिणी राज्यों के साथ पठारी क्षेत्र और उन सीमावर्ती राज्यों को भी छोड़ दें तब भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस पृथकता-सिद्धान्त के पीछे प्रभावशाली व विशाल जनमत था। सीमावर्ती राज्यों व पठारी क्षेत्र का दासप्रथा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था।

पृथकता-आंदोलन केवल दक्षिण के सत्ताधारी व शिक्षित वर्ग में ही सीमित न था, वरन् गरीब गोरे लोग भी उनके साथ थे क्योंकि वे लोग दास रखने की प्रथा को शान समझते थे, भले ही दासप्रथा उनके लिए शोषणीय थी। जब उनसे यह अपील की गयी कि उत्तर उनके राज्यों के पृथकता अधिकार को देना

नहीं चाहता है और काल्पनिक बनावटी बहाने कर रहा है, इसलिए उत्तर का विरोध किया जाय तो उन्होंने इस भावना का उत्साह से स्वागत किया। जहाँ तक नीग्रो दासों का प्रश्न है वे स्वतंत्र होने व समानता-प्राप्ति के बारे में चुप थे और असंगठित थे। उन्होंने वहाँ इस आशय का आंदोलन भी नहीं छेड़ा। यदि हम यहाँ किसी दक्षिणी नेता के जीवन-चरित्र से सम्बंधित होते तो इतने बड़े वक्तव्य पर विस्तार से प्रकाश जरूर डालते। फिर भी इस मामले में अन्य मामलों की ही तरह यह सत्य है कि ऐसे व्यक्ति बहुत कम थे जिन्होंने श्रीगणेश किया था। मोटे तौर पर देखा जाय तो यह निश्चित है कि पृथकता-आन्दोलन में ही उसी तरह का उत्साह और वैसी ही उत्सर्ग की भावना थी जैसी अन्य राष्ट्रीय आन्दोलनों में—जिनके साथ इसकी तुलना करें—पायी जाती है।

कतिपय अन्य राष्ट्रों के लोग उस समय से लेकर आज तक इस वक्तव्य को अविश्वसनीय मानते रहे हैं। परन्तु तथ्य यह है कि यह प्रभावशाली आंदोलन जिसमें क्या गरीब, धनी, भले, और सरल-स्पष्ट राजनीतिज्ञ, पवित्र धार्मिक पादरी सभी लोग सम्मिलित होकर, एकजूट होकर सर्वनाश के कगारे तक बढ़ गये थे—केवल मात्र गृहयुद्ध उनकी दृष्टि में दासप्रथा के लिये लड़ा गया था। उस समय के उत्तरी लेखकों ने तथ्यों को प्रकट न कर इस दिशा की आड़ ली कि यह कुछ षड्यन्त्रकारियों का काम था, जो सस्ती भावनाएं उभाड़ कर तथा अपने प्रतिद्वन्द्वियों को अपमानित कर दक्षिण को उस मार्ग पर ले जाने में सफल हो गये हैं जिसके प्रति वहाँ के व्यक्तियों की धारणा पूर्ण विपरीत थी। बाद में शांति के साथ जो दृष्टिकोण इतिहासकारों ने रखा उसमें यह मत पूर्णतया ठुकरा दिया गया; और इस संदेह की पुष्टि नहीं होती कि पृथकता की माँग के पीछे दासप्रथा के अलावा दूसरे कारण भी अवश्य होंगे। १८३० से लेकर पृथकता-काल तक किसी भी दक्षिणी विचारधारा वाले ने कभी यह संकेत नहीं किया कि "पृथकता दासप्रथा के अलावा और भी कारणों से की जानी चाहिए।" प्रत्येक दक्षिणी नेता ने निस्संदेह यह सत्य घोषणा की कि अन्य दूसरे मामलों में वह गणराज्य को महत्त्व देता है। दक्षिणी कारोलीना के अलावा सभी दक्षिणी राज्यों ने गणराज्य को अपना मामला सौंपने के पहले यह प्रयत्न कर लिया कि उन्हें ऐसी कोई गारन्टी मिल जाय जिसके अनुसार गणराज्य में दासप्रथा कायम रह सके। दक्षिणी राजनीतिज्ञों में (सैनिक तो राजनीतिज्ञ थे नहीं) अलेग्जेंडर स्टेफन्स एक ऐसा चरित्र है जिसके प्रति सहानु-

भूति पैदा होती है। वह इस नये संघराज्य का उपराष्ट्रपति था, यद्यपि यह व्यक्ति इस बात पर बहुत समय तक अड़ा रहा कि बिना पृथक हुए भी पूरी तरह से दासप्रथा सुरक्षित की जा सकती है। दक्षिणी संघराज्य ने जो संविधान स्वीकार किया उस समय जैसी भी स्थिति क्यों न रही हो, उस समय इसका भाषण उल्लेखनीय है, उसमें दक्षिण की आत्मा झलकती है। "नये संविधान ने हमारी विशिष्ट प्रथा दासप्रथा-सम्बंधी सभी हलचल व उत्तेजना पैदा करनेवाले प्रश्नों को सदा के लिए शान्त कर दिया। पिछले दिनों के अलगाव और वर्तमान विद्रोह का यही प्रमुख कारण था। पुराने संविधान के समय जफरसन और प्रमुख नेताओं की यह धारणा थी, "अफ्रीकी लोगों को गुलाम बनाना जिन सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुसार अनुचित है हमारी नयी सरकार ठीक इस विचारधारा के विपरीत सिद्धान्तों की नींव पर खड़ी है। इसकी नींव पड़ चुकी है, और इसके आधारस्तम्भ इस महान् सत्य पर खड़े हैं कि नीग्रो गौरांग व्यक्ति के बराबर नहीं है, दासता—अर्थात् गौरांग की सेवा—उसके लिए स्वाभाविक और सामान्य स्थिति है। हमारी यह नयी सरकार, विश्व-इतिहास में पहली सरकार है जो इस महान ईश्वरीय, दार्शनिक और नैतिक सत्य पर आधारित है। मानवता के उद्देश्यों की तब ही श्रेष्ठ पूर्ति हो सकती है, जब भगवान के रचे नियमों और आदेशों के पालन करने में सभी एकमत हों।" ठीक इसी तरह का निर्लज्ज, अनैतिक प्रलाप मिसीसिपी राज्य के अधिवेशन में हुआ। उन लोगों ने घोषणा की—"हमारी स्थिति पूर्णतया दासप्रथा की स्वीकृति में निहित है।"

दक्षिणी नेताओं को इस नादानी व मूर्खता के लिए कोसना सामान्य बात है कि उन्होंने गणराज्य भंग करने का प्रयत्न किया, जिसको वे मूल्यवान मानते थे और वह भी केवल दासप्रथा के लिए, जिसे उन्होंने इससे भी अधिक बहुमूल्य माना। यथार्थ में उन्होंने दासप्रथा को नष्ट किया और यह उन्होंने केवल एक काल्पनिक संकट से बहक कर किया। यह सही है कि लिंकन के चुनाव से दासप्रथा के लिए कोई निकटवर्ती भारी संकट नहीं था। वह यह काम कर ही नहीं सकता था। अपने चार वर्ष के कार्यकाल में अधिक-से-अधिक इतना ही करता कि गणराज्य के नये प्रदेशों को दासप्रथा के चंगुल में नहीं फँसने देता। चार वर्ष बाद उसके उत्तराधिकारी इस दृष्टिकोण को अपनाते अथवा नहीं भी अपनाते यह भावी की बात थी। अमरीकी राजनीति में उसका पक्ष अत्यन्त प्रबल भी नहीं था। काँग्रेस के दोनों सदन और सर्वोच्च न्यायालय का बहुमत उसके विरुद्ध था। सर्वोच्च

न्यायालय के न्यायाधीश—जिन्हें शायद महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती—उनमें से अधिकांश ऐसे संवैधानिक दृष्टिकोण रखते थे जो उसके दृष्टिकोण के विरुद्ध थे। वह सारी अमरीकी जनता के अल्पमत से चुना गया था। ऐसे में दक्षिणी राज्य शांत क्यों नहीं बैठे रहे यह मान करके कि मौजूदा स्थिति में उनकी दासप्रथा को कोई हानि नहीं पहुँचेगी, और यह भी आशा रखते कि शीघ्र ही उनके दल का आपसी मतभेद समाप्त होते ही वे पुनः सत्तारूढ हो जायेंगे! यदि दक्षिणी नेता अपनी दास-संपत्ति का मूल्य केवल अपने जीवनकाल तक ही सुरक्षित रखना चाहते तो संभवतया वे उपरोक्त तर्क पर गंभीरता से ध्यान भी देते, परन्तु मामला इस तरह का नहीं था। हमारे लिए यह बहुत कठिन है कि हम दक्षिणी नेताओं की इस विचाराधारा से सहमत हों जो ईमानदारी से इसमें विश्वास रखते थे कि नीग्रो पर उनका संपत्ति-अधिकार भगवान के आदेश के अनुसार है। अर्थात् वे यह समझते थे कि नीग्रो दासप्रथा को बनाये रखना भगवान का आदेश मानना है। परन्तु यह भी निश्चित है कि पिछली दो पीढ़ियों के दौरान में दासप्रथा के औचित्य-अनौचित्य के बारे में जो मानसिक उत्तेजना थी वह दक्षिण के बहुत बड़े भूभाग में समाप्त हो चुकी थी। विलक्षण दक्षिणी नेता अपने इस मूल्यवान समाज को जिसके अंतर्गत वे रहते थे, उसे अपने बेटे-पोतों को इसी रूप में सौंपना भी चाहते थे।

यदि उनका यह असंगत सिद्धान्त मान लिया जाता तो हमें उनके उस अगुआ की इस बुद्धि की सराहना करनी ही पड़ती कि उसने चोट करने का अवसर भी लिंकन के चुने जाने पर ही निश्चित किया। क्योंकि यही एक ऐसा अवसर था जिस समय वे चाहते तो दासप्रथा को जीवित रख सकते थे। दक्षिणी कारोलीना अधिवेशन में यह ठीक ही कहा गया कि उत्तर में बहुमत दासप्रथा को पापपूर्ण समझता है, इन लोगों ने इस अव्यावहारिक विचारधारा को जरा खुलकर अभिव्यक्त किया है। लिंकन का प्रशासन संभवतया इस दिशा में कुछ भी नहीं कर पाता और उसके बाद बाजी किसी दूसरे पक्ष के हाथ में हो सकती थी! परन्तु राजनीतिक दृष्टान्त के रूप में इस तरह शक्ति-परिवर्तन की बात काल्पनिक व भ्रामक है। अमरीका अब उस धरातल पर वापिस नहीं लौट सकता था। इसके पूर्व यह जरुरी था कि समूचा राष्ट्र दासप्रथा के औचित्य को स्वीकार करता। यह भविष्यवाणी करना कठिन है कि अंत क्या हुआ होता या कितना शीघ्र आता, परन्तु इसका अंत आना निश्चित था, यदि दक्षिणी राज्य उन लोगों के सहनागरिक बन कर रहना पसन्द करते जो उनकी बुनियादी

प्रथा को दिनों-दिन अति कठोर व दुष्टतापूर्ण समझते जा रहे थे। लिंकन ने पहले कहा था—"आधे दास और आधे स्वतंत्र के रूप में यह सरकार स्थायी नहीं रह सकती।" लिंकन सही था, और उसके अपने दृष्टिकोण के अनुसार ऐसे व्यक्ति—जो स्वयं किसी कठिन सामाजिक सुधार के मसले को उठाने में दृढ़ता और बुद्धिमानी नहीं प्रकट कर सकते थे—इस मामले में उनके नेता थे और इन्होंने शीघ्र ही पृथक होने की घोषणा कर दी।

अमरीकी गृहयुद्ध में ऐसे कई मानवीय तत्व हैं जो किसी भी दुखान्त नाटककार को आकर्षित कर लेते हैं। ऐसे तत्व इतिहास के अन्य संघर्षों में प्राप्त नहीं हैं। कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति लच्छेदार भाषा के जाल से मुक्त हो यह कहते हुए नहीं हिचकिचायेगा कि उसकी सहानुभूति किस पक्ष में होनी चाहिए। केवल वही व्यक्ति इसका उत्तर ठीक नहीं दे सकेगा जिसे युद्ध का कारण ज्ञात नहीं हो या यह स्वीकार करने के पक्ष में होगा कि उत्तर की विजय चाहे कितनी ही महंगी रही हो परन्तु वह सत्य की किसी-न-किसी रूप में विजय थी। विरोधी पक्ष में—जो स्पष्ट गलती पर था—प्रतिष्ठा या मानवीय गुणों की कमी नहीं थी, इस संघर्ष की लंबे समय तक पीड़ाजनक स्मृति का भयावना चित्र ही पर्याप्त नहीं है, ऐसा कोई कारण भी नहीं है कि जिन लोगों ने इस अशुभ कार्य के लिए हथियार उठाये, उनके गुणों को स्वीकार नहीं किया जाय। ऊँची और नीची जातियों के सम्बंधों का अनुभव हमें इस दिशा में विचार मात्र तक नहीं करने देता कि नीग्रो लोग उनसे असभ्य थे, क्षुद्र थे, अतएव उनके लिये दासता उचित थी। परन्तु इसके साथ हम यह भी कल्पना नहीं कर सकते कि जिन व्यक्तियों के लिए मालिक और दास का स्वाभाविक सम्बंध बन गया था उनका अवश्य ही अधःपतन हो चुका होगा। दक्षिणी पक्ष के जिन व्यक्तियों को विशेष सराहा जा सकता है वे केवल सैनिक थे और युद्ध छेड़ने में उनका कोई हाथ नहीं था। जिन राजनीतिक नेताओं के तत्वावधान में उन्होंने काम किया उनमें कोई भी तो महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं था, और उन्होंने जो नेता चुना, वह भी आकर्षणहीन व्यक्ति था। परन्तु हम इन युद्ध आरंभ करने वालों को कठोर, अनुभवहीन और सूझबूझ-रहित भ्रष्ट व्यक्तियों का गुट्ट नहीं मान सकते हैं। जिस वर्ग में उनका स्थान था वह प्रतिष्ठित था तथा उनमें सार्वजनिक हित की भावनाएं भी थीं और वे लोग धार्मिक दृष्टि से भी पवित्र व्यक्ति थे। उन्होंने अपने उद्देश्य को बलिदान व उत्सर्ग से निभाया; फिर भी उन्हें ही पूरा दोषी नहीं ठहराया जा

सकता कि उन्होंने एक बुरे कार्य को चुना। वास्तविक पृथक्करण की जिम्मेदारी विशेषरूप से किसी एक नेता या व्यक्ति पर नहीं डाली जा सकती है। पृथक्करण दक्षिणी कारोलीना के अनवरुद्ध आंदोलन के कारण हुआ और बाद में वह राज्यों में फैल गया। तत्कालीन राजनैतिक नेताओं ने जनसामान्य की भावना को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा उसे अभिव्यक्त अधिक किया। इस मोहित किये गये समाज के कार्यों के लिए यदि किसी को दोषी ठहराने का साहसिक कार्य किया जाय तो कोल्हन जैसे राजनीतिज्ञ के सर पर यह पाप लादा जा सकता है, जिसने पहली पीढ़ी में जब कि दक्षिण की विचारधाराओं का पूर्ण स्वरूप नहीं निखर पाया था, सभी सुधारों के विचार कुंठित कर दिये तथा एक ऐसी व्यवस्था को नैतिक व बौद्धिक औचित्य दिया जो केवल मात्र ऐतिहासिक प्रवंचनाओं से भरी थी।

दक्षिण न तो कमीना था और न मूर्ख ही, परन्तु वह गलत मार्ग पर था कुछ लोग यह भी सोच सकते हैं कि इसको रोकने के लिए युद्ध का मार्ग नहीं अपनाना था और यथार्थ में उस समय जिन लोगों ने सही कदम के लिए हथियार उठाये बहुत सोच-विचार के बाद उठाये, अपेक्षा उन लोगों के जो गलत मार्ग पर थे। यदि दास राज्यों को शांतिपूर्वक अलग हो जाने दिया जाता तो वे नये और विशिष्ट प्रकार के राजनैतिक समाज की रचना करते और एक दृढ़ सिद्धान्त के फलस्वरूप गणराज्य से भी अधिक वास्तविक रूप में संगठित रहते। वह ऐसा राष्ट्र बनाते जिसका उद्देश्य मानवीय असमानता होता। इस तरह वे जिस स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन को जन्म देते उसे सम्माननीय या संरक्षीण समझना असम्भव है। इसके अतिरिक्त यह बात भी सत्य नहीं है कि उनकी इस बेमेल स्वतंत्रता से पड़ोसी राज्य का कुछ भी सम्बंध नहीं होता। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि दास-स्वार्थ किस तरह अन्य क्षेत्रों में प्रवेश पाने को प्रभावशाली हो चुका था और यह निश्चित है कि यदि दक्षिणी राज्यसंघ दृढ़ता से जम जाता तो वह अमरीका महाद्वीप में आक्रामक और उत्पाती स्वरूप ग्रहण कर लेता। दोनों राज्यों के बीच भूमि और सीमा-सम्बन्धी विवाद शांतिपूर्ण ढंग से हल होते अथवा जैसा लिंकन का सोचना था कि वे अनिर्णीत ही सदा विवादग्रस्त रहते, नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त उन राज्यों द्वारा, जिन्होंने पुराने गणराज्य में ही रहने का निर्णय किया, पृथक होने वाले राज्यों का दावा स्वीकार कर लिया जाता तो उनकी राष्ट्र के रूप में असुरक्षित स्थिति होती; क्योंकि संकुचित स्वार्थों का कोई-न-कोई मसला फिर खड़ा हो जाता, अथवा भावनाओं

को लेकर कोई-न-कोई विवाद छिड़ता था फिर फूट पैदा होती जिसे किसी भी सिद्धान्त के आधार पर रोका नहीं जा सकता था।

पिछले अध्यायों में उन भावनाओं का विश्लेषण किया गया जिनके कारण अमरीका एक राष्ट्र बन पाया और अमरीकावासी अमरीकी बन सके। इसके साथ-साथ यह भी दिखाया गया कि इन भावनाओं का लिंकन के मस्तिष्क पर कितना और कैसा प्रभाव पड़ा। कदाचित् इसी आधार पर हम उत्तर की सराहना कर सकते हैं कि इसी लक्ष्य को सामने रखकर उसने यह मँहगा युद्ध लड़ा। यह पूर्णतया सही नहीं है कि उन्होंने दासप्रथा के विरुद्ध युद्ध लड़ा। परन्तु यह कहना पूर्णतया असत्य होगा कि उन्होंने केवल गणराज्य के लिए ही इस युद्ध में भाग लिया। उन्होंने एक राजनैतिक संगठन की रक्षा करने व उसे पूर्ण बनाने के लिए—ऐसा संगठन जो उच्च आदर्शों पर बनाया गया और जिसके निर्माताओं ने इसके गठन में बहुत-कुछ उत्सर्ग किया—और उसे स्थायी व स्वस्थ राष्ट्र के रूप में समर्थशाली रखने के लिये यह युद्ध लड़ा।

यदि हम उत्तर की भावनाओं का अध्ययन करना चाहें, जिसके कारण वह युद्ध में डट रहा तो हम पायेंगे कि कि उनकी किसी विशेष सरकार के प्रति केवल विश्वास की भावना नहीं थी, वरन् उनमें गणराज्य के प्रति अगाध विश्वास और श्रद्धा थी। यह हमें कदापि नहीं भुला देना चाहिए। कुछ लोगों के दृष्टिकोण में यह मत विभिन्न रूप से उपस्थित हुआ था, अटपटे तौर से, परन्तु ईमानदारीपूर्वक अधिकांश जनसमुदाय के समक्ष ऐसी ही धारणा थी भले ही दासप्रथा उनके राष्ट्रीय संगठन-सम्बंधी महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में, युद्ध के रूप में, सामने आयी हो, परन्तु फिर भी यह प्रश्न उसी महत्वपूर्ण समस्या के साथ जुड़ा हुआ था। एक बड़े नवस्थापित देश में जनमत की अभिव्यक्ति के आधार पर सरकार की स्थापना करने में संयुक्त राष्ट्र अमरीका ही ने पहले-पहल शानदार प्रयत्न किया। यदि इस संकट-काल में यह सरकार असहनीय रूप से कमजोर साबित होती या उन शक्तिशाली अल्पसंख्यकों की दया पर जीती, जिन्होंने अवसर ढूंढकर विद्रोह कर दिया था, तो यह मानी हुई बात है कि मानव के विकास के सर्वत्र जो आशायुत प्रयत्न आज जारी हैं, वे एक लंबे युग तक असफल ही रहते। इस तरह की भावना अन्य अमरीकियों की अपेक्षा लिंकन में अधिक दृढ़ थी। उसने कहा—"कई दिनों से यह प्रश्न चला आ रहा है कि क्या वह सरकार जो जनता की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए शक्तिशाली नहीं है, अपने-आपको टिकाये रख सकने

में समर्थ हो सकती है?" उसके देशप्रेम का एक उल्लेखनीय पक्ष है जिसे उसके भाषणों, पत्रों में से अपार उद्धरणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, और जिसे आज भी यूरोप के कतिपय देश सराहते हैं। अपने देश और वहाँ की संस्थाओं के प्रति उसका अगाध प्रेम विलक्षण रूप से मानव-हित के महान उद्देश्य पर आधारित था जो कभी भी क्षीण नहीं हुआ। उसकी इस भावना की सब से सुन्दर झलक राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के पूर्व ही फिलाडेल्फिया के इंडिपेन्डेंस हाल में दिये गये भाषण में झलकती है। इसी भवन में स्वाधीनता की घोषणा पर हस्ताक्षर किये गये थे। लिंकन ने कहा—" मेरे हृदय में ऐसी एक भी राजनीतिक विचारधारा या भावना नहीं है जिसकी प्रेरणा मुझे स्वाधीनता के घोषणापत्र से नहीं मिली हो। मैंने कई बार उन संकटों पर गंभीर चिंतन भी किया है जो स्वाधीनता के घोषणापत्र का स्वरूप निर्धारित करते समय यहाँ एकत्रित प्रतिनिधियों को झेलने पड़े थे। स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए अधिकारियों और हमारे सैनिकों ने कितनी कठिनाइयाँ झेलीं, इस पर भी मैंने गंभीरता से विचार किया है। मैंने कई बार अपने से सवाल किया कि वह कौनसा महान उद्देश्य या सिद्धान्त है जिसने आज तक हमें एकता में पिरोये रखा। यह केवल उपनिवेशों का अपनी मातृभूमि से अलग होना ही नहीं था, यह स्वाधीनता की घोषणापत्र की भावना थी जिसने स्वतंत्रता प्रदान की, केवल इस देश के वासियों को ही नहीं, परन्तु मैं आशा करता हूँ कि सारे विश्व के भी, आज के लिए और भविष्य के लिए भी। यही वह भावना थी जिसने हमें दृढ़ विश्वास दिलाया कि समय आने पर सभी व्यक्तियों के कन्धों पर से यह (दासता का) बोझ हट जायेगा।"

[२]

पृथकता आंदोलन की प्रगति

गृहयुद्ध के कारण क्या थे इस विषय में उपरोक्त दर्शायी बातें ही पर्याप्त है। यदि ये नहीं होती तो अमरीका में गृहयुद्ध नहीं छिड़ता। अब हमें इस ओर ध्यान देना है कि कैसे इस बारूद को आग बतायी गयी। यह याद ही होगा कि राष्ट्रपति जो नवम्बर में चुना जाता है, वह आगामी चार माह तक पद-भार नहीं सम्हालता है। अतएव लिंकन के चुनाव के बाद चार माह तक कार्य-भार भूतपूर्व राष्ट्रपति बुकनन के जिम्मे रहा। भले ही यह व्यक्ति पहले दाक्षिणी हितों के पक्ष में

रहा हो फिर भी उसने कहा कि पृथक होना पूर्णतया गैरकानूनी कदम है। उसके मंत्रिमंडल में कई दक्षिणी थे जो प्राथक्य के पक्ष में थे। इनमें उल्लेखनीय व्यक्ति जोर्जिया का कोत्र था जिसने शीघ्र घोषणा की कि अपने राज्य के प्रति उसकी आस्था इस पक्ष से मेल नहीं खाती है; अतएव उसने इस्तीफा दे दिया। यद्यपि अन्य लोग जिनमें युद्ध-मंत्री भी सम्मिलित हैं, अपने पदों पर बने रहें, परन्तु वे भी बुकनान को इस दिशा में प्रभावित नहीं कर सके, और न उनकी अपने पदों पर बने रहने और पार्थक्य का समर्थन करते रहने की द्वैध नीति ही महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकी। अटर्नी जनरल ब्लेक और विदेश सचिव जनरल कास ने राष्ट्रपति द्वारा अपनी सलाह इस बारे में ठुकरा दिये जाने पर त्यागपत्र दे दिया; परन्तु वे न केवल गणराज्य के प्रति सच्चे भक्त ही रहे वरन् वे इस बारे में भी चिंतातुर थे कि सरकार को अपनी रक्षा के लिए जो भी कदम आवश्यक हों उठाने चाहिए। इस तरह यह प्रशासन, जिसकी सहानुभूति यद्यपि दक्षिणी हितों की ओर थी, तो भी गणराज्य के पक्ष में रहा। लेकिन इस समय कुछ भी करने की औपचारिक स्थिति में नहीं था। वह घटनाचक्र का अध्ययन करके अपने को उसके लिए तैयार करता रहा। फिर भी इन दिनों दोनों पक्षों के मध्य समझौता-वार्ता चली जिसमें एक विषय पर उसने अपने ऊपर गंभीर जिम्मेदारी वहन की और संभवतया इसी निर्णय को आधार मान कर बाद में उसके सारे कार्य संचलित होते रहे।

राष्ट्रपति-चुनाव ६ नवम्बर १८६० को सम्पन्न हुआ। १० नवम्बर को दक्षिणी कारोलीना राज्य धारासभा ने राज्य के पृथकरण के लिए विशेष निर्वाचित सदस्यों का सम्मेलन बुलाया। धारासभा की कार्यवाही इसी कार्य के लिए पहले से ही जारी रखी गयी थी। इस विलक्षण राज्य में जो अपने पड़ोसी राज्यों से भिन्न वैशिष्ट्य लिये था—दासों के स्वामी और गरीब गौरांग लोग, युवा और तरुण, सड़कों पर चक्कर काटनेवाले तथा सुसंस्कृत सभ्यजन, राजनीतिज्ञ और धार्मिक नेता पादरी, सभी व्यक्तियों ने धारासभा के इस कदम का उत्साहपूर्वक, परन्तु गम्भीर स्वीकृति के रूप में स्वागत किया। २० दिसम्बर के पहले सम्मेलन अपना पृथकता-अधिनियम पास नहीं कर सका, परन्तु इस बारे में कहीं कोई संदेह नहीं था कि वह क्या करने जा रहा है। प्रश्न यह था कि क्या अन्य राज्य भी कारोलीना का अनुकरण करेंगे। सभी दक्षिणी राज्यों में इस प्रश्न पर कि पृथक हुआ जाय अथवा नहीं, गम्भीर सागर-मंथन आरम्भ हो गया था। उत्तर में दक्षिणी कारोलीना के इस

क़दम को लेकर सर्वत्र यही चर्चा चल रही थी। परन्तु पृथक्‌ता का जो क़दम उठाया गया उससे सर्वत्र एक आघात-सा पहुँचा और आश्चर्य भी पैदा हुआ। यह पहले ही कहा जा चुका है कि दक्षिण अपने दावे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। यहाँ तक कि अपने पृथक होने के अधिकार को भी वे लोग नहीं छोड़ना चाहते थे। परन्तु गणराज्य छोड़ने के मसले पर वे हिचकिचा रहे थे और उनके मन में यह भी संदेह था कि क्या प्रथक होना बुद्धिमानी-भरा क़दम है। उत्तर में भी निस्संदेह गणराज्य के प्रति उनकी आस्था का स्वरूप कैसा ही क्यों न रहा हो, दासप्रथा-समस्या-निवारण-सम्बंधी मतभेदों के बावजूद लोगों में इस बारे में विभिन्न राय और मत-मतान्तर पाये जाते थे कि पृथक होनेवाले या विद्रोही राज्य के साथ क्या उचित व्यवहार करना चाहिए। कुछ सीमावर्ती राज्यों में (वे यद्यपि थोड़े-से थे जिन्होंने गृहयुद्ध में महत्वपूर्ण भाग लिया था) जहाँ उत्तरी और दक्षिणी लोग मिले-जुले थे, शोरगुल और गर्मागर्म विवादों—जो निजी और सार्वजनिक रूप के थे—के मध्य दोनों पक्ष के नेताओं ने एक शांतिपूर्ण समझौते का मार्ग ढूंढने की दिशा में हार्दिक प्रयत्न आरम्भ किये। जब काँग्रेस का अधिवेशन दिसम्बर में आरम्भ हुआ तो सीनेट और प्रतिनिधि सभा की समितियों में उनके विचार-विमर्श ने औपचारिक रूप ग्रहण कर लिया।

इसी दौरान में राष्ट्रपति का ध्यान दक्षिणी कारोलीना की समस्या के प्रति —कि संयुक्तराष्ट्र अमरीकी सरकार क्या क़दम उठाये—आकर्षित किया गया। यदि राष्ट्रपति इस अवसर पर भविष्य को ध्यान में रखते हुए सैनिक तैयारी करता, तो उससे उत्तर को काफी लाभ होता जिसके प्रति स्वयं उसकी सहानुभूति थी। परन्तु उसकी हिचकिचाहट ने इस अवसर का लाभ दक्षिण को प्रदान किया। इस दिशा में उसने कुछ भी नहीं किया। इसके अतिरिक्त यदि राष्ट्रपति इस मसले पर दक्षिण कारोलीना के सम्बंध में स्पष्ट और उचित रुख अपनाता और गणराज्य के प्रति सहानुभूतिपूर्ण क़दमों का उचित नेतृत्व भी करता तो उसका यह क़दम उत्तर में जनमत को दृढ़ बनाने में सहायक होने के साथ-साथ दक्षिण के अन्य लोगों में जो पृथकता के विरुद्ध थे, साहस बढ़ा सकता था। भले ही बाद में कई राज्य पृथक भी होते परन्तु वे दक्षिणी कारोलीना की तरह गंभीर समस्या के रूप में सामने नहीं आते। जो भी हो, पृथकता आंदोलन इस गर्वपूर्ण विश्वास के साथ जारी रहा कि दक्षिण के इस अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकती। दक्षिणवासी इस खतरे से पूरी तरह असावधान थे कि उन्होंने संयुक्तराष्ट्र सरकार को अस्वीकार करके जो गंभीर खतरा मोल लिया है

उसके क्या नतीजे निकल सकते हैं। लोग चाहे नहीं जानते थे, परन्तु इस बात को दक्षिणी नेता जफरसन डेविस जैसे लोग अच्छी तरह समझते थे। बुकनान के समक्ष यही समस्या थी—जिसे उसके द्वारा हल नहीं किये जाने पर, गंभीर स्वरूप में लिंकन को अपना पद सम्हालते ही हाथ में लेना पड़ी। हमें यह साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि दक्षिणी कारोलीना की पृथकता एक ऐसा आंदोलन नहीं था जिसे तत्काल ही कठोर व सैनिक कदम उठा कर दमन किया जा सकता था। यद्यपि उस समय पूरी सैनिक शक्ति तथा ऐसे कानून भी उपलब्ध थे जिससे हस्तक्षेप किया जा सकता था। परन्तु इसका फल यह होता कि सारा दक्षिण ही कारोलीना के पक्ष में संगठित हो जाता और उत्तर अकेला पड़ जाता जो इस समय आपसी समझौते के लिए प्रयत्नशील था। फिर भी गणराज्य सरकार के लिये यह तो संभव था ही कि वह कड़े और दमनकारी कदम न उठाते हुए भी इतना स्पष्ट कर सकती कि सरकार दक्षिणी कारोलीना में अपने अधिकारों को अंतिम दम तक पूरी शक्ति के साथ बनाये रखेगी। अमरीकी सरकार का संपर्क दक्षिणी कारोलीना से केवल, स्थानीय संघ-न्यायालय व डाकतार-विभाग तक सीमित था। संघ-न्यायालय केवल खास मामले हाथ में लेते थे और डाक-व्यवस्था से दक्षिणी कारोलीना को लाभ था; अतएव उन्होंने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया।

अतिरिक्त चुंगी कर-व्यवस्था ऐसी थी जिसके अंतर्गत बंदरगाहों पर कर लिया जाता था और कुछ किले चार्ल्सटन बंदरगाह और दक्षिणी कारोलीना में थे, जहाँ जनराज्य के कुछ सैनिक थे व थोड़ा-बहुत गोला बारूद भी था। इसी तरह के किले, जहाजी स्थल और सैनिक व गोला-बारूद के स्थान दक्षिणी अमरीका में कई स्थलों पर थे। सरकार को चाहिए था कि वह शांतिपूर्वक इस तरह का कदम उठाती जिससे राजस्व की वसूली बिना हस्तक्षेप के जारी रहती। दूसरी ओर दक्षिणी कारोलीना व दक्षिण में अन्यत्र जहाँ आवश्यक था, किलों को संभावित आक्रमणों से सुरक्षित रखने की दिशा में जरूरी कदम उठाये जाते। राष्ट्रपति बुकनन को उसके आधीन सैनिक अधिकारी लेफ्टिनेंट जनरल स्काट ने पहले ऐसे कदम उठाने का आग्रह भी किया था। यह वही अधिकारी था, जिसने तीस वर्ष पूर्व जब दक्षिणी कारोलीना ने पृथक् होने की धमकी दी, तब राष्ट्रपति जेक्सन के सैनिक आदेशों को सफलतापूर्वक लागू करने में कसर नहीं छोड़ी थी। इसके अतिरिक्त सेना के अन्य अधिकारियों मेजर अन्डरसन, जो स्वयं दक्षिणी होते हुए एक सतर्क सैनिक

था और चार्ल्सटन का किला जिसके तत्वावधान में था, तथा मंत्रिमंडल के सदस्य कास और ब्लेक ने इस दिशा में राष्ट्रपति को कदम उठाने के लिए सुझाव दिया था। उत्तर में जनमत की भी यही दृढ़ आकांक्षा थी कि इस दिशा में कदम उठाया जाय।

यदि इन किलों में सैनिकों की संख्या में समुचित पूर्ति करने तथा उन्हें रसद भेजने के अतिरिक्त इस दिशा में और आगे बढ़ा जाता, तो निश्चय ही एक उलझन-भरी कानूनी दिक्कत पैदा हो सकती थी। उस समय अटर्नी जनरल तथा प्रमुख डेमोक्रेट नेता कास और डगलस के अतिरिक्त अन्य कानून-विशेषज्ञों की भी ऐसी ही राय थी। किसी भी वकील के लिए चाहे वह अमरीकी संविधान से पूर्ण परिचित हो, इस मामले में निर्णय करना कठिन है कि कौन से कदम सरकार कानूनी तौर पर आत्मरक्षा के अंतर्गत उठा सकती थी और कौन से कदम ऐसे हो सकते थे जिन्हें दक्षिणी कारोलीना राज्य पर दबाव के रूप में माना जाता और जो गैरकानूनी करार दिये जा सकते थे। बुकनन ने इस दिशा में न तो कोई कदम ही उठाया और न अपना इरादा ही प्रकट किया। दिसम्बर के पूर्वार्ध में आरंभिक काँग्रेस अधिवेशन को उसने जो संदेश दिया उसमें स्पष्ट रूप से पृथक् होने की क्रिया को उसने गैरकानूनी ठहराया। साथ ही प्रशासन द्वारा इस मसले पर कदम उठाने में क्या-क्या कानूनी दिक्कतें हो सकती हैं उस पर उसने विस्तार से चर्चा की। इस तरह के कानूनी पचड़े से बाद में हमारा कोई सम्बंध नहीं रहेगा, क्योंकि पार्थक्य-विरोधी कदम उठाने में कौन सा कानून-संगत है और कौन सा कानून विरोधी, यह प्रश्न व्यावहारिक रूप ग्रहण करते ही स्वतः शांत हो गया। तब यही मान लिया गया कि इस समय वही किया जाय जो इन परिस्थितियों को देखते हुए न्यायपूर्ण व उचित कहा जा सके। परन्तु इस तरह के वाद-विवाद का स्वाभाविक प्रभाव लोगों पर यह हुआ कि दक्षिणी कारोलीना के मामले में हस्तक्षेप करने में एक वैधानिक अड़चन पैदा हो गयी, जिसे 'राज्य के उत्पीड़न' जैसे अस्पष्ट नाम से पुकारा जाता है। साथ ही यह भी शंका फैली कि सरकार को संभवतया इस दिशा में कदम उठाने की वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है।

लिंकन के उद्घाटन काल के पूर्व ही चार्ल्सटन किलों में एक दुर्ग, फोर्ट सम्टर की कहानी प्रसिद्ध हो गयी। यह दुर्ग एक बंदरगाह के मुहाने पर स्थित द्वीप पर था। संक्षेप में यह घटना इस प्रकार है। बुकनन को पहले ही बता दिया गया था कि यदि सरकार उन्हें अधिकार में बनाये रखना चाहती है, तो

उसे वहाँ सैनिक और युद्धपोत तत्काल भेजने चाहिए। इस अवसर पर दक्षिणी कारोलीना के वाशिंगटन में जो बचे हुए काँग्रेस सदस्य थे, उन्होंने बुकनन से भेंट करके उससे कहा कि उनका राज्य इन किलों को अपना समझता है क्योंकि वे उस राज्य की भूमि पर स्थित हैं। उन्होंने इस शर्त पर यह आश्वासन देना चाहा कि यदि वहाँ मौजूदा सैनिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया जाय और यह वचन दिया जाय कि इन दुर्गों को कुमुक (अतिरिक्त सैनिक) नहीं भेजी जायगी तो वे इन किलों पर आक्रमण नहीं करेंगे। बुकनन उन्हें किसी भी तरह वचन नहीं दे सकता था, परन्तु इसके साथ-साथ उसने अपने सहयोगी स्काट और मंत्रिमंडल के सदस्यों के अन्य प्रमुख इस अनुनय को भी ठुकरा दिया कि इन किलों को शीघ्र सैनिक व सामग्री भेजकर अधिक सशक्त बनाया जाय। उसे यह डर था कि कहीं इसे ही संघर्ष के सूत्रपात का कारण नहीं बना दिया जाय। वर्ष के अंत में मेजर अण्डरसन ने सभी किलों को आक्रमणकाल में सम्हाले जाने योग्य पूरे सैनिक नहीं होने के कारण (जैसा कि उसे आशंका थी) अपनी सारी सैन्य शक्ति सुम्टर दुर्ग में केन्द्रित कर ली और अन्य किलों को छोड़ दिया। उसके अनुसार यह दुर्ग अधिक मजबूत व सरलता से आक्रमण-कारियों के हाथों में नहीं पड़े, इस तरह का था। दक्षिणी कारोलीना के गवर्नर ने इसका विरोध करते हुए कहा कि यह कदम राष्ट्रपति ने पहले जो आश्वासन दिया था उसे भंग करने की कार्यवाही है। उसने संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सैनिक सामग्री के गोदामों और तट-कर-कार्यालयों पर कब्जा कर लिया तथा इनसे निरुक्त अधिकारियों को राज्य के नौकरों में शुमार कर लिया। इसके पूर्व दक्षिणी कारोलीना के कमिश्नर राष्ट्रपति से यह प्रार्थना करने के लिए वाशिंगटन गये थे कि इन दुर्गों को दक्षिणी कारोलीना के हाथों समर्पण कर दिया जाय और जो संपत्ति है उसकी कीमत ले ली जाय, अर्थात् अमरीकी सरकार इन दुर्गों को दक्षिणी कारोलीना के हाथों बेच दे। उन्होंने वहाँ यह घोषणा की कि अन्डरसन ने जो सेना एक स्थान पर एकत्रित करके सुरक्षात्मक सुदृढ स्थिति बना ली है यह युद्ध की कार्यवाही है और यह भी माँग की कि उसे शीघ्र वहाँ से लौट आने को कहा जाय। बुकनन यहाँ डगमगा गया, वह इस अंतिम माँग पर झुक जाने को तैयार भी हो गया। परन्तु १८६० के अंतिम दिन ब्लेक ने उस पर भारी दबाव डाला। उसके फलस्वरूप बुकनन को अपना मत बदलना पड़ा और सुम्टर दुर्ग-स्थित मेजर अण्डरसन के लिए और भी सैनिक व सैन्यसामग्री के जहाज रवाना करने का निश्चय कर लेना

पड़ा। परन्तु किले को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न पूर्ण असफल रहा क्योंकि इस कार्य के लिए जो मालवाही जहाज भेजे गये थे उन पर दक्षिणी कारोलीना ने गोलीबारी की और उन्हें वहाँ उतरने नहीं दिया, जिससे वे वापिस असहाय लौट आये। युद्ध की यह पहली कार्यवाही कुछ कारणों से अधिक उत्तेजना नहीं पैदा कर सकी। उत्तर के लोगों ने इस समय छुटकारे की साँस ली कि दक्षिणी कारोलीना की कैसी भी माँग क्यों न रही हो, बुकनन झुका नहीं। और जैसी कि उत्तर वालों की प्रवृत्ति रही—भूल जाओ और सराहना करो—उन्होंने गर्व से यह भी अनुभव किया कि राष्ट्रीय प्रशासकों में बुद्धि तो है। तत्कालीन वित्तमंत्री डिक्स ने उनकी प्रसन्नता में और भी वृद्धि कर दी जब उसने न्यू आरलेंस में कोषाधिकारियों को तार द्वारा यह आदेश भेजा—"यदि कोई व्यक्ति अमरीकी झंडे को गिराने का प्रयत्न करे तो उसे वहीं गोली से उड़ा दिया जाय।" परन्तु अण्डरसन को न तो सैनिक और न सामग्री ही लिंकन के पदग्रहण करने के समय तक मिली। दक्षिणी कारोलीना की सेना ने जो बाद में दक्षिणी संघराज्य की सेना कहलायी, सुम्टर दुर्ग पर गोलाबारी करने के लिये तोपें मुहाने पर खड़ी कर दीं।

बुकनन ने ऐसी कोई बात नहीं दर्शायी जिससे उसका स्तर भी अमरीकी महत्वपूर्ण राष्ट्रपतियों के अनुकूल समझा जाय। परन्तु उस पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि उसने जानबूझ कर गणराज्य के साथ विश्वासघात किया। यह मानी हुई बात है कि वह सरल और सच्चा व्यक्ति था और इतना धर्मभीरु था कि वह राज्य के किसी भी गंभीर मसले पर निर्णय करने के पूर्व भगवान से प्रार्थना किया करता था।

कंसास के बारे में पहले जो कदम उसने उठाये थे उससे हमारी शंकाएँ पूर्ण निर्मूल हो जाती हैं। परन्तु उस समय जो निर्णय उसने किया था वह दक्षिणी सीनेट-सदस्यों के एक दल से सलाह लेकर किया गया था। अब वह इस सहायता से भी वंचित हो गया। उसमें अब केवल इतनी ही शक्ति शेष रह गयी थी कि वह दूसरी सलाह को हठपूर्वक टाल दे। कुछ लोगों का यह कहना था कि अब उसका एक ही लक्ष्य रह गया था—वह चाहता था कि संघर्ष उसके समय में नहीं छिड़ कर उसके उत्तराधिकारी लिंकन के समय में छिड़े। परन्तु इस धारणा के कारण भी 'कुख्यात' और 'संकट में डालने वाला' विशेषण उसके लिए शोभित नहीं होते। वह यह जानता था कि जो भी कदम उसने उठाये हैं अथवा उठायेगा, उससे उत्तेजना भड़की है और आगे भी

भड़कती रहेगी, अतएव वह निष्क्रिय होकर यह सोचने लगा कि उत्तेजना भड़काने के बजाय उसके चुपचाप रहने से समझौते व सही मार्ग पर लाने के जो संभावित प्रयत्न हैं, वे सफल हो सकेंगे। उसकी यह आशा नितान्त भ्रमजनक थी। परन्तु लिंकन और उसके मंत्रिमंडल के समक्ष भी जब बुकनन द्वारा अवहेलना किये जाने कारण यह समस्या भयंकर रूप में सामने आयी, तो उस समय वे लोग भी इसी तरह की आशा के मायाजाल में थे। वे भी इसी मूर्खता के चंगुल में पड़े रहे। बुकनन को इस दिशा में बहुत अच्छी सलाह प्राप्त हो सकी थी जो लिंकन को नहीं मिल पायी, परन्तु इसीलिए इस सनकी वृद्ध पर तानेकशी करना तथा लिंकन पर किसी तरह की अवहेलना का दोषारोपण न करना अनुचित है। जब हम इस मामले पर पुनः दृष्टि डालते हैं, तो यह साफ नज़र आता है कि दोनों ही राष्ट्रपति हिचकिचा रहे थे। जिस समय लिंकन ने राष्ट्रपति-पद सम्हाला, स्थिति कुछ बदल गयी थी। जब हम लिंकन के प्रशासन की धीरे काम करने की प्रवृत्तियों तथा उससे जनता पर जो प्रभाव पड़ता था, उसके परिमाणों का अध्ययन करेंगे तो हमें बुकनन की झिझक और लिंकन की धीमी गति का अंतर ज्ञात हो सकेगा। बुकनन इस प्रतीक्षा में रहा कि उसे कदम नहीं उठाना पड़े और लिंकन दृढ़ कदम उठाने की बाट तब तक देख रहा था, जब तक उसे अपने मार्ग में पूरा-पूरा प्रकाश प्राप्त हो जाय, अर्थात् वह इस मामले को किसी तरह की दुविधा में नहीं छोड़ना चाहता था।

नवम्बर १८६० से कई लोगों ने 'दक्षिण की इन शिकायतों' को मिटाने के लिए समझौते के प्रयत्न किये, जिससे दूसरे दक्षिणी राज्य भी दक्षिण कारोलीना का मार्ग नहीं अपनायें। उत्तर दासप्रथा के पक्ष में नहीं था और दक्षिण में उत्तर की इस अस्वीकृति के कारण असंतोष था, जो पिछले दिनों अधिक बढ़ गया। इसके अलावा संघर्ष की पृष्ठभूमि मौजूदा राज्यों तथा भविष्य में प्राप्त राष्ट्रीय सरकार के भूभागों में दासप्रथा की स्थिति के बारे में थी। यह झगड़ा इसलिए उठ खड़ा हुआ कि इस बार जो राष्ट्रपति चुना गया था, उसने घोषणा की थी कि वह दासप्रथा को आगे नहीं बढ़ने देगा और इस दिशा में अपने अधिकारों का पूरा प्रयोग करेगा। हमें अब अपना ध्यान भी इसी ओर केन्द्रित करना है। इस दौरान में दूसरे कई मसले भी सामने आये। उत्तर के कई राज्यों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कानून थे, जिनका उद्देश्य भागे हुए दासों को पुनः चंगुल में नहीं फँसने देने के लिए सरकार के कानून को इस दिशा में निरर्थक करना था। दक्षिणी नेता अलेग्जेंडर

स्टेफन्स ने इस ओर ध्यान दिया। स्टेफन्स पृथक होने के विरोध में था। इस ओर ध्यान दिलाने का उसका उद्देश्य यह था कि इसे ठीक कर देने पर दक्षिण की जनता का ध्यान असंतोष को शांतिपूर्ण हल करने की दिशा में अग्रसर हो जाता। लिंकन ने पहले ही कहा था कि भगोड़े दास-सम्बन्धी कानून भले ही कुछ न्यायपूर्ण और उचित बनाये जायें, परन्तु वे लागू अवश्य होने चाहिये। उसने पुनः यह स्पष्ट कर दिया कि वह सोचता है कि इन व्यक्तिगत स्वतंत्रता-कानूनों में संशोधन आवश्यक है, परन्तु राज्य-धारासभाओं को राष्ट्रपति के रूप में यह बात वह कैसे सुझा सकता है। यह कार्य राज्य-क्षेत्रों के अंतर्गत था, राष्ट्रीय सरकार के अंतर्गत नहीं। इस पर रिपब्लिकन दल वाले सहमत हो गये। कुछ सम्बन्धित राज्य इस दिशा में कानून का संशोधन भी करने लगे। यदि दक्षिण में असंतोष का यही एक प्रमुख कारण होता तो वह अब दूर हो जाना चाहिए था। रिपब्लिकन नेताओं ने, विशेषकर लिंकन ने, यहाँ तक आगे बढ़कर समझौते का अवसर दिया कि वे संविधान में इस आशय का संशोधन प्रस्तुत करने को तैयार हो गये, जिससे दक्षिण की दासप्रथा का जो मौजूदा स्वरूप था उसमें किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं किया जा सके। परन्तु वह बार-बार दासप्रथा-सम्बंधी अपने मतों की पुनः घोषणा करने को भी तैयार नहीं था। उसने इस तरह का कदम उठाना इसीलिए अस्वीकार कर दिया। उसके विचार 'उन सब लोगों के लिए खुले थे जो उन्हें समझना चाहते थे।' उसने निजी तौर पर एक को लिखा—"दक्षिण के 'भले आदमियों' के लिए—मेरी वहाँ के अधिकांश लोगों के बारे में यही धारणा है—मुझे इस बात को सैकड़ों बार दुहराने में भी कहीं कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मेरा पाला उत्तर और दक्षिण के बुरे व्यक्तियों से पड़ा है, जो चाहते हैं कि कोई नयी चीज पैदा करके उससे नया जाल फैलायें। ये ऐसे आदमी हैं जो मुझे धमकाना चाहते हैं, या कम-से-कम मुझ पर यह लांछन लगाना चाहते हैं कि मैं कायर और डरपोक हूँ।" तथापि उसने विवाद को अधिक से अधिक मिटाने के लिए निजी तौर पर प्रयत्न जारी रखे।

दिसम्बर १८६० में तेरह सीनेट सदस्यों की एक समिति ने केन्टकी के सदस्य क्रिटेन्डन द्वारा प्रस्तुत समझौते की योजना को आधार बनाकर इस मसले को सुलझाने की दिशा में गंभीरतापूर्वक प्रयत्न आरंभ किया। इस गंभीर प्रयत्न को सभी लोग आशाभरी नज़रों से देख रहे थे। प्रारंभ में ही सीमा सम्बंधी प्रश्न पर व्यवधान पैदा हो गया और बातचीत भंग हो गयी। इस वार्ता के भंग

होने की जिम्मेदारी भी—चाहे वह भली हो अथवा बुरी—लिंकन पर थोपी जाती है, क्योंकि उसने इसी तरह की सलाह दी थी। क्रिटेन्डन का पहला प्रस्ताव यह था कि मिसूरी समझौते के अनुसार जहाँ तक सीमानिर्धारण किया गया है, उसमें ल्यूसीयाना के अतिरिक्त ३६°-३०° अक्षांश के उत्तर में सभी राज्यों में दासप्रथा पर प्रतिबंध लगाया जाय और उसके नीचे के क्षेत्रों में दासप्रथा जारी रहे। इनमें वे भी क्षेत्र शामिल होंगे जो बाद में प्राप्त किये जायेंगे। इस तरह का संशोधन संविधान में प्रस्तुत किये जाने की योजना भी थी। क्रिटेन्डन ने यह भी सुझाया कि यदि नया राज्य कोई बनता भी है तो उसे इस मसले पर स्वयं-निर्णय की आजादी होगी। परन्तु बातचीत इस आखिरी सीमा तक नहीं पहुँची। सीमा-क्षेत्रों के प्रस्ताव पर ऐसा लगता था कि रिपब्लिकन दल उसे मानने वाला था और ऐसी स्थिति में दक्षिण भी संभवतया उसे मान लेता। न्यूयार्क व अन्य स्थानों के व्यवसायी जगत में शांति बनाये रखने की तीव्र इच्छा थी। इसका प्रभाव दल व्यवस्थापकों पर भी पड़ा जिनमें सेवार्ड भी एक था, क्योंकि वह भी इन लोगों के घनिष्ठ संपर्क में था।

देहातों में सिद्धान्तों पर अड़े रहने की भावना प्रबल थी तो दूसरी ओर शहरों में समझौते की भावना अधिक थी; परन्तु उस समय ये बातें अधिक प्रचार में नहीं आयीं और ऐसा स्पष्ट लगता था कि समझौते की पूरी संभावना है। सेवार्ड के मित्रों और सहयोगियों ने इस दिशा में जो विचार प्रकट किये, उनसे माना जा सकता है कि सेवार्ड स्वयं इस समझौते को स्वीकार करने के पक्ष में था। तभी घटनाचक्र ने पलटा खाया। इन्हीं दिनों सेवार्ड को लिंकन ने मंत्रिमंडल में विदेशमंत्री-पद के लिए आमन्त्रित किया। यह अवसर ऐसा था जिसके अनुसार सेवार्ड लिंकन व सारे राष्ट्र को अपने हाथ में कर सकता था। परन्तु सेवार्ड यह जानता था कि हृदय से इसे स्वीकार करने पर उसे सदा के लिए लिंकन को अपना नेता मानना पड़ेगा और वह उससे इस रूप में अलग भी नहीं हो सकेगा। सेवार्ड ने यह स्वीकार कर लिया। सेवार्ड के चतुर मित्र राजनीतिज्ञ थर्लो वीड ने स्प्रिंगफील्ड जा कर सेवार्ड की ओर से लिंकन से भेंट की। वीड समझौते के बारे में लिंकन के दृष्टिकोण लिखित रूप में लेकर आया और तब सेवार्ड ने समझौते को समर्थन देने से हाथ खींच लिया। यह भी स्वाभाविक ही था कि उग्र रिपब्लिकनों ने भी समझौते का पक्ष नहीं लिया—इस दशा में तेरह व्यक्तियों की वह समिति किसी भी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ रही।

यहाँ लिंकन के दृष्टिकोण को बार-बार दुहराने की आवश्यकता नहीं है। उसकी नीति का आधार एक ही सिद्धान्त था, जिसे उसने चुनाव के बाद अपने कई मित्रों को पत्रों में विश्लेषण करके इस ओर दृढ़ होने को कहा। उसने अपने मित्रों को सुझाया कि इस मसले पर वे यदि अधिक झुके तो दक्षिण का दासप्रथा-वृद्धि-आंदोलन पूरे वेग से फट पड़ेगा और पड़ौसी राज्यों में छा जायेगा। उस हालत में अब तक रिपब्लिकन दल ने दासप्रथा-विरोधी सिद्धान्त को अपना कर इस दिशा में जो भी काम किये हैं, वे सब निरर्थक हो जायेंगे। लिंकन अधिक से अधिक मेक्सिको के मामले में झुकने को तैयार था क्योंकि उसके अनुसार मेक्सिको का मामला पहले से ही इसी दिशा में निर्णीत हो चुका था। लिंकन ने दक्षिणी नेताओं, जिनमें कई उसके मित्र भी थे, उत्तरी कारोलीना के गिल्मर (जिसे वह मंत्रिमंडल में पद देने को तैयार था) और स्टेफेन्स को लिखा कि इस दिशा में उसका अपना क्या सिद्धान्त है और वह उस सिद्धान्त से जरा भी हटने को तैयार नहीं है। २२ दिसम्बर को न्यूयार्क ट्रिब्यून ने लिखा—"रिपब्लिकन रंगमंच पर लिंकन जिस प्रकार २३ मई को निष्कपट और ईमानदार व्यक्ति के रूप में खड़ा था, उसी तरह आज भी खड़ा है।" लिंकन से जो लिखित सलाह वीड लाया था, उसमें उसने यही बात किंचित् विस्तार से अवश्य कही होगी। यदि लिंकन यह दृष्टिकोण नहीं अपनाता, तो भी दूसरे कई लोग, जिनमें ओहियो व आयोवा के सीनेट सदस्य वेड और ग्राइम्स भी थे, यही रुख अपनाते और वे समझौते को नष्ट कर देने में समर्थ थे। तथापि लिंकन ने इस समझौते को उस समय भंग किया जब कि इसे स्वीकार किये जाने की संभावना थी और संभवतया इसे भंग करने के कारण ही गृहयुद्ध का सूत्रपात हुआ। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे गृहयुद्ध छिड़ने की आशंका निश्चित रूप से थी। संभवतया उसने इस दिशा में किसी भी तरह की स्पष्ट घोषणा करना टाल दिया, परन्तु उसने कोई संकटसूचक चेतावनी की भावना भी प्रकट नहीं की। उसने इस अवसर पर अपने एक मित्र को निजी तौर पर लिखा—"मैं अपने मन में ऐसी धारणा भी नहीं बना सकता कि दक्षिणी संघराज्य सरकार को उखाड़ फेंकने की योजना बना रहा है।" उसे यदि हृदय से ऐसा विश्वास भी हो जाता तो भी वह उस धातु का बना हुआ था कि इस अवसर पर किसी न किसी रूप में दक्षिण से समझौता करने के लिये कभी चिन्ता नहीं व्यक्त करता। इसके विपरीत हम उसकी भावनाओं से अनुमान लगा सकते हैं कि वह अधिक दृढ़ता के साथ कदम उठाता। हम

उसके उस भाषण की गंभीरता को, जिसमें उसने कहा था कि 'एक घर अपने में ही खंड-खंड होकर टिका नहीं रह सकता' और जिस पर उसके शब्द और कार्य आधारित थे बार-बार नहीं दुहरा सकते। इस तरह का अनुमान नहीं करने पर भी यदि उसे यह ज्ञात होता कि कितना गंभीर संकट सामने है तो चाहे कितनी ही भयंकर स्थिति क्यों न होती वह उसके मुकाबले के लिये तैयार होता। निस्संदेह उसके कंधों पर भारी जिम्मेदारी थी। परन्तु हमें यह देखकर दुःख होता है कि कई प्रतिष्ठित इतिहासकार जो दासप्रथा से घृणा करते थे; वे भी आज आश्चर्य प्रकट करने लगे हैं कि उसने जो किया, क्या वह सही था। यदि वह अपने दल के राजनीतिक रंगमंच पर इस तरह नहीं खड़ा होता जैसे वह मई में दृढ़ता से खड़ा था, और यदि वह यह चाहता कि अन्य देशों के उन राजनीतिज्ञों की श्रेणी में अपना नाम लिखा ले जिनका काम ही यही है कि कड़े-से-कड़े शब्द केवल इसीलिए बोले जायें कि समय पर उनसे पीछे हटा जा सके और उन वचनों को भंग किया जा सके, तो फिर उस स्थिति में संभवतया वह अधिक रक्तपात को टाल सकता। परन्तु वह इससे अमरीका को ऐसे राष्ट्र के रूप में नहीं बनाये रख सकता जिसका नागरिक बनना आज भी किसी भले व्यक्ति के लिये गौरवास्पद है।

१८६० में 'समझौता' पूर्णतया निस्सार हो गया था, और अब इस दिशा में जो प्रयत्न किये जा रहे थे उनकी जाँच करना निरर्थक है। उस समय एक-के-बाद-एक दक्षिण के राज्य पृथक होने की सोच रहे थे। जनवरी १८६१ में इस दिशा में एक मनोरंजक प्रस्ताव रखा गया कि क्रिटेन्डन ने जो समझौते की शर्तें रखी हैं, उन पर समूचे अमरीकी राष्ट्र की जनता का मत लिया जाय। यह स्वीकार नहीं किया गया। सेवार्ड के बारे में लोगों की यह धारणा थी कि वह अब कैसा भी तथा कहीं से भी कोई समझौता-प्रस्ताव क्यों नहीं आये, उसका साथ देगा—परन्तु यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई।

बाद में उसने सच्चाई के साथ कहा कि यह मनोरंजक प्रस्ताव "अवैधानिक और निरर्थक" है। समझौता निरर्थक इस माने में भी होता कि ऐसा समझौता संभवतया उन लोगों के बहुमत पर आधारित होता जो सीमा-क्षेत्रों के राज्यवासी होते, अथवा ऐसे ही अन्यत्र बसने वाले लोगों की राय पर निर्भर करता जो युद्ध से डर कर सद्भावना बनाये रखने के पक्ष में अवश्य होते, परन्तु इस समय जो प्रमुख प्रश्न थे उनके बारे में वे स्पष्ट राय नहीं प्रकट कर पाते। इस प्रस्ताव पर मत लेने के फलस्वरूप उत्तरी राज्यों का स्थानीय बहुमत

(जनता) और दक्षिणी राज्यों के स्थानीय जनमत (जनता) में जो कभी इस प्रश्न पर एकमत नहीं थे और अधिक गहरा मतभेद पैदा हो जाता।

वह संविधान की धारणा के भी विरुद्ध था। एक बड़े देश में जहाँ विभिन्न हितों और विचारों के लोग रहते हों वे किसी भी मसले पर गंभीरतापूर्वक और धीरे-धीरे अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। परन्तु वे संगठित होकर सोच कर किसी भी संकटकाल में तत्काल निर्णय नहीं ले सकते हैं। कुछ ऐसे अपवाद हो सकते हैं, जब किसी स्पष्ट प्रश्न पर जनता की प्रबल आकांक्षा के अंतर्गत लिया गया जनमत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता हो। उत्तरदायी सरकार का जो तंत्र है—चाहे वह कितना ही दोषपूर्ण क्यों न हो—वह एक ऐसा तंत्र है जिससे जनता अपने पर शासन कर सकती है। वे नहीं चाहते हैं कि ऐसा शासन-तंत्र प्रशासन की प्रक्रिया से रहित हो जाय। इसके अतिरिक्त गंभीर संकटकाल में यदि जनता द्वारा शासन के लिए चुने गये प्रतिनिधि ही अपनी जिम्मेदारी पुनः मतदाताओं के कन्धे पर डाल दें तो यह कार्य लोकतंत्रात्मक सरकार की भावना के पूर्ण प्रतिकूल होगा। इस 'समझौते' के जनक किस तरह की कार्यवाही अपनाने की सलाह दे रहे थे उसको भी जरा अच्छी तरह देख लिया जाय। सामान्य जन के समक्ष एक राजनीतिज्ञ आता है जो यह वक्तव्य देता है कि वह कुछ सिद्धान्तों के आधार पर काम करेगा, और तब वह नागरिक अपने को प्राप्त अधिकार उस राजनीतिज्ञ को प्रदान करके अपने नागरिक कर्त्तव्य को पूरा करता है। उसके बाद उस राजनीतिज्ञ के लिए वह समय आता है जब उन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना है। इस दिशा में जो अब तक छिपा हुआ विरोध था वह अधिक सतर्क और सबल रूप में सामने आने लगता है। इसलिए वह राजनीतिज्ञ घबरा कर उस सामान्य नागरिक से कहना चाहता है, "यह मामला मैंने जैसा पहले सोचा था उससे अधिक कठिन है और यदि मैंने जैसा पहले कहा था उसी के अनुसार काम करना पड़ा तो जो जिम्मेदारी पहले तुमसे लेकर मैंने वहन की थी वह तुम्हें ग्रहण करनी होगी।" सीधी-सी बात है कि इस पर वह सामान्य नागरिक पुनः वह जिम्मेदारी उठाना कभी स्वीकार नहीं करेगा परन्तु उसे वापिस जो जिम्मेदारी लौटायी गयी है उसके लिये उस राजनीतिज्ञ के प्रति वह आभार भी प्रदर्शित नहीं करेगा, अथवा यदि उसे इस अनिर्णीत प्रक्रिया में भाग लेने को बाध्य भी किया गया तो वह इससे खुश नहीं होगा।

हम यदि इस संकटकाल में उत्तरी राज्यों में जो भावना प्रचलित थी उसे

विशिष्ट अवसर पर आँकने का प्रयत्न करें तो पता चलेगा कि बहुत-से व्यक्ति छः माह से संभवतया इसी तरह का विचार कर रहे थे। संकटकाल के पूर्वार्द्ध में दासप्रथा के कट्टर विरोधी भी दक्षिण के अलग हो जाने के पक्ष में थे। 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' के होरास ग्रीली के शब्दों में इन लोगों ने इसी आशय की घोषणा भी की, "वे उस गणराज्य के नागरिक नहीं बनना चाहते जिसका एक भूभाग दूसरे भूभाग के साथ संगीनों द्वारा जोड़ा गया हो।" परन्तु शीघ्र ही यह हवा भी जाती रही और वे लोग भी लिंकन की ही तरह इस दिशा में सोचने लगे कि क्या राज्यों के साथ गणराज्य से पृथकता के बारे में ऐसा कोई समझौता संभव है, जिससे चिरकाल तक शांति बनी रहे, जब कि इस समझौते के अन्तर्गत ऐसे कई मसले थे जिनका आपसी हल कठिन था। कई बड़े-बड़े शहरों में समृद्धिशाली व्यवसायियों में 'समझौते' को ठुकराने के विरोधस्वरूप तीव्र रोष की लहर फट पड़ी। यहाँ तक कहा जाता है कि बोस्टन जैसे नगर में भी ब्रिटन स्ट्रीट के प्रख्यात प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने जान ब्राउन की पुण्यतिथि पर आयोजित सभा को कर भंग दिया। उस समय वहाँ के गंभीर व्यक्तियों का यह मत था कि इस तरह की सभा करना उत्पात व उपद्रव है। उत्तरी समाज में समझौते की स्वाभाविक व प्रबल लहरें हिलोरें ले रही थी। इस जन-भावना के कारण तत्कालीन पर्यवेक्षक और बाद के इतिहासकार भी सरलता से भुलावे में पड़ गये। इससे पत्रकारों में भी अस्थिरता की भावना आना स्वाभाविक था। उस क्षेत्र में तो यह प्रभाव वैसे भी स्वाभाविक था, जहाँ लोग उठते-बैठते इसी पर लगातार चर्चा करते रहते हों। विचारों की इस अस्थिरता का प्रभाव उस महान जनसमुदाय पर नहीं पड़ा-जो शांति से अपना काम कर रहा था। हमें विश्वास है कि लिंकन ने जो नीति ग्रहण की उसके पक्ष में उसे बहुत से लोगों का प्रबल समर्थन प्राप्त था, इसे हमें नहीं भूल जाना चाहिए और यह भी नहीं मान लेना है कि उपर्युक्त भावना निरंतर ऐसी ही बनी रही। इसके विपरीत जिस तरह का संकट सामने था, उसी में यह विशेषता निहित थी कि भावनाएँ स्पष्ट न होकर दोनों पक्षों में अस्थिर बनी रहीं। यदि हम उत्तर की तत्कालीन स्थिति का अध्ययन युद्ध के अंत तक नहीं करेंगे तो लिंकन की इस सारी कहानी का महत्व ही मारा जायेगा। उस समय उत्तर में फूट, हिचकिचाहट और तत्काल प्रतिक्रिया की भावनाएं बलवती थीं। यदि इस समय कोई संकुचित निरंकुश नेता पूर्ण कायरता की नीति अंगीकार कर पीछे की ओर भागने को (दक्षिण को सभी अधिकार सौंपने को) तैयार होता तो उसके हजारों उत्साही अनुयायी हो जाते।

बाद में चलते ही इन लोगों को अपनी भूल पर पछताना भी पड़ता, परन्तु तब तक पासा ही पलट जाता।

उत्तर को अपने सही मार्ग पर चलने के लिए इस समय एक ऐसे नेता की आवश्यकता थी जो उन्हें उतावला नहीं बनाता, और न वह बारम्बार मुड़कर देखता कि इस मार्ग पर उसके साथ लोग हैं या नहीं; परन्तु अनेक बाधाओं को चीरता हुआ वह आगे बढ़ता जाता और इस दिशा में अपने सिद्धान्तों से मार्ग-दर्शन ग्रहण करता रहता। ये सिद्धान्त न्याय व सद्भावनाओं पर आधारित होते जिन्हें अन्ततोगत्वा अधिक-से-अधिक व्यक्ति निश्चित नतीजे से स्वीकार करते। लिंकन ऐसा ही नेता था।

जब हम दक्षिण की ओर ध्यान देते हैं तो यह देखते हैं कि राज्यों का पृथक्करण-आन्दोलन दिनों-दिन जोर पकड़ता जा रहा था। यह गति निर्बाध नहीं थी, कहीं-कहीं कड़ा विरोध भी हो रहा था। केवल कुछ राज्यों को छोड़कर हमें वहाँ अधिक स्पष्ट व अधिक प्रचलित जन-भावना दृष्टिगोचर होगी। कुछ समय के लिए हम सीमा-स्थित गुलाम राज्य मेरीलैंड, वर्जीनिया, केन्टकी और मिसूरी को छोड़ देते हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक का अपना पृथक एवं महत्वपूर्ण इतिहास है। डेलावार यथार्थ में उत्तर का ही अंग था, टेनेसी में विचित्र स्थिति थी और इस मामले में टेनेसी की भी अपनी मनोरंजक कहानी है, परन्तु वह दूसरी कहानी है। इसके अतिरिक्त वर्जीनिया के पश्चिम तथा केन्टकी के पूर्व में होता हुआ सुदूर दक्षिण में अलाबामा के उत्तरी भाग तक फैला पहाड़ी क्षेत्र था। दक्षिण ने एक गलत सिद्धान्त को लेकर जिस तरह की शूरवीरता का प्रदर्शन किया उसके रोमांचक चित्र को देखते मात्र से ही कई लोग यहाँ तक सोचने को तैयार हो जायेंगे कि जिस दक्षिण को वहाँ के राजनीतिज्ञों ने बहका कर, चालाकी से उसे अपनी ही मूर्खता के कारण फँसा दिया, वह इस मूर्खता के दलदल से मुक्त भी हो जाता यदि उत्तर और सरकार इस दिशा में अधिक धैर्य और पूर्ण शान्ति से काम लेते। इस दृष्टिकोण के पक्ष में दक्षिण में प्रबल विरोधात्मक विचारधारा के उदाहरण दिये जाते हैं। परन्तु ऐसे उदाहरण इस पहाड़ी क्षेत्र के, या निर्धन और थोड़ी-बहुत सम्पत्ति वाली जनता जो न्यू ऑरलियन्स व मिसीसिपी के व्यापारिक क्षेत्र में निवास करती है, उसके हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण राज्य (दक्षिणी कैरोलीना के अतिरिक्त) संगठित रूप में हमारे सामने आते हैं जहाँ दक्षिणी नीति पर वाद-विवाद भी किये जाते, परन्तु वह केवल उस नीति की क्रियान्विति, उसका

समय और कहाँ तक उसे लागू करना चाहिए, यहीं तक सीमित थे। दक्षिण की नीति की सफलता के लिए तीन प्रमुख शक्तियाँ काम कर रही थीं। एक तो अभिजात वर्ग तथा उनसे सम्बन्धित लोग, जो अपने निहित स्वार्थों के कारण चिंतित और सजग हो गये थे। दूसरे वर्ग में वे सभी गौरवर्णी गरीब व्यक्ति थे जिनको भले ही आर्थिक हानि-लाभ इससे कुछ नहीं होता था, वे केवल मात्र गोरे लोगों की सर्वश्रेष्ठ होने की भावना के कारण इस संघर्ष में थे। ऐसे लोगों की संख्या भी भारी तादाद में थी। तीसरा वह बुद्धिजीवी वर्ग था, जिनमें पादरीगण, धार्मिक गिरजाघर व इनसे प्रभावित लोग थे। इन सभी वर्गों की एक मत से मान्यता थी कि दासप्रथा उचित है और उस पर किये जाने वाले सभी आक्रमण निंदनीय हैं। दक्षिणी राज्यों को गणराज्य से पृथक् होकर नया संघराज्य बनाने का अधिकार है। वे यह कदम उचित समझ कर उसी स्थिति में उठा सकते हैं जब वे यह सोच लें कि वह समय आ गया है और गणराज्य में उनके हित सुरक्षित नहीं हैं। निस्संदेह ऐसे कई महत्वपूर्ण लोग रहे होंगे, जिन्होंने इस मसले पर पहले से ही विचार-विमर्श करके निष्कर्ष निकाला होगा। इन राजनैतिक नेताओं ने इस दिशा में आपस में सलाह करके निर्णय अवश्य लिया होगा परन्तु अब स्थिति यह पैदा हो गयी थी कि नेताओं के हाथों से बाजी निकल कर उनके अनुयायियों के हाथ में चली गयी थी जो इनसे भी आगे बढ़ चुके थे। इस विचारधारा के प्रमुख नेता जफर्सन डेविस ने अपने को इसी स्थिति में पाया। वह पृथकता के मामले को आगे टालने के लिये चिंतित होकर लोगों से विचार-विमर्श में संलग्न था और सीनेट से विदा लेने के पूर्व उसने कई रातें भगवान से प्रार्थना करने में गुजारीं। सीनेट में उसने सद्भावनापूर्ण व प्रतिष्ठाजनक भाषण दिया। किसी भी व्यक्ति के हृदय में गणराज्य के प्रति भक्ति की भावना यदि थोड़ी-बहुत भी शेष रही होगी तो उसे महीनों से जारी इस विवाद में मुश्किल से ही कहीं स्थान मिल पाया होगा और शायद ही किसी ने इसे समझने की तत्परता दिखायी। गणराज्य से वास्तविक पृथक्करण के विरुद्ध उल्लेखनीय रुख जार्जिया के स्टेफन्स ने लिया। वह इस पर दृढ़ था और उसने पृथक होने का स्पष्टता से विरोध भी किया; उसने एक ही बात पर ज़ोर दिया कि पृथक्करण का समय अभी नहीं आया है। यह कहा जाता है कि वहाँ भाषण और मतदान की पूरी छूट नहीं थी और यह सर्वथा असम्भव भी नहीं है कि उनके अधिकार में कभी भी हस्तक्षेप न किया जाता रहा हो। परन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है जिससे इस बात

की पूर्ण पुष्टि की जा सके। यह दक्षिण के सामान्य एवं प्रतिष्ठाजनक व्यवहार के अनुकूल ही थी कि नये संघराज्य के उपराष्ट्रपति के लिए उन्होंने स्टेफन्स को चुना जो वास्तविक रूप से गणराज्य से पृथक होने का-विरोधी था।

फरवरी १८६१ तक मिसिसीपी, फ्लोरिड़ा, अलाबामा, जोर्जिया और ल्युशियाना राज्यों ने दक्षिण कारोलीना का अनुकरण करते हुए पृथकता-सम्बंधी अध्यादेश पारित कर लिये। चार फरवरी को इन राज्यों के प्रतिनिधियों की एक बैठक नये संघराज्य को जन्म देने के लिए मोन्टगुमरी नाम के स्थान पर आयोजित की गयी। टेक्सास में भले ही वहाँ के गवर्नर हस्टन ने पृथकता-विरोधी कड़ा रुख अपनाया, परन्तु राज्य में इस तरह का अध्यादेश पारित करने की तैयारी थी। वरजीनिया और उत्तरी कारोलीना राज्य, जहाँ कपास की खेती प्रमुख है तथा उनके निकटवर्ती पड़ौसी सीमान्त राज्य टेनेसी आरकन्सास, राष्ट्रपति लिंकन के उद्‌घाटनकाल तथा युद्ध छिड़ने के समय तक गणराज्य से पृथक नहीं हुए थे। परन्तु वरजीनिया, टेनेसी और उत्तरी कारोलीना की स्थिति के बारे में कहीं कोई संदेह नहीं था। वरजीनिया ने अमरीकी गणराज्य के निर्माण में ऐतिहासिक गौरव प्राप्त किया था, और दासता के प्रति उसकी रुचि अन्य दक्षिणी राज्यों की तरह नहीं थी; फिर भी दक्षिण के साथ उसका घनिष्ठ सामाजिक सम्पर्क था। इस राज्य ने तथा अन्य पड़ौसी राज्यों ने भी एकता बनाये रखने की दिशा में प्रयत्न भी किये परन्तु वे निष्फल रहे। उन्हें यह आशा थी कि जो राज्य विलग हो गये हैं, वे वापिस गणराज्य में मिल जायेंगे। इस दिशा में चार फरवरी को वरजीनिया ने वाशिंगटन में एक शांति-सम्मेलन आयोजित किया जिसमें २१ राज्यों ने भाग लिया। इसकी अध्यक्षता भूतपूर्व राष्ट्रपति टेलर ने की। वरजीनिया ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि समझौते के लिए पहली शर्त यह रहेगी कि राज्यों के विलग होने के अधिकार को स्वीकार किया जाय।

मोंटगुमरी में पृथक् हुए राज्यों की 'कांग्रेस' की बैठक हुई। स्टेफन्स के शब्दों में "यह काँग्रेस एक ऐसा संगठन था जिसमें अभिजातवर्गीय, गंभीर, प्रतिष्ठित व विद्वान व्यक्ति थे। ऐसा अनुदार विचारधारा का संगठन यह था, जैसा मैंने पहले कभी भी नहीं देखा था।" इस संगठन में उत्तेजक प्रचार करने वाले दक्षिण राजनीतिज्ञ नहीं बुलाये गये थे। अमरीकी संविधान के समान ही एक अस्थायी संविधान इस 'काँग्रेस' ने स्वीकार किया। जफर्सन डेविस को जो सीनेट से मुक्त होकर अपने खेतों पर आराम कर रहा था, राष्ट्रपति-

पद ग्रहण करने के लिए बुलाया गया और स्टेफन्स को उपराष्ट्रपति बनाया गया। जो प्रतिनिधि राज्यों से आये थे वे इस 'काँग्रेस' के औपचारिक सदस्य बनकर नियमित रूप से इसकी बैठकों में भाग लेने लगे। इन लोगों में ऐसे बहुत से व्यक्ति भी थे जिन्होंने दास-व्यापार को पुनः जारी करने पर व्यापक जोर दिया था, परन्तु इस अवसर पर उन्होंने अपने संविधान में इस आशय की धारा रखी कि दास-व्यापार पर प्रतिबंध जारी रहे। यह कदम संभवतया उन्होंने अपनी परम्परागत भावनाओं के अनुसार अथवा विश्व-राजनीति की निगाहों में अपने को श्रेष्ठ ठहराने के दृष्टिकोण से ही उठाया होगा। जब धारासभा के रूप में इस दिशा में जो दंडनीय कानून प्रस्तुत किया गया, तब उसे अधकचरा होने के कारण राष्ट्रपति जफ़र्सन डेविस ने वापिस यह कह कर लौटा दिया कि इसकी कमियाँ दूर करके और अधिक स्पष्ट व संतोषजनक रूप में रखा जाय। इस काँग्रेस के उद्घाटन-अवसर पर जफ़र्सन डेविस ने जो भाषण दिया वह निहित स्वार्थों का समर्थक तथा अविश्वासपूर्ण था। अमरीकी राज-नीति के उस संकटकाल में जो विचारधारा प्रचलित थी वह इस भाषण में स्पष्ट झलक रही थी। भले ही यह भाषण उल्लेखहीन था फिर भी इसमें दासप्रथा के बारे में एक भी शब्द नहीं था। भाषण में इसी बात को दुहराया गया, "शांति प्राप्त करने के सभी अवसर समाप्त हो जाने तथा दूसरों द्वारा निंदनीय आक्रमण के फलस्वरूप ही दक्षिण को यह कदम उठाना पड़ा।" नयी दक्षिणी काँग्रेस ने यह निर्णय लिया कि सभी पृथक राज्यों में अमरीकी गणराज्य के जो किले और संपत्ति है, उन्हें अधिकार में ले लिया जाय। दक्षिणी संघराज्य की सेना के प्रथम जनरल बियरगार्ड को सम्टर दुर्ग को अपने अधिकार में करने के लिए भेजा गया।

[३]

राष्ट्रपति लिंकन द्वारा उद्घाटन

एमर्सन के अनुसार "नव राष्ट्रपति लिंकन उस तूफान को जन्म लेते देख रहा था, जिसमें उसे राष्ट्र की नौका का कर्णधार बनाया गया था।" उसे सबसे पहले अपने दृढ मंत्रिमंडल का गठन करना था। इसके अतिरिक्त उसे एक और भी परेशानी से भरा अनावश्यक काम पूरा करना था जो उस पर आ पड़ा था। उसके वहाँ ऐसे श्रद्धालु यात्रियों की भीड़ लग गयी जो या तो किसी पद को

पाना चाहते थे अथवा उस पर अपनी अरुचिपूर्ण नीति लादना चाहते थे। उसने अपने मंत्रिमंडल का सैद्धान्तिक स्वरूप तारघर में ही मतदान के निर्णय की गणना करते समय निर्धारित कर लिया, परन्तु इसे व्यावहारिक रूप काफी हिचकिचाहट और विलम्ब के बाद दिया जा सका। लिंकन ने मंत्रिमंडल में भाग लेने के लिए जिन व्यक्तियों को आमन्त्रित किया था, उनमें से कइयों को वह व्यक्तिगत रूप से जानता भी नहीं था। वह अपने प्रशासन में सभी विचारधारा के लोगों को प्रतिनिधित्व देना चाहता था। साथ ही इस संकटकाल में उस पर यह भी महान जिम्मेदारी थी कि वह उनमें एकता बनाये रखकर उन्हें निभा सके। केवल विभिन्न विचारधारा ही नहीं, विभिन्न जिलों के प्रतिनिधित्व की ओर भी समुचित ध्यान देना जरूरी था। उसने एक बार यह शिकायत भी की कि यदि किसी को बाइबिल के बारह धर्म दूतों को भी चुनने पड़े तो उसे भी इन दिनों विभिन्न स्थानों के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को मानना पड़ेगा। इस समय यह और भी जरूरी था कि सभी राज्यों को संतुष्ट किया जाय और वहाँ के लोगों की भावना पर अधिक ध्यान दिया जाय।

राष्ट्रपति-पद के लिए उसके जो प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी थे, वे इस दृष्टिकोण के अनुकूल थे। इनमें न्यूयार्क का सेवार्ड, ओहयो का चेस, मिसूरी का बेट्स, पेन्सील-वीनिया का कामरन प्रमुख थे। सेवार्ड और चेस दोनों ही सुयोग्य और महत्व-पूर्ण व्यक्ति थे। सेवार्ड एक तरह से रिपब्लिकन दल का भूतपूर्व नेता था। वह इन दिनों अधिक अनुदार, पुरानपंथी और सतर्क रिपब्लिकन बन रहा था। ठीक इसके विपरीत चेस रिपब्लिकन दल के 'उग्र' गुट का नेता था जो दासप्रथा और दक्षिण के प्रति अपने रुख में "दृढ़ और अविचल" था। इन दोनों को प्रशासन में शामिल करना और जहाँ तक संभव हो एक साथ रखने का काम कठिन था। बेट्स मिसूरी राज्य से आया था जो दास राज्यों की सीमा पर था। इस क्षेत्र में उसके प्रभाव की अधिक आवश्यकता भी थी। यह व्यक्ति भी योग्य और कार्यकुशल था। उसे लिंकन ने 'अटर्नी जनरल' बनाया। कामरन अपने-आपको अधिक योग्य नहीं सिद्ध कर सका, यह दुर्भाग्य रहा। वह पेन्सीलवीनिया के धनपतियों में से आया था और वहाँ के प्रभावशाली प्रोटेस्टेन्ट मतावलंबी उसे नेता मानते थे। उसे यह पद रिपब्लिकन दल के अधिवेशन के समय ही देने को कहा गया था। इस बारे में लिंकन को जानकारी नहीं थी। जब लिंकन को पता चला कि कुछ लोग उसे 'बुरा व भ्रष्ट व्यक्ति' समझते हैं तो उसने कामरन को एक पत्र लिख कर सुझाया कि उसे यह पद अस्वीकार कर

देना चाहिए। कामरन ने इसके विपरीत ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये कि पेन्सिल-वीनीया के प्रतिनिधिगण उसे चाहते हैं। लिंकन ने उसे पद प्रदान किया। यदि उसे पद नहीं दिया जाता तो पुराने विगदली, प्रोटेस्टेन्ट तत्व और सुयोग्य सेवार्ड के मित्रगण मंत्रिमंडल में शायद कमजोर पड़ जाते। कामरन को कुछ समय के लिए युद्ध-सचिव बनाया गया। लिंकन ने कुछ लोगों के सुझाने पर मंत्रिमंडल में कुछ प्रमुख दक्षिणी राजनीतिज्ञों को भी प्रतिनिधित्व देने का प्रयत्न किया परन्तु वह सफल नहीं रहा। उसे ऐसी आशा पहले से ही थी। अंत में मंत्रिमंडल का गठन कर लिया गया और उसमें इन व्यक्तियों को भी लिया गया। इण्डियाना राज्य का कलेब स्मिथ गृहमंत्री, केन्टकी का गाइडन वेलेस नौसेना मंत्री, मेरीलैंड का मोंटगोमरी ब्लेयर पोस्टमास्टर-जनरल-पद पर नियुक्त किये गये। वेलेस ने पूर्ण सफलता के साथ अपना पद निभाया, उसे फ़ोक्स जैसा सुयोग्य सहायक प्राप्त हुआ। वेलेस यद्यपि ब्रिटेन के प्रति ईर्ष्या रखता था जो उन दिनों खतरनाक सिद्ध हो सकती थी, तथापि उसने कड़े परिश्रम के साथ उन दिनों घटने वाली प्रतिदिन की घटनाओं का लिखित विवरण रखा जिससे उस काल पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालने में योग मिला। ब्लेयर क्रुद्ध स्वभावी का गैरजिम्मेदार व्यक्ति साबित हुआ, परतु उसका सम्बंध प्रभावशाली व्यक्तियों से था जो उन दिनों लाभप्रद रहा। उसका और उसके परिवार वालों का प्रभाव मेरीलैंड व दासराज्यों के सीमावर्ती राज्यों में था। इन सभी व्यक्तियों में सेवार्ड और चेस अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। सेवार्ड विदेशमंत्री के महत्वपूर्ण पद पर था और चेस वित्तमंत्री था। लिंकन ने सेवार्ड को मंत्रीमंडल में पद लेने के लिए आमन्त्रित किया और सेवार्ड ने उसे जिन शर्तों के साथ स्वीकार किया यह दोनों ही व्यक्तियों के लिए गौरवसूचक है। भले ही वह अपनी हार से खीझ उठा करता था, परन्तु वह अंत तक लिंकन के प्रति वफ़ादार रहा। सेवार्ड के मित्रों ने यद्यपि अपने पक्ष को मजबूत बनाने के लिए कामरन को मंत्रिमंडल में जोर देकर पद दिलवाया फिर भी वे उग्र विचारधारा वाले चेस को मंत्रिमंडल में लेने के कारण प्रसन्न नहीं थे। लिंकन द्वारा अपने उद्घाटन भाषण के एक दिन पहले की बात है कि सेवार्ड ने उसे अपने 'पदत्याग' का पत्र दिया। उस रात को सेवार्ड लिंकन द्वारा तैयार किये गये उद्घाटन भाषण को अधिक समयानुकूल बनाने की दिशा में संशोधन व परिवर्धन में संलग्न था। लिंकन ने न जाने ऐसी कौनसी अपनी महान शक्ति का उपयोग किया —जिससे वह कभी-कभी मनुष्यों के हृदय पर छा जाता था—और सेवार्ड को

बाध्य कर दिया कि वह इस पत्र को बिना किसी शर्त के वापिस ले ले; सेवार्ड ने यही किया। यह ध्यान में रखने की बात है कि इस सारे कार्यकाल में उसने सदा ही उत्तर के इन आपस में लड़ने वाले तत्वों को निरंतर एक बनाये रखना अपना परम कर्त्तव्य समझा; ऐसे तत्व उसके मंत्रिमंडल में भी थे। यह उसकी योग्यता थी कि उसने ऐसे देशभक्त, सुयोग्य, परन्तु आपस में झगड़ालू तत्वों को जब तक आवश्यकता रही सार्वजनिक सेवा के महत्वपूर्ण पदों पर रखा और उन्हें एकता में पिरोये रखा। यह केवल लिंकन की ही योग्यता थी कि वह इन्हें आपस में एक बनाये रख कर काम ले सका।

११ फरवरी १८६१ का दिन था। वह अपने घर से विदा ले रहा था जहाँ वह वापिस कभी भी नहीं लौट कर आ सका। एक रेलगाड़ी की गैलरी में खड़े होकर वह अपने पड़ौसियों से विदा ले रहा था। इस अवसर पर भाषण देते हुए उसने कहा, "मेरे मित्रो! मुझे आज तुम्हें छोड़ते हुए जो दुख हो रहा है उसे मेरी जैसी परिस्थिति में कोई भी व्यक्त नहीं कर सकता है। इस जगह और यहाँ के लोगों की मेरे पर जो कृपा रही है वही आज मुझे इतना बना सकी है। यहाँ मैं पच्चीस वर्ष तक रहा और युवावस्था से वृद्धावस्था में पहुँचा। यहीं मेरे बच्चों ने जन्म लिया जिनमें एक यहीं दफन भी है। मैं अब इस स्थान को छोड़ रहा हूँ। यह नहीं जानता हूँ कि मैं कभी यहाँ लौट कर फिर आ भी सकूँगा अथवा नहीं आ सकूँगा। मेरे सामने इतना बड़ा काम है जो वाशिंगटन के काम से भी अधिक महत्वपूर्ण है। उस महान पिता परमात्मा की—जिसने सदा वाशिंगटन का साथ दिया—कृपा के बिना मैं इसमें सफल नहीं हो सकता। उसकी सहायता पाने पर मैं कभी असफल नहीं हो सकता। मेरा उसी नियन्ता में विश्वास है जो इस संकटकाल में मेरे साथ है और आप लोगों के साथ है तथा सर्वत्र ही भले कार्यों में उसकी उपस्थिति है। इसी विश्वास के साथ हम सबको आशा करनी चाहिए कि सब-कुछ अच्छा ही होगा। उसकी छत्रछाया में मैं आप लोगों को उसे सौंपता हूँ और आशा करता हूँ कि आप भी भगवान से यही प्रार्थना करोगे कि उसकी मेरे पर सदा छत्रछाया रहे! मैं तुमसे हृदय से विदा लेता हूँ।"

सचमुच ही वह एक ऐसे कार्य को करने जा रहा था जो वाशिंगटन के समक्ष प्रस्तुत महत्वपूर्ण कार्यों से किसी भी माने में कम नहीं था; परन्तु वाशिंगटन की तुलना में उसकी तैयारी नगण्य थी। पिछले आठ वर्षों तक उसने एक सार्वजनिक वक्ता के रूप में कार्य किया था। इन दिनों उसने दल के नेता के

रूप में ऐसी महत्वपूर्ण समस्याएँ जो जन-जीवन की धारा बदल देती हैं, उनके बारे में पूर्ण अध्ययन व स्पष्ट दृष्टिकोण बना लिया था—ऐसा दृष्टिकोण जिसकी तुलना अन्यत्र नहीं की जा सकती। परन्तु इससे उसका नैतिक विकास ही हो पाया; उच्च प्रशासनिक पद के लिए जिस तरह के गुण व प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, वह प्राप्त नहीं कर पाया। आरंभ से ही लिंकन में इन बातों की कमी थी और ये एक दिन में नहीं सीखी जा सकती थीं। जो शक्ति उसने पहले दर्शायी वह इस पद के लिए अवश्य ही लाभदायक थी, परन्तु प्रशासन के क्षेत्र में काम करने की शक्ति व ज्ञान की भी उतनी ही आवश्यकता थी। इस दिशा में लिंकन ने पहले कभी कोई काम नहीं किया था। लिंकन के राष्ट्रपति-काल में किये गये उसके कार्यों की जाँच करते समय हमें चाहिए कि उसमें समस्याओं के प्रति जो सजगता की भावना थी उसे दृष्टिगत रखें। साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि वह जिन मामलों में कम जानकारी रखता था उस दिशा में अपने से योग्य व्यक्तियों की सलाह को क्रियान्वित करने में सदा उत्साह दर्शाता था। हम उसके विगत अनुभव की कमी को आधार बना कर उसके कार्यों की जाँच नहीं कर सकते।

लिंकन ने जानबूझ कर वाशिंगटन पहुँचने में विलम्ब किया और अपने मार्ग में पड़ने वाले चार बड़े नगरों व पांच राज्यों की राजधानियों में ठहरने के औपचारिक निमन्त्रण स्वीकार कर लिये, जिन्हें वह चाहता तो आसानी से टाल भी सकता था। यात्रा-काल में कई स्थानों पर उसने भाषण दिये, तथा कई छोटी-छोटी घटनाएँ भी घटीं। यद्यपि इनमें से कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिन्हें लेकर समाचार-पत्रों ने उसे व्यंग का पात्र बनाया तथापि इन पत्रों का उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख रहा। एक स्टेशन के निकट जहाँ रेल ठहरी थी एक युवा लड़की थी। उसने कभी लिंकन को सुझाया था कि वह दाढी मूँछ रखे तो अच्छा लगेगा। लिंकन ने उसकी बात मान ली थी। दाढी-मूँछों के कारण लिंकन का चेहरा और भी अजीब लगने लगा; उसकी सुडौल ठुड्डी और चेहरे की विकसित हड्डियाँ फिर नहीं दिखायी दीं। उसने स्टेशन पर उस लड़की के बारे में पता लगाया और उसे भीड़ में से अपनी ओर खींच लिया। जो दाढ़ी-मूँछ उसने बढ़ायी थी, उसके लिए उसकी सराहना प्राप्त की और पत्रकारों की उपस्थिति में उसका चुम्बन लिया। न्यूयार्क में उस पर और भी गंभीर व असहनीय सामाजिक नियम-विरोध का दोष लगाया गया। वहाँ कुछ ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों का समाज था जो अपनी सौम्य उदारता की ओर अधिक

ध्यान नहीं देकर ऊपरी दिखावे को बनाये रखने में अधिक कठोरता से काम लेता था। लिंकन ऐसे ही एक नाट्यगृह में गया और आज भी इस बात पर इतिहास में खेद व्यक्त किया जाता है कि वह वहाँ जाकर बकरी की खाल के दस्ताने पहने क्यों बैठा रहा, जबकि यह कार्य सभ्य प्रतिष्ठित जनों के दृष्टिकोण में निंदनीय व असभ्यतासूचक माना जाता था। यहाँ कदाचित् पूर्वी राज्यों के शिक्षित व प्रतिष्ठित वर्ग के दिमाग में यह कल्पना रही होगी कि उनका राष्ट्रपति सामाजिक आचरण में इसी तरह प्रतिष्ठा व कथित सभ्य समाज के वातावरण के आदि होने का परिचय देगा। उन लोगों ने कभी यह सोचा भी नहीं होगा कि यह आदमी कैसे इतना सरल व सीधासादा था। वह उनका चीफ मजिस्ट्रेट था जिसकी योग्यता का अभी परीक्षण होना बाकी था। अपने इस यात्राकाल में लिंकन ने जो भाषण दिये उनमें उसने सरल व सीधे शब्दों में नागरिकों से देश के प्रति वफ़ादार रहने की अपील की। उसने इस महान कार्य के बारे में अपनी अयोग्यता भी सरल व निष्कपट भाव से प्रस्तुत की और आशा प्रकट की कि जब वह इन जिम्मेदारियों का वहन करेगा तो उसे सदा जन-सहयोग प्राप्त होता रहेगा। लिंकन जैसे व्यक्ति के लिए, जो लोगों के हृदय से सटकर बोलना पसन्द करते थे, ये भाषण अधिक उपयुक्त नहीं है। फिलाडेल्फिया में दिये गये भाषण (जिसे पहले उद्धृत किया जा चुका है) के अलावा अन्य भाषणों में वह हृदय-ग्राहिता नहीं है। फिर भी वे बिना किसी तरह की प्रवंचना के पूर्ण तया निष्कपट हैं। इन भाषणों में से बहुत से उस समय सराहना प्राप्त नहीं कर सके। इनमें उसने स्थिति की गंभीरता को इतना कम आँका कि उसकी गंभीर राजनीतिज्ञता के बारे में भी सन्देह पैदा होता था। वह उत्तर से दृढतापूर्वक साथ देने की अपील कर सकता था परन्तु वह उनकी भावनाओं को नहीं उभाड़ना चाहता था। अंत तक उसका यही दृष्टिकोण रहा कि दक्षिण में वातावरण शांत हो जायेगा। उसके अनुसार वहाँ यथार्थ में कोई आतंकपूर्ण या भयावह स्थिति नहीं थी, वरन् एक 'बनावटी संकट' पैदा कर दिया गया था। उसने यह भी कहा कि इस मसले पर युद्ध की भी संभावना हो सकती है, परन्तु उसने निस्संदेह रूप से अपनी बलवती इच्छा प्रकट की कि वह उसे हर संभव तरीके से टालना चाहता है। उसने कहा—"सरकार कभी भी रक्तपात पसन्द नहीं करेगी, जब तक कि यह उस पर थोप नहीं दिया जाता है। सरकार उसी स्थिति में शक्ति का प्रयोग करेगी जब कि उसके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग किया जायगा।"

बाल्टीमोर पहुँचने के पूर्व ही सेवार्ड और जनरल स्काट का एक हार्दिक

संदेश उसके पास पहुँचा जिसमें कहा गया था कि कुछ राजनैतिक सूत्रों से पता चला है कि वहाँ लिंकन को मार डालने का वास्तविक षड्यंत्र रचा गया है। इस चेतावनी के फलस्वरूप वह रात के अँधेरे में गुप्त रूप से बाल्टीमोर शहर से बिना रुके निकल गया। इस तरह वह अचानक ही २३ फरवरी को वाशिंगटन पहुँच गया। राष्ट्रपति-पद का कार्य उसका स्पष्ट लक्ष्य था जिसे उसे निभाना था। जो लोग उसकी व्यक्तिगत निर्भयता और शूरवीरता से परिचित हैं, उनमें भी इस तरह चले आने से कोई शंका जैसी बात पैदा नहीं होती। फिर भी ऐसे लोग भी बहुत थे जो चाहते कि लिंकन को इस तरह का संकट मोल लेकर यशस्वी होना चाहिए था।

४ मार्च १८६१ को भूतपूर्व राष्ट्रपति बुकनन उसे उद्घाटन-समारोह के लिए लेने आये। भाग्य की कैसी विडम्बना थी कि लिंकन को राष्ट्रपति-पद की शपथ सर्वोच्च न्यायाधीश टैने ने ग्रहण करवायी जिस टैने के सिद्धान्तों का लिंकन सदा विरोधी रहा। वह शपथ भी टैने ने ऐसे राष्ट्रपति को ग्रहण करवायी जिसने उसके किये-कराये पर बहुत कुछ पानी फेर दिया था। लिंकन और टैने के अतिरिक्त एक तीसरा व्यक्ति भी वहाँ था। वह था प्रख्यात डेमोक्रेट डगलस, लिंकन से पराजित प्रतिद्वन्द्वी, जो उसकी बगल में शानदार वस्त्र पहने बैठा हुआ था। जब उसने देखा कि लिंकन को यह अटपटा मालूम हो रहा था कि वह अपनी लंबी-सी टोपी और निरर्थक-सी सोने की मूठवाली छड़ी कहाँ रखे, तब डगलस ने आगे बढ़कर राष्ट्रपति लिंकन का यह भार खुद सम्हाल लिया। अब उस भाषण का समय आगया था जिसके लिए लोग उसके सभी भाषणों से भी अधिक उत्सुकता से बाट देख रहे थे। लिंकन ने अपने प्रथम उद्घाटन भाषण का प्रारूप सेवार्ड को सौंप रखा था और यह प्रारूप जिसमें सेवार्ड ने ढेर सारे संशोधन कर रखे हैं, आज भी सुरक्षित रखा हुआ है। इसमें कई स्थानों पर साहित्यक छटा बिखरी हुई है। इस प्रारूप में यह भी झलकता है कि लिंकन ने सेवार्ड के कतिपय सुझाव तत्परता से स्वीकार कर लिये। जहाँ तक नीतिनिर्णय-सम्बंधी प्रश्न थे, लिंकन ने सेवार्ड के बहुत से सुझावों को अस्वीकार कर दिया। यह प्रारूप बताता है कि कैसे एक छोटे-से संघर्ष के बाद फिर इन दो व्यक्तियों में सम्बन्ध स्थापित हो गया। सेवार्ड की सलाह से लिंकन ने अपने शुष्क भाषण के अंत में कुछ भावनात्मक अपील के शब्द भी जोड़े हैं। इस भाषण का अंतिम वाक्य जिसे बहुत लोगों ने कई दिनों तक याद रखा, वह सेवार्ड द्वारा लिखा गया था। इस भाषण की प्रथम

रचना में सेवार्ड के अधिक वाक्यांश रहे। लिंकन ने उसे कहीं-कहीं सुन्दरता से सँवार भी दिया।

सब लोगों ने यह स्वीकार किया कि लिंकन का प्रथम भाषण शानदार राजनीतिपत्रक था। उसने वास्तविक स्थिति को सरल व स्पष्ट तथा चिरपरिचित रूप में रखा। भाषण में दासप्रथा-विवाद से उत्पन्न स्थिति पर प्रकाश डाला गया और कहा गया कि गणराज्य अविभाज्य है, यदि विभाजन की स्थिति उत्पन्न हुई तो सरकार इस दिशा में क्या कदम उठायेगी ? राष्ट्रपति लिंकन ने कहा—"जो अधिकार मुझे सौंपे गये हैं उनका प्रयोग सरकारी संपत्ति व सरकारी स्थानों को प्राप्त करने, उन्हें बनाये रखने, और कब्जे में करने के लिये किया जायेगा। इसके साथ ही आयात-कर की वसूली की जायेगी। इस से आगे बढ़ कर इस दिशा में सरकार आक्रमण नहीं करेगी। किसी भी स्थान पर कहीं भी जनता के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग नहीं किया जायेगा। गणराज्य के सभी भागों में डाक व्यवस्था तब तक जारी रहेगी जब तक उस पर आक्रमण नहीं होता है।" अपने भाषण में वास्तविक पृथकता की असंभावनाओं पर अपने विचारों का विश्लेषण करते हुए उसने बताया कि विभिन्न राज्यों में जनता के आपसी गहरे सम्बंध हैं, वे बने रहेंगे। चाहे युद्ध कितना ही लंबा क्यों न हो बाद में वे सम्बन्ध पुनर्संस्थापित हो जायेंगे। ये सम्बन्ध शत्रुता के वातावरण की अपेक्षा एकता के वातावरण में सुदृढ़ होंगे। अंत में उसने कहा—"मेरे असंतुष्ट देशवासियों! गृहयुद्ध का निर्णय मेरे हाथों में नहीं; वरन् तुम्हारे हाथों में है। सरकार तुम पर आक्रमण नहीं करेगी। यदि तुम आक्रमण की पहल नहीं करोगे तो तुम पर संकट का सवाल ही नहीं है। हम लोग शत्रु नहीं परन्तु मित्र हैं। भले ही हमारी भावनाओं में तनाव पैदा हो जाय इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारे सम्बन्ध ही टूट जायें।

"हमारे हृदय-तंत्र में स्मृति की यह रहस्यमय रागिनी जो इस देश के कोने-कोने में, युद्ध-क्षेत्र और देशभक्तों की समाधियों से लेकर चेतन हृदयों और हमारे घरों में व्याप्त है, उसे यदि फिर हम स्वाभाविक शांति के दूत की तरह छू लेंगे तो पुनः राष्ट्रीय एकता की तान गूँज उठेगी—अवश्य गूँज उठेगी।"

[४]

युद्ध की ज्वाला धधकी

काँग्रेस-उद्घाटनकाल के बाद राष्ट्रपति लिंकन के चारों ओर पदलोलुपों का टिड्डी-दल मंडराने लगा। इसके पूर्व कभी रिपब्लिकन दल सत्ता में नहीं आया था। इन 'देशभक्तों' की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। पदों की प्राप्ति के लिए किसी भी राष्ट्रपति के काल में इतनी दौड़धूप पहले नहीं हुई थी। इन सब बातों की ओर ध्यान देना तथा सबसे भेंट करना राष्ट्रपति का सामान्य कर्त्तव्य था। इस समय कदाचित् राष्ट्रपति-पद के साथ यह अतिरिक्त काम भी उसे सम्हालना पड़ा। समय के साथ-साथ जब पदों के लिए दौड़धूप करने वालों की संख्या अधिक बढ़ने लगी, जैसा स्वाभाविक ही था, तब इनके साथ दूसरी तरह के लोग और आ जुटे जिनके प्रार्थनापत्र कभी-कभी सचमुच में ही मर्मभेदी रूप से करुणाजनक थे। अर्टमस वार्ड ने इन लोगों के कारण जैसा आतंक पैदा हुआ, उसका इतना सही चित्रण किया है कि लिंकन भी संभवतया उसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार करता। उसने जिस ढंग से कलात्मक रूप से इस विषय के बारे में वर्णन किया है वह गंभीरता के साथ उल्लेख के योग्य है। लिंकन को इन दिनों प्रशासन की गतिविधि, शासन-संचालन तथा संकटकाल के कई अत्यंत आवश्यक काम करने पड़ते थे। इसके अतिरिक्त उसे इन पदलोलुप टिड्डी-दलों के परेशानी-भरे व अरुचिकर काम में भी अपना बहुमूल्य समय रोजाना देना पड़ता था।

उद्घाटन के दूसरे ही दिन सम्टर दुर्ग से मेजर अन्डर्सन का संदेश आया कि यदि उसे सामग्री और सैनिक शीघ्र प्राप्त नहीं हुए तो वह केवल कुछ सप्ताह तक ही किले पर अधिकार कायम रख सकेगा। इसके साथ ही जनरल स्काट ने अपनी राय जाहिर की कि सम्टर दुर्ग की रक्षा के लिए बीस हजार सैनिकों की आवश्यकता है जो इस समय उपलब्ध नहीं हो सकते। तत्काल मंत्रिमंडल की बैठक बुलायी गयी जिनमें नौसेना व स्थलसेना सलाहकार भी आमंत्रित किये गये। नौसेना ने विश्वास प्रकट किया कि वे दुर्ग सम्टर को सैनिक व रसद पहुँचा सकते हैं परन्तु स्थल सैनिकों का यह मत था कि यह कठिन काम है, उन पर दक्षिण समुद्रतट स्थित दक्षिणी संघराज्य की तोपें गोलाबारी करके जहाजों को नष्ट कर देंगी। लिंकन ने अपने मंत्रिमंडल से पूछा कि यह मानते हुए कि यह कार्य संभव है क्या सम्टर दुर्ग को राजनैतिक दृष्टिकोण से रसद भेजनी चाहिए? ब्लेयर ने जोर देकर 'हाँ' में उत्तर दिया। चेस ने भी एक

तौर पर स्वीकृति में उत्तर दिया। परन्तु मंत्रिमंडल के अन्य पाँच सदस्यों ने साफ शब्दों में इसे अस्वीकार कर दिया। सैनिक दृष्टिकोण से जनरल स्काट ने पहले ही मना कर दिया और उसने राय दी कि दुर्ग को खाली कर देना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि देशवासी यही समझेंगे कि पिछले प्रशासन द्वारा अवहेलना करने के कारण इस दुर्ग को छोड़ना सैनिक दृष्टिकोण से जरूरी हो गया था। लिंकन ने अपना निर्णय बाद के लिए सुरक्षित रखा।

सम्टर दुर्ग खाली करने से क्या प्रभाव पड़ता, हमें इसकी कल्पना करनी चाहिए। दक्षिणी कारोलीना ने इस दुर्ग पर अपना सार्वभौमिक और स्वतंत्र अधिकार पहले से ही जता रखा था। अब दक्षिणी संघ राज्य ने इस पर अधिकार जताया और अपने सेनापति जनरल बियरगार्ड को सम्टर दुर्ग स्थित अमरीकी गणराज्य के सैनिकों से मुकाबला कर किले पर कब्जा करने के लिए भेजा। यहाँ तक कि बुकैनन भी आखिरी दम तक इन दावों के पक्ष में रहा। लिंकन के उद्घाटन-भाषण का सारांश भी यही था कि वह इन किलों पर गणराज्य का अधिकार कायम रखेगा। यही एक किला ऐसा था जिस पर उत्तर और दक्षिण की निगाहें टिकी थीं। उन लोगों ने कभी यह महसूस भी नहीं किया कि इन किलों के अतिरिक्त कई किले और भी हैं—मसलन् मेक्सिको स्थित पिकन्स दुर्ग आदि—जिन्हें प्रशासन अच्छी तरह सुरक्षात्मक ढंग से सम्हाल सकता था। अब यह सुझाया जा रहा था कि उद्घाटन-भाषण के अवसर पर लिंकन ने इस दिशा में कदम जो आगे बढ़ाया उसे वापिस पीछे हटा ले। लिंकन ने अपना निर्णय प्रकट नहीं किया, कई दिनों तक उसे रोके रखा। इसी बीच उस किले का स्वाभाविक निर्णय भी हो गया जिसके कारण उसे अपमानित होना पड़ा।

लिंकन यहाँ भूल कर बैठा। यह भूल किसी प्रशासनिक योग्यता की कमी के कारण नहीं हुई, वरन् अशिक्षित बुद्धिमान में जैसी अक्खड़पन और साहसी शक्ति की भावना होती है, उसके कारण हुई। इसके विपरीत बैंजमिन जेक्सन (जो इस दिशा में अधिक जानकार व शिक्षाप्राप्त व्यक्ति था) ऐसे अवसर पर इस तरह का कदम कभी नहीं उठाता। यह सत्य है कि लिंकन ने पहले यह घोषणा की थी कि वह कोई उत्तेजनात्मक कदम नहीं उठायेगा। "मेरे असंतुष्ट साथी देशवासियो! तुम्हारे ही हाथों में गृहयुद्ध की यह गंभीर समस्या है—मेरे हाथों में नहीं।" यह स्पष्ट है कि उस दिन मंत्रिमण्डल के निर्णय को अस्वीकार करने का जो खतरा उसने मोल लिया वह उसके मुख्य सैनिक सलाहकार की सलाह पर आधारित था। परन्तु वह मंत्रिमंडल के इस निर्णय

को बहुत दिनों तक टालता रहा, उससे जो गंभीर खतरा पैदा हो गया था वह इस संकट से कहीं अधिक था। लिंकन का यह कदम उसकी शक्ति के साथ उसकी कमजोरी का भी परिचायक है। वह न तो तत्काल अपने सलाहकारों के समक्ष झुका और बिना किसी तरह की देरी की चिंता किये वह इस मामले का हल प्राप्त करने की उधेड़बुन में लगा रहा। जहाँ तक निर्णय का प्रश्न था, जैसे ही उसे इसके राजनैतिक परिणाम समझ में आये उसने तत्काल निर्णय कर लिया। केवल यही राजनैतिक परिणाम आवश्यक थे। सैनिक घटनाओं का उस समय कोई मूल्य नहीं था।

यह कहानी आरंभ से ही एक दूसरी पेचीदा कहानी से उलझी हुई है। दक्षिण संघ राज्य के कमिश्नर वाशिंगटन आये हुए थे और उन्होंने सेवार्ड से भेंट करनी चाही। वे लोग यह कहने आये थे कि दक्षिणी संघराज्य को मान्यता दी जाय और वहाँ जो किले आदि हैं उन्हें खाली करके सौंप दिया जाय। इसी दौरान में वरजीनिया और अन्य सीमान्त देश पुनः संधि कराने की आशा में निरर्थक हाथ-पैर मार रहे थे। वरजीनिया में फिर शांति-सम्मेलन बुलाया गया था जो लोवेल के शब्दों में अनाज निकालने के बाद बचे हुए भूसे को पुनः इसी आशा से पछाड़े देना था कि उससे कुछ प्राप्त हो सकेगा। वरजीनिया और अन्य सीमान्त राज्यों की कार्यवाही बहुत-कुछ इस बात पर निर्भर करती थी कि गणराज्य की सरकार इन पृथक् राज्यों के प्रति क्या कदम उठाती है। (लिंकन का रुख इन राज्यों से सहानुभूतिपूर्ण था।)

उस समय यह भी सोचा जा रहा था कि इस समय सम्टर दुर्ग के मामले में दक्षिण कारोलीना से तत्काल संघर्ष करना सरकार के लिए ठीक नहीं रहेगा, जब कि मेक्सिको स्थित परकिन्स दुर्ग और अन्य दुर्गों के बारे में दक्षिणी संघराज्य से कलह का संकट संभावित था। वरजीनिया और अन्य सीमान्त राज्यों के साथ जो पृथक् दक्षिणी राज्यों को वापिस मिलाने की वार्ता चल रही थी, उस दिशा में समझौता न हो तब तक इस संघर्ष को टालना क्या उचित नहीं होगा? ये सवाल अब बड़े असंगत लगते हैं, परन्तु उस समय ये स्वाभाविक थे और सेवार्ड इनसे बहुत-कुछ प्रभावित भी हुआ था। राष्ट्रपति नहीं बनने की निराशा और गृहयुद्ध की संभावना से विचलित, परन्तु अभी भी महान हार्दिक आशा से ओतप्रोत; सेवार्ड लिंकन के हाथों से समस्या अपने हाथ में लेकर शांतिदूत बनकर राष्ट्र की सेवा करना चाहता था। सेवार्ड और दक्षिण के इन कमिश्नरों के मध्य अप्रत्यक्ष वार्ता हुई जिसे

औपचारिक रूप नहीं दिया गया। वार्ता के जो माध्यम थे उनमें विशेष उल्लेखनीय एक न्यायाधीश कैंपबेल हैं, जो उन दिनों वाशिंगटन में ही थे। सेवार्ड लिंकन के प्रति पूर्ण वफादार रहा और उसने लिंकन को सामान्य रूप से बता दिया कि वह क्या करने जा रहा है। सेवार्ड ने कैंपबेल और उसके मित्रों से इस दिशा में स्पष्ट वार्ता की और उन्हें जता दिया कि इस दिशा में वह अधिकारहीन है। फिर भी उसने खुले रूप से दृढ़ता के साथ वार्ता करते हुए यह बताया कि उत्तर क्या चाहता है। लिंकन ने सेवार्ड को इस दिशा में कुछ सतर्क रहने के सुझाव उचित दिये और शेष मामले में उसे पूरी छूट दे दी। यह भी संभव हो सकता है कि उसने शायद डगलस को यह कहा होगा कि उसका इरादा सम्टर दुर्ग को खाली कर देने का है। सारांश यह है कि सम्टर दुर्ग के बारे में सरकार का निर्णय समझौता-वार्ता के आधार पर झूलता रहा, वार्ता असफल रही। जब ये कमिश्नर दक्षिण पहुँचे तो वहाँ की सरकार ने और इन लोगों ने यही सोचा कि उन्हें इस समझौता-वार्ता में धोखा दिया गया।

सम्टर दुर्ग के बारे में चर्चा जारी ही थी कि लिंकन के लिए एक नया संकट उठ खड़ा हुआ। परन्तु यह एक ऐसा संकट था जिसे जीत कर वह अपने मन्त्रिमंडल का एकछत्र स्वामी बन गया। सेवार्ड जिस स्थिति में काम कर रहा था उसका भार कमजोर व निरर्थक व्यक्ति पर कैसा पड़ सकता है, इसकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु इस अवसर पर यह किस ढंग से प्रकट हुआ यह विस्मयजनक है। पहली अप्रेल को उसने "राष्ट्रपति के विचारार्थ कुछ सुझाव" एक पत्र में लिख भेजे। इस पत्र में उसने प्रारंभ में आलोचना की कि अब तक किसी भी तरह की नीति नहीं अपनायी गयी, साथ ही यह भी कहा गया कि यह ठीक भी है। बाद में उसने दक्षिण के दुर्गों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए अपना रुख स्पष्ट किया। उसने इस तरह अपने विचार रखे—"मैं ब्रिटेन और रूस से इसका कारण पूछूँगा और कनाडा, मेक्सिको और केन्द्रीय अमरीका में अपने एजेन्ट भेज कर इस उपनिवेश में यूरोपीय हस्तक्षेप के विरुद्ध स्वतंत्रता की चेतना प्रसारित करूँगा और यदि फ्रांस और स्पेन से सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला तो काँग्रेस बुलाकर इनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दूँगा।" दूसरे शब्दों में सेवार्ड चाहता था कि इस तरह अचानक तड़क-भड़क से उग्र विदेशनीति जारी कर देश में व्याप्त विरोध विद्रोह को उसमें शांत कर दिया जाय।

इस पत्र में केवल यही एक मुख्य विषय नहीं था और भी दूसरी बातें उसने

लिखी, "या तो राष्ट्रपति को स्वयं यह सारा काम (इस नीति का पूरा पूरा संचालन) करना चाहिए अथवा मंत्रिमंडल के किसी अन्य सदस्य को इसके लिये जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। यह मेरी विशेष अभिरुचि का क्षेत्र नहीं है। परन्तु मैं न तो इसे टालना चाहता हूँ और न इसकी जिम्मेदारियाँ ही वहन करना चाहता हूँ।" दूसरे शब्दों में सेवार्ड अपने-आपको प्रशासन के एकमात्र संचालक के रूप में आगे लाया। इस पत्र का लिंकन ने संक्षिप्त उत्तर दिया। उसमें सेवार्ड द्वारा सुझाये गये कुतूहलप्रिय कार्यक्रम के बारे में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। लिंकन ने बताया कि अपने पत्र में सेवार्ड ने जिस नीति के बारे में शिकायत की है उसको स्वीकार करने में वह स्वयं भी सहमत था। सेवार्ड की अंतिम माँग का—जिसमें उसने लिखा था कि एक व्यक्ति (सेवार्ड स्वयं) के हाथ में नीति-संचालन की बागडोर रहे—उत्तर देते हुए लिखा, "यदि ऐसा करना जरूरी होगा तो मैं कर दूँगा। जब नीति-सम्बन्धी मुख्य मार्ग निर्धारित हो जाता है, तब उसमें बिना किसी अन्य कारणों के रद्दोबदल करना और उसे लेकर लंबे समय तक अनावश्यक वादविवाद में उलझे रहना, मेरे दृष्टिकोण से खतरनाक काम है। इसकी प्रगति के बारे में जो मुद्दे उठाये गये हैं, मैं चाहता हूँ कि उन्हें मन्त्रिमंडल के समक्ष रखूँ और इस दिशा में उनसे सलाह लूँ।" सेवार्ड इतना मूर्ख नहीं था, वह कहीं अधिक समझदार था। वह अमरीका के सुयोग्य व्यक्तियों में से था। केवल परेशानियों व विदेशमंत्री की स्थिति में होने के कारण उस समय जो मानसिक भार उस पर पड़ा, उसकी प्रतिक्रिया के कारण वह अत्यधिक उत्तेजित हो उठा था। लिंकन के शांत उत्तर ने उसे तत्काल और सदा के लिए गंभीर समझदारी से निर्णय लेनेवाला व्यक्ति बना दिया। उसने सदा उदार हृदय रखा। इस घटना के बाद ही उसने अपनी पत्नी को पत्र में लिखा, "प्रशासनिक शक्ति और साहस—ये अत्यंत बहुमूल्य गुण हैं; राष्ट्रपति इस दिशा में हम सब से श्रेष्ठ हैं।" लिंकन की उदारता भी इस दृष्टि में कम नहीं है। इस पत्र को केवल उसका निजी सचिव निकोलाय ही जान सका। लिंकन और सेवार्ड की मृत्यु के पूर्व कभी किसी को पता नहीं चला कि सेवार्ड ने किस तरह लिंकन पर दबदबा जमाने के लिए विद्रोह किया था। इस घटना का विश्लेषण अनावश्यक है, परन्तु जितनी सतर्कता से हम इन घटनाओं का अध्ययन करेंगे, हम इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि लिंकन ने अपने प्रशासनिक तंत्र को इस संकट-काल में नष्ट होने के खतरे से बराबर बचाये रखा। इस मामले

में उसने इतनी दूरदर्शिता दर्शायी कि पहले जो कमजोरी की झलक नजर आती थी वह इसके समक्ष नगण्य ठहरती है।

जिस समय लिंकन ने सम्टर दुर्ग के बारे में निर्णय लिया वह अपनी सुदृढ़ स्थिति बना चुका था। इसके लिए जो विचार-विमर्श व सलाह-मशविरे हुए उनकी विस्तार से चर्चा करना अनावश्यक है। उस समय तक सम्टर दुर्ग और मेक्सिको दुर्ग को रसद व सैनिक भेजने की तैयारी कर ली गयी थी; भले ही इसमें कई भूलें भी रहीं, सेवार्ड ने भी विदेशमंत्री के रूप में इसमें हस्तक्षेप कर कुछ गड़बड़ी पैदा की। दक्षिणी कारोलीना के गवर्नर को एक घोषणा भेजी गयी जिसमें कहा गया कि सम्टर दुर्ग को रसद भेजी जा रही है। उसे विश्वास दिलाया गया कि यदि इस रसद को सुरक्षित पहुँचने दिया जायेगा तो सरकार बाद में दुर्ग के लिए दूसरा कोई अन्यथा कदम नहीं उठायेगी। हमारा इस मसले से केवल इतना ही सम्बन्ध है कि सम्टर दुर्ग में सैनिक न भेजकर केवल रसद ही भेजने का निर्णय लिंकन का ही निर्णय था। यह निर्णय भी उस समय तक नहीं लिया गया, जब तक उसके समक्ष यह स्पष्ट नहीं हो गया कि इस मामले में सीनेट और काँग्रेस का उसे सहयोग मिलेगा, साथ ही उत्तरी जनमत भी इसका समर्थन करेगा। यह सही निर्णय था क्योंकि इसमें स्पष्ट रूप से उत्तेजना को टाल दिया गया था; जबकि अमरीकी गणराज्य के अधिकार को मान्य रखा गया। परन्तु यह निर्णय बहुत विलम्ब के बाद लिया गया और इस देरी के कारण यह संभावना हो गयी थी कि सरकार को बुरी तरह अपमानित होना पड़ेगा।

अलाबामा राज्य के एक सज्जन ने जफर्सन डेविस को सुझाया कि जो संघर्ष छेड़ना है, उसमें देरी करना ठीक नहीं। उसने कहा—"जब तक तुम अलाबामा के लोगों के मुँह पर रक्त के छींटें नहीं दोगे (अर्थात् उन्हें युद्ध में नहीं घसीटोगे) वे दस दिन के अन्दर ही पुनः पुराने गणराज्य के सदस्य बन जायेंगे। ऐसे कई कारण हैं, जिससे हम समझ सकते हैं कि इन महोदय ने दक्षिण की संभावित पराजय का जो उल्लेख किया वह केवल मात्र शाब्दिक तर्क ही था। ऐसा लगता है कि इस सुझाव को अंगीकार करके जनरल बियरगार्ड को सम्टर दुर्ग को नष्ट करने के आदेश भेजे गये। बियरगार्ड ने दुर्ग-स्थित अन्डर्सन को इस पर आत्मसमर्पण के लिए कहा। अन्डर्सन की स्थिति बुरी हो गयी थी, भूखों मरने तक की नौबत आ गयी थी। उसने उत्तर दिया कि यदि उसे किसी भी तरह की रसद अथवा आदेश नहीं मिले तो वह १५ अप्रेल

को सम्टर दुर्ग छोड़ देगा। या तो बीयरगार्ड के आदेशों से अथवा किसी दूसरी गलतफहमी के कारण दक्षिणी संघ राज्य के तट-स्थित तोपखाने ने सम्टर दुर्ग पर १२ अप्रेल को गोलाबारी कर दी। दूसरे दिन सम्टर दुर्ग पूर्णतया अरक्षित हो गया। अन्डर्सन ने देखा कि वह जिस रसद-सामग्री की इतने दिनों से बाट देख रहा था वे जहाज़ दूर समुद्र में नज़र आ रहे थे, परन्तु इनसे उसे किसी भी तरह की सहायता नहीं की जा सकी। अन्डर्सन ने अत्यन्त प्रतिष्ठा के साथ समर्पण किया। १४ अप्रेल १८६१ रविवार को वह राष्ट्रीय ध्वजाओं के साथ किले से बाहर निकल आया। दक्षिणी संघराज्य की सेना ने अमरीकी गणराज्य के झंडे पर पूरे जोश के साथ गोलियाँ दागीं और इस तरह अपनी हार्दिक भावना अभिव्यक्त की। वरजीनिया और अन्य सीमान्त राज्यों को उनके निर्णय पर छोड़ते हुए—कि वे चाहें तो दक्षिणी संघराज्य का साथ दें—उत्तर ने हथियार उठा लिये।

युद्ध के आरंभ के लिए जो घटनाचक्र प्रस्तुत था, उसमें लिंकन ने अधिक योग्यता और निर्णायक व प्रभावशाली ढंग से अपना कर्त्तव्य पूरा किया। इस बात को उस समय उसके देशवासी नहीं समझ सके। अब उसके सामने ऐसे कर्त्तव्य थे, जिसके लिए उसे दूसरे ही ढंग की बौद्धिक विशेषताओं का परिचय देना था, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण योग्यता जो उसने अब तक दर्शायी थी। उसके सामने ऐसी स्थिति पैदा हो गयी जो पहले कभी नहीं थी। जिस सामान्य भावना के साथ उसने अपने हृदय व मस्तिष्क की महानता का इस भयंकर परीक्षणकाल में परिचय दिया आज उसके विश्लेषण करने की कोई आवश्यकता नहीं रही। राष्ट्रपति-काल में उसने जो भी कदम उठाये, उनमें से शायद ही कोई विवादग्रस्त नहीं होगा। उसके चरित्र के विभिन्न स्वरूप भी इस तरह के थे कि कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि वह उन्हें पूर्णतया समझ सका था। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो इसमें विस्मय प्रकट करते हैं कि कैसे उसके नाम के साथ 'महान व्यक्ति' की उपाधि जुड़ गयी। अगले अध्यायों में उसके इन्हीं कार्यों की विशेषता दर्शायी गयी है जिसके कारण उसे यह ख्याति प्राप्त हुई। उसकी ये विशेषताएँ ऐसी थीं जिनके कारण उसे खुले रूप में कोसा गया, अथवा हिचकिचाते हुए उसके कार्यों की सराहना की गयी।

सातवाँ अध्याय

युद्ध की स्थिति

लिंकन के राष्ट्रपति-काल के इतिहास का सिंहावलोकन करते समय यह जरूरी हो जाता है कि किस तरह गृहयुद्ध धीरे-धीरे गति करता रहा, उसका विशद अध्ययन किया जाय। तथापि इस संघर्ष की एक दो सामान्य विशेषताएँ हैं, जिन्हें प्राथमिक मान कर यथासमय उल्लेख भी किया जायेगा। ऐसा कदाचित् ही कहीं हुआ होगा जब युद्ध में भाग लेने वाले पक्ष पहले से ही यह जान गये हों कि इस युद्ध का स्वरूप क्या होगा। जब अमरीकी गृहयुद्ध छिड़ा तो उत्तर को सहज ही विजय पाने की आशा थी, परन्तु शीघ्र ही जैसी निराशा हुई और कुछ दिनों तक जैसी विपरीत स्थिति बनी रही उससे कई चतुर व्यक्तियों ने यह धारणा बना ली (ठीक उसी तरह की जैसी यूरोप में गृहयुद्ध के प्रारंभिक काल में लोगों की धारणा बन गयी थी) कि उनकी जीत की कहीं कोई संभावना नहीं है। आरंभ में यह पता नहीं लग सका कि यह काम कितना कठिन था और प्रारंभ में ही लंबे समय तक जो निराशा व पराजय का वातावरण बना रहा उसके कारण उन बाधाओं में मार्ग निकालने का उत्तर में जो साहस था वह भी अकारण ही छूट गया।

उत्तर के साथ कतिपय दास राज्य भी जुड़ गये जो पहले इस दिशा में संदेहास्पद स्थिति में झूल रहे थे। इस तरह इन राज्यों सहित उत्तर की सारी जनसंख्या दक्षिण की जनसंख्या से दुगुनी हो गयी। दक्षिण की जनसंख्या में दासों की संख्या भी बहुत बड़ी थी जो भले ही औद्योगिक या कृषि के कामों में लगाये जा सकते थे, परन्तु उन्हें सेना में भरती नहीं किया जा सकता था। इसी तरह भौतिक साधनों में भी उत्तर दक्षिण से अच्छी स्थिति में था। उत्तर की भौतिक संपत्ति में लड़ाई के दिनों में इतनी वृद्धि हुई जितनी शायद ही किसी आक्रामक शक्ति के पक्ष में हुई होगी। ये चीजें अंत में निर्णायक सिद्ध होती यदि उत्तर युद्ध को जारी रखते हुए उसे हार या जीत में निर्णायक रूप देने पर अड़ा रहता। परन्तु आरंभ में इन महत्वपूर्ण बातों का उत्तर के पक्ष में कोई प्रभाव

नहीं पड़ा, क्योंकि उत्तर के पास तत्काल लड़ने के लिए जो सेनायें थीं वे दक्षिण के मुकाबले में सशक्त नहीं थीं और न अधिक संख्या में ही थीं। दक्षिण का कड़ा मुकाबला करने की शक्ति जुटाने में कुछ समय लगा जो स्वाभाविक ही था और जिस लक्ष्य को प्राप्त करना था वह अत्यन्त ही कठिन था। उत्तर इस तरह की विजय नहीं चाहता था जिसके कारण उसकी सीमाओं में वृद्धि हो, राज्य में नये उपनिवेशों का विलय हो, अथवा युद्ध का हर्जाना वसूल किया जाय, इत्यादि। उत्तर दक्षिण को पूरी तरह इस रूप में जीतना चाहता था कि वहाँ गणराज्य की स्थापना पहले से भी अधिक दृढ़ आधार पर पुनः डाली जा सके। यदि इस तरह का निर्णय इस युद्ध से नहीं निकलता तो युद्ध उत्तर की दृष्टि में असफल सिद्ध होता। दक्षिण का भूभाग बहुत ही विस्तृत व सुदूर तक फैला हुआ था, ऐसे विशाल भूभाग को १९० लाख असैनिक लोगों द्वारा जीतने का काम साधारण नहीं था। टेक्सास प्रदेश को दक्षिण के नये संघराज्य में सम्मिलित नहीं भी करें तो दक्षिण के राज्य जो इसमें मिलकर एक राज्य के रूप में सामने आये थे, उनका क्षेत्रफल यूरोप के जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, बेल्जियम और हालैंड के सम्मिलित क्षेत्रफल से भी बड़ा था। इस विशाल क्षेत्र में औद्योगिक अथवा अन्य सैनिक महत्व के ऐसे केन्द्र भी तो नहीं थे जिन पर अधिकार कर लेने से सारा दक्षिण लड़खड़ा जाता। उत्तरी जनता ने जो महान कार्य किये उसकी सराहना करते हुए गृहयुद्ध-काल के ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसकी तुलना नेपोलियन द्वारा १८१२ में किये गये रूस पर महान साहसिक अभियान से की। इसमें अवश्य ही कुछ अतिशयोक्ति की गयी है।

दूसरी ओर दक्षिण की भौगोलिक स्थिति उत्तर द्वारा आक्रमण किये जाने पर उसके पक्ष में थी। सैनिक दृष्टिकोण के अनुसार दक्षिण की सेनाएं अंतर्मार्गों की सुदृढ पंक्ति में थी। इसका अर्थ यह हुआ कि सेना के आगे-पीछे के भाग अधिक दूर नहीं होकर निकट-निकट ही थे जिससे संकट के समय पूरी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता था। परन्तु उत्तर को यह लाभ नहीं था, उसकी सेनाएं दूर-दूर तक विभाजित थीं और एक-दूसरे को शीघ्र ही सहायता करने की अच्छी स्थिति में नहीं थीं। दक्षिण की सेनाएं आक्रमण की स्थिति में आक्रामक से एक ही स्थल पर संयुक्त मुकाबला करने की स्थिति में थीं और इसमें अधिक सैनिकों को उलझाना भी नहीं पड़ता था। इसके विपरीत आक्रामक को आक्रमण करने के लिए केन्द्रस्थल से बहुत दूर जाकर कार्यवाही शुरू करनी पड़ती थी। फलस्वरूप उसकी सारी गतिविधि से शत्रु-दल परिचित-

रहता था और उनके रसद व आवागमन का मार्ग सदा ही संकट में पड़ जाता था। यदि इस भौगोलिक स्थिति का कौशल से लाभ उठाया जाता तो सैनिकों की कमी को बहुत-कुछ पूरा किया जा सकता था। उत्तर की विशाल सैनिक-टुकड़ियाँ ऐसी परिस्थिति में बिना करारी चोट खाये दक्षिण में हाथ-पैर नहीं फैला सकती थीं। नौसेना में उत्तर दक्षिण से पहले ही बढ़ा-चढ़ा था। इनके द्वारा दक्षिण को जो विदेशी रसद प्राप्त होती थी उसे रोक देने के कारण भी दक्षिण के सैनिकों की हालत युद्ध के मध्य तक खस्ता हो गयी, परन्तु नौसेना का यह प्रभाव बाद में जाकर धीरे-धीरे लागू हुआ। दक्षिण ऐसी निराशाजनक स्थिति में भी नहीं था जैसी पहले दिखायी देती थी। उन्हें यह आशा थी कि वे प्रतिद्वन्द्वी के सम्हलने के पूर्व ही करारी चोट कर सकेंगे। यदि यह आशा पूरी भी नहीं होती तो भी दक्षिण ऐसा सुरक्षात्मक लम्बा युद्ध लड़ सकता था कि उत्तर उससे थक जाता।

दक्षिण वालों ने उच्च सैनिक स्तर पर युद्ध आरंभ किया। उत्तर में बाद में जाकर कहीं ऐसी स्थिति बन पायी। दक्षिण के औसतन लोग देहाती व खुले जीवन के आदी थे। सामान्यतया उनकी दिनचर्या कम आरामतलब कही जा सकती है। वहाँ सभी वर्गों के लोग युद्धाभ्यास व संघर्षों को सामान्य मानते थे और वहाँ के लोगों की इस दिशा में गहरी रुचि भी थी। दूसरी ओर उत्तरवासी व्यवसायिक प्रवृत्ति के थे। उनके विचारों में मारकाट घृणाजनक व युद्ध गये-गुजरे जमाने की बातों की तरह था। जिस तरह दक्षिण की श्रेष्ठता सैन्य-कला में थी उसे उत्तर शनैः-शनैः छू सका। पूरा-पूरा देखें तो बाहरी खेल-कूद के अभ्यस्त दक्षिणवासी संख्या में अधिक युद्धोचित स्वभाव वाले थे। न तो वह आरामतलब ही थे और न उत्तरवालों की तरह युद्ध से उपरत ही। उनकी राय में युद्ध जीवन के लिए स्वाभाविक था। उत्तरवालों ने कुछ ही समय पूर्व दृढ़ता के साथ देशभक्तिपूर्ण बलिदान करते हुए अपने सैनिक जीवन का परिचय दिया और उसी तरह की संतुलित भावना प्रकट की, जैसी व्यवसायी जगत में पायी जाती है। वह समय दूर नहीं था जब उन्होंने दक्षिणी सैनिकों के समान ही कुशलता ग्रहण कर ली। परन्तु दक्षिण के सैनिकों में जो श्रेष्ठता की भावना थी, उसके फलस्वरूप उनके सैन्य-जीवन में नैतिकता बनी रही तथा उसका प्रभाव शत्रुपक्ष पर भी पड़ा। विशेषकर ये सैनिक अधिकारी उस समय अपने समय के महारथी माने जाते थे, भले ही बाद में उन्हें ऐसा समझने जैसी कोई बात नहीं थी। उस समय की

स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि युद्ध के आरंभ से लेकर लंबे समय तक बाजी दक्षिण के हाथों में रही। नेतृत्व के मामले में दक्षिण को एक दिशा में स्पष्ट लाभ होने की संभावना भी थी। परन्तु कई मामलों में जहाँ उसे लाभ उठाने का अवसर भी मिला यह संभावना भ्रामक सिद्ध हुई। अमरीकी गणराज्य में ऐसे प्रशिक्षित सैनिक अधिकारी बहुत थोड़े थे जो सेना की सेवा में उस समय थे। उत्तर और दक्षिण में समान रूप से ही ऐसी सेनाओं का नेतृत्व व संचालन करना था जिनके सैनिकों ने युद्धाभ्यास भी इसी युद्ध से आरंभ किया। उस क्षेत्र में जहाँ सबसे अधिक सैनिकों को जुटाया गया वहाँ सैनिक कमान में सधे हुए निर्णयों की कमी बुरी तरह महसूस की जाने लगी। दक्षिण को अच्छे सैनिक अधिकारी प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त उन्हें दो ऐसे सुयोग्य व कुशल अधिकारी भी मिले—जो हृदय से अवश्य दुखी थे, परन्तु वरजीनिया राज्य के प्रति वफादार होने के नाते उस राज्य के दक्षिण में मिलने पर दक्षिण के साथ हो गये। यदि इनकी सूझ-बूझ और सेवा का लाभ नहीं उठाया जाता तो दक्षिण की जो लाभजनक आरंभिक स्थिति नजर आती थी वह नहीं रहती। युद्ध की स्थिति, विशाल क्षेत्र, सैनिक यातायात की कठिनाइयाँ तथा सैनिकों में प्रशिक्षण की भारी कमी ऐसी समस्यायें थीं कि कितना ही कुशल सेनाधिकारी क्यों न हो, उसे प्राप्त अवसर का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाने देती थीं।

इस युद्ध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकारी ली और जेक्सन स्टोनवाल माने गये। ली सम्पूर्ण संघर्ष-काल तक जीवित रहा परन्तु स्टोनवाल १८६३ में युद्ध-क्षेत्र में मारा गया। वुल्सले जिसने मोल्तके और ली दोनों से बात की थी कहता है कि ली मोल्तके से भी अधिक कुशल था। आज के इतिहासकार भी उसे महान सेनाधिकारी मानते हैं। जेक्सन के बारे में ली ने जो विचार दर्शाये वह पर्याप्त हैं। दक्षिण को जो सौभाग्य पहलेपहल युद्ध में प्राप्त हुआ, वह केवल इन दो व्यक्तियों पर ही आधारित नहीं था। युद्ध के आरंभ में ऐसे कई जनरल नियुक्त किये गये जो युद्ध की समाप्ति तक उस पद पर काम करते रहे।

इन सैनिक आधकारियों के साथ ही प्रशासन का स्वरूप दक्षिण में निर्धारित कर लिया गया था, यह सौभाग्य की बात थी। जफर्सन डेविस जैसे परीक्षित राजनीतिक नेता को युद्धकाल के अधिकार प्रदान किये गये, जब कि लिंकन को इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए कॉंग्रेस से संघर्ष करना पड़ा। इन दोनों पक्षों के दोनों नेताओं के अनुभव में भी आकाश-पाताल का अंतर था। लिंकन ने

जिस तरह की सैनिक कार्यवाहियों में भाग लिया वे सीमित थीं। काँग्रेस में इनका मनोरंजक वर्णन करते हुए उसने बताया कि मानों वह लोगों के प्याज और बतखें चुराने जैसा काम था। उसके अन्य मंत्रीगण भी उसीकी तरह इस मामले में कोरे थे। उनका सैनिक सलाहकार स्काट इतना पस्त हो गया कि उसने अपने पद से अवकाश ग्रहण कर लिया। ऐसी स्थिति में कुछ दिनों तक यह समस्या खड़ी हो गयी कि उसके स्थान पर किसे नियुक्त किया जाय। जफर्सन डेविस ने पूर्ण अनुभवी के रूप में काम आरंभ किया। वह युद्धमन्त्री व सीनेट की युद्ध समिति का अध्यक्ष रह चुका था, अतएव उसे सैनिक मामलों की पूरी जानकारी थी। इसके अतिरिक्त वह सैनिक भी रह चुका था। मेक्सिको-युद्ध में उसने एक दस्ते का नेतृत्व भी सम्हाला। जफर्सन डेविस ने राष्ट्रपति-पद पर बने रहने की अपेक्षा सैनिक पद पर काम करना पसन्द किया था। वह सैनिक रह चुका था और उसका सैनिक अनुभव अपने सैनिक अधिकारियों से कम नहीं था। ऐसी स्थिति में युद्ध के आरंभ में उसने सेना में जो हस्तक्षेप किये वे स्वाभाविक ही थे। इसके लिए उसे दोष नहीं दिया जा सकता। इतिहासकार लिंकन के हस्तक्षेप की चर्चा करते समय कहते हैं कि वह कभी-कदाच समय पर हस्तक्षेप करता था। इसके विपरित डेविस का यह आये दिनों का हस्तक्षेप असहनीय था। वुल्सले ने निष्पक्ष होकर जो उल्लेख किया है उसके अनुसार इस हस्तक्षेप की नीति ने उसके ही मार्ग में बाधा पहुंचायी। सैनिक अधिकारी ली के कामों में उसने जो हस्तक्षेप किया वह यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो बर्दाश्त नहीं कर सकता था, परन्तु ली अपनी मित्रता और वफादारी के कारण ही इसे सहन करता रहा। जोसफ जान्स्टन के साथ उसने जो हस्तक्षेप की नीति अपनायी उसके फलस्वरूप कड़ा तनाव पैदा हो गया और डेविस ने उसे अनुचित ढंग से अपने पद से निरुक्त भी कर दिया। जो भी हो, जब दक्षिण की स्थिति संकट-ग्रस्त हो गयी तो डेविस उससे निपटने के लिए न तो कोई मार्ग स्वयं ही निकाल सका और न उसने अपने सैनिक अधिकारियों को ऐसा मार्ग निकालने दिया। वे यदि चाहते तो साहसी नीति अपना कर इसे पूरी तरह टाल सकते थे और अच्छे-से-अच्छे अवसर का भी लाभ उठा सकते थे। डेविस ने अपनी इच्छा-शक्ति का प्रदर्शन अंत में किया—वह भी केवल रक्तपात रोकने की दिशा में एक प्रस्ताव के रूप में। जब इसकी कोई कीमत नहीं रह गयी थी। यह निरर्थक था, क्योंकि युद्ध के पहले यदि यह कदम उठाया जाता तो हजारों

लोगों का जीवन भी बचाया जा सकता था। इस अल्पकालीन युद्ध में राजनैतिक स्थिति पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। हम इसका विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट झलकने लगेगा कि इस दिशा में दक्षिण की लाभजनक स्थिति थी। दक्षिण के लोगों में शासन करने अथवा आदेश मानने व अनुशासित रहने की परम्परागत भावनाएं उत्तर के लोगों की अपेक्षा अधिक थीं। उत्तर में अटपटी जनतांत्रिक भावनाएं, विचारों व विरोधाभासों से परिपूर्ण लोगों की भीड़ थी। दक्षिण के लोगों की उपरोक्त भावना उनको संकटकाल में एक बनाये रखने में सफल रही। इसके अतिरिक्त वे लोग एक ऐसे उद्देश्य को लेकर लड़ रहे थे जिसके कारण एक सामान्य व्यक्ति भी सामान्य नेता के प्रति श्रद्धा रखकर कार्य कर सकता था, और उन्हें किसी बड़े नेतृत्व की आवश्यकता भी नहीं थी। यह केवल दासप्रथा का ही मसला था, जिसे लेकर उन्होंने स्वतंत्रता के अधिकारों पर जोर दिया, परन्तु युद्ध आरंभ होने से लेकर अंत तक वे इसी स्वतंत्रता के उद्देश्य को सामने रखकर लड़ते रहे थे। दूसरे मसलों का वहाँ-पता भी नहीं था। प्रारंभ में कुछ छुटपुट संघर्षों में विजय प्राप्त हो जाने के कारण दक्षिण के सामान्य लोग भी अपने को उत्तरवासियों से श्रेष्ठ समझने लगे थे। यह ठीक उसी तरह था जैसे पहले दक्षिण के काँग्रेस-जन अपने को-उन उत्तरी राजनीतिज्ञों से उत्कृष्ट मानने लगे थे जो उत्तर में जनतंत्र की भ्रामक भावना से कभी-कभी चुन लिए जाते थे। इस तरह इस स्वतंत्रता के दावे ने ऐसा सांघातिक गर्व उनमें पैदा कर दिया जैसा कभी-कभी प्राचीन राष्ट्र में पाया जाता है। सम्पूर्ण उत्तर के लिए इस तरह का उद्देश्य बनाकर उसके लिये संघर्ष करना असंभव था। वे अपनी स्वतंत्रता का संघर्ष नहीं कर रहे थे। वे यह विचार करना भी निंदनीय मानते थे कि किसी प्रदेश को जीतने के लिए युद्ध किया जा रहा है। वे उस राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिये लड़ रहे थे जिसे वे मूल्यवान समझते थे। यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ सकता था कि ऐसे कठोर शत्रु के साथ एकता बनाये रखने के लिए इस तरह का रक्तपात-भरा युद्ध लड़ने में क्या बुद्धिमानी है। इसलिए यह बात आश्चर्यजनक लगेगी कि सम्पूर्ण उत्तर में एकता के नाम पर पूर्ण उत्सर्ग की भावना का अभाव होने पर भी वहाँ के प्रत्येक नर-नारी में अपूर्व देशभक्तिपूर्ण गौरव पैदा हो गया था जिसने सम्पूर्ण उत्तर को युद्ध की दिशा में अग्रसर कर दिया। इस युद्ध में राजनीतिक तत्त्व इतने शक्तिशाली हैं कि उसके कारण अंत में विस्मयजनक परिणाम निकलने वाले थे। उत्तर ने ऐसे समय

झुक जाना स्वीकार कर लिया जब उसे अपनी सैनिक विजय की पूर्ण आशा हो चुकी थी। उत्तर को संगठित बनाये रखना राष्ट्रपति लिंकन के लिए एक महान और दुसाध्य कार्य था।

उस पाठक को—जिसे सैनिक गतिविधियों में रुचि नहीं—केवल कुछ रोमांचक संघर्षों के अतिरिक्त इस युद्ध के इतिहास में कहीं आनन्द नहीं आयेगा। दक्षिण को काबू में लाने के समय तक हमें इस तरह के कई अरुचिकर वृत्तान्तों को पढ़ना होगा। हमें ऐसी निरर्थक कहानियों में लीन होना पड़ेगा कि कैसे जनरल क ने जनरल ख को अपने पद से हटा दिया जबकि इससे कोई मकसद नहीं निकलता था, परन्तु बात केवल यही थी कि जनरल क जनरल ग का साथ नहीं दे रहा था। उस समय सैनिक अधिकारियों को जिस कठिनाई में से गुजरना पड़ता था इसके कारण ऐसे कदम उठाने जरूरी हो जाते थे। हमारा यह अनुमान स्थिति की विकटता के प्रति जानकारी नहीं होने के कारण ही पैदा नहीं हुआ। प्रारंभ में सैनिक योग्यता की जो भारी कमी महसूस की गयी थी उसकी पूर्ति बाद में युद्ध से प्राप्त अनुभवों ने सैनिकों में स्वयमेव कर दी। ग्रान्ट, शरमन और शेरिडन जैसे सेना-संचालक भी सही माने में सैनिक भी इसी युद्ध में बन सके, सैन्य संचालक बनना तो बहुत दूर रहा। बड़ी सेना को संचालित करने के लिए उच्च सैनिक कमान में इस तरह की कमी बुरी तरह महसूस की जा रही थी। इसके अतिरिक्त सभी विभिन्न विचारों के अधीनस्थ जनरलों पर नियंत्रण करना भी जरूरी था और रणनीति के निर्धारण में उच्च योग्यता व कुशलता आवश्यक थी। सैनिकों में युद्ध के प्रति सहानुभूतिपूर्ण तीव्र भावना पैदा करने के लिए भी योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता महसूस करना स्वाभाविक ही है। हमें यह बताया जाता है कि दोनों ओर ही हजारों अजाने व्यक्तियों ने वीरता से प्राणोत्सर्ग किये। इस बात की सराहना की जाती है कि कैसे ली और जैक्सन ने कुशल नेतृत्व से कई अवसरों पर अपने से अधिक शक्तिशाली सेना को पछाड़ दिया। बाद में उत्तर में भी कई नये सैनिक अधिकारी अपनी निपुणता और योग्यता के कारण सैनिक इतिहास में सामने आने लगे। परन्तु हमें यहाँ एक दूसरी ही भावना की सराहना करने के लिए कहा जाता है। उत्तर में इस युद्ध के संचालन के लिए अजीब ढंग से प्रशासनिक ढांचे का गठन किया गया जो यह कार्यभार उठाने में अयोग्य था। इसके साथ-साथ काँग्रेस और जनमत भी था जो इस दिशा में पूर्ण सहयोग व समर्थन भी नहीं दे रहा था। सैनिक

सेवा में कितने ही बुद्धिमान व्यक्ति थे परन्तु उनमें से कोई ऐसा नहीं था जो आरंभ में ही निपुणता और साहसिक भावना को संगठित कर युद्ध की महान जिम्मेदारियों को उठाने को तैयार होता और साथ ही वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए था जिसकी योग्यता में सम्पूर्ण नागरिक जनता का विश्वास हो। इस पुस्तक में युद्ध का यह इतिहास, इसकी पुनरावृत्ति मात्र है कि प्रशासन के समक्ष किस तरह की कठिनाइयाँ थीं और कैसे उन्हें हल किया गया।

इस युद्ध का सैनिक दृष्टि से अध्ययन करने पर हमें पता चलेगा कि इसमें सबसे अधिक मनोरंजक विषय दोनों पक्ष की सेना के बारे में है। दोनों ही ओर सैनिकों का व्यक्तिगत स्वरूप उच्च कोटि का था। दोनों ओर ऐसी परिस्थिति व वातावरण था जिनके कारण अनुशासन शिथिल हो गया। कई संघर्षों में हमें दोनों सेनाओं के मध्य पाये जाने वाले इस समान स्वरूप के दर्शन होते हैं। परन्तु इसकी झलक दोनों ही ओर प्रशासन-तंत्र में नजर आती है कि कैसे उन्हें अपने उद्देश्यों के लिए विशाल सेना जुटाकर उसका संचालन करना पड़ा। यदि हम दक्षिण की तत्सम्बन्धी प्रशासनिक प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन करें तो यह ज्ञात होगा कि आरंभ में सैनिक संगठन के मामलों में वहाँ की सरकार को इस दिशा में अच्छी सलाह प्राप्त हुई थी। उदाहरणतया, दक्षिण ने आरंभ से ही घुड़सवार सेना को अधिक सुदृढ़ और कुशल बनाने की ओर ध्यान दिया। इस तरह की कुशल घुड़सवार सेना केवल मात्र सौभाग्य से ही प्राप्त नहीं हो जाती।

दक्षिण ने जिस तरह का साहसिक अभियान आरंभ किया उसके परोक्ष लाभ भी उसे प्राप्त हुए। अतएव वहाँ राजनीतिज्ञों के समक्ष सैन्य संगठन, संचालन और रसद जुटाने के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण समस्याएं शायद ही थीं। दक्षिण का असैनिक वर्ग इस युद्ध की सफलता प्राप्ति के लिए जुट गया। इसके लिए जिस तरह साधन व सामग्री जुटानी पड़ी वह अत्यंत ही कठिन कार्य था। दक्षिण के राज्य जो उत्तर से अधिक स्वतंत्रता की माँग कर रहे थे, यह अच्छी तरह जानते थे कि इसकी पूर्ति तभी संभव हो सकती है जबकि वे दक्षिणी संघराज्य के सक्रिय व दृढ़ सदस्य बने रहें। इसलिए उत्तर की अपेक्षा दक्षिण सरकार के लिए इस मामले में स्थिर नीति बनाये रखना अधिक सरल था। दक्षिणी भूभाग खेतिहर प्रदेश होने तथा कृषिजीवी जनता के छितराये रहने के कारण प्रारंभ में जब युद्ध के लिए स्वयं सैनिक भरती करने का काम आरंभ हुआ तो उसमें अधिक सफलता नहीं मिली। फिर भी वहाँ इस तरह की

स्थिति होने के कारण सैनिक दृष्टि से अनिवार्य रूप से कड़ाई लागू करने के प्रयत्नों में सफलता प्राप्त हुई।

अब हमारी दूसरी कहानी प्रारंभ होती है। उत्तर में अनिवार्य सैनिक सेवा इसका महत्वपूर्ण अंग है। अनिवार्य सेवा लागू किये जाने के पूर्व किस तरह की सैन्य व्यवस्था व कैसे नियम थे, इसका टेक्नीकल विवरण विस्तारपूर्वक रखने से ही समझा जा सकता है। किसी नौसिखिये द्वारा उसे संक्षिप्त में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करने में कोई भी बात ठीक से पल्ले नहीं पड़ सकेगी। फिर भी लिंकन का प्रशासन तंत्र उस समय किस दशा में था इस पर विचार करना आवश्यक है। इस प्रशासन तंत्र को अमरीकी युद्धों अथवा बाहरी विश्वयुद्धों का तनिक भी अनुभव नहीं था जिससे कि इस दिशा में उसको मार्गदर्शन प्राप्त होता। हमें यह नहीं स्वीकार कर लेना चाहिए कि जब लिंकन और उनके मंत्रिमंडल के समक्ष सही व स्पष्ट स्थिति थी और वे इसे स्वीकार भी करते थे, तो उन्हें यह चाहिए था कि वे प्रारंभ से ही पूर्वनिर्धारित नीति के अनुसार एक सेना खड़ी करने और उसे बनाये रखने के प्रयत्न करते। उत्तर की स्थिति दक्षिण से बुनियादी तौर पर ही विपरीत थी। उत्तर को कभी भी न तो क्रांति-काल में कष्ट ही सहने पड़े और न उसे 'क्रांति' के कंटकाकीर्ण मार्ग से गुजरना पड़ा। वहाँ कभी भी यह भय पैदा नहीं हुआ था कि उनके राज्य को कोई जीतना चाहेगा। (वरन् सदा यही भय बना रहा कि कहीं वे ही किसी को जीतने नहीं चल पड़ें।) अतएव वहाँ ऐसी कोई बात उस समय थी ही नहीं जिसके कारण यह सोचा गया हो कि सामान्य समय में प्रशासन को जो अधिकार प्राप्त होते हैं उससे भी अधिक अधिकार उन्हें दिये जाएँ। सेना की समस्या को हल करने के लिए सैनिक दृष्टिकोण से भी इस तरह के अधिकार प्रशासन को दिये जाने जरूरी थे। आरंभ में अनिवार्य सैनिक सेवा की ओर किसी ने ध्यान तक नहीं दिया। यह कभी कल्पना भी नहीं की गयी कि गणराज्य की छोटी-सी सेना को स्वैच्छिक सैनिकों की भरती से विशाल रूप प्रदान किया जा सकता है। सेना को कुछ अधिक विकसित बनाने की दिशा में थोड़े-बहुत जो प्रयत्न भी किये गये वे असफल रहे। राज्यों में जो उस समय नागरिक सैनिक व्यवस्था थी वह दोषपूर्ण व पेचीदा थी, और इसे बाद में रद्द भी कर दिया गया।

एक ऐसी विशाल स्वैच्छिक सैनिक शक्ति खड़ी करने की आवश्यकता थी जिसका सर्वोच्च सेनापति राष्ट्रपति होता। गणराज्य की सेना का सेनापति वह संविधान के अनुसार पहले से ही था। परन्तु इन सैनिकों की भरती राज्यों के

गवर्नर ही कर सकते थे जो राष्ट्रपति के अधीनस्थ नहीं थे। वे लोग अपने राज्यों में उसी तरह स्वतंत्र थे जैसे विश्वविद्यालयों के उपकुलपति और गिरजाघरों के पादरी अपने कार्यों में स्वतंत्र होते हैं। इन गवर्नरों का, जो योग्य देशभक्त और दृढ़निश्चयी व्यक्ति थे, उपयोग किया जाना था तथा इनसे इस दिशा में सदा विचारविमर्श किया जाना भी जरूरी था। इसके अनुसार, आरंभ में उत्तर को अपनी सेना खड़ी करने और उन्हें बनाये रखने की दिशा में ऐसी नीति अख्तियार करनी पड़ी जो इन स्वतंत्र अधिकारियों की देखरेख में बनी। ये लोग कभी भी इकट्ठे नहीं मिल पाये और सदा ही जनता की निराश भावना देखकर विचलित हो जाते अथवा बिना कारण ही निरर्थक भीषण संघर्ष के लिए जोर देने लग जाते थे। यह निर्णय करना असंभव है कि ऐसी स्थिति में लिंकन ने समस्या के हल के बारे में भला-बुरा क्या सोचा होगा, परन्तु यह स्वाभाविक लगता है कि आरंभ में ऐसे कई विपरीत निर्णय भी लिये गये। उदाहरण के तौर पर एक ऐसी प्रशिक्षाहीन सैनिकों की रेजीमेंट तैयार की गयी जिसमें प्रशिक्षित सैनिक रेजीमेंट के सैनिकों की अपेक्षा दुगुने सैनिक थे। इसी तरह की कई बातें थीं। राष्ट्रीय स्तर पर भरती तथा अनिवार्य सेवा (जिसे बाद में लागू किया गया) की सफलता के लिए यह जरूरी था कि राज्यों व स्वायत्त संस्थाओं के अधिकारियों से पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाय। इन राज्यों और संस्थाओं के अधिकारी एक तरह से स्वतंत्र थे।

उत्तरी व दक्षिणी सेनाओं का संचालन निश्चय ही अधिकांश नवप्रशिक्षित अधिकारियों को सौंपा गया क्योंकि 'वेस्ट पाइन्ट' सैनिक शिक्षा-केन्द्र से प्रशिक्षित अधिकारी अवकाश ग्रहण कर चुके थे और ऐसे पुराने प्रशिक्षितों की संख्या भी सेना में अधिक नहीं थी। सेना की आवश्यकताओं को देखते हुए ऐसे लोग अत्यंत ही अल्प संख्या में थे। इससे नव प्रशिक्षितों को बुलाना ही पड़ा, केवल इतना ही नहीं, उन्हें कुछ मामलों में कई महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त भी किया गया। अमरीका में इस तरह की परम्परा है कि कोई भी आत्मविश्वासी व्यक्ति किसी भी तरह के काम में सफलता प्राप्त कर सकता है। अमरीकी इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं कि शांतिकाल में भी ऐसे व्यक्तियों ने अपनी सैनिक निपुणता का प्रदर्शन किया था। अतएव इसी भावना के वशीभूत हो कई योग्य निपुण राजनीतिक व्यक्तियों की—चाहे वे डेमोक्रेट थे अथवा रिपब्लिकन—महत्वपूर्ण सैनिक पदों पर नियुक्ति की गयी और उस स्थान पर अनुभवी अपरिचित प्रशिक्षित सैनिक अधिकारी को अवसर नहीं दिया गया

जिसकी नियुक्ति लाभप्रद हो सकती थी। इन लोगों को नियुक्त नहीं करना मूर्खता भी होती क्योंकि ये नेता लोग प्रभावशाली होने के कारण अपने राज्यों से हजारों स्वैच्छिक सैनिक जुटा सकने की स्थिति में थे। इस गृहयुद्ध ने लोगों को पूर्ण प्रशिक्षित सैनिक अधिकारी के महत्व के बाद में पूरी तरह समझाया। 'वेस्ट पाइन्ट' में प्रशिक्षित कुछ अधिकारी अयोग्य निकले और उत्तर व दक्षिणी सेनाओं के नवशिक्षित अधिकारी इस दिशा में पूर्ण योग्य प्रमाणित हुए। परन्तु उन लोगों ने जिन्होंने केवल शौक के लिए सैनिक जीवन चुना अपने को चार वर्ष के संघर्ष काल में तनिक भी योग्य प्रमाणित नहीं किया। इस युद्ध के वे जनरल जिन्हें आज भी स्मरण किया जाता है भले ही नागरिक जीवन में से आये थे, परन्तु उन्होंने अपने युवाकाल में पूर्ण सैनिक शिक्षण प्राप्त किया था। निश्चय ही यह कहीं भी प्रकट नहीं होता है कि प्रशासन ने ऐसी नियुक्तियाँ करते समय योग्यता की ओर ध्यान नहीं दिया हो, उसने ऐसे लोगों को प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया, परन्तु पहले-पहल कई नियुक्तियाँ अस्तव्यस्त ढंग से करनी ही पड़ीं क्योंकि ऐसा कोई प्रक्रिया तंत्र नहीं था जिससे योग्यता के स्तर पर छांट की जा सके। एक महत्वाकांक्षी प्रशिक्षित सैनिक द्वारा किसी अजाने अनुभवहीन व्यक्ति के नीचे काम करते समय इस तरह की भावना का प्रदर्शन करना स्वाभाविक ही था जैसी शर्मन जैसे जनरल ने अपने एक मित्र को पत्र में दर्शायी—"श्री लिंकन की मन्शा मेरा तथा सेना का अपमान करने की है।" इसके कारण 'वेस्ट पाइन्ट' के सैनिक अधिकारियों व नवशिक्षितों के बीच वादविवाद भी उठ खड़ा हुआ। यह विवाद पश्चिमी सेनाधिकारियों और पूर्वी सेना के नवशिक्षितों में कई दिनों तक जारी रहा। नवशिक्षितों का अपने पक्ष में भी कुछ कहना अर्थ रखता था। वे लोग इन पुराने चावलों को यह दोष देते थे कि इनके दिमाग में एक बात अभी तक घर किये हुए है कि 'दक्षिण अजेय' है। इस सारे मसले में गंभीरता अथवा अस्वाभाविकता जैसी कोई बात नहीं है। बाद में जो राजनीतिक विरोध सामने आया उसने यह आरोप लगाया कि "सामान्यतया सेना में नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर नहीं की जाती हैं तथा लिंकन का प्रशासन-तंत्र अनुचित राजनीतिक प्रभावों के वशीभूत हो योग्य व अनुभवी व्यक्तियों को अपने पद से हटा देता है।" यह जो सामान्य दोषारोपण है केवल कुछ घटनाओं पर आधारित है। इनमें जो भी महत्वपूर्ण विशेषता की घटना है, उस पर अगले अध्याय में विचार किया जाएगा।

उस पाठक के लिए जो इस युद्ध का रुचिपूर्वक अध्ययन करना चाहता है

यहाँ तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ये परिस्थितियाँ वास्तविक युद्ध के लिए कई माने में महत्वपूर्ण थीं। निश्चय ही ये नीरस हैं। इसके साथ ही तटवर्ती घटनाओं तथा सुदूर पश्चिम में जो छुटपुट संघर्ष हुए उनका उल्लेख छोड़ दिया गया है। उसके साथ ही उत्तर की रणनीति में जो गम्भीर शंका पैदा हो गयी थी, उसकी चर्चा यहाँ नहीं करके बाद में की गयी है।

एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि उत्तर की नौसैनिक शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। भले ही दक्षिणी नाविकों ने कतिपय साहसिक अभियान भी किये, परन्तु उत्तर की नौसेना ने दक्षिण के कई बंदरगाहों पर अधिकार कर लिया और दक्षिण के समुद्रतट के चारों ओर घेरेबन्दी डालकर विदेशी सहायता व रसद आदि पहुँचना असंभव कर दिया। उत्तर ने यह कार्य उस समय के पूर्व ही कर लिया जबकि उसकी स्थल सेना पूर्ण सुसज्जित व दक्षिण के मुकाबले की नहीं हो गयी। अब हम स्थल की ओर ध्यान देंगे तो देखेंगे कि प्रारंभिक युद्ध के बाद ही दोनों शक्ति गुट्टों के मध्य राजनैतिक सीमा विभाजक मेरीलैंड, पश्चिमी वरजीनिया, केन्टकी और मिसूरी के राज्यों का दक्षिणी सीमा क्षेत्र था। बाद में जब दक्षिणी सेनाओं ने अभियान किया तो उन्होंने केन्टकी और मिसूरी के सैनिक महत्व के विशाल भूभाग पर अधिकार कर लिया। इस सीमा को काटते हुए अटलांटिक तट के निकट ही समानान्तर पर्वतीय शृंखलाएं अल्लगनीज और अप्पालाशियन फैली हुई हैं। ये पर्वत-शृंखलाएं इस भूभाग को दो युद्ध-क्षेत्रों में बाँट देती हैं। एक संकुचित भाग पूर्वी युद्ध क्षेत्र रहा, तथा दूसरा पश्चिमी विशाल क्षेत्र है जिसका मार्ग इन पर्वतश्रंखलाओं के मध्य से होकर जाता है। ये पर्वतशृंखलायें इन दोनों रणक्षेत्रों को अंत में एक दूसरे से पूर्णतया अलग कर देती हैं।

पूर्वी युद्ध क्षेत्र में वाशिंगटन शहर था जो अमरीकी गणराज्य की राजधानी थी और कई कारणों से यह उत्तर का महत्वपूर्ण स्थल भी था। सैनिक व राजनैतिक दृष्टिकोण से वाशिंगटन का यह महत्व था कि यदि वह शत्रुओं के हाथ पड़ जाता तो अन्य राष्ट्रों द्वारा दक्षिणी संघराज्य को मान्यता मिलने की संभावना प्रबल हो जाती। यह शहर ठीक पोटोमा क्षेत्र की सीमा पर स्थित है। इस नगर को युद्धकाल में पीछे से घिर जाने का भी संकट था। दोनों पर्वत श्रेणियों के मध्य में सेनेन्डा नदी बहती थी जो वहाँ मध्यवर्ती उपजाऊ क्षेत्र को सींचती थी। उत्तर की ओर बहने वाली यह नदी वाशिंगटन के उत्तर पश्चिम में एक

स्थान पर पोटोमाक में प्रवेश करती है। नदी का बड़ा भाग दक्षिण के अधिकार में था। नदी रिचमंड के निकट व वाशिंगटन तक ऐसा जल बंदरगाह बनाती थी कि रिचमंड से सेनाएं ठीक वाशिंगटन के पीछे की ओर आसानी से उतारी जा सकती थीं। वाशिंगटन से सौ मील की दूरी पर रिचमंड शहर था। अलाबामा स्थित मोंटगुमरी को पहले दक्षिणी संघराज्य अपनी राजधानी बनाना चाहता था, परन्तु बाद में रिचमंड को राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दक्षिणी लोगों की दृष्टि में इस सुन्दर भव्य नगर का कोई मूल्य नहीं था। युद्ध के अंतिम दिनों में रिचमंड में इन लोगों ने अपनी सेना एकत्रित कर ली और वहाँ कड़ी मोर्चाबन्दी की तथा इसे अपनी अवेध रणस्थली बनाया। इस क्षेत्र का मध्यवर्ती भू-भाग जो दुर्गम पहाड़ी प्रदेश था दक्षिण के अधिकार में था। इस प्रदेश में एक बड़ी नदी के अतिरिक्त कई सहायक नदियाँ भी थीं, जिनके नामों से हम शीघ्र ही परिचित हो जायेंगे। यद्यपि उत्तरी स्थल सेना द्वारा आक्रमण करने की दिशा में ये नदियाँ बाधक सिद्ध हुई परन्तु नौसेना के लिए इन्होंने सर्वोत्तम सुविधाएं प्रस्तुत कीं। इसके कारण ही समुद्रतट तक सुरक्षित आवागमन संभव हो सका।

युद्ध के पश्चिमी क्षेत्र में जो सीमा क्षेत्र था वह इस भू भाग में बसने वाली उत्तर व दक्षिण की जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक विशाल था; इसके फलस्वरूप उत्तर के अभियानों में धीमी गति आना स्वाभाविक था। इस क्षेत्र में आक्रामक के लक्ष्य का पता नहीं चल सकता था। आक्रामक सेना इस विशाल सीमा क्षेत्र में शत्रु का ध्यान बँटाने के लिए कहीं भी प्रत्याक्रमण अथवा कुछ स्थलों पर गंभीर आक्रमण कर सकती थी। क्षेत्र इतना विशाल था कि शत्रु के आवागमन व संचार-व्यवस्था पर आक्रमण करके उसे भंग किया जा सकता था। इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि यहाँ के जलमार्गों ने उत्तरी नौसेना को अपूर्व सैनिक लाभ पहुँचाये। उत्तरी स्थल सेना जो दक्षिण की तुलना में कमजोर थी उस कमी की पूर्ति नौसेना ने इन जलमार्गों पर अधिकार करके पूरी कर दी। उत्तरी नौसेना की तोपोंवाली नावों ने इन जलमार्गों में प्रवेश कर शत्रु को बुरी तरह परेशान किया। उत्तर अपनी सैनिक-नावों द्वारा मिसीसिपी पर अधिकार करके दक्षिण का सम्बंध मेक्सिको-स्थित बंदरगाहों से समाप्त कर सकता था और इस तरह यूरोप से दक्षिण का सम्बंध पूर्णतया नष्ट किया जा सकता था। मिसीसिपी नदी उत्तर के अधिकार में चले जाने पर दक्षिण को इस विशाल भूभाग तथा महत्वपूर्ण साधन-स्रोतों से

हाथ धोना पड़ा। मिसीसिपी नदी की सहायक नदियों, विशेषकर टेनेस्सी और ओहियो में प्रवेश कर शत्रु के नौसैनिक पोत दक्षिण के अन्तर्प्रदेश में गहराई तक प्रवेश करके उसके संचारवहन-साधनों को नष्ट करने में समर्थ हो सकते थे। दक्षिण को इस संकट से बचने के लिए इन नदियों पर विशाल दुर्ग व सैनिक चौकियाँ स्थापित करके ही संतोष करना पड़ा। आरंभ में उत्तरी सेना के आक्रमण इन्हीं किलों पर हुए और उन पर अधिकार जमाना वे अधिक महत्वपूर्ण मानते थे।

दक्षिण के इन जलमार्गों के साथ-साथ हमें वहाँ की रेल-व्यवस्था पर भी ध्यान देना है। आज के अमरीका के मानचित्र में ये स्थान नहीं दिखाई देंगे, परन्तु कुछ ऐसे केन्द्रीय स्थल हैं जिन पर ध्यान देने से स्थिति को समझा जा सकता है। दक्षिण के रेलमार्ग समुद्र-तट से मिसीसिपी तक जाते थे। वहाँ से उनका बाहरी विश्व से केवल तीन स्थानों पर ही सम्बंध था। ये स्थान मेम्फिस, विक्सबर्ग और न्यू आरलिअन्स थे। यदि कोई यात्री उन दिनों रिचमंड से पश्चिम की ओर जाना चाहता और यदि दूरी का उसके लिए अधिक महत्व नहीं होता, तो उसे तीन मार्ग उपलब्ध थे। वह टेनेस्सी प्रदेश-स्थित नोक्सविले होकर चट्टनूगा तक पहुँच सकता था। यहाँ भी उसे सुदूर पश्चिम के लिए रेलमार्ग उपलब्ध होता। दक्षिण में जार्जिया के लिए दो रेलमार्गों में से वह एक चुन सकता था। इस स्थान से वह अटलांटा या कोलंबस तक पहुँच सकता था। इससे भी दूर पश्चिम में जाने के लिए उसे उत्तर में चट्टनूगा आने के लिए रेल्वेमार्ग मिलता और वहाँ से तटीय बंदरगाह मोबाइल शहर तक पहुँच सकता था। बंदरगाह पर जाने के लिए यहाँ से उसे नौका यात्रा करनी पड़ती। यदि शत्रु चट्टनूगा पर अधिकार कर लेता तो दक्षिणी रेलमार्गों को दो भागों में वह विभक्त करने में सफल हो सकता था। मिसीसीपी राज्य में दो रेलमार्ग अलग-अलग उत्तर और दक्षिण की ओर भी जाते थे। एक मार्ग कोरन्थ और मेरीडिग्रान नगरों की दिशा में था तो दूसरा मिसीसिपी नदी के किनारे-किनारे चला गया था। इस रेलमार्ग तथा नदी के किनारे पड़ने वाले बड़े नगरों की सैनिक महत्व की स्थिति समझी जा सकती है।

दक्षिण को पुनः अधिकार में लेने के लिए उत्तर ने जो रणनीति अपनायी, निश्चय ही वह स्वाभाविक रूप से धीमी ही होती। इसके अतिरिक्त इसका कई स्थानों पर कड़ा मुकाबला भी किया गया और उसकी गति निर्बाध नहीं रही। दक्षिणी भूभाग के समुद्रवर्ती क्षेत्रों को उत्तर की नौसेना ने घेर रखा था। यह

भूभाग उत्तर के विशाल स्थल भाग से घिरा हुआ था तथा अपने पश्चिमी भाग से उसका सम्बंध कट चुका था और वहाँ तक पहुँचने में जो मार्ग थे वे उसके अधिकार में नहीं रहे। उत्तर को पहले रिचमंड पर शीघ्र ही अधिकार प्राप्त कर लेने की संभावना थी और उसने युद्ध की घोषणा के तीन माह के अंदर ही उस पर आक्रमण भी कर दिया, परन्तु यह नगर कोई चार वर्षों के संघर्ष के बाद जाकर हाथ लगा, जब कि ऊपर दर्शायी गयी सारी सैनिक प्रक्रिया पूरी की जा चुकी थी और उत्तर की सेना विजय अभियान के साथ आगे बढ़ रही थी। जिस प्रदेश में से यह सेना गुजरी, वहाँ उसने शत्रु को प्राप्त सभी साधनों व स्रोतों को नष्ट कर दिया तथा चट्टनूगा से लेकर अटलांटा तक जा पहुँची। वहाँ से आगे बढ़कर जोर्जिया के समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में होती हुई उत्तरी दिशा में उत्तरी व दक्षिणी कारोलीना के मध्य से मार्ग बनाती हुई इतनी आगे बढ़ चुकी थी कि उसने दूसरी दिशा से रिचमंड पर आक्रमण करने वाली अपनी सेना से सम्पर्क स्थापित कर लिया। रिचमंड और वाशिंगटन दोनों राज्यों की राजधानियाँ थीं अतएव उत्तर व दक्षिण के लोगों तथा यूरोप के भी अधिकांश लोगों का ध्यान इस क्षेत्र में लड़े जाने वाले युद्धों की ओर लगा रहा। उत्तर कतिपय श्रमसाध्य प्रयत्नों व बलिदान के बाद कहीं रिचमंड पर अधिकार करने की स्थिति में पहुँच सका। इस क्षेत्र में उत्तरी सेना को जो पराजय का सामना करना पड़ा तथा उसे अपमानित होना पड़ा, उसे यों ही महत्त्वहीन कह कर टाला नहीं जा सकता है और न उसे इतना ही महत्व दिया जा सकता है जैसा कि इतिहासकारों ने दिया है।

आठवाँ अध्याय

युद्ध का आरम्भ व लिंकन का प्रशासन

[१]

प्रारम्भिक तैयारियाँ

सम्टर दुर्ग पर गोलाबारी के दूसरे दिन ही राष्ट्रपति ने एक घोषणा जारी करते हुए गैरकानूनी तत्वों के दमन के लिए सभी राज्यों की नागरिक सेनाओं में से ७५ हजार व्यक्तियों की माँग की जिन्हें संयुक्त राष्ट्र अमरीकी गणराज्य की सेना में सेवा के लिए लिया जा सके। इनका कार्यकाल कानूनी तौर पर काँग्रेस की आगामी बैठक के एक माह बाद अपने-आप समाप्त हो जाता और इस विषय पर कानून की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राष्ट्रपति ने काँग्रेस का विशेषाधिवेशन चार जुलाई को आमन्त्रित किया।

गणराज्य की सेवा में उस समय जो सेना थी उसमें केवल सोलह हजार सैनिक थे। यद्यपि उच्च अधिकारियों में अपने-अपने राज्यों की संकुचित भावना भी थी परन्तु नौसेना की तरह स्थल सेना के सैनिक भी अंत तक गणराज्य के प्रति अपनी वफादारी प्रकट करते रहे। केवल तीन हजार लोगों के अलावा सभी सैनिक उपलब्ध थे; वे पश्चिमी क्षेत्र के दुर्गों में फैले हुए थे। कुछ दिनों बाद जब यह स्पष्ट हो गया कि युद्ध लंबा चलेगा और नागरिक सेना से प्राप्त सैनिकों का तीन माह का कार्यकाल पर्याप्त नहीं है, तब राष्ट्रपति ने स्वैच्छिक सैनिकों की भरती के लिए आह्वान किया, जिनका कार्यकाल तीन वर्ष का था। जून तक जैसे-तैसे तीन लाख सैनिकों को जमा कर लिया गया।

सम्टर दुर्ग पर आक्रमण तथा राष्ट्रपति द्वारा सैनिक तैयारी की अपील से उत्तर में जनमत प्रबल हो गया तथा सभी सीमा राज्यों का ध्यान इस दिशा में केंद्रित हो गया। ठीक इसके विपरीत माने में यही बात पृथक होने वाले राज्यों में हुई। अब सीमा राज्यों को एक पक्ष अथवा दूसरे पक्ष में मिलने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। पूरे वरजीनिया ने तत्काल दक्षिणी संघराज्य में शामिल

हो जाने का निर्णय कर लिया। परन्तु इस राज्य के पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र में बसे देहाती राज्य के इस निर्णय के पक्ष में नहीं थे, वे गणराज्य के साथ थे। ये लोग उत्तर की सैनिक सहायता से वरजीनिया राज्य से विमुक्त होकर पश्चिमी वरजीनिया राज्य का गठन करने में सफल हुए। टेनेसी प्रदेश भी दक्षिण के साथ चला गया। यद्यपि पूर्वी टेनेसी के अधिकांश लोगों में गणराज्य के प्रति प्रबल भावनाएं थीं, परन्तु उन्हें पश्चिमी वरजीनिया के लोगों जैसा सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। मिसीसिपी के निम्नवर्ती आरकान्सास ने भी ऐसा ही किया यद्यपि वहाँ भी लोगों की ऐसी ही स्थिति थी। डेलावार में, जहाँ दास बहुत थोड़े थे, गवर्नर ने राष्ट्रपति की घोषणा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, परन्तु जनता ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया। मेरीलेंड प्रदेश के प्रति—जो वाशिंगटन राजधानी के निकट तथा विस्तृत क्षेत्र है—सरकार को चिंता व संदेह था तथा वहाँ संकट की भी संभावना थी क्योंकि बाल्टीमोर शहर और वर्तमान धारासभा दक्षिण के पक्ष में थे। केन्टकी और मिसूरी में राज्याधिकारी दक्षिणपक्षीय थे। इन दोनों राज्यों में कड़े संघर्ष के बाद, मिसूरी में तो खूनी संघर्ष करने के बाद, वहाँ की जनता को उत्तरी गणराज्य का साथ देने का अवसर प्राप्त हुआ।

वरजीनिया राज्य के दक्षिण में मिल जाने से उत्तर को केवल एक शक्तिशाली राज्य ही नहीं खोना पड़ा, वरन् उसे इसके कारण और भी कई तरह का नुकसान हुआ। वरजीनियावासी राबर्ट ई. ली. उस समय वाशिंगटन में था और जनरल स्काट की मान्यता थी कि वह सेना का कुशल संचालक है। लिंकन और उसके युद्ध मंत्री ने यह चाहा कि ली को अमरीकी गणतंत्र की सेना का कमांडर बना दिया जाय। ली ने बहुत मानसिक संताप और हिचकिचाहट के बाद कहीं अपना निर्णय प्रकट किया। वह केवल पृथक होने की नीति का ही विरोधी नहीं था, यहाँ तक कि वह राज्य के पृथक होने के अधिकार को ही अस्वीकार करता था। फिर भी उसकी मान्यता थी कि गणराज्य में उसकी भक्ति वरजीनिया राज्य के कारण थी, जिसका वह नागरिक है। उसने अपने सैनिक पद से त्यागपत्र दे दिया और रिचमंड चला गया। सैनिक इतिहासकार वुल्सले का कहना है कि ऐसी ही भावनाएं दक्षिण के सैनिकों में कई स्थानों पर पायी जाती थीं। ली ने अपनी तलवार वहाँ राज्य सरकार को सौंपते हुए उनसे आगे के लिए आदेश माँगे। वरजीनिया राज्य के प्रति ऐसी ही भावना दूसरे प्रख्यात सेनाधिकारी थामस जेक्सन ने दर्शायी जिसे अपनी वीरता और रणकौशल के लिये 'स्टोन वाल'

(पत्थर की दीवार) के नाम से पुकारा जाता था। परन्तु उस नाम के कारण कोई यह नहीं जान सकता था कि यह व्यक्ति कितनी गतिशीलता और फुर्ती के साथ आक्रमण करने में सिद्धहस्त था। जब तक ये दोनों रहे इन्होंने गहरी सहृदयता और अगाध विश्वास को बनाये रखा। ये दोनों ही विभिन्न सामाजिक वर्गों से आये थे और इनमें कई माने में बड़ा भारी अंतर था। ली को मृत्यु के पश्चात् 'घुड़सवार' की ख्याति प्रदान की गयी, वह निश्चय ही उसके योग्य था। जेक्सन भले ही अपने युवाकाल में साहसिक व संघर्षपूर्ण जीवन का शूरमा रहा हो, वह कट्टर 'प्यूरिटन' था। वोल्सले जैसे सैनिक के स्मृति ग्रन्थ में से उद्धरण देते हुए यह कहा जा सकता है—"मुझे गंभीर रूप से प्रभावित करने वाले थोड़े से व्यक्तियों में वह भी था। उसने मुझे स्वाभाविक व वास्तविक महानता से मोह लिया।" वह उसके बड़प्पन, उसके चरित्र की सौम्यता, मोहक मुस्कराहट तथा प्राचीन रीति से सम्बोधन करने की आदतों पर मुग्ध था। वह कहता है कि जेक्सन में बाहरी कोई सौम्य व मोहक व्यवहार नहीं था। "उसके हाथ पैर बड़े-बड़े थे परन्तु उसमें आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा था और यह उसे भगवान में अगाध विश्वास होने के कारण प्राप्त हो सका। वह इतना सरल व विनम्र विचारों का व्यक्ति था कि जब कभी किसी से आँख मिलाकर बात करता तो उसके हृदय की पवित्रता स्पष्ट दिखाई देने लगती थी। वुल्सले जेक्सन के चरित्र की ऐसी विशेषताएं दर्शाता है जो प्यूरिटन सैनिक वीरों में कदाचित ही प्राप्त होती हैं क्योंकि उनकी धार्मिकता युद्ध की भीषणता में निहित रहती है। योर्क गिरजाघर की स्थापत्यकला का वर्णन करते समय उसकी आँखों में क्षणभर के लिए वास्तविक उत्साह की चमक पैदा हो गयी, और वह चमक मानों उसके अपार आनन्द और हार्दिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति दरसाने को पर्याप्त थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके हृदय में सहृदयता, दृढ़ चरित्र, आत्मविश्वास और अपूर्व शक्ति का सम्मिश्रण था जो आसपास के वातावरण को मधुर व सजीव बना देता था। ऐसे चरित्रवान व दृढ़निश्चयी व्यक्तियों ने दक्षिण को लक्ष्य-पूर्ति की दिशा में योग दान के अतिरिक्त भी कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएं प्रदान कीं जिन्हें वहाँ के तत्कालीन राजनैतिक और दार्शनिक भी प्रदान नहीं कर सके। इसमें कहीं कोई संदेह नहीं है कि यह युद्ध ऐसा था जिसमें कोई भी कुशल सेनानायक सहज ही अपनी योग्यता प्रमाणित कर सकने में समर्थ था। अधिकतर पाठक युद्ध के इतिहास में व्यक्तिगत शूरवीरता के प्रति आकर्षित होते हैं। वह देखेंगे कि इन दो सैनिक नेताओं ने

अपने दृढ़ चरित्र व अपूर्व धैर्य तथा कुशलता का परिचय दिया और संकटकाल में कैसी भी विकट परिस्थिति क्यों न रही हो, अपने लक्ष्य से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

उन्होंने अपनी महान जिम्मेदारियों को निभाते हुए कर्त्तव्य-पालन किया। पाठक यह भी देखेगा कि वे दोनों महान सैनिकों की गणना में कितने सही उतरते हैं और उनका व्यक्तिगत स्वरूप किसी से भी कहीं घटिया नहीं है। अब हम दक्षिणी संघराज्य और उनकी सेनाओं के बारे में विचार करेंगे। इस सम्बंध में हम उनके आंतरिक इतिहास की गहराइयों तक ही सीमित रहेंगे जिनका लिंकन और उसके प्रशासन पर प्रभाव पड़ा। इस स्थान से विदा लेने के पूर्व हम इन व्यक्तियों की सराहना किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने अपने उद्देश्य के प्रति महान उत्सर्ग व वफ़ादारी का परिचय देते हुए दक्षिण में उच्च चरित्र की ऐसी श्रेष्ठतम सृष्टि की जिसके लिये वहाँ का कोई भी राजनीतिज्ञ व दार्शनिक भी दावा नहीं कर सकता।

उत्तरी गणतंत्र में कई ऐसे भी वरजीनियावासी अधिकारी थे जिन्होंने अपने राज्य का साथ देने से इन्कार कर दिया, इनमें जनरल स्काट और जी. सी. थामस थे। मिसूरी राज्य के शूरवीर नौसैनिक अधिकारी फारागाट का नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय है।

उत्तर के सभी राज्यों में राष्ट्रीय एकता की एक जबर्दस्त लहर हिलोरें ले रही थी। यह इस तरह की स्वयमेव प्रस्फुटित क्रान्तिकारी लहर थी कि इसकी सराहना किये बिना कोई नहीं रह सकता। पिछले दिनों जो असमंजस और हिचकिचाहट पैदा हो गयी थी, लोगों ने उसे दूर हटा दिया और सभी राज्यों में सैनिक भरती का काम तेजी से तथा विशाल स्तर पर निरंतर जारी रहा। लोग इस कार्य में उत्साह से जुट गये थे। विभिन्न दलों के मतभेद थोड़े दिनों के लिए मानों समाप्त हो गये। भूतपूर्व वृद्ध राष्ट्रपति बुकनन ने स्वयं आगे आकर सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह सरकार को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे। लिंकन के कट्टर प्रतिद्वन्द्वी उपराष्ट्रपति डगलस ने स्वयं राष्ट्रपति से भेंट की और इस दिशा में अपनी सेवाएं प्रस्तुत कीं। लिंकन ने उसे इल्लीनायस जा कर वहाँ जनभावना को उत्साहित करने और विशाल पैमाने पर सैनिक भरती के लिए अपने प्रभाव को काम में लाने की सलाह दी। डगलस ने इसे स्वीकार किया। कुछ समय बाद ही वह यह काम करते हुए बुरी तरह बीमार पड़ गया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। डगलस की मृत्यु से डेमोक्रेटिक दल को गंभीर क्षति

पहुँची। उसकी मृत्यु के बाद इस दल में चतुर और व्यावहारिक व्यक्तियों का धड़ल्ले से प्रवेश हो गया परन्तु उनमें कोई भी उसके तुल्य देशभक्त नहीं था। उत्तर के सभी लोगों में यह विश्वास था कि उनका राष्ट्र इतना शक्तिशाली है कि वह इस उपद्रव को दबा देगा। बाद में जब राजधानी वाशिंगटन और प्रशासनतंत्र पर गंभीर संकट पैदा हुआ तो यह निश्चय और भी अधिक दृढ़ हो गया। जनता के इस उत्साह की झलक हमें वहाँ के व्यंग-लेखकों की कहानियों में देखने को मिलती है। प्रसिद्ध व्यंग-कथाकार आर्तेमस वार्ड ने डेविस से अपनी भेंट का मनोरंजक विवरण प्रस्तुत किया है। दक्षिण में उसके प्रदर्शन को संघराज्य ने जब्त कर लिया। अपने दावे को प्रमाणित करने के लिए उसने राष्ट्रपति जफर्सन डेविस से भेंट की। डेविस ने कहा—"अभी भी उत्तर में हमारे कई भले मित्र हैं।"

उसे प्रत्युत्तर मिला—"श्रीमान् जे. डेविस! आप बड़ी भूल कर रहे हैं। हम लोग पहले आपके घनिष्ठ मित्र थे और यह सोचा करते थे कि कुछ लोग आप के बारे में मनगढन्त अफवाहें फैलाकर आपके निजी मामले में हस्तक्षेप करते हैं और अंदर-ही-अंदर आपके विरुद्ध कानाफूसी करते हैं, परन्तु जे. डेविस! जिस क्षण आपने निरर्थक चिथड़ा समझकर उस सितारोंवाले गणराज्य के झंडे पर गोलियाँ चलायी, उसी दिन से सारा उत्तर उस झंडे की रक्षा के लिए उठ खड़ा हुआ। उत्तर आपके विरुद्ध कभी भी नहीं हुआ, और आज भी वह व्यक्तिगत रूप से आपके विरुद्ध नहीं है। न वह दक्षिण के ही विरुद्ध है। यदि हमारे घुटने काँपते, रक्त सफेद पड़ गया होता, हृदयहीन ही होते अथवा हमारे मस्तिष्क में गोबर होता तो हम चुपचाप खड़े रह कर इस महान यशस्वी सरकार को किसी क्रुद्ध शत्रु अथवा आंतरिक विभीषण द्वारा भंग होते देखा करते। सहृदया माँ अपने शरारती पुत्र को गोदी में उठाने से इंकार कर देती है। इतने पर भी वह माँ के नाते अपना कर्त्तव्य जानती है। इस शरारती दक्षिण को मारना पीटना हमें भी अच्छा नहीं लगता, परन्तु यदि तुम उसे सही मार्ग पर नहीं लाओगे तो यह काम हमें करना पड़ेगा। हम तुम्हें जूते उतरवा कर नंगे पैरों दीवार के पास खड़े रहने की सजा देंगे।"

बाद में ज्ञात हुआ कि दक्षिण को सही मार्ग पर लाने के लिए यह छोटी-सी सजा ही पर्याप्त नहीं थी। इसके विपरीत ऐसा प्रतीत होने लगा कि शरारती दक्षिण ही उत्तर को ठीक करने के लिए कड़ा सबक दे रहा था। राष्ट्रीय एकता की लहर में सभी घुलमिल चुके थे। कुछ समय के लिए असंतोष व विवाद

शांत हो गये थे। कहीं-कहीं कुछ असंतोषी तत्त्व सर उठाने लगे। यह ऐसा अल्पमत था जिसने पहले युद्ध का विरोध किया था, परन्तु बाद में शांत, निष्क्रिय और महत्वहीन हो गया। युद्ध के समर्थकों में कतिपय ऐसे तत्व भी थे जो गणराज्य व संविधान के प्रति श्रद्धा के कारण दक्षिण से सहानुभूति रखते थे। डेमोक्रेटिक दल के ऐसे हठवादी लोगों ने यह इच्छा व्यक्त की कि गृहयुद्ध इस ढंग से लड़ा जाय कि संविधान का दुरुपयोग न हो और युद्ध के बाद विशेष सामाजिक परिवर्तन की स्थिति न पैदा हो। (संभवतया उनका तात्पर्य दास-प्रथा से था।) ये लोग चाहते थे कि युद्ध निर्णायक नहीं लड़ा जाय और केवल किसी तरह समझौते की संभावना तक पहुँचने के लिए इसका उपयोग किया जाय। दूसरी ओर ऐसे व्यक्तियों की संख्या भी कम नहीं थी जो स्वतंत्रता के सिद्धान्तों से प्रेम करते थे और दक्षिण की दास-प्रथा तथा उसके कारण वहाँ के लोगों में पायी जानेवाली घमण्ड की भावना से घृणा करते थे। ये लोग रिपब्लिकन दल में उग्रवादी विचारधारा वाले माने जाते थे। इन लोगों की यह राय थी कि संविधान के अंकुशों की तनिक भी परवाह नहीं की जाय और उन लोगों को खदेड़ दिया जाय जिन्होंने संविधान को नष्ट करने के लिए आक्रमण किया है। वे लोग दास-प्रथा को जड़ से ही समाप्त कर देना चाहते थे, जिसके कारण युद्ध की स्थिति पैदा हुई। सीमान्त राज्यों में दक्षिण के प्रति सहानुभूति पायी जाती थी और इन लोगों ने वहाँ जनमत तैयार कर भीषण संघर्ष करके इन राज्यों को गणराज्य के साथ रखा। ऐसे लोगों से संघर्ष के फलस्वरूप भी उनकी इस विचारधारा में क्रूरता आना स्वाभाविक ही है। इस तरह के मत-मतान्तर व विवाद उठ खड़े होने तथा युद्ध के कारण भी एक राजनैतिक थकान की भावना लोगों में पैदा होने लगी। आश्चर्य की बात है कि डेमोक्रेटिक दल के लोगों में जैसा प्रभाव था वैसा ही प्रभाव रिपब्लिकन दल पर भी पड़ा। वे लोग उस समय, जब उन्हें अपनी सुस्पष्ट विजय निकट ही नजर आ रही थी, युद्ध से हताश हो गये और उस रक्तपात से काँप उठे जिसे कुछ समय पूर्व वे संविधान व गणराज्य की रक्षा के लिए बहाया जाना उचित समझते थे।

ऐसे समय में प्रशासन का कार्य यह था कि वह युद्ध-संचालन के साथ ही मतमतान्तर होने पर भी उत्तर को राष्ट्रीय एकता में पिरोये रखना और निराशा व थकान की स्थिति पैदा न होने देकर दृढ़ता व विश्वास बनाये रखना। ऐसे कार्यों के लिए लिंकन एक ही नहीं कई दृष्टिकोणों से उपयुक्त था। केन्टकी और इल्लीनायस जैसे सीमा राज्यों में रहकर उसने जो अनुभव प्राप्त किये, उसके—

फलस्वरूप वह दक्षिण के उद्देश्य के विभिन्न पहलुओं को सभी मानें में स्पष्ट रूप से समझ सकता था। दासप्रथा को लेकर जो नया सैद्धान्तिक प्रश्न उठाया गया, उसके लिए उसने पहले से ही उत्तर ढूँढ लिया था। उसका उत्तर स्पष्ट व व्यावहारिकता पर आधारित होने के साथ-साथ पूर्ण उदार व उचित था। एक ऐसी भावना उसमें पैदा हो गयी जिसके कारण प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उसके हृदय में कहीं कड़वाहट नहीं थी और वह उनके प्रति दयार्द्र भी था। यद्यपि संघर्ष के कारण उसके हृदय पर गहरा आघात लगा था फिर भी यह भावना दृढ़ होती गयी। इतने पर भी उसने भूलकर भी ऐसी कमजोरी नहीं दिखलायी जो उसे सही मार्ग से विचलित कर सकती थी। उसकी सेवाएं और प्रशासन कार्य को हम किसी भी श्रेणी में क्यों न रखें, परन्तु हम देखेंगे कि उसके क्रियाकलापों की सभी दिशाओं में बुनियादी रूप से इस प्रमुख भावना के दर्शन होते हैं। ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर पाठक यह अनुभव करेगा कि उसमें जनता के गंभीर व महत्वपूर्ण निर्णय को वास्तविक स्वरूप में ढालने की शक्ति थी। यह और भी स्पष्ट है कि वह उस राजनैतिक भावना की गहराई में मंथन कर रहा था—जो भावना उस समय अमरीकी जीवन में ऊपरी सतह पर दिखाई दे रही थी। अंग्रेज सैनिक इतिहासकार 'वुड और एडमंड' ने युद्ध के प्रतिक्रियात्मक स्वरूप की चर्चा करते हुए उचित रूप से उसके तत्वों को प्रस्तुत किया है। "यह दुर्भाग्य का विषय है कि उत्तरी राष्ट्रपति जिस दृढ़ता और उत्सर्ग के साथ गणतंत्र में श्रद्धा रखता था उसी गणतंत्र को दक्षिणी महान नेता और उनकी सैनिक कुशलता से लोहा लेना पड़ा। जब तक वह जीवित रहा और उत्तर के लोगों पर शासन करता रहा, कहीं भी पीछे हटने का प्रश्न ही नहीं उठा।"

तत्कालीन साहित्य में ऐसे ढेरों प्रमाण मिलते हैं कि लिंकन के दृढ़ विश्वास की छाप धीरे-धीरे सर्वत्र महसूस की जाने लगी और जन सामान्य उसकी सराहना भी करने लगा। सचमुच में उत्तर के सभी भागों से लोग उसे देखने के लिए भीड़ की तरह उमड़ने लगे, उससे एक दो बात करते और प्रभावित होकर घर लौटते। इन दिनों जो लोग उसके निकटवर्ती थे, उनका कहना है कि लिंकन ने कहीं भी अपने में आतुरता व चिंता जैसी चीज़ प्रकट नहीं होने दी। वह जनता से उसी तरह विनोदप्रिय स्वभाव से मिला करता था। उसके राजनैतिक गुणों के बारे में यह कहा जाता है कि उसके दूसरे पहलू में कमजोरियाँ छिपी हुई थीं, परन्तु कभी यह सन्देह किया ही नहीं जा सकता था कि यह व्यक्ति

हार मान लेगा अथवा टल जायेगा। उसके विरुद्ध कड़े-से-कड़े आलोचकों ने ब्यारिकियों से खोजबीन कर दोषारोपण का भंडार इकट्ठा किया है। उसमें कुछ भी इस व्यक्ति के जीवन में निःस्वार्थ उत्सर्ग के दृष्टान्तों के अलावा और भी नहीं मिलता है। सीधे-सादे लोगों में यह विश्वास घर कर गया कि यह व्यक्ति विश्वसनीय है, और इस तरह का भरोसा दिलाने के बाद सीधे-सादे व्यक्ति उसे और भी अधिक पसन्द करने लगे क्योंकि वह भी सीधा-सादा और सरल था। परन्तु जिस दूरी से हम उसको आँकना चाहते हैं और उसकी मृत्यु के बाद अमरीका ने आँका, यह स्वाभाविक ही है कि उस दिशा में हम उसके कतिपय महत्वपूर्ण गुणों को ओझल कर देंगे। यह कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह महान नेताओं के समान जनता के सामने आकर खड़ा हुआ। वह नेता के वास्तविक रूप में कभी भी राजनैतिक रंगमंच पर नहीं चढ़ा। निस्संदेह जब लिंकन वाशिंगटन आया तो उसकी विचारधारा अन्य लोगों से एक दिशा में अधिक स्पष्ट थी। निस्संदेह उसे कुछ ऐसे अनुभव प्राप्त थे—मसलन् सीमा राज्यों की स्थिति का व्यापक-ज्ञान—जो दूसरों को प्राप्त नहीं था। परन्तु उस समय उसकी स्थिति प्रशासनिक मामलों में अनुभवहीन व्यक्ति की तरह थी। यह उसकी शक्ति का ही अंग था, इसको वह अच्छी तरह समझता था। वह इसे सीखना भी चाहता था उसने यह भी सोच लिया था कि वह इसे सीख सकता है। जहाँ उसे किसी मामले में जानकारी नहीं होती उसमें वह जल्दबाजी नहीं करता था, अन्य लोगों की विद्वत्ता की पूर्ण सराहना करते हुए भी उनसे वह कभी भयत्रस्त नहीं होता था। काँग्रेस में सीनेट सदस्यों व प्रतिनिधियों तथा कुछ उच्च पत्रकारों ने भी कभी उसकी शक्ति की ओर ध्यान न देकर केवल उसकी अनुभवहीनता को अपनी आलोचना का पात्र बनाया। उसका कार्य करने का तरीका उच्च कोटि का था। वह शांति से घटनाओं का अध्ययन करता, किसी से कहीं उस बारे में कुछ भी नहीं कहता, सभी पक्ष की बातें सुनता, हार्दिक सरलता से लोगों से मिलता, जिसमें कहीं भी बनावट नहीं होकर वह सरल तथा कलात्मक थी। वह विद्वानों व समझदार व्यक्तियों की सलाह लेकर उन्हें अपने मस्तिष्क में तोलता था। उस समय बहुत से चिंतातुर पर्यवेक्षकों के दृष्टिकोण में उसकी यह गतिविधि केवल उसकी अयोग्यता के रूप में दिखायी देती थी। उसके लिये जो लक्ष्य सामने था उसके प्रति ऐसी चिन्ता व बैचेनी होना स्वाभाविक ही है। उस समय उसकी बुद्धिमानी और समझ को आँकने का पूर्वानुमानित दृष्टिकोण भी उनके सामने नहीं था। इस प्रभाव को उसकी

सरलता, अटपटेपन और छोटे-छोटे मामलों में भूल करने की प्रवृत्ति से भी बल मिला।

कई बुद्धिमान व्यक्तियों को जो उससे मिले उन्हें वह एक अजीब पीड़ा-पूर्ण स्वरूप दिखायी दिया। भले ही कुछ सुसंस्कृत व्यक्ति उसके इन 'अवगुणों' की ओर ध्यान नहीं दे पाये, वे भी उसकी ठोस सच्चाई, ईमानदारी व दृढ़ता से प्रसन्न हुए। यह स्पष्ट है कि पहले-पहल वाशिंगटन में कोई भी उससे प्रभावित नहीं हुआ। उसका अटपटापन स्वाभाविक व असह-नीय था। उसके निजी सचिव निकोलोय ने, यंग जान हे जैसे व्यंग-कथाकार को उसीके तुल्य विनोदप्रिय राष्ट्रपति से मिलाया। हे का ध्यान सामाजिक सुसंस्कृत वातावरण व साहित्यिक कलात्मक विवरण की ओर अधिक रहता था। वह भी लिंकन से इतना प्रभावित हुआ कि उसे अंत तक प्रेम करता रहा और एक तरह से उसे पूजनीय मानने लगा। उसने भी 'एनसियेन्ट' और 'टेकून' जैसे विवरण में राष्ट्रपति के घरेलू जीवन व शांतिकाल का विनोदप्रिय व अश्रद्धालु वर्णन किया है। लिंकन में प्रतिष्ठा व सूझबूझ थी। वह जब आवश्यक समझता उसका प्रयोग करता था। परन्तु वह सदा ही इनको कामचलाऊ रूप में रखने के विरुद्ध था। नव राष्ट्रपति से सीनेट सदस्य शरमन की भेंट आयोजित की गयी। "अच्छा! तो आप जान शरमन हैं? मुझ को यह देखना है कि क्या तुम भी मेरे जितने लंबे हो? हमें नपना चाहिये।" उस गंभीर राजनीतिज्ञ को भेंट के दौरान में उसकी पीठ से पीठ सटाकर इस बात के निर्णय के लिये खड़ा होना पड़ा। बाद में जान शर्मन ने कहा कि यह सब वह मित्रता के नाते से कर रहा था। इसमें केवल सुसंस्कृत झलक की कमी थी। लिंकन में अपनी लम्बाई के बारे में निरपराध गर्व की भावना थी। केवल शर्मन ही नहीं, बहुत से लम्बे लोगों को उसने साथ खड़ा करके लम्बाई में अपने से आँका। उन्होंने भी जान शर्मन की तरह ही इसे महसूस किया। किसी भी समय, कैसे भी व्यक्ति हो 'वह उन्हें एक संक्षिप्त कहानी' बार-बार सुनाता और 'वह कहानी' अत्यन्त ही घिसीपिटी कहानी थी। यही तरीके अपना कर वह लोगों में घुलमिल गया था। इसका एक लाभ तो यह हुआ कि इस तरह वह जब कभी चाहता विवादग्रस्त प्रश्नों को तनावपूर्ण बनने के पहले ही टाल सकता था अथवा किसी को अस्वीकृति देनी होती या किसी को डाँटना होता तो वह चुभने वाले तरीकों से अपनी बात नहीं रखता था। जैसे-जैसे उस पर कठोर परिश्रम तथा दुखदायी कार्य का भार बढ़ने

लगा, उसकी इस तरह विनोदप्रिय खेलों में बहलने की प्रवृत्ति उसे लाभप्रद सिद्ध हुई। जैसे उसकी ख्याति स्थिर हुई लोग उसे विनोदप्रिय मानने लगे। उसकी वह 'संक्षिप्त कहानी' लोगों में उसकी सनक ठहराकर योंही मान ली जाने लगी। परन्तु हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सब लोगों ने उसे सदा इस रूप में नहीं लिया।

प्रशिया से निष्कासित राजनीतिज्ञ कार्ल शुर्ज ने उत्तर के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सराहनीय राजनीतिक व सैनिक सेवाएं प्रदान कीं। उसका कहना है, "जो लोग वाइट हाउस देखने गये हैं—और वाइट हाउस उन सभी लोगों के लिए खुला था जो वहाँ जाना चाहते—उन्होंने वहाँ एक अशिष्ट व्यवहार करने वाले मनुष्य को देखा है, जो अपने प्रति जरा भी प्रतिष्ठा की छाया नहीं पड़ने देता है और सभी व्यक्तियों से एक ही तौर-तरीके से मिलता है, मानों वे उसके परिचित पड़ौसी हों। उसकी बोलचाल व भाषण में कभी-कभी उजड्डपन अवश्य झलकता है, परन्तु यह उसका माधुर्य नहीं नष्ट करता मानों वह सदा घरेलू बातों के लिए समय निकाल लेता और कभी भी काम निपटाने की जल्दी नहीं मचाता था। भूले-भटके कभी-कदाच वह महत्वपूर्ण राजकाज की बात भी करता तो ऐसा लगता जैसे वह इससे निरपेक्ष-सा हो। मैं कह सकता हूँ, भले ही यह अश्रद्धाजनक हो, वह इस काम को इस तरह कर रहा था जैसे वह इल्लीनायस-स्थित स्प्रिंगफील्ड में अपने दफ्तर में रोजमर्रा आनेवालों मुवक्किलों से मुकद्दमे का वर्णन कर रहा हो।"

इस तरह लिंकन में भले इरादों के अतिरिक्त ऐसी कोई चीज नहीं थी जिससे वह अपने प्रति जनता के सामान्य विश्वास को प्रोत्साहित कर सकता। जान ब्राइट के शब्दों में कहा जाय तो, "वह सदा ही अपने व्यक्तित्व की 'कुछ विशेषता' के कारण याद किया जाता रहेगा, यह विशेषता उसे आजीवन घेरे रही परन्तु उसका व्यक्तित्व आकर्षक कभी नहीं कहा जा सकता जैसा कि अमरीकावाले महापुरुषों के व्यक्तित्व के बारे में विश्वास किये बैठे हैं। यथार्थ में यह उल्लेखनीय बात है कि कई अच्छे न्यायाधीशों के दृष्टिकोण में भी उसका व्यक्तित्व प्रभावहीन रहा। चार्ल्स फ्रॉंसिस एडम्स ने (गृहयुद्ध में अपने देश की उसने सेवा की तथा बाद में इंगलैंड में राजदूत रहा। गणराज्य की उसने उसी तरह सेवा की जैसी उसके पितामह ने स्वतंत्रता युद्ध के बाद की थी।) सदा ही दुखपूर्वक यह शिकायत की कि सेवार्ड—जिसके नीचे उसे काम करना पड़ा—को एक घटिया दर्जे के आदमी के नीचे काम

करना पड़ रहा है। वाशिंगटन-स्थित ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड लयोन्स ने लिंकन की चर्चा इस तरह प्रस्तुत की मानो उसमें 'मनोरंजक दयालुता' के अतिरिक्त कहीं भी कुछ नहीं है। उसकी नीति का कोई अंश ऐसा नहीं है, जिस पर कड़ी-से-कड़ी टीका नहीं की गयी हो और वह व्यक्ति जब तक जीवित रहा स्वयं भी पीड़ाजनक विनम्रता का स्वरूप रहा। अतएव स्वाभाविक रूप से जोर देकर यह सवाल पूछा जा सकता है कि मृत्यु के पश्चात्, सभी ने उसे आदर्श मान लिया, परन्तु मृत्यु के पूर्व उसकी महानता को किसने स्वीकार किया? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उन गहन बुद्धिजीवी विद्वानों ने उसकी महानता के दर्शन किये जिनके द्वारा प्रस्तुत विवरण आज अमरीका की अपेक्षा बाहरी विश्व में अधिक विख्यात है। ये लोग उसके बाहरी स्वरूप को भेद कर उसके अंतरतम के दर्शन करने में सफल प्रथम व्यक्ति थे। इन व्यक्तियों में लोवेल भी था, जिसने इस राजनीतिक घटनाचक्र का पूर्ण समीक्षात्मक निरंतर अध्ययन किया। दूसरा कवि वाल्ट विटमेन था—जिसने श्रमिकों व घायल लोगों के मध्य घुमक्कड़ जीवन बिताकर अपने हृष्टपुष्ट स्वास्थ्य को चौपट कर दिया। उसने सभी बातों को एक कवि के संवेदनशील हृदय से देखा। डच गणतंत्र का प्रख्यात इतिहासकार मोटले—जिसने युद्ध के आरंभ काल में ही घमासान संघर्षों के बीच रहकर स्थिति का अध्ययन किया तथा लिंकन को निकट से देखा—वियना में राजदूत बना दिये जाने पर भी पत्रव्यवहार से लिंकन के निकट सम्पर्क में रहा। वह उसके महान प्रशंसकों में से एक था। ऐसे व्यक्तियों ने जब लिंकन की सराहना उसकी मृत्यु के बाद की तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उन्होंने उसके बारे में पहले ही अपना निर्णय बना लिया होगा। इस निर्णय का प्रारंभ उसकी ईमानदारी से हुआ होगा, बाद में उसकी विद्वत्ता के दर्शन हुए होंगे और धीरे-धीरे—बिना किसी तरह के अकस्मात् दैवी चमत्कार की तरह—उसकी महानता को स्वीकार किया गया होगा। और यही एक निर्णय लिंकन के बारे में प्रचलित घटिया ढंग की आलोचना के उत्तर में पर्याप्त है। फिर प्रमाणों को अधिक प्रस्तुत करने से क्या लाभ? मोटले ने उसे जून १८६१ में दूसरी बार देखा। वह लिखता है—"मैं लिंकन से मिलने गया और उनसे एक घण्टे तक बातचीत की, मुझे इस पर अत्यधिक आनन्द प्राप्त हुआ है क्योंकि यदि मैं बिना मिले ही चला जाता तो मेरे हृदय में अमरीकी राष्ट्रपति लिंकन का अधकचरा ही चित्र रहता। मैं अब पूर्ण संतोष के साथ कह सकता हूँ कि उसमें गंभीर सूझबूझ है और उसका चरित्र निष्कपट, प्रवंचना-

रहित स्पष्ट और उदार है। मेरा विश्वास है कि उसकी सरलता इस्पात की तरह है और वह सत्य की तरह ही साहसी है। इसके साथ-साथ उसमें राजकाज के बारे में अनुभवहीनता है, विशेषकर विदेशी मामलों के बारे में। इसे वह छिपाना भी नहीं चाहता है। परन्तु यह देख कर हमें सचमुच ही दुख होगा कि संकट के समय इस व्यक्ति में इन गुणों का अभाव है तथापि उसकी उदारता ही इतनी महान है कि वह इस दिशा में की जाने वाली सभी आलोचना को निरस्त कर देती है। हमने हृदय से एक दूसरे से विदा ली, और कदाचित मैं फिर कभी उसकी झांकी नही देख सकूँगा। परन्तु मैं यह महसूस करता हूँ कि जहाँ तक राष्ट्र के समक्ष उद्देश्य की स्पष्टता और ईमानदारीपूर्ण दृढ़ता का प्रश्न है, देश उसके हाथों में सुरक्षित है।" तीन वर्ष व्यतीत हो गये, और अमरीकी राजनैतिक जगत में उसके विरुद्ध असंतोष का ऐसा तूफान आया जिसमें कांग्रेस का एक भी सदस्य यह नहीं कह सकता था कि वह लिंकन में विश्वास रखने वाला व्यक्ति है, 'लिंकन का आदमी' है। मोटले ने वियना से पुनः अपनी माँ को पत्र में लिखा, "मैं अब्राहम लिंकन की इसलिए श्रद्धा करता हूँ क्योंकि वह यथार्थ में सच्चे ईमानदार जनतंत्र का स्वरूप है।"

"उसमें ऐसी कोई नवाबीपन की छिछली झलक नहीं है जो हम लोगों में देखते हैं कि वे सौम्य सुसंस्कृत होने का दिखावा करते हैं परन्तु सच्चे मानों में वैसे नहीं बन सकते हैं। वह एक महान अमरीकी जनतांत्रिक व्यक्ति है जो ईमानदार, निपुण, सहृदय, बुद्धिमान, विनोदप्रिय, कुशाग्रबुद्धि, और शूरवीर है। वह कभी-कभी भूल भी करता है, परन्तु उन भूलों में से वह सदा जिसे सही मार्ग मानता है उस ओर दृढ़ता के साथ निरंतर आगे बढ़ता रहता है।" कुछ दिनों के बाद उसने एक पत्र में लिखा, "उसकी बौद्धिक योग्यता विशाल थी, और जैसे-जैसे उस पर अधिक भार पड़ता गया वे और भी अधिक निखरती गयीं।"

इस अंतिम वाक्य में जहाँ उसकी बौद्धिक योग्यता के बारे में कहा गया है, उसकी चरित्र की विशेषताओं को और जोड़ दिया जाय तो उसके राष्ट्रपतित्वकाल की जाँच के अंतर्गत वह प्रमुख स्थान पा लेगा। यह सत्य है कि वह अपरिचितों को प्रथम दृष्टि में एक अपरिचित ही दिखाई देता था। वाल्ट विट्मैन ने ऐसे ही एक दृश्य को चित्रित किया है जैसा शेक्सपियर के दुखान्त नाटकों में मर्म-किया, पूर्णतया मनस्वी पात्र का होता है। यह दृश्य न्यूयार्क के होटल के बाहर का है जहाँ लिंकन वाशिंगटन जाते हुए ठहरा था। "अपनी दृष्टिगत सरलता, पूर्ण विश्राम की स्थिति तथा चेहरे पर अगाध शांति के चिह्न लिये

वह उस विशाल जन-समूह में उपस्थित विभिन्न आकृतियों को आश्चर्य से देख रहा था, और वे भी उसी तरह आश्चर्य से उसे देख रही थीं। उस विशाल मानवसमूह में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो उसका व्यक्तिगत मित्र कहा जा सके।" जब वह वाशिंगटन आया तब भी उसकी ऐसी ही स्थिति थी। यह सत्य है कि प्रारंभ के दिनों में वह अपने कानूनी व्यवसाय को सीख रहा था। उसके जीवन के अंतिम दिनों में एक व्यक्ति ने उससे पूछा—"राष्ट्रपति महोदय! आपने क्या अपना इरादा बदल दिया?" लिंकन ने कहा—"हाँ! मैंने बदल दिया है और मैं उस व्यक्ति को अच्छा नहीं समझता जो कल तक बुद्धिमान था, और जो आज के युग में और अधिक सीखने को तैयार नहीं हो।" परन्तु यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि अधिकारों का उपयोग व जिम्मेदारियों को वहन करने से उसमें एक नयी शक्ति का उदय हुआ इसे प्रदर्शित करके नहीं समझाया जा सकता है। उस समय के जो अमरीकी जीवित हैं, उनका कहना है कि कैसे अब्राहम लिंकन अपने काम को पूरी तरह से समझने लगा था। कदाचित ऊपर दी गयी संक्षिप्त घटना इस दिशा में हम पर नयी छाप छोड़ती है। एक ओर जब कि राजनीतिज्ञ सत्ता पाते ही अहंभावी बनकर गर्वोन्मत्त होकर अपने चरित्र व कार्यों को पथभ्रष्ट कर डालते हैं तो दूसरी ओर एक ऐसा व्यक्ति था जिसने कठोर, सजग व सरल व्यक्ति की तरह अपना जीवन आरंभ किया। उसमें सदा ही ईमानदारी, साहस और दयालुता की दिशा में आगे बढ़ने की लगन लगी रही और बाद में वह सरलता, ईमानदारी, वीरता और साहस के अपार गुणों को धारण करके महान बन गया।

उत्तर ने हृदय से और सर्व सम्मति से संघर्ष आरंभ कर दिया, और इससे किसको विराग हुआ यह जाँचने के लिये सभी के हृदय, विशेषकर राष्ट्रपति के भी हृदय को टटोलना पड़ेगा। उस समय उत्तर के किसी भी व्यक्ति ने कभी यह अनुमान भी नहीं लगाया होगा कि इस युद्ध का भार कितना भारी होगा। आरंभ में वाशिंगटन में नगर की सुरक्षा के बारे में गंभीर चिंता पैदा हो गयी थी। अलेग्जेन्डरिया होटल से नदी के पार दक्षिणी संघराज्य के लहराते हुए झंडों को देखा जा सकता था। वाशिंगटन में षड्यन्त्र और राजनीतिक हत्याओं की अफवाहें फैल रही थीं और चारों ओर दक्षिण के जासूस फैले हुए थे। सब कुछ अस्तव्यस्त था और स्वयं लिंकन ने एक रात जागने पर घूमते हुए देखा कि गोला-बारूद का जो गोदाम है उसके दरवाजे खुले पड़े हैं और वहाँ सुरक्षा के लिये कोई पहरा नहीं था।

उत्तरी गणराज्य को नौसैनिक क्षेत्र में २० अप्रेल को वरजीनिया-स्थित गोसपोर्ट नौसैनिक अड्डा छोड़ देना पड़ा। उसके बाद उसे हार्पर्स फेरी से हट जाना पड़ा। ठीक इसी दिन सैनिक अधिकारी ली दक्षिणी संघराज्य की सेवा में चला गया। मेसाचुसेट्स की एक सैनिक टुकड़ी वाशिंग्टन में थी। इस राज्य में सम्टर दुर्ग के पतन के पूर्व ही राज्याधिकारियों ने पहले से ही राज्य सेना के संगठन की तैयारी कर ली थी। इस सेना को वाशिंगटन पहुँचने के लिए मार्ग में बाल्टीमोर शहर से होकर जाना पड़ा। वहाँ नागरिकों की एक क्रुद्ध भीड़ ने इनका रास्ता रोक लिया। फलस्वरूप मुठभेड़ में दोनों ही पक्ष के कुछ लोग मारे गये और यह सेना वाशिंगटन पहुँच गयी। इस शहर के गिरजाघरों से पादरियों का एक प्रतिनिधिमंडल राष्ट्रपति से भेंट करने पहुँचा और उससे अपील की कि वह इन रक्तपात-भरी तैयारियों से अपना हाथ खींच ले। बाद में इस प्रतिनिधि मंडल ने बताया कि "उसके लिए संविधान ही शांति और और अपार आनन्द की वस्तु है जिसका वह पालन कर रहा है। उस पर ईसाईयत के नाम पर की गयी अपील का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।" मेरीलैंड धारासभा का बहुमत दक्षिण के पक्ष में था और यह गणराज्य के लिए चिंता का विषय भी था। उस समय वहाँ के गवर्नर ने क्रोध प्रकट करते हुए राष्ट्रपति से अपील की कि भविष्य में बाल्टीमोर शहर में से किसी भी तरह के सैनिक नहीं भेजे जायें। बाल्टीमोर के मेयर ने और रेल-अधिकारियों ने रेल के पुल को जला दिया और शहर के चारों ओर से रेल की पटरियाँ उखाड़ डालीं तथा संवादवहन के तार भी काट डाले। इस तरह उत्तर से वाशिंगटन जाने का सीधा मार्ग पाँच दिनों तक अवरुद्ध रहा। किसी दक्षिणी वक्ता ने इन दिनों यह कहा था कि उत्तर की राज्यधानी वाशिंगटन में पहली मई तक दक्षिणी संघ राज्य का झंडा लहरायेगा। उस समय इसके सत्य होने की संभावनाएँ प्रबल हो उठी थीं। ब्रियरगार्ड यदि साहस से काम लेता तो इन दिनों कारोलीना से वाशिंगटन को जीतने के लिए अपने परीक्षित सैनिकों को भेज देता। वाशिंगटन उस समय पूर्ण अरक्षित था। उसे वहाँ सेना की एक भी गारद नहीं मिलती। परन्तु इस सुयोग का लाभ दक्षिण नहीं उठा सका। सच्चाई की बात यह है कि दक्षिण में ऐसे साहसिक अभियान की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इसी तरह का संकट वरजीनिया और रिचमोंड में भी था।

उस समय यदि वाशिंगटन का पतन हो जाता तो कई बुरे राजनैतिक परिणाम निकल सकते थे। इन्हें लिंकन की अपेक्षा दूसरा व्यक्ति अच्छी तरह नहीं

समझता था। सीमास्थित राज्यों में गणराज्य के समर्थक लोग जो संघर्ष छेड़े हुए थे वे हताश हो जाते और वहाँ उनकी बुरी स्थिति हो जाती। फिर भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वे मेरीलैंड, केन्टकी और मिसूरी जैसे राज्यों की दक्षिण को प्राप्ति असंभव बना देते। लिंकन को इस बात की हार्दिक चिन्ता थी। उसने विचलित होकर करुणाजनक शब्दों में मेसाचुसेट्स रेजीमेंट के लिए लिखा कि इस समय दूसरी सहायता प्राप्त होना स्वप्न के समान है, केवल वही वास्तविक सहायता है। जो लोग उसके साथ ऐसी स्थिति में कार्य कर रहे थे, उनका कहना था कि उसने पूर्ण सजग व सतर्कता के साथ मंत्रिमंडल के सदस्यों सहित अपना सारा ध्यान स्थलसेना, नौसेना, वित्त, प्रशासन, डाकतार व पुलिस व्यवस्था-सम्बंधी तैयारियों में लगा दिया। हम यहाँ विस्तार में नहीं जायेंगे। उसने ऐसे कई कदम उठाये, जिनके लिए काँग्रेस ने प्रशासन को अधिकार नहीं दिये थे। फिर भी उसने इनको राष्ट्रपति को उपद्रव के समय प्राप्त अधिकारों के अंतर्गत मान कर लागू किया। उस समय काँग्रेस से स्वीकृति लेने के नाम पर सरकार को थोड़े ही नष्ट होने दिया जा सकता था। बाद में काँग्रेस से स्वीकृति ली जा सकती थी। सरकार के समक्ष इस बात का पता लगाने में बड़ी कठिनाई महसूस हो रही थी कि सेना में कौन गणराज्य के प्रति वफादार हैं और कौन दक्षिणी संघराज्य के पक्ष में हैं। साथ ही ऐसे कतिपय पद थे जिन्हें ऐसे लोग यदि छोड़ कर चले जाते तो उनकी तत्काल पूर्ति कैसे की जा सकती थी?

इसी दौरान में न्यू इंग्लैंड से सेनाएं—दक्षिण संघराज्य की उस प्रदेश के बारे में पहले जो संभावना थी उस पर पानी फेरते हुए—गणराज्य के झंडे के साथ कूच करती हुई वाशिंगटन की रक्षा के लिए बाल्टीमोर तक आ पहुँची। इस सेना ने अपने हाथों से रेलमार्ग को पुनः दुरुस्त किया और २५ अप्रेल को राजधानी में आ खड़ी हुई। इससे तात्कालिक संकट समाप्त हो गया। मेरीलैंड में जारी सैनिक कानून 'हेबियस कार्पस' समाप्त कर दिया गया। राष्ट्रपति की यह इच्छा नहीं थी कि अनावश्यक रूप से सैनिक कानून लागू कर दिया जाय। बाल्टीमोर में गणराज्य के एक सेनाधिकारी ने दक्षिण के लिए सैनिक भर्ती करने वाले एक एजेण्ट को बिना पूरी कानूनी प्रक्रिया अपनाये ही गिरफ्तार कर लिया। ऐसा हो जाना स्वाभाविक भी था। इस मामले में यदि वह सामान्य कानून का पालन करता तो भी काफी संभावनाएं थीं। कुछ लोगों की यह भावना बन चली कि लिंकन संभवतया इस घटना पर खेद प्रकट करता।

परन्तु जब घटना घट चुकी थी तब विरोध का क्या लाभ? लिंकन ने इस कार्य का समर्थन किया। फलस्वरूप पूर्वपरिचित वृद्ध, सर्वोच्च न्यायाधीश टैने ने राष्ट्रपति लिंकन से इस बारे में संविधान के विपरीत कदम उठाने के कारणों को लेकर आपत्ति उठायी। लिंकन के साथ इस बार सारी सशस्त्र सेना थी। उसने इस दिशा में जरा भी कमजोरी नहीं दिखायी। इसके फलस्वरूप एक ऐसे विवाद का जन्म हुआ जिसकी चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। उन दिनों मेरीलैंड में धारासभा की बैठक होने जा रही थी। लिंकन को गंभीरतापूर्वक यह सुझाया गया कि धारासभा पृथकता के पक्ष में प्रस्ताव पास करेगी, फलस्वरूप उसमें सशस्त्र हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। लिंकन ने इसे व्यावहारिक आधारों पर अस्वीकार कर दिया। उसने बताया कि धारासभा-सदस्य ऐसी स्थिति में भी बैठक तो कर ही लेंगे, तो क्यों उनको संविधान के प्रति शिकायत करने का मौका दिया जाय। इन दिनों बाल्टीमोर में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। तीन सप्ताह के अंतर्गत ही वहाँ सभी तरह के दक्षिणपक्षीय प्रचार, प्रदर्शन शांत हो गये और निरपेक्ष धारासभा ने तटस्थ रहने का निर्णय किया। वहाँ का गवर्नर (जहाँ तक कानून उसे आज्ञा देता था) सारे काम गणराज्य के पक्ष में हृदय से कर रहा था। मई के मध्य तक डाकतार-व्यवस्था व सेना का आवागमन निर्बाध गति से जारी हो गया। मेरीलैन्ड के बारे में जो गंभीर चिंता पैदा हो गयी थी वह समाप्त हो गयी। युद्ध के आरंभिक दिनों की इन घटनाओं को यहाँ विस्तार से रखा गया है क्योंकि ये सीमा राज्यों की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डालती हैं। अन्य राज्यों में भी—यद्यपि वे हमारी दृष्टि से ओझल रहे—इसी तरह के संघर्ष लंबे समय तक चलते रहे। इस तरह जो संघर्ष चलते रहे उनसे प्रभावित हो सरकार को भी लंबे दीर्घकालीन युद्ध की तैयारियाँ करनी पड़ी। इन मामलों के निर्णय में लिंकन का महत्वपूर्ण हाथ रहा। ऐसे संघर्ष व संकटकाल में भी वह इस तरह शांत व सधा हुआ जीवन व्यतीत करता था मानों वह शांतिकाल का राष्ट्रपति हो।

वाशिंग्टन में जो संकट पैदा हो गया था, वह अस्थायी था। उत्तर में इस तरह की संभावनाएं बन गयी थीं कि इस उपद्रव को सरलता से दबाया जा सकेगा। कई लोग तो इसे केवल चंद दिनों की ही बात समझने लगे। कई राजनीतिज्ञ इस मत के थे कि राज्य सेना की तीन माह की सेवा-अवधि समाप्त होने के पूर्व ही यह युद्ध समाप्त हो जायेगा। ऐसे ही 'समझदारों' में सेवार्ड भी एक था। यद्यपि जनरल स्काट के सैनिक निर्णय महत्वपूर्ण होते थे

परन्तु उसका राजनीतिक ज्ञान कोरा था। वह भी यह महसूस करने लगा था कि युद्ध लंबा नहीं चलेगा। फलस्वरूप उसने दीर्घकालीन युद्ध-सम्बंधी कई प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। उदाहरण के रूप में, उसने अनियमित घुड़सवार सेना के प्रशिक्षण को रुकवा दिया। इस बात के दृढ़ प्रमाण मिलते हैं कि लिंकन और युद्धमंत्री कामरन इस कपोलकल्पना में तनिक भी नहीं फँसे, और निरंतर अपनी तैयारियों में संलग्न रहे। पूर्वी क्षेत्र में जनमत प्रबल था ही, उसने तत्काल ही दक्षिण के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की माँग की। उत्तर अपनी पूरी शक्ति के साथ गणतंत्र की रक्षा के लिए आगे आकर खड़ा हो गया था। अब यह प्रशासन पर निर्भर करता था कि वह इस शक्ति का प्रयोग करे। लोग यह चाहते थे कि उत्तर अपनी सेनाएं रिचमंड पर आक्रमण करने को भेजे क्योंकि दक्षिणी संघराज्य की सरकार वहाँ स्थापित होने के लिए सेना-सहित कूच कर चुकी थी। इस तरह दक्षिण की इस राजधानी को अधिकार में कर लेने से उपद्रव दब सकता था, इस तरह लोगों की आम धारणा बनने लगी थी। वास्तविक स्थिति यह थी कि उत्तर को दक्षिण के नये भूभाग पर अधिकार करने के पूर्व यह आवश्यक था कि वह अपनी सेना और साधनों को पूरी तरह जुटा ले। दक्षिण संघ राज्य की सरकार की भी इन मामलों में ऐसी ही स्थिति थी, जैसी उत्तर की थी। उत्तर को अभी उन राज्यों की स्थिति के बारे में भी निर्णय करना था जो विवादग्रस्त थे। अब तक जो प्राप्त सेना थी उसका उपयोग इस दिशा में किया गया तथा बड़े अभियान के पूर्व आवश्यक छोटी-छोटी मुठभेड़ें की गयीं। जो सेना संगठित की जा चुकी थी उसको क्रियाशील करने की आवश्यकता थी, परन्तु सैनिक दृष्टिकोण से यह जरूरी है कि जिस राष्ट्र के पास विशाल साधन-स्रोत हों, उसे बड़े पैमाने पर तब युद्ध छेड़ना चाहिए, जब वह इन साधनों का समुचित उपयोग करने की स्थिति में हो। उसे तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। परन्तु जुलाई माह में जनमत और काँग्रेस के दबाव के कारण कुछ सतर्क सैनिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप भी २१ जुलाई को उत्तर ने बुलरन के युद्ध में अपनी पहली हार का महत्वपूर्ण पाठ पढ़ा।

'बुलरन' की घटना प्रस्तुत करने के पूर्व हम सीमा राज्यों की स्थिति और सैनिक संगठन पर प्रकाश डालेंगे। प्रारम्भ में ही उत्तर द्वारा सेना की कमान तीन भागों में विभक्त कर दी गयी—एक पोटोमाक क्षेत्र, जिसके अंतर्गत वाशिंगटन और रिचमंड क्षेत्र आता है; दूसरा ओहयो विभाग जिसमें ओहयो नदी का ऊपरी क्षेत्र था; तीसरा पश्चिमी विभाग जिसे भी दो विभागों में

बाँट दिया गया था। पश्चिमी विभाग को इन दोनों विभागों से कुछ अधिक छूट थी। ओहयो विभाग जनरल मेक्लिन के अधीन था। मेक्लिन कुशल सेनानायक था। वह इसके पूर्व सेना में इंजिनियर टुकड़ी का कप्तान रह चुका था। अवकाश ग्रहण करने पर वह रेल मैनेजर का काम कर रहा था। इसके पूर्व वह मेक्सिको युद्ध में नाम कमा चुका था और क्रीमिया युद्ध क्षेत्र में भी हो आया था। जनरल स्काट की निगाहों में भी वह चढ़ा हुआ था। पश्चिमी वरजीनिया की जनता गणराज्य के पक्ष में होने के कारण वरजीनिया क्षेत्र से अलग अपने नये राज्य का गठन कर रही थी। पुराने राज्य के दक्षिणपक्षी गवर्नर ने सेना भेज कर इन पर आक्रमण कर दिया। ये लोग इस प्रदेश की पर्वतश्रेणी के पश्चिम में रहते थे। इन्हें ओहयो से सम्बंध जोड़ने वाली पर्वतीय घाटी में होकर सेना व सहायता भेजी जा सकती थी। उन्होंने मेक्लिन से सहायता की अपील की। उसके द्वारा भेजी गयी सेना ने शीघ्र ही गवर्नर की सेना को खदेड़ दिया, बाद में गणराज्य के लिए पश्चिमी वरजीनिया को प्राप्त करके इस सेना ने अपनी व अपने नायक की कीर्त्ति मुखरित की। केन्टकी में एक ओर गणराज्य पक्ष के लोग स्वेच्छिक सैनिक भर्ती कर रहे थे तो दूसरी ओर वहाँ का गवर्नर दक्षिण के सहायतार्थ स्टेटगार्ड नाम की सेना तैयार कर रहा था। इन दोनों पक्षों के आपस में कई बार संघर्ष भी हुए परन्तु वे अनिर्णायक ही रहे। प्रारंभ में राज्य की धारासभा ने तटस्थता का रुख अपनाया। जून में नवनिर्वाचित धारासभा की बैठक हुई। इसने गणराज्य के पक्ष में निर्णय लिया। फलस्वरूप दक्षिण की सेनाओं ने इस पर आक्रमण कर दिया। केन्टकी धारासभा ने इस सेना को खदेड़ने के लिये उत्तर से सहायता की अपील की तथा इसके सहायतार्थ चालीस हजार केन्टकी के स्वेच्छिक सैनिक गणराज्य के लिए राष्ट्रपति को सौंप दिये। केन्टकी मिसिसीपी और आरगेनेजी पर्वतों के मध्य चार सौ मील का विस्तृत भूभाग है। यह लंबे समय तक दोनों पक्षों की युद्धभूमि बना रहा। इतना होने पर भी वहाँ की जनता की गणराज्य में दृढ़ भावना बनी रही। गणराज्य के साथ रहने के बारे में ये लोग दुविधा में १८६१ तक झूलते रहे। तब तक लिंकन के दिमाग में भी इन राज्यों—मिसूरी, मेरीलैंड, केन्टकी—की एक समस्या थी क्योंकि इन राज्यों में दास-प्रथा जारी थी। मिसूरी में उत्तर व दक्षिण समर्थक गुटों में कई घमासान मुठभेड़ें हुईं। जनवरी में इस आशय की सूचनाएं प्राप्त हुईं कि सेंट लुई-स्थित उत्तरी गणराज्य का जो गोलाबारूद था, उसे समय आने पर दक्षिण के

लिए प्राप्त करने का षड्यंत्र रचा गया है। जनरल स्काट ने इस क्षेत्र की कमान जनरल नाथानियल लियोन को सौंप रखी थी क्योंकि वह दास-प्रथा का कट्टर विरोधी था और उसकी वफादारी पर उसे विश्वास था। राष्ट्रपति द्वारा स्वैच्छिक सैनिक भरती की अपील की सीधी जिम्मेदारी उस पर थी। उसे इस कार्य में सेंट लुई के लोगों से अच्छी सहायता मिली। ये लोग जर्मनी से आये थे और स्वतंत्र संस्थाओं की रक्षा के पक्ष में थे। वहाँ का गवर्नर और राज्य की धारासभा भी दक्षिण के पक्ष में थी। उसे राज्य-सेना के भी कुछ अंश दक्षिण में मिल जाने की आशा थी। गवर्नर ने दक्षिण में विलय के लिए राज्यव्यापी अधिवेशन बुलाया और पृथकता का प्रस्ताव रखा, परन्तु मतदाताओं ने उसे ठुकरा दिया। लियोन ने कई मुठभेड़ों में गवर्नर की सेना को हरा दिया। जून में उसने राज्य की राजधानी पर अधिकार कर लिया और गवर्नर तथा दक्षिणपक्षीय धारासभा-सदस्यों को खदेड़ दिया। राज्यव्यापी सम्मेलन पुनः बुलाया गया। उसने गणराज्य-समर्थक प्रशासन की स्थापना की। इस नयी सरकार को कई स्थानों पर मान्यता नहीं मिली। मिसूरी में दक्षिण के हितों के लिए कई दिनों तक षड्यंत्र जारी रहे, और यह राज्य आक्रमण-प्रत्याक्रमण की रणभूमि बन गया जबकि इन आक्रमणों का कोई सैनिक मूल्य नहीं था। आरकानसास में वसन्त ऋतु में यथार्थ में गंभीर स्थिति पैदा हो गयी थी। वहाँ जो संघर्ष हुआ, उसमें लियोन को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा, परन्तु उसने मिसूरी को गणराज्य के पूर्ण पक्ष में कर लिया। स्वाभाविक ही है कि मिसूरी में गणराज्य के समर्थक उग्र विचार धारा वाले लोग थे। इनके बारे में हम बाद में विचार करेंगे। इसके अलावा यहाँ ऐसे कई पुराने रिपब्लिकन थे जो अनुदार पंथी थे। वे लिंकन के मित्र, पोस्ट मास्टर जनरल ब्लेयर के मित्र थे। इन्होंने भी मिसूरी को गणराज्य में स्थान दिलाने के लिए अपना पूरा योग दिया था।

[२]

बुलरन

१८६१ की वसन्त ऋतु तक इस तरह उत्तर और दक्षिण दो ठोस पृथक देशों में बँट गये। जुलाई का महिना था। दक्षिण और उत्तर में संघर्ष जारी था। केन्टकी अभी भी तटस्थ क्षेत्र था जिसे गणराज्य सरकार परेशान नहीं करना चाहती थी। यदि दक्षिण उसके प्रति ऐसी नीति अपनाता तो वह उसके

हित में होती। सुदूर दक्षिण में मिसूरी स्थित सेना पूर्वी आंचल की सेनाओं में सबसे अधिक सुसज्जित और संगठित थी। अतएव आक्रमण के लिए केवल रिचमंड क्षेत्र ही ऐसा बच रहा था जिस दिशा में अभियान किया जा सकता था। रिचमन्ड दक्षिणी संघ राज्य की राजधानी था, फलस्वरूप वह दक्षिण का हृदय था। २० जुलाई को दक्षिणी संघ-राज्य काँग्रेस की बैठक प्रारंभ होने वाली थी। 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' पत्र ने—जिसका संपादक कुशल व प्रभावशाली लेखक होरेस ग्रीली था—जनमत का उत्तेजनात्मक रूप से समर्थन किया। उसकी अभिव्यक्ति करते हुए पत्र ने लिखा कि दक्षिणी संघ-राज्य के काँग्रेस की बैठक आयोजित ही नहीं होने दी जाय। वाशिंगटन में जो सीनेट और काँग्रेस सदस्य थे वे सब एकमत होकर अभियान का समर्थन करने लगे। वे उसके लिए कर-प्रस्ताव तथा अन्य सैनिक तैयारियाँ सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार करने के पक्ष में थे। इन लोगों की भी यही मन्शा थी कि कुछ-न-कुछ किया ही जाना चाहिए। वे इसलिए भी यह चाहते थे कि राज्य सरकारों से जो सैनिक बुलाये गये, उनका कार्यकाल समाप्त हो रहा था और अभी तक उनका उपयोग भी नहीं हो पाया था। जनरल स्काट सरकार का प्रमुख सलाहकार था। वह इस पक्ष में था कि थोड़े दिनों तक प्रतीक्षा की जाय और जब सेना पूर्ण रूप से प्रशिक्षित व तैयार हो जाय, तब कदम बढ़ाया जाय।

अभी तक स्वैच्छिक सैनिकों में अनुशासन भी नहीं आ पाया था। अभियान के कुछ ही समय पूर्व उन्हें टुकड़ियों में विभाजित किया गया था। स्काट राज्यों से प्राप्त सेना पर अधिक भरोसा नहीं रखता था। कई दिनों तक वह बड़ी-बड़ी मुठभेड़ें टालता रहा और उसने केवल छोटी-छोटी मुठभेड़ों तक ही अपनी कार्यवाही सीमित रखी। यह निश्चयपूर्वक भी नहीं कहा जा सकता कि काँग्रेस और जनमत कार्यवाही की उत्सुकता प्रकट कर महान भूल कर रहे थे। दक्षिण के सैनिक भी अधिक नहीं थे। उनकी तैयारी भी उत्तर जितनी ही थी। जफर्सन डेविस और उसके सैनिक सलाहकार भी रक्षात्मक तैयारियों की पूर्ति के लिए अधिक समय प्राप्त करने के पक्ष में थे। यह कदाचित बहुत ही बुरी बात होती है यदि किसी देश में उत्साह और गति से सैनिक और सैनिक सामग्री जुटायी जाय और कुछ समय तक महत्वपूर्ण परिणाम ही दृष्टिगोचर नहीं हो। इन्हें उस स्थिति में संतुष्ट करना जरूरी भी था। युद्ध की अपेक्षा सैनिकों में निष्क्रियता के कारण सदा ही उनके जोश पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उस समय यह भी सोचा गया कि चाहे युद्ध में कितना भी संकट क्यों न हो, युद्ध आकर्षक रहेगा।

यह भय भी राजनीतिज्ञों में काम कर रहा था कि कहीं यूरोपीय राष्ट्र दक्षिण को मान्यता प्रदान कर उससे सम्पर्क स्थापित करके सहायता के लिए नहीं आ पहुँचे। उन दिनों उत्तर में यह भावना बढ़ रही थी कि उत्तरवाले दक्षिण को नहीं जीत सकते। कदाचित उन्होंने इसलिए भी आक्रमण करना चाहा होगा। इस राजनैतिक साहस के बारे में सैनिक सलाहकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इसमें अधिक संकट है। परन्तु लिंकन और उसके मंत्रिमंडल ने संकट ही अधिक पसन्द किया। अंत में जनरल स्काट को अपना विरोध वापिस ले लेना पड़ा। लिंकन आरंभ में जनमत से अधिक प्रभावित हो जाया करता था। वह अपने आपको जनता के आदेशों का पालन करनेवाला समझा करता था। बाद में ऐसी बात नहीं रही। यहाँ संदेह करने की कोई गुंजायश नहीं है कि लिंकन और उसके मन्त्रिमंडल ने किसी गंभीर निर्णय के अनुसार यह कदम उठाया था। उसने जनरल स्काट में अपना विश्वास रख छोड़ा था। जनरल स्काट दृढ़निश्चयी व्यक्ति नहीं था। साथ ही इसमें पराजित होने की स्थिति में भी कोई विशेष संकट नहीं था। युद्ध की आधी बाजी जीती ही जा चुकी थी। विजय की भी प्रबल संभावना थी। यदि स्काट के आदेशों का पूर्ण पालन किया जाता तो हारने का कहीं सवाल ही नहीं पैदा होता था। इस युद्ध में हार से कोई विशेष हानि नहीं होती, परन्तु निष्क्रियता का भय वास्तविक था। स्काट इस बात से भी भयभीत था कि वह जितनी अधिक सैनिक सतर्कता बरत रहा है, उसके कारण भी युद्ध के लिए सहयोग देने वाली जनता यदि कार्यवाही नहीं देखेगी तो निराश होना भी स्वाभाविक है और इस निराशा की स्थिति में जिस उद्देश्य को लेकर लड़ा जा रहा था, वह नष्ट भी हो सकता है। इस तरह का भय राजनीतिज्ञों में अधिक पाया जाता था। परन्तु उत्तर में जिस तरह की लोकप्रिय प्रबल भावना थी उसको समझने में लिंकन की शक्ति आश्चर्यजनक कही जा सकती है। इस तरह के प्रश्नों पर निश्चित निर्णय लेना अत्यन्त कठिन है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि लिंकन और उसके मंत्रिमंडल ने इस दिशा में समझ से ही काम लिया था।

उत्तर बुलरन के युद्ध को नहीं जीत सका। दक्षिणी सेना बियरगार्ड के नेतृत्व में वाशिंगटन से बीस मील दूर मानसास रेल जंक्शन को घेरे हुए बुलरन नदी के तट पर पड़ी हुई थी। उत्तर की प्रमुख सेना जनरल मेक्जवेल जैसे सुयोग्य कमांडर के नेतृत्व में दक्षिणी पोटोमाक में वरजीनिया भूमि पर वाशिंगटन के लिए रक्षात्मक मोर्चेबंदी किये हुए थी। सेनेन्डो घाटी में दक्षिण की दूसरी

सेना कमांडर जोसफ जान्सटन के नेतृत्व में थी। यह सेना हार्पर्स फेरी स्थित उस उत्तरी सेना की जो पिटर्सन के नेतृत्व में थी, गतिविधि की चौकसी कर रही थी। हार्पर्स फेरी को जनरल स्काट की कार्यवाहियों के फलस्वरूप उत्तर ने पुनः प्राप्त कर लिया था। पिटर्सन की सेना में सैनिकों की संख्या जान्सटन के सैनिकों से दुगुनी थी। इस समूचे क्षेत्र में उत्तरी सेना दक्षिण के मुकाबले संख्या में अधिक थी। योजना के अनुसार मेक्डोवेल को दक्षिणी संघराज्य की मानसास स्थित सेना पर आक्रमण करना था। पिटर्सन को आदेश दिये गये कि वह अपनी पूरी शक्ति से जान्सटन को इस तरह उलझा ले कि वे बियरगार्ड की सेना से नहीं मिल सके। पिटर्सन ने स्काट के आदेशों का जरा भी पालन नहीं किया। इसके लिए बाद में उसने कई तरह के झूठे-सच्चे कारण भी बताये। जान्सटन अपनी विशाल सैनिक टुकड़ी के साथ मेक्डोवेल द्वारा मानसास पर आक्रमण करने के एक दिन पूर्व ही बियरगार्ड से मिल गया। उसकी इस गतिविधि का आक्रमण के पूर्व पिटर्सन और मेक्डोवेल को भी पता नहीं चला। मेक्डोवेल की सेना ने दूसरे दिन मानसास पर आक्रमण कर दिया। दक्षिणी सेना नदी के दूसरे तट-स्थित घने वन में थी जहाँ से उसे उत्तर के सैनिकों ने ऊपर की ओर खदेड़ा परन्तु बाद में कड़ी जमीन व दुर्गम स्थान होने के कारण तथा सैनिकों के थक जाने से वे उसे वहाँ से आगे नहीं खदेड़ पाये। ये सैनिक थोड़ी साँस लेने के अवसर की तलाश में थे कि उनके दाहिने बाजू पर आक्रमण किया गया। उत्तर के सैनिकों में तत्काल ही इस तरह की अफवाह फैल गयी कि यह आक्रमण जान्सटन ने अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ किया है और वह अपनी सेना यहाँ ले आया है। फलस्वरूप उत्तर के सैनिकों में भगदड़ मच गयी और युद्ध की बाजी दक्षिण के हाथ में चली गयी। मानसास का यह युद्ध दोनों ओर ही प्रशिक्षणहीन सैनिकों के मध्य लड़ा गया था। वहाँ सैनिक अनुशासन की अपेक्षा व्यक्तिगत कौशल अधिक दर्शाया गया। मेक्डोवेल ने इस प्रशिक्षणरहित सेना का संचालन अत्यंत ही कुशलता से किया। उत्तरी सैनिकों में भगदड़ मचने के कारण उन्हें रोका नहीं जा सका। मेक्डोवेल ने उन्हें बुलरन से एक या दो मील दूर सेन्टविले में इकट्ठा करने का प्रयत्न भी किया परन्तु वह सफल नहीं हो सका। सैनिकों के साथ-साथ जो अन्य लोग थे, जिनमें कई काँग्रेसजन व प्रतिष्ठित नागरिक भी थे, हड़बड़ा कर भागे और वाशिंगटन में अफवाहों का बाजार गर्म करते हुए गड़बड़ी फैलाने जा पहुँचे। दक्षिण की सेना ने उत्तरी सैनिकों का पीछा नहीं किया। कुछ तमाशबीन

काँग्रेसजनों को युद्ध-क्षेत्र में दक्षिणी सेना ने युद्धबन्दी भी बना लिया। युद्ध का जो परिणाम निकला, उससे दक्षिण को भी अपार आश्चर्य हुआ। अब इस क्षेत्र में दक्षिणी सेना की कमान जान्सटन ने सम्हाल ली थी। उसने माँग की कि दक्षिण की सेना विजय के कारण संतुलन खोकर अस्तव्यस्त हो गयी है, फलस्वरूप उसे ठीक ढंग से संगठित करने के लिये समय की आवश्यकता है। रिचमन्ड स्थित अपने उच्चाधिकारियों की स्वीकृति पाकर वह मानसास में खाइयाँ खुदवाकर रक्षात्मक तैयारियों में जुट गया। वाशिंगटन में दिन भर विजय के समाचार आते रहे थे। बाद में वहाँ लोगों में यह भय घर कर गया कि नगर के तत्काल जीत लिये जाने का खतरा बढ़ गया है। मेक्लिन भी इसी राय का था। अब सब लोगों की आशा मेक्लिन पर केंद्रित हो गयी थी। उसे तत्काल वाशिंगटन बुला लिया गया और इस क्षेत्र की कमान उसके हाथ में सौंप दी गयी।

अमरीकी प्रशासन-क्षेत्र में इसके कारण गहरी निराशा पैदा हुई। वृद्ध जनरल स्काट ने स्पष्ट कहा कि वह अमरीका में सबसे बड़ा कायर है जो राष्ट्रपति के समक्ष इस मामले में झुक गया। लिंकन की सदा ही इस तरह की प्रवृत्ति रही कि वह अपने दोष स्वीकार कर लिया करता था परन्तु इस बार उसने सोचा कि इसमें स्काट की भी जिम्मेदारी है। उसने उसे लिखा कि क्या वह यह दोषारोपण करता है कि राष्ट्रपति के प्रभाव में आकर निर्णय में परिवर्तन किया गया। वृद्ध जनरल ने सहृदयता से परन्तु गोलमोल ही उत्तर दिया कि उसने कई राष्ट्रपतियों का कार्यकाल देखा, परन्तु उसके जैसा दयालु अधिकारी कहीं नहीं पाया। स्पष्ट ही है कि उसने यह महसूस किया होगा कि उसका स्पष्ट निर्णय किसी न किसी रूप में प्रभावित किया गया। उन दोनों के आपसी सम्बन्धों में ऐसी कोई बात नहीं थी जिसके कारण वह हृदय से राष्ट्रपति को इसके लिए दोषी ठहराता। इस घटना के नाटकीय तत्त्व हृदयग्राही हैं जब कि हम बाद में देखते हैं कि कैसे स्काट के उत्तराधिकारी से लिंकन का व्यवहार कई कारणों से रूखा व विरोधाभासी हो गया। लिंकन के हृदय पर इस युद्ध की पराजय से गहरी चोट लगी परन्तु बिना विचलित हुए अथवा किसी भी तरह की हिचकिचाहट दिखाये ही वह जो गंभीर कार्य सामने थे उनमें जुट गया। पोटोमाक सेना का गठन तेजी से तथा शांति-पूर्वक जारी रहा। बुलरन घटना के चार दिन बाद लिंकन—जैसा कि वह यदाकदा सैनिकों से भेंट करता रहता था—वाशिंगटन से कुछ ही मील दूर एक सैनिक ब्रिगेड का निरीक्षण करने चला गया। वहाँ उसने सैनिकों से सदा की

तरह खुलकर बातें की और उनकी शिकायतें व तकलीफें सुनी। वैसे इसका कोई महत्व नहीं है परन्तु परिणाम अच्छे निकलते थे। इस ब्रिगेड का संचालक विलियम शरमन था। उस समय तक यह व्यक्ति अजाना था परन्तु शीघ्र ही उसने गृहयुद्ध में इतने महत्व की भूमिका अदा की कि उसे महान अमरीकी सेनानायकों में स्थान दिया गया। राज्य-सेना से आये हुए एक कर्नल ने लिंकन से शिकायत की कि उसका सेवाकाल समाप्त हो गया है और वह घर लौटना चाहता है, परन्तु शरमन उसे गैरकानूनी रूप से यह धमकी दे रहा है कि यदि वह उसके सामने फिर कभी आया तो वह उसे गोली से उड़ा देगा। लिंकन ने गौर से शरमन को देखा। वहाँ उस समय बहुत से लोग खड़े थे। शरमन को घूरने के बाद उसने कर्नल को सुझाया कि वह शरमन के मार्ग में बाधा नहीं बने क्योंकि यह आदमी ऐसा ही दिखता है जो अपनी बात को पूरी कर डालेगा। बाद में शरमन ने राष्ट्रपति के इस छोटे से विनोद के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हुए कहा कि उसके फलस्वरूप ही वह अपनी सैनिक ब्रिगेड का अस्तित्व कायम रख सका।

इस युद्ध की पराजय का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि बाद में इससे भी बुरी तरह दो-तीन स्थानों पर हार हो जाने का भी इतना असर नहीं पैदा हुआ। इसीलिए हम उन पर अधिक ध्यान देने की जरूरत नहीं समझते। पहले पहल इससे अवश्य वाशिंगटन में झूठी अफवाहों के कारण जरा गड़बड़ी रही अन्यथा बाद में इस युद्ध के सैनिक महत्व को मानने की भूल नहीं की गयी। उत्तर में बुलरन घटना के बाद दूसरी उत्साह की लहर पैदा हो गयी। वह भी इस घटना की तरह अधिक दिनों तक प्रभावशाली रही। कुछ दिनों तक शान्ति रही तब तक मेक्लीन ने पूर्वी आंचल में अपनी सेना का पुनर्गठन कर लिया और पश्चिम में महत्वपूर्ण अभियान के आसार झलकने लगे। उत्तरी लोगों में उसी तरह समय से पूर्व ही 'महत्वपूर्ण कार्यवाही' का उत्साह पैदा हो गया था, परन्तु उनको भले ही आश्चर्य हुआ होगा कि १८६१ के पिछले पाँच महीने में एक भी महत्वपूर्ण सैनिक घटना नहीं घटी। अब हम कुछ समय के लिए अपना ध्यान दूसरे मामलों—विभागीय मसले, विदेशी मसले, आंतरिक नीति आदि—की ओर आकर्षित करें क्योंकि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रशासनिक प्रक्रियातंत्र को युद्ध के आरंभ से ही इन मसलों ने घेर रखा था।

[३]

लिंकन के प्रशासनिक कार्य

पूर्वी राज्यों की जनता लिंकन से पूर्ण परिचित ही नहीं हुई थी कि उसके पूर्व ही प्रशासनतंत्र के साथ लोग लिंकन का नाम जोड़ने लग गये। मंत्रिमंडल के सदस्य यह सोचने लग गये थे कि यह प्रशासन लिंकन का प्रशासन है। सेवार्ड और चेस ऐसे दो प्रमुख मंत्री थे जिन्होंने इस तरह की धारणा बनाने में योग दिया। सेवार्ड से ऐसी आशा नहीं की जाती थी कि वह लिंकन के प्रति वफादार रहते हुए पूरी तरह से उसकी मातहती में काम करेगा। अमरीका के लिये सेवार्ड का यह कार्य सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ। चेस के बारे में भी इसी तरह का आश्चर्य होता है। यह व्यक्ति कार्यकुशल, सुयोग्य व अनुभवी था, उस जैसे उग्र विचारक ने भी अपने में महान योग्यताएं होते हुए भी लिंकन को वास्तविक रूप से अपना अधिकारी मान लिया। प्रारंभ में एक मंत्री ने अपने मित्र को बताया कि मंत्रिमंडल में केवल एक ही व्यक्ति मत देता है और वह राष्ट्रपति है। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाय कि सभी विभाग लिंकन के निजी मार्गदर्शन से संचालित होते थे। लिंकन के पास अपने ही कई महत्वपूर्ण विभाग थे। इन विभागों में कुछ का सम्बन्ध उत्तर की एकता बनाये रखने वाले कार्यों से था। उसके समक्ष आंतरिक नीति का भी प्रश्न था—ये प्रश्न पुनः हमारे सामने कुछ समय बाद आयेंगे—जो उन दिनों महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त युद्ध-सम्बन्धी कार्य-संचालन विभाग भी था। यह इतना महत्वपूर्ण तथा विशाल कार्य था कि इस पर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता थी। अन्य मामलों में उसका नियंत्रण विविध रूपों में कम या अधिक आवश्यकता व कार्य के अनुसार होता था। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि उसके कार्यों पर मंत्रिमंडल का कुछ भी प्रभाव नहीं था। वह केवल उनसे अधिक-से-अधिक विचारविमर्श ही नहीं करता था वरन् वह उस पर अधिक आधारित भी रहता था। उसकी बुद्धिमत्ता की झलक इसीमें है कि वह यह निर्णय कर लेता था कि उसे किन मामलों में मंत्रि-मंडल से सलाह की आवश्यकता है और किन मामलों में नहीं। कब उसे सहयोग की आवश्यकता है और कब वह अकेला ही खड़ा हो सकता है। कभी-कभी वह अपने मन्त्रियों के सामने अपने प्रतिकूल रुख को छोड़ देता था जब उसे मंत्रियों के निर्णय उचित प्रतीत होते थे। कई बार उसे मंत्रियों का निर्णय इसलिए भी स्वीकार करना पड़ता कि उसके अपने कार्यों के लिए जनसहयोग

की आवश्यकता पड़ती थी। कभी-कभी वह उनका सहयोग इसलिए भी स्वीकार करता कि उसे इसकी आवश्यकता होती। वह उन सबकी अथवा किसी एक की भी राय के बिना गंभीर क़दम उठा लेता था। अधिकतर वह निर्णयों को सर्व सम्मत बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता। यह कहना असंभव है कि प्रशासन के किन कार्यों के लिए उसके प्रमुख को श्रेय दिया जा सकता है। बहुत से राज-नीतिज्ञों में ऐसी कुछ विशेषतायें अथवा कमियाँ मुख्यतया इस शक्ति में छिपी रहती हैं कि वह अपने मंत्रियों का मार्गदर्शन करते हैं, अथवा उनसे संचालित होते हैं। यह पता चलाने के लिए कि कौनसा कार्य तो लिंकन ने किया, कौनसा उसके मंत्रिमंडल ने किया या उत्तर ने यह न करके दूसरा काम किया, हमें गोरखधन्धे में फँस जाना पड़ेगा।

यह कहा जा सकता है कि उन बहुत-सी बातों में जिनमें लिंकन सीधा प्रशासन नहीं कर सकता था, योग्य व्यक्तियों की एक टोली के सहयोग से शासन करता था। वह भी ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा जिनका उसने सदा सर्वोत्तम उपयोग किया। इन लोगों को एक बनाये रख कर कोई दूसरा व्यक्ति काम नहीं ले सका। जैसे-जैसे हम आगे पढ़ेंगे हमें इनके आपसी सम्बंधों के बारे में कई उदाहरण मिलेंगे। भले ही वे महत्वहीन हों परन्तु वे उसकी राजनीतिज्ञता और उसके चारित्रिक गुणों का अच्छा विश्लेषण करते हैं।

युद्ध के दौरान में दोनों पक्षों ने समुद्रीयुद्ध में अपूर्व साहसिक शौर्य का प्रदर्शन किया। उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता है। इन विवरणों में दक्षिण की पनडुब्बी जलमग्न करने की साहसिक घटना का उल्लेख है। (इस पनडुब्बी को उत्तर वालों ने डुबाया तथा जलमग्न होने के कारण इसके सारे नाविक मृत्यु को प्राप्त हुए।) 'अलाबामा' और अन्य दक्षिणी युद्धपोतों पर उत्तर ने करारी चोटें कीं जिनकी इंगलैंड में कई दिनों तक रुचिपूर्वक चर्चा रही। ये युद्धपोत इंग्लैंड के जहाज 'यार्ड' में पड़े थे और वहाँ से चुपचाप खिसक गये। उत्तर को भी कई स्थल व जल आक्रमणों में पराजित होना पड़ा। ये अभियान दक्षिण के विरुद्ध समुद्री घेरे को अधिक कड़ा करने और दक्षिणी बंदरगाहों पर अधिकार करके इसे कम श्रमसाध्य बनाने की दिशा में किये गये थे और कदाचित दक्षिण में गहरे प्रवेश कर चोट करने के इरादे से भी किये गये थे। इनमें से बहुत से ऐसे अभियान थे जो प्रकाश में नहीं आये, परन्तु वे अधिक सफल हुए। इस तरह १८६३ की हेमन्त ऋतु तक अधिकांश जहाजी बेड़ा उत्तर के हाथों में आ गया और १८६५ तक दक्षिण के पास केवल दो

चार्ल्सटन और विलिंगटन बंदरगाह रह गये थे। परन्तु उत्तर की भावना को चार्ल्सटन पर किये गये आक्रमण ने अधिक आकर्षित किया, इसके कारण व्यर्थ ही सैनिक शक्ति नष्ट हुई और परिणाम कुछ भी नहीं निकला। स्टार के बाद एक दृढ़ सैनिक सलाहकार के रूप में ग्रान्ट को नियुक्त किया गया। उसके पूर्व ऐसे ही अभियानों में सैनिक शक्ति व्यय की जाती रही तथापि उत्तर की समुद्री विजय इस तरह प्रभावशाली ढंग से निरंतर जारी रही कि उसके इतिहास की पुनरावृत्ति इन पृष्ठों में करने की आवश्यकता नहीं है। घेरेबंदी की कड़ाई दक्षिणी समुद्रतट पर पहले ही दिन से प्रभावशाली महसूस की जाने लगी। १८६२ के आरंभ में दक्षिण के जो अन्तर्प्रदेशीय जलमार्ग थे वे उत्तरी नौसेना के हाथ में पड़ने लगे। इस विजय के लिए यह भी आवश्यक था कि आरंभ से ही इस दिशा में निश्चित नीति निर्धारित की जाती। एक नौसेना को विकसित करने के लिये विशाल नौसैनिक नीति की आवश्यकता थी जबकि पहले ऐसी कोई वास्तविक नीति थी ही नहीं। इस नौसेना में कार्य करने की स्थिति भी शानदार थी। इसके अतिरिक्त सतर्कतापूर्वक यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता थी कि दक्षिण नये आविष्कारों के सहयोग से अचानक ही इस घेरेबंदी को निष्क्रिय बना सकता था। दक्षिण में युद्धपोत तैयार करने की सामर्थ्य नहीं थी। वहाँ पहले एक दो बार इस तरह का प्रयत्न भी किया गया परन्तु वह उत्तर की नौसेना की सतर्कता के कारण असफल रहा। नौसेना विभाग वेलेस के तत्वावधान में था जो उसका निरंतर सावधानी तथा योग्यता से संचालन कर रहा था। परन्तु नौसेना विभाग में सबसे तेज दिमाग गुस्ताव फाक्स का था। वह पहले अवकाशप्राप्त नौसेना-अधिकारी था और लिंकन के प्रशासन सम्हालते ही उसे उपसचिव का पद दिया गया। घेरेबंदी की नीति १८ अप्रेल १८६१ को लिंकन की घोषणा के साथ-साथ लागू कर दी गयी। यह एक ऐसा कड़ा कदम था जिसके कारण विदेशी राष्ट्रों से मतभेद पैदा हो सकता था। १८१२ में अमरीकी सरकार ने यह स्वीकार कर लिया था कि वही घेरेबंदी सफल घेरेबंदी है जिसमें तटस्थ राष्ट्रों के व्यापार को भी अपने अंकुश में लिया जा सके। उसके बाद कभी भी इस दृष्टिकोण में शिथिलता नहीं बरती गयी। जिस समय उत्तर ने घेरेबन्दी की, उस समय उसके पास केवल तीन भाप से चलने वाले युद्धपोत थे और इनसे घेरेबंदी को भी सफल बनाना था। आरंभ में ही नौसेना विभाग उत्तरी बंदरगाहों में से व्यापारी जहाज खरीद कर उन्हें युद्धपोतों के रूप में बदलने की कार्यवाही कर रहा था और साथ ही नये जहाज भी बना रहा था।

नौसेना विभाग को अपनी नीति जारी रखने के लिए लिंकन का पूर्ण सहयोग और प्रोत्साहन प्राप्त था। सभी बातें यही प्रकट करती हैं कि उसने नौसेना के मामले में पूरा-पूरा ध्यान दिया और जब उसने यह देख लिया कि सुयोग्य व्यक्तियों की देखरेख में अच्छी प्रगति की जा रही है तो उसका नियंत्रण अति उदार भी हो गया। वेलेस उसके राष्ट्रपति-काल में पूरे समय तक मंत्रिमंडल का सदस्य बना रहा जिसका कभी भी शायद ही लिंकन से विरोध हुआ हो। वह इंगलैंड के उन मंत्रियों के सदृश था जो जनता की दृष्टि में आये बिना ही अपने विभाग का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लेने में सफल होते थे। सम्टर दुर्ग की दुर्घटना के बाद लिंकन ने फाक्स को जो पत्र लिखा उससे पता चलता है कि उसके दृष्टिकोण में नौसेना का कितना अधिक महत्व था और फाक्स की योग्यता में उसे कितना अधिक विश्वास था। इस दिशा में लिये गये उसके कुछ निर्णयों में से एक महत्वपूर्ण है। नौसेना विभाग ने १८६३ की हेमन्त ऋतु में चार्ल्सटन के विरुद्ध दुर्भाग्यपूर्ण अभियान किया। उस पर उन्होंने अधिक आशा केंद्रित कर रखी थी। लिंकन यह जानता था कि यह अभियान कभी भी सफल नहीं हो सकेगा। लिंकन पर यह आरोप (सही हो अथवा गलत) लगाया जाता है कि इसके लिए उसने सैन्याधिकारियों को आड़े हाथों लिया। लिंकन को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि जब उसका निर्णय सही था और अन्य अधिकारियों के निर्णय के विरुद्ध था तो उसने बागडोर क्यों अपने उन मातहत अधिकारियों को सौंप दी जिनकी योग्यता में ही केवल उसका विश्वास था। इस तरह की कई घटनाएं हैं जिनसे हम यह जानने की स्थिति में हैं कि उसका अपने में पूरा विश्वास पैदा हो चला था। फिर भी यदि उसे हस्तक्षेप की नीति अपनानी ही पड़ती तो वह उसे पूरी तरह सीमित रखता था। यह घटना इस ओर भी संकेत करती है कि जिन मामलों में उसका सीधा सम्बंध नहीं भी होता तो भी वह उनकी गतिविधियों के प्रति पूर्ण सतर्क रहता था।

वह वित्त-विशेषज्ञ नहीं था, और युद्ध के इतिहास का यह भाग 'उत्तरी वित्त' इससे अधिक सम्बंध नहीं रखता है। उत्तर की वास्तविक आर्थिक शक्ति अपार थी क्योंकि आव्रजन और विकास कार्य इतनी तेजी से बढ़ रहे थे कि युद्ध के दिनों में भी उत्पादन और निर्यात में वृद्धि हुई। परन्तु सरकार द्वारा लेने और कागजी मुद्रा के चलन से कुछ ऊपरी गड़बड़ियाँ हुईं। फिर भी र को युद्ध का भार इतना कड़ा नहीं महसूस हुआ जितना दक्षिण को। गर्व की बात है कि युद्ध के कारण जीवन-निर्वाह-मूल्य में वृद्धि तथा

व्यवसाय-व्यापार में गड़बड़ी के बावजूद भी सोने का मूल्य चालीस और साठ के बीच ही रहा, केवल एक बार १८५ तक पहुँचा था। युद्धकाल की असहनीय यातना का न तो समूचे श्रमिक-वर्ग और न न्यूयार्क के व्यवसायी जगत् पर ही अधिक प्रभाव पड़ा। चेस की वित्तीय नीति—यद्यपि वह सुयोग्य होते हुए भी इस मामले में नया-नया था—अमरीकावासियों की दृष्टि में अत्यन्त सराहनीय रही। लिंकन ने उसे वित्तीय नीति में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। वह तत्कालीन विशेषज्ञों की नीति व वक्तव्यों को ध्यान से देखता व सुनता रहा और प्रारंभ से ही उसे चेस की योग्यता में दृढ़ विश्वास हो चला था। चेस को मंत्रिमण्डल में रखने के लिए राष्ट्रपति को कितना सुयश का पात्र बनना पड़ा यह कहानी बाद में कही जायेगी।

प्रशासन का एक कार्य केवल राष्ट्रपति के ही आधीन था। एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने प्रधानमन्त्री बनने पर कहा, "मुझे अपने पुराने पद व विभाग में कई महत्वपूर्ण कार्य थे और वे रुचिकर भी थे परन्तु अब मेरा प्रमुख कार्य कई निकम्मे लोगों को 'लार्ड' बनाने का हो गया है।"

लिंकन द्वारा उद्घाटन के बाद के कुछ बैचेनी भरे दिनों में एक सीनेट सदस्य ने राष्ट्रपति को परेशान देखकर पूछा, "राष्ट्रपति महोदय! क्या मामला है? क्या सम्टर दुर्ग से बुरे समाचार आये हैं?" लिंकन ने उत्तर दिया, "नहीं जी! यह बाल्डीन्सविले के डाकखाने का मामला है।" राष्ट्रपति का संरक्षण इस दिशा में विशाल था, बड़े-से-बड़े पद से लेकर छोटे-छोटे डाकखानों तक। स्थानीय दफ्तरों में नियुक्ति करते समय उससे यह आशा की जाती थी कि वह उस क्षेत्र के अपने कॉंग्रेसजनों व सीनेट सदस्यों से राय लेगा और इन पदों के लिए ऐसे व्यक्तियों को चुनेगा जिन्होंने उसके दल के लिए काम किया हो। ऐसे बहुत से मामलों में पहले से ही यह मानकर चला जाता है कि चुना गया व्यक्ति उक्त पद के लिये सर्वथा उपयुक्त है। परन्तु उस समय अमरीकी राजनीति में जो व्यावहारिक प्रथा जारी थी वह दूसरे ही ढंग की थी। रिपब्लिकन दलीय राष्ट्रपति के चुन लिये जानेपर ऐसा होना ही चाहिए था कि इन पदों पर पहले जो डेमोक्रेटिक दल के लोग काम कर रहे थे, उनके स्थान पर रिपब्लिकन दल के लोगों को नियुक्त किया जाता, क्योंकि डेमोक्रेटिक दल वालों ने भी अपने कार्यकाल में यही किया था। कुछ दिनों बाद ही लिंकन को इस दिशा में जो अनुभव हुआ उसके कारण वह यह घोषणा करने को बाध्य हुआ कि इस तरह पद बाँटने की नीति से अमरीकी राजनीति चौपट हो जायेगी।

उसने निश्चय ही यह कभी नहीं सोचा होगा कि वह प्रचलित प्रथा को भंग कर दे और नया परीक्षण करे। अभी तक इस प्रथा के बारे में किसी भी दल ने कोई शिकायत नहीं की थी। उस समय यदि यह कदम उठाया जाता तो सर्वाधिक मूर्खता सिद्ध होती और यदि इस संकट-काल में—उसने चाहे ऐसा सोच भी लिया हो—वह परम्परा भंग कर नया कदम उठाता तो उससे डेमोक्रेटिक दलवाले जितने प्रसन्न नहीं होते उससे अधिक रिपब्लिकन दल वालों के क्रोध का पारा चढ़ जाता। उस समय इस बात का और भी अधिक महत्व था कि सार्वजनिक पदों पर ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाय जो गणराज्य के प्रति वफादार हो क्योंकि यह स्पष्ट है कि संदेहशील व्यक्ति यदि पोस्टमास्टर भी बनाया जाय तो गड़बड़ी कर सकता है। लिंकन ने इस दिशा में केवल विशिष्ट पदों को छोड़कर जिनपर पूरी योग्यता की आवश्यकता है, दूसरे पद जो उसके संरक्षण में थे, यथासंभव ईमानदारीपूर्वक सरकार-समर्थक विभिन्न वर्गों एवं व्यक्तियों में विभाजित कर दिये क्योंकि उसका यह बुनियादी कर्त्तव्य था कि वह इन्हें संगठित बनाये रखता। इस सारी प्रक्रिया में उसका रुख अच्छी तरह से समझा जा सकता है और उन सतर्क पर्यवेक्षकों द्वारा भी सराहा गया है जो उसकी राजनीति के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण लिये हुए थे। इस कार्य से उसकी परेशानी काफी बढ़ गयी क्योंकि जब उसे किसी के प्रति घृणा व असंतोष होता तो वह उसे स्पष्ट शब्दों में 'नहीं' कह देता था। एक बार वह यह सोचकर ही काँप गया कि यदि वह 'महिला' हुआ होता तो उसकी क्या स्थिति होती, फिर भी उसे इस बात से संतोष मिला कि चलो, उसकी कुरूपता उसके लिये ढाल का काम देती। लिंकन के निजी सचिव ने उसपर दोषारोपण किया कि राष्ट्रपति अपने इस कार्य पर निरर्थक ही अधिक ध्यान देकर अपने सिद्धान्तों को लागू करने में शक्ति का अपव्यय करते रहे। ऐसी नियुक्तियों में जहाँ दलीय सिद्धान्त सामने नहीं आते फिर भी यह माना जाता है कि दलगत भावना वहाँ भी काम करती है। लिंकन ने ऐसे स्वतंत्र निर्णय लिये जिससे उसके पुराने प्रतिद्वन्द्वी भी आश्चर्यचकित रह गये। यदि गणराज्य के समर्थकों को खुश रखने और निरंतर संगठित रखने के लिए ऐसे प्रयत्नों को सौदेबाजी जैसा सही नाम दिया जाय तो भी लिंकन के इन प्रयत्नों के पीछे उपरोक्त स्वतंत्र निर्णय का कदम उठाना एक महान सैद्धान्तिक विशेषता थी। बाद म जब कि डेमोक्रेटिक विरोध पुनर्जीवित हो गया और रिपब्लिकन दल में एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा हुआ जो उसका विरोधी था, उसके व्यक्तिगत राजनैतिक अधिकार भी धूमिल से हो गये थे और इसके प्रमाण भी मिलते हैं—

आगामी चुनाव में उसके चुने जाने की संभावना भी समाप्तप्राय-सी लगने लगी थी—फिर भी उसके इन स्वतंत्र निर्णयों को ये बातें तनिक भी प्रभावित नहीं कर सकीं।

[४]

अमरीकी विदेश नीति और इंगलैंड

इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक कठिन है कि विदेश नीति पर उसका क्या प्रभाव था। यह इसलिए भी कठिन है क्योंकि जो सराहना उसे दी गयी उसे देखते हुए इस बारे में उससे अधिक आशा थी। यद्यपि यह सही है कि वह सेवार्ड पर निरन्तर देखरेख रखता था, परन्तु यह प्रभाव कूटनीतिक जगत को ज्ञात नहीं था।

युद्ध के पहले डेढ़ वर्ष तक छोटे-मोटे संघर्षों के अतिरिक्त उत्तर को एक वास्तविक भय यह था कि विदेशी राष्ट्र उनके मामले में कहीं हस्तक्षेप नहीं कर बैठे। मेक्सिको के बारे में नेपोलियन तृतीय की जो महत्वाकांक्षाएं थीं उन्हें देखते हुए यह संकट और भी बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त इंगलैंड को केवल व्यापार रुक जाने से ही नहीं वरन् घेरेबंदी के कारण रुई नहीं मिलने से भी इस दिशा में और भी सन्देह बढ़ गया। आरंभ से ही यह भय बना हुआ था कि विदेशी राष्ट्र दक्षिणी संघ राज्य को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता प्रदान करेंगे। उस स्थिति में बाद में वे मध्यस्थता प्रस्तुत करेंगे जिसे राष्ट्रपति द्वारा ठुकराना दुविधाजनक होगा क्योंकि मध्यस्थता ठुकराने की स्थिति में उनके द्वारा सीधा हस्तक्षेप करने की संभावना भी थी। यह आश्चर्यजनक है कि यूरोपीय राष्ट्रों में से एक राष्ट्र रूस ऐसा था जिसके सम्बंध अमरीकी गणराज्य से मैत्रीपूर्ण थे। उस समय रूस की गद्दी पर अलेग्जेंडर द्वितीय था जो १८६१ में उसी वर्ष अपने पिता द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त एक योजना के अनुसार किसानों को मुक्त करने का कार्यक्रम पूरा कर रहा था। वाशिंगटन स्थित फ्रांसिसी राजदूत मर्सियर ने फ्रांस सरकार को सुझाया कि फ्रांस मार्च १८६१ तक दक्षिणी संघ राज्य को मान्यता प्रदान कर दे। फ्रांस के सम्राट का सदा से इसी नीति की ओर झुकाव रहा, परन्तु फ्रांस की जनता इस पक्ष में नहीं थी। फ्रांस का सम्राट इंगलैंड को छोड़कर अकेला यह कदम नहीं उठाना चाहता था। इंगलैंड की सरकार ने निर्णय कर लिया था और उस पर

अडिग थी कि वह इस दिशा में जल्दबाजी का कदम नहीं उठायेगी। यद्यपि उस समय अमरीकावासी इसे नहीं जान पाये थे। इतने पर भी अचानक एक ऐसी दुर्घटना घटी जिससे इंगलैंड व गणराज्य के बीच युद्ध की-सी स्थिति पैदा हो सकती थी और जिसके बारे में दोनों देशों को तनिक भी जानकारी नहीं थी।

युद्ध के इन दिनों में ब्रिटेन और अमरीका के आपसी सम्बन्ध व इस युद्ध में इंगलैंड का क्या रुख रहा, इस पर जब तक अध्ययन नहीं कर लेते, लिंकन सरकार की विदेश नीति तथा इंगलैंड व अमरीका के मध्य उस समय से लेकर आज तक के सम्बन्धों के बारे में कुछ भी नहीं समझ सकते। थोड़ी देर के लिए दक्षिण और उत्तर के मतभेदों के बारे में जो पूर्व निर्णय था उसे भूल जायें, फिर भी युद्ध के दौरान में इंगलैंड ने जो रुख अपनाया वह प्रत्येक इंगलैंडवासी के लिये खेदजनक है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी बातें थीं जिनपर जोर देकर कहा जा सकता है कि उसे पुनः स्मरण करने से सभी इंगलैंडवासियों को संतोष होगा। उस समय इंगलैंड की जनता ने जो दृष्टिकोण व विचारधारा प्रकट की उसमें किसी भी राष्ट्र को समझने तथा उसके बारे में आगे बढ़कर निर्णय लेने की कमी थी। इतिहास के उस काल में अमरीकी गणराज्य के प्रति ब्रिटेन की जो भावना थी आज से उसका स्वरूप ही दूसरा था। उस समय पामर्स्टन और काबडन ने इस दिशा में ऐसा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उस समय अंग्रेजों ने दक्षिण की तरफ अपना झुकाव रखा, वे लोग दक्षिणवालों को पसन्द करते थे। उत्तर के तौर-तरीकों में ऐसी कई बातें थीं, जिन्हें अंग्रेज व्यापारियों ने व्यापार के दौरान में अथवा वहाँ पूँजी लगाते समय अनुभव किया। इनका उनके ऊपर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। बहुत से उत्तर-वासियों ने अंग्रेजों की दक्षिण की पसन्दगी को घमण्डभरी और अनुचित समझा, परन्तु न ये ही लोग पूर्ण सही थे। दक्षिण के प्रति इस रुझान के कारण अंग्रेजों ने इसे सरलता से मान लिया कि उसके मामले में वास्तविक ही असहनीय हस्तक्षेप किया जा रहा है। परन्तु अंग्रेजों ने इसे भी स्वीकार किया कि जिस शिकायत को लेकर दक्षिण उठ खड़ा हुआ है उसका आधार ही अनुचित है। यह एक गौरवास्पद बात मानी जा सकती है। इसके विपरीत उत्तर का जो उद्देश्य था उसे आज तक इंगलैण्ड नहीं समझ सका। वह इस तरह से लोगों के सामने प्रस्तुत किया गया। "अमरीका की उथल-पुथल-भरी, उपद्रवी, अरुचिकर

राजनीतिक घटनाचक्र में पड़ कर कैसे एक व्यवसायी समाज, जो दास-प्रथा के प्रति सहनशील था, एक सिद्धान्त को लेकर युद्ध छेड़े हुए है। यह सिद्धान्त—लोगों का कहना है कि दास-प्रथा का विरोध है, कुछ लोगों का कहना है कि नहीं यह उसके विरोध में नहीं है—इसे समझना जरा कठिन है।" जिन अंग्रेजों ने अपने पितामहों से अमरीकी गृहयुद्ध की बातें सुनी हैं उनसे इसके बारे में सरल व स्पष्ट विवेचन नहीं पा सकते। उत्तर ने इसलिए युद्ध किया कि वह दास-प्रथा को अधिक बढ़ने नहीं देना चाहता था, और इसके विकल्प में, उत्तर ने गणराज्य के विभाजन को न तो स्वीकार ही किया और न उसे कभी स्वीकार ही करता। यह सत्य है कि दक्षिण क्रोध में भरकर उत्तर के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ जहाँ इसके उद्देश्यों की ओर अत्यंत संकुचित लालची आर्थिक वृत्ति काम कर रही थी। इसके विपरीत उत्तर के कुशल 'यांकी' व्यवसायियों ने नागरिकों व देहातियों को भी साथ लेकर एक ऐसे उद्देश्य के लिए युद्ध लड़ा—चाहे वह बुद्धिमानी के कारण अथवा गलती से था जिसके लिए राष्ट्र का सशस्त्र रूप से युद्ध छेड़ना उचित है अथवा अनुचित, नहीं कहा जा सकता। अभी तक अंग्रेजों के लिए यह पेचीदगी-भरी बात है। उत्तर की राजनीति ने किस तरह यह पेचीदा मार्ग हिचकिचाते हुए अपनाया उसे तत्कालीन अंग्रेज स्पष्ट नहीं समझ सकते थे। हम अगले अध्याय में देखेंगे कि कैसे उत्तर की कूटनीति ने उनके लिए इसे और भी पेचीदा बना दिया। परन्तु उस समय ब्रिटिश भावना का जो स्वरूप ब्रिटेन में था और इंगलैंड ने जैसा उत्तर को दर्शाया यह लज्जाजनक रूप में ही स्वीकार करना पड़ेगा। उस समय के समाचारपत्रों के लेख तथा वहाँ के भद्र लोगों द्वारा भेजे गये पत्र पढ़ना भी अशोभनीय है। यह सोचना ही पीड़ाजनक है कि उस समय प्रमुख राजनैतिक विचारक काबडन जैसे नेता भले ही कुछ ही समय के लिए क्यों नहीं बहे हों—इस धारा में बह गये कि दक्षिण का जो 'स्वतंत्र व्यवसाय सिद्धान्त' है उसके साथ समझौता कर लिया जाय। हम इंगलैंड की अपेक्षा इस दिशा में प्रशिया की सराहना करेंगे लार्ड सेलिसबरी (उस समय लार्ड सेसिल) ने यह मत अभिव्यक्त किया कि दक्षिण हमारा अच्छा ग्राहक है अतएव उसके साथ मित्रता दिखायी जानी चाहिए। दूसरी ओर उत्तरी राज्य हमारे व्यापार में प्रतिद्वन्द्वी हैं इसलिए हमें उसका विरोध करना चाहिए। जब ऐसे व्यक्ति इस तरह की बातें करने लगे तो यही समझा जायेगा कि इन्होंने निर्ममता से केवल सत्य का ही गला नहीं घोट दिया, ये लोग उस तथ्य के प्रति भी अन्धे थे कि इस युद्ध में न्याय और अन्याय

जैसा स्पष्ट मसला जुड़ा हुआ है। ग्लेडस्टन में यह बात नहीं थी परन्तु वह इससे कुपित और खीझा हुआ था कि मुक्ति की बात को लेकर युद्ध का कदम उठाना उचित नहीं। उसके बाद तो उसका छोटे-छोटे राज्यों के प्रति प्रेम झलक उठा। जब वह मंत्रिमंडल का सदस्य था उसके मुँह से यह भविष्य-वाणी निकल गयी, जिस पर बाद में उसने भी बुरी तरह खेद प्रकट किया और उत्तर में भी इस पर तीव्र असंतोष व्यक्त किया गया। उसने कहा, "जफर्सन डेविस और दक्षिण के नेताओं ने सेना का संगठन कर लिया है, ऐसा लगता है कि वे नौसेना भी बनाने जा रहे हैं और वे बना भी चुके हैं, इन दोनों से भी बढ़कर—वे एक राष्ट्र बना चुके हैं।" बहुत से अंग्रेजों ने कमजोर पक्ष के प्रति सहानुभूति ही दरसायी। बहुत से ऐसे थे जो उस पक्ष के समर्थन में थे जिसे जीत मिल सके। (लार्ड रोबर्ट सेसिल ने उत्तर की एक महिला को कहा, 'युद्ध जीत कर दिखाओ और हम सभी अनुदारदली शीघ्र तुम्हारे साथ हो जायेंगे।') इन बातों को यहाँ इसलिए दुहराया गया है जिससे यह जाना जा सके कि अमरीका पर उन दिनों इसका स्वाभाविक प्रभाव क्या पड़ा। शिकायत इस बात से नहीं है कि लोगों ने दक्षिण का पक्ष लिया। इस दूरवर्ती विवादग्रस्त विषय में इन लोगों ने यह भी स्वीकार नहीं किया कि उत्तरपक्ष जैसी भी कोई चीज है। इस विषय में आरंभ में मुश्किल से ही कोई समझने को तैयार था और न उसका उद्देश्य ही उन्हें प्रोत्साहित कर सका। इन राज-नीतिज्ञों के अतिरिक्त दो ऐसे प्रख्यात व्यक्ति थे जिन्होंने अपने हृदय से उत्तर के उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग दिया। ये व्यक्ति टेनीसन और डार्विन थे। इन लोगों के नाम के साथ 'टाम ब्राउन' के लेखक का नाम भी जोड़ा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति जो उत्तर के प्रति असहिष्णु थे अथवा जिन्हें इस मामले में अरुचि रही उनमें से बहुत से व्यक्तियों के नाम इस दिशा में आश्चर्य-जनक भी लगेंगे। यहाँ तक कि डिकन्स जैसे प्रसिद्ध लेखक भी इनमें शुमार थे जिसने 'मार्टिन चज़लविट' में दास-प्रथा से घृणा करते हुए अमरीकी राष्ट्रीय भावना को उग्र विचारों की ओर मोड़ने में सफलता प्राप्त की थी। अब जब कि उस राष्ट्रीय भावना ने स्वरूप ग्रहण कर लिया और आगे बढ़ने का समय आ गया तो उसने कायरता प्रकट की। उसके पत्रों में इन दिनों संपूर्ण अमरीकी महाद्वीप के प्रति घृणा प्रकट की गयी। तत्कालीन इंगलैंड में इस तरह की अस्वस्थ प्रवृत्ति जिसकी व्याख्या भी की जा सकती है, निस्संदेह सर्वत्र मौजूद थी।

इस प्रश्न ने तत्कालीन अमरीकी स्मृति पर अपना पीड़ाजनक प्रभाव

छोड़ा। परन्तु इस प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है। जब घेरेबंदी के कारण इंगलैंड का सबसे बड़ा उद्योग—सूती उद्योग—अकाल की स्थिति के निकट पहुँच गया था, तब भी इससे प्रभावित श्रमजीवी वर्ग ने दृढ़ता के साथ निरंतर उत्तर के पक्ष का समर्थन किया। इंगलैंड के श्रमिकों में इस तरह की भावना का सर्वोत्तम प्रदर्शन पहले कभी नहीं हुआ था और इसके कारण श्रमिक वर्ग संघटित राजनैतिक स्वरूप में सामने आ गया। जान ब्राइट ने संपूर्ण अमरीकी स्थिति का विशद अध्ययन किया और जो रुख उसने इस दिशा में लिया इसमें उसे जे. एस. मिल, डब्ल्यू. ई. फास्टर और ड्यूक आफ अरगेल का भी समर्थन प्राप्त हुआ। ड्यूक आफ अरगेल सुधारक था और युद्ध से घृणा करता था परन्तु इसने उत्तर के पक्ष में जो विशिष्ट रुख अपनाया वह उसके लिए गौरवसूचक है। इसके अलावा इस दिशा में अभी बहुत कुछ कहना शेष रह गया है। उस समय ब्रिटिश सरकार का रुख, जिसे इस दिशा में महत्त्वपूर्ण विरोधी पक्ष के नेताओं का सहयोग प्राप्त था, वहाँ की आम जनता के हृदय में बसी गहरी भावनाओं का प्रतीक था और अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों की दिशा में इसी भावना को प्रतीक माना गया। उस समय की सरकार का इस मसले पर जो दृष्टिकोण था, वह गंभीर प्रतिक्रियामूलक नहीं था। इस सरकार में पामर्स्टन जैसे प्रधान मंत्री तथा लार्ड जान रसेल जैसे विदेशमंत्री थे और उन्हें इस मसले पर नीतिनिर्धारण में अनुदारदली नेता डिजरायले और सर स्टाफोर्ड नार्थकोट का सहयोग प्राप्त हुआ। लार्ड जान रसेल और उसके सहयोगी निस्संदेह दास-प्रथा को अभिशापभरी प्रथा मानते थे। परन्तु इसके कारण उनके हृदय में दक्षिण के प्रति किसी भी तरह के क्रोध की भावना नहीं थी। जैसा कि एक बार रसेल ने कहा, "हम लोगों ने ही उन्हें यह पापपूर्ण प्रथा प्रदान की और हमारे ही हाथों से उन्हें यह सत्यानाशी भेंट मिली।" लार्ड जान के हृदय में रह रह कर युद्ध के दिनों में यह बात खटकती रही कि एक महान गणतंत्र—जिसके अंतर्गत जनता स्वतंत्र और सुखी थी—अस्तव्यस्त हो गया। अमरीकी मामलों में इनकी अन्तर्दृष्टि गहरी नहीं थी। उस समय "उत्तर के अधिकारों के विरुद्ध प्रबल भावना, दक्षिण के प्रति सहानुभूति और रूई प्राप्त करने की हार्दिक इच्छा" अधिक थी। ऐसे समय में सरकार और डिजरायले श्रद्धा के पात्र हैं कि इस भावना में भी वे अपने निर्णय से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए। उनकी इस नीति को पत्रों, पार्लयामेंट और जनता ने स्वीकार किया, यह सराहनीय कहा जा सकता है।

यह पूर्ण सत्य है कि उत्तर के इस अंधकारमय युग में एक ऐसा समय भी आया जब ब्रिटेन लगभग हस्तक्षेप करने की दिशा में सतर्कतापूर्वक विचार करने लगा था। परन्तु डिजरायले यदि इससे हटकर तनिक भी देशप्रेमरहित दूसरा मार्ग अपनाता तो उसके दल की स्थिति दृढ़ होने की संभावना भी थी। उसने अपने निर्णय पर किसी भी तरह के प्रतिकूल वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ने दिया। उसके पत्रव्यवहार को पढ़ते समय यह सामने रहता है कि वे ऐसा कोई कार्य उत्तर के प्रति आक्रामक भावना से नहीं करने जा रहे थे। उनके हृदय में यह विश्वास बन गया था कि उत्तर की स्थिति निराशाजनक थी और हस्तक्षेप करके व्यर्थ रक्तपात रोककर वे सारे अमरीकी राष्ट्र की हार्दिक मित्रता प्राप्त कर सकते हैं। अंग्रेज बाद में अमरीका के बारे में अधिक रुचि प्रदर्शित करने लगे, और वे यह इच्छा भी अभिव्यक्त करते थे कि कितना अच्छा होता कि उनके पितामह गृहयुद्ध जैसे प्रश्न को अच्छी तरह समझ पाते। परन्तु यह गर्व की बात है कि इंगलैंड ने एक राष्ट्र के रूप में ईमानदारीपूर्वक दृढ़ मार्ग अपनाया जबकि उस समय उनके अपने स्वार्थ झलक रहे थे और वे उसकी प्राप्ति के लिए पूर्ण सजग होकर चेष्टा भी कर रहे थे।

इस विषय पर अमरीकी इतिहासकारों ने विस्तार से प्रकाश डाला है। हमारा तात्कालिक उद्देश्य इसे प्रस्तुत करने में केवल यही है कि उस समय इंगलैंड में उत्तर के पक्ष-विपक्ष में जिस तरह की भावना प्रवाहित हो रही थी उसका अमरीका पर भी प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव कुछ माने में अधिक स्थायी रहा। दक्षिण में इस सहानुभूति के कारण ऐसी उत्कट इच्छा हो गयी कि वहाँ राजनैतिक यह सोचने लगे कि उन्हें विदेशी सहायता मिल सकेगी। परन्तु उन्हें किसी तरह की सहायता नहीं मिली और इससे वहाँ असंतोष भी फैलने लगा। यह कहना आश्चर्यजनक अवश्य लगेगा परन्तु सत्य है कि इस असंतोष की प्रतिक्रिया वहाँ ब्रिटेन के विरुद्ध १९१४ में खतरनाक रूप से सामने आयी। उत्तर में उनके प्रति विरोध की भावना ने वहाँ के लोगों पर गहरा असर छोड़ा क्योंकि उनकी मान्यता थी कि ब्रिटेनवासी उनके इस सदुद्देश्य में उत्साह को सराहेंगे। उत्तर में ऐसे बहुत से लोग भी थे, जो इंगलैंड के नाम से ही असंतुष्ट हो जाते थे, परन्तु ऐसे लोग भी कई थे जिनकी इंगलैंड के प्रति गहरी सहानुभूति की भावना थी। जेम्स रसल-लोवेल जैसे रिपब्लिकन भी इंगलैंड-वासियों द्वारा सम्पूर्ण अमरीका को दासता में रखने की दिशा में जो प्रतिक्रिया-त्मक रुख दर्शाया गया था उसके कारण तिलमिला उठे। उनका मत था कि

उत्तर ने ऐसे मार्ग को अचानक ही अवरुद्ध कर दिया और दासता को तनिक भी आगे नहीं बढ़ने देने के प्रश्न पर अपने सर्वस्व की बाजी लगा दी है। उन्हें इंगलैंड के कई क्षेत्रों से सहानुभूति की आशा थी, परन्तु इंगलैंड के अखबारों और वहाँ पर स्थित अमरीकी लोगों के पत्रों में उन्हें जिस तरह की चीज देखने को मिली, उसे उन्होंने पसन्द नहीं किया। ठीक इस समय उत्तर को ऐसे प्रमाण भी मिले कि ब्रिटिश सरकार का रुख उनके विरुद्ध तनावपूर्ण कार्यवाहियों का है। ब्रिटेन ने तत्काल ब्रिटिश प्रजाजनों को 'तटस्थ' रखने की घोषणा की। यह ठीक उसी तरह का कदम था जो युद्ध छिड़ने के पूर्व उठाया जाता है। परन्तु उत्तरी लोगों ने सोचा कि उनकी सरकार को इस दिशा में विलक्षण ही क्यों न हो, स्पष्टीकरण प्राप्त होगा। ऐसे और भी कई मामले थे जिनके बारे में उन्होंने यह गलत अर्थ लगाया कि इंगलैंड फ्रांस के साथ समझौता कर इस दिशा में आगे बढ़ रहा है कि दक्षिणी संघ राज्य को मान्यता दी जा सके। इस तरह उत्तर में इंगलैंड-विरोधी और इंग्लैंड के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोगों में एक असंतोष की लहर फैल गयी जो स्वाभाविक ही लगती थी। तथ्यों को जानने वाला व्यक्ति यह जान लेगा कि यह सही आधार नहीं था।

यहीं लिंकन द्वारा विदेशी मामलों में उसका स्पष्ट और सारगर्भित विद्वतापूर्ण हस्तक्षेप सामने आता है। मई में सेवार्ड ने लिंकन के सामने एक प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें कड़े शब्दों में कहा गया कि अमरीकी गणराज्य ब्रिटेन के कतिपय कार्यों को बर्दाश्त नहीं करने जा रहा है। यह इस तरह लिखा गया कि इसे भेजने के कारण लंदन स्थित अमरीकी प्रतिनिधि एडम्स द्वारा लार्ड जान रसेल से अच्छे सम्बंध स्थापित करने की दिशा में कदम उठाये जा रहे थे, वे निरर्थक हो जाते। इस प्रारूप में लिंकन ने अपनी क़लम से कई परिवर्तन किये (यह आज भी सुरक्षित रखा हुआ है), और भाषा तथा वाक्यों में थोड़ी-बहुत रद्दोबदल करके उसे ऐसा बना दिया कि वह कड़ा अवश्य था परन्तु उससे सम्मान को आघात नहीं पहुँचता था। यह प्रारूप लिंकन जैसे शांतिरक्षक के भाषासौष्ठव और उसकी कूटनीतिज्ञता का ज्वलंत प्रमाण है। सेवार्ड की यह इच्छा थी कि इसे आडम्स को नहीं भेजा जाय और रसल को पढ़कर सुना दिया जाय और उन्हें दूसरी नकल दे दी जाय। उसने इसे उस व्यक्ति को सौंप दिया जो घटनास्थल पर जैसी स्थिति देखे उसके अनुकूल करे। संभवतया यह दावा किया जा सकता है कि लिंकन के शब्दचातुर्य व प्रारूप की भाषा तथा

उसे प्रेषित करने की प्रक्रिया ने इंगलैंड और अमरीकी के सम्बंधों को इस दशा में सुधार दिया जब कि सेवार्ड यदि अपने तरीके से काम करता तो यह असंभव ही हो जाता। निश्चय ही इस प्रारूप का अध्ययन करने वालों को ज्ञात होगा कि उसे स्थिति का कितना गहरा ज्ञान था और उसमें कितनी गहरी विलक्षण स्वतः स्फूर्त कूटनीतिक योग्यता थी।

अब हम एक ऐसी गम्भीर घटना की ओर ध्यान देते हैं जिसमें उसके द्वारा की गयी कार्यवाही विवाद का विषय बनी रही। दक्षिण संघराज्य मेसन और स्लीडल को अपना राजनैतिक प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैंड भेज रहा था। ये लोग हवाना तक पहुँचे और वहाँ से ब्रिटिश जहाज 'ट्रेन्ट' द्वारा रवाना हो गये। एक सतर्क उत्तरी नौसेना के कप्तान ने 'ट्रेन्ट' को घेर लिया, मेसन और स्लीडल को उससे उतार लिया गया और जहाज को जाने दिया। यदि यह व्यक्ति —भले ही 'ट्रेन्ट' के लिये असुविधाजनक ही क्यों न होता—कानूनी मार्ग अपनाता, तथा इस जहाज़ को उत्तरी बन्दरगाह में लाता और इन व्यक्तियों को विदेशी शत्रु सामग्री ठहराकर जब्त करवाता तो कानून संगत रहता। इस तरह उसने प्रचलित परम्परा को भंग कर दिया; उस समय किसी ने भी इन बन्दियों की मुक्ति के लिए इंगलैंड के कर्त्तव्य और अधिकार के बारे में सोचा भी नहीं था। ब्रिटेन ने इस तरह का दावा प्रस्तुत किया। परन्तु साम्राज्ञी की इच्छा के कारण उसे कठोर नहीं बनाया गया तथा पन्द्रह दिन के अंदर-अंदर इसका उत्तर देने की माँग की गयी। इसी दौरान में नौसेना सचिव वैलेस ने उस कप्तान की कार्यवाही का समर्थन किया। उत्तर में प्रसन्नता की लहर इसलिए भी थी कि मेसन और स्लीडेल निम्न स्तर के दक्षिणी नेता थे और उनके प्रति उत्तर में गहरी घृणा भी थी। प्रतिनिधि सभा ने भी मामले को बिगाड़ते हुए इस कार्य की पुष्टि में प्रस्ताव स्वीकार किया। लिंकन को जिस दिन इन लोगों के बंदी बनाने की सूचना मिली उसी दिन उसने कह दिया कि अमरीका यदि इस दिशा में अपने पूर्वनिर्धारित सिद्धान्तों का पालन करे तो उसे क्षमा माँगते हुए इन युद्धबन्दियों को लौटा देना चाहिए। परन्तु ऐसे सबूत मिलते हैं कि उस समय वह असमंजस में पड़ गया था, और जब उसे उत्तर को संगठित बनाये रखना था वह जन-भावना की अपेक्षा अपने निर्णय पर इस दिशा में अधिक दृढ़ नहीं रह सकता था। इस समय उसके मित्रों से कई मसलों को लेकर विवादपूर्ण गंभीर परेशानी की स्थिति उसके सामने थी। उसने जैसे-तैसे एक प्रारूप सेवार्ड को तैयार करके दिया जिसमें मध्यस्थता सुझायी गयी थी। उसने इस

दिशा में सेवार्ड पर मामला छोड़ दिया। क्रिसमस के पूर्व मंत्रिमंडल की एक बैठक में सेवार्ड ने प्रस्ताव रखा कि हमें इस मामले में ब्रिटेन के समक्ष उचित व न्यायपूर्ण समर्पण करना चाहिए। लिंकन और चेस ने इसका आरंभ में विरोध किया परन्तु बेट्स के सहयोग से बाद में उन्हें इसके लिए राजी भी कर लिया गया।

यह संभवतया दोनों सरकारों के मध्य गंभीर मतभेद की अंतिम घटना थी। 'अलाबामा' का निकल कर दक्षिण की ओर चले जाने की घटना ब्रिटिश सरकार की निष्क्रियता तथा असफल कार्यवाहियों के कारण घटी। संभवतया उस दिन साप्ताहिक छुट्टी अथवा ऐसा ही कुछ था। वह भी किसी नीचे के अधिकारी कारण घटी और इसके प्रति किये गये दोषारोपण से इंकार भी नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे मतभेद तथा घेरेबंदी कानून-सम्बंधी महत्वपूर्ण विवाद भी कभी संकट की सीमा तक नहीं पहुँचे। इसके लिए सबसे अधिक श्रेय लार्ड ल्योन्स, सी. एफ. एडम्स और सेवार्ड को प्राप्त होता है। इन दिनों सेवार्ड बहुत कुछ गंभीर हो चुका था। यह देखा जायेगा कि इस दिशा में अमरीकी लिंकन को भी जो श्रेय प्रदान करते हैं वह केवल एकमात्र उस पुराने प्रारूप की घटना पर आधारित है। वाशिंगटन स्थित ब्रिटिश राजदूत जब छुट्टी पर स्वदेश लौट रहा था तो सामान्य वार्तालाप के अंत में उसने कहा, "इंगलैंड की जनता से आप यह कह देना कि मैं उनको क्षति नहीं पहुँचाना चाहता हूँ।" तथापि यह प्रकट होता है कि लिंकन के समर्थक 'बिगलो पेपर्स' 'ट्रेन्ट' मामले में उसकी बुद्धिमत्ता और शक्ति को नियन्त्रित रखने की प्रशंसा करते रहे। लिंकन ने भी इस दिशा में श्रेय पाने का अपना दावा किया। दो तीन वर्षों के बाद उस विश्वास के साथ—जिससे कोई भी नया व्यक्ति चकित रह जाता है—पूर्ण संतोष प्रकट करते हुए उसने कहा, "सेवार्ड यह जानता है कि मैं उसका स्वामी हूँ।" उसने आत्मसंतोष के साथ इस घटना पर प्रकाश डाला कि कैसे उसने सेवार्ड को 'ट्रेन्ट' मामले में इंगलैंड के समक्ष झुकने को राजी किया। उसके लिए यह पूर्णतया अस्वाभाविक होना चाहिए कि जिस मामले में उसका हाथ नहीं था उसके प्रति दिया गया श्रेय स्वयं ग्रहण करे। उदाहरण के तौर पर हम यह देखते हैं कि उसने फाक्स को एक पत्र लिख कर बताया, "यह भयंकर भूल कुछ अंशों में मेरी थी, तुम इसके लिये तनिक भी दोषी नहीं हो।" इस तरह यहाँ एक पेचीदा प्रश्न उठ खड़ा होता है। यह संभव हो सकता है कि लिंकन ने अपने मध्यस्थता-सम्बंधी सुझाव पर अधिक जोर नहीं देते हुए सेवार्ड

और बेट्स को मंत्रिमंडल में इसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली अन्य झंझटों के प्रति ध्यान दिलाकर ब्रिटेन के समक्ष इस मामले में झुक जाने के लिए कैसे ही राजी कर लिया होगा। यह भी कदाचित् संभव हो सकता है कि उसने इस मामले में मध्यस्थता के पक्ष में होने पर भी इस दिशा में उसके द्वारा कुछ भी फल नहीं निकलने की संभावना से उस पर जोर नहीं दिया। यदि ऐसा है तो हम उसे यह श्रेय प्रदान कर सकते हैं कि उसने सेवार्ड को शांति तथा ब्रिटेन से मैत्री बनाये रखने की दिशा में काम करने को बाध्य कर दिया। उसने सेवार्ड को इस दिशा में अपने से भी अधिक तैयार कर दिया, जिससे ब्रिटेन से शांति बनाये रखने की भावना को वह दृढ़ता से आगे बढ़ा सके जबकि इस भावना का जन्मदाता वह स्वयं था।

[५]

घरेलू नीति के महत्वपूर्ण प्रश्न

युद्ध के कारण नागरिक प्रशासन सम्बन्धी नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों को तब तक हम अच्छी तरह से नहीं समझ सकते जब तक कि इस दिशा में बुनियादी कठिनाई क्या थी इसे नहीं जान लें। युद्ध के कारण उत्पन्न यह प्रशासनिक भार १८६१ में लिंकन पर अत्यधिक पड़ा।

चार जुलाई को काँग्रेस की बैठक हुई। राष्ट्रपति ने काँग्रेस के समक्ष प्रस्तुत अपने संदेश में कौशलपूर्वक परन्तु सादगी के साथ केवल काँग्रेस से ही नहीं परन्तु सामान्य जनता से भी अपील करते हुए संघर्ष के स्वरूप का विश्लेषण किया। उसमें उसने दृढ़ता से यह दर्शाया कि गणराज्य अविभाज्य है और इस बात पर प्रकाश डाला, "हमारी लोकप्रिय सरकार का यह प्रयोग पूर्णतया असफल हो जाता, यदि हम इस बात पर जोर नहीं देते हैं कि एक बार जिस बात को हमने मतपत्रों द्वारा स्पष्ट और संवैधानिक तौर पर स्वीकार कर लिया है उसको समाप्त करने के लिए गोलियों का सहारा लेना अनुचित है।" सम्टर दुर्ग की घटना से लेकर अब तक किये गये कार्यों पर उसने प्रकाश डाला। इनमें से कतिपय ऐसे थे जो उसके कार्यक्षेत्र के बाहर थे। इनके बारे में उसने कहा कि वह अपने पर सौंपे गये कर्त्तव्य के प्रति झूठा ठहरता यदि वह इन कार्यों को संविधान के भय से नहीं करके सारे संविधान को ही नष्ट होने देता। उसने अपील की कि यदि काँग्रेस आवश्यक समझे तो

इनकी पुष्टि कर दे। उसने काँग्रेस से अपना कर्त्तव्य पूरा करने की अपील की, विशेषकर उसने इसके लिये अधिक रकम और अधिक सैनिक एकत्रित करने की स्वीकृति चाही, जिससे इस युद्ध का शीघ्र अंत लाया जा सके। काँग्रेस ने —यद्यपि सीमा-राज्यों के कुछ लोगों ने असंतोष भी व्यक्त किया—उसके कार्यों की पुष्टि की और उसके द्वारा प्रस्तुत अनुदान की रकम स्वीकार कर ली। दोनों सभाओं ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें युद्ध के उद्देश्य की परिभाषा बतायी गयी। "यह युद्ध किसी को जीतने अथवा अधिकार में लाने के लिए नहीं लड़ा जा रहा है। न दक्षिणी राज्यों की किसी मान्य संस्था को उखाड़ फेंकने या उसके अधिकारों में हस्तक्षेप के लिए है। यह केवल गणराज्य के गौरव, समानता और विभिन्न राज्यों के अधिकारों को बनाये रखने के लिए है।"

इस प्रस्ताव में उस सर्वोपरि राजनैतिक समस्या का हल मिलता है जिसके लिए लिंकन को युद्ध के अन्य कार्यों के साथ-साथ जीवन भर निरंतर संघर्ष करना पड़ा। जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता गया उससे उत्पन्न अवश्यम्भावी परिवर्तन के कारण यह समस्या जिसमें राजनीतिक उद्देश्य निहित है, सामने आयी। उत्तर ने अभी तक दक्षिणी राज्यों की संस्थाओं को मिटाने की दिशा में युद्ध नहीं आरंभ किया था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसने दास-प्रथा के विरुद्ध अभियान नहीं छेड़ा था, और ऐसा करना भी अनुचित था। यह केवल कानून की सर्वोपरिता लागू करके उसे कुचलना था, जिसे उत्तर विद्रोह मानता था। ऐसा लगता था कि यह विद्रोह या तो दक्षिण की पूर्ण पराजय अथवा उसकी दो, तीन, शक्तिशाली सेनाओं की हार के बाद समाप्त हो जाने पर ही कानून और गणराज्य को पुनः पहले की तरह ही स्थापित किया जा सकेगा। यदि दास-प्रथा-वृद्धि रोकने की नीति कायम रही तो दासप्रथा पर महान विजय मिल ही जायेगी। परन्तु जो लोग लड़ रहे थे वे दक्षिणी राज्यों के अपनी सीमा में दास-प्रथा-सम्बंधी संवैधानिक अधिकारों को अस्वीकार नहीं कर सकते थे क्योंकि उनका इस पर संविधान के अंतर्गत अधिकार था।

आरंभ में काँग्रेस ने इस दिशा में सर्वसम्मति से यह रुख स्वीकार कर लिया जो पिछले अध्याय में लिंकन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के पूर्ण अनुकूल था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति मानता था कि इस रुख को बनाये रखना उसका परम कर्त्तव्य है। पाठक के लिए इस राजनैतिक परिस्थिति के घटनाचक्र को समझना कठिन है। वह न तो निरंकुश शासक था और न

ब्रिटेन का प्रधानमंत्री ही। वह एक सर्वोच्च अधिकारी था जो जनता द्वारा चुना गया था और उसके कर्त्तव्य एक लिखित संविधान द्वारा निर्देशित थे। उसने इसको पालन करने की शपथ भी ली थी। लिंकन के हृदय में उसके द्वारा ली गयी यह शपथ सदा ही दृढ़ रूप में रही। उसका कार्य गणराज्य और कानूनों को बनाये रखने का था, वहीं तक जहाँ उसे कानून आज्ञा देता था वह बढ़ सकता था, इससे अधिक कदापि नहीं। इनका तनिक-सा उल्लंघन वह उसी दशा में कर सकता था जब कि अत्यंत ही आवश्यकता आ पड़ी हो अथवा संविधान के नष्ट होने का भय होता।

युद्ध जारी रखने की आवश्यकता ने ही उत्तर और राष्ट्रपति की नीति में कई परिवर्तन किये। उनका कार्य सिद्धान्त रूप से राष्ट्र में उपस्थित अवैधानिक उपद्रवी तत्वों का दमन करना था। व्यावहारिक रूप से यह कार्य उन उपद्रवी तत्वों के हाथ में पड़े भूभाग को पुनः गणराज्य के लिए प्राप्त करना था। उस प्रदेश से पुनर्गठन केवल तभी संभव हो सकता था जब इस संघर्ष के 'मूल' दास-प्रथा को संपूर्ण रूप से नष्ट कर दिया जाता।

जैसे-जैसे शीघ्र विजय और तत्काल समझौते की आशा नष्ट हो गयी, उत्तर में पुनः विचारधारा में मतभेद उभरने लगे और जिन दिशाओं में ये मदभेद पनप रहे थे, शीघ्र ही स्पष्ट झलकने लगा। वहाँ ऐसे बहुत से लोग थे जो दास-प्रथा के विरुद्ध धर्मयुद्ध का स्वागत करने को तैयार थे। इन लोगों में ये तथाकथित उग्रवादी भी थे। ये लोग संविधान व कानून द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण मुक्ति की दिशा में विलंब की नीति से असंतुष्ट थे। साथ ही उत्तर में इस समय जो दास राज्य थे उनके कारण भी दास-प्रथा-उन्मूलन नीति को व्यावहारिक रूप देना अस्वाभाविक था। परन्तु वे इतना नहीं सोच पाते थे। दूसरी ओर डेमोक्रेटिक दल का विरोधी पक्ष था जो पुन संगठित व सक्रिय हो रहा था। इसमें विभिन्न विचारों व दृष्टिकोण वाले लोग थे। इनमें दक्षिण-समर्थक और दक्षिण के जासूस भी थे। पहले यह लोग शांत और निष्क्रिय रहे परन्तु धीरे-धीरे इनकी देशद्रोहात्मक कार्यवाहियाँ बढ़ चलीं। ऐसे लोग भी थे जो अपने को गणराज्य और संविधान के प्रबल प्रहरी मानते थे। ये लोग युद्धकाल में आवश्यक किसी भी तरह के अंकुश व सैनिक कानूनों की आलोचना करने लगे। अधिकांश 'डेमोक्रेटों' के बारे में यह कहा जा सकता है कि उनकी चेतना गणराज्य के प्रति वफादारीपूर्ण थी, परन्तु अंत तक वे दक्षिण के अधिकारों के लिए जोर देते रहे और यहाँ तक आगे बढ़ने लगे कि इस दिशा में

सरकार ही को पंगु बना डालते। अंत में ऐसे 'रिपब्लिकन' लोग थे, जो पूर्णतया गणराज्यसमर्थक दृष्टिकोण के थे। वे लोग अपने इन उग्रवादी साथियों से भय खाते थे, जो उन्हें 'अनुदार पक्ष' का कहते थे। इस शब्द का प्रयोग अधिक उदार व कभी कभी विचलित विचार वालों तथा सावधानी से फूंक-फूंक कर कदम रखने वाले लोगों के लिए किया जाता था। इनमें ऐसे लोग भी थे जो दक्षिण के प्रति कठोर अवश्य थे परन्तु दास-प्रथा के विरोध में उनकी जरा भी रुचि नहीं थी।

जहाँ तक लिंकन के निजी विचारों का प्रश्न है, उसे इनमें से किसी एक श्रेणी में रखना असंभव है। उसकी दक्षिण वालों के प्रति इतनी ही गहरी सहानुभूति थी जितनी किसी भी 'डेमोक्रेट' की हो सकती थी। परन्तु वह गणराज्य की पुनस्स्थापना की दिशा में दृढ़निश्चयी था और सौदेबाजी के विरुद्ध था। वह सबसे अधिक सजग व्यक्ति था परन्तु उसकी सजगता पर एक पर्दा यह पड़ा था कि वह दास-प्रथा को अत्यन्त ही हीन मानता था और उसने एक बार कहा भी था कि ऐसा कोई समय नहीं होता है जब वह इसको अपने मस्तिष्क में से निकाल सके। यह उसी का कार्य था कि जहाँ तक संभव हो उत्तर के इन सभी विरोधाभासी लोगों को एक बनाये रखे। इन कष्टदायक कार्यवाहियों में हम देखेंगे कि उसे कैसे दुहरी सैद्धांन्तिक नीति पर आगे बढ़ना पड़ा। गणराज्य को पुनः स्थापित करते समय यह ध्यान रखना जरूरी था कि संविधान पर कतई आँच नहीं आये। परन्तु कई बार उसे कार्यवाहियों के दौरान में इसका उल्लंघन भी करना पड़ा। यह वह तभी करता जब उसे यह विश्वास हो जाता था कि गणराज्य के लिए ऐसा करना जरूरी है।

युद्ध छिड़े चार माह ही हुए थे कि उत्तर के राजनैतिक दलों के अवश्यंभावी मतभेद उसे परेशान करने लगे। जैसे ही उत्तरी सेना ने दक्षिणी भूभाग पर कदम रखा कि दास लोग भागकर वहाँ पहुँचने लगे। यह स्वाभाविक भी था। अब यह प्रश्न उठा कि उत्तरी सेनापति इन लोगों का क्या करे क्योंकि वे लोग वहाँ दक्षिणवासियों की निजी संपत्ति के विरुद्ध युद्ध नहीं कर रहे थे। जनरल बटलर (जो इस युद्ध में समाचारपत्रों में प्रसिद्धि व बदनामी प्राप्त पात्र की तरह रहा) मनरो दुर्ग की कमान सम्हाले हुए था। यह वरजीनिया तट पर स्थित था और सदा गणराज्य के ही हाथ में रहा। उसे पता चला कि जो दास उसके पास भाग कर आये थे उन लोगों से पहले दक्षिणवालों ने सेना के लिए खाइयाँ खोदने का काम लिया था। अतएव

उसने यह दृष्टिकोण बनाया—जिसे उत्तर वालों ने भी पसन्द किया—कि वे "युद्ध की जब्त सामग्री" हैं और इन्हें उनके मालिकों को नहीं लौटाया जाना चाहिए। ये दास भी ऐसी विभिन्न परिस्थितियों में भाग कर पहुँचते थे कि इनके बारे में घटनास्थल पर निर्णय करने के लिए बहुत कुछ सेनाधिकारी पर छोड़ना पड़ता था। लिंकन को ऐसा करने में कोई एतराज भी नहीं था। काँग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर दिया कि वह संपत्ति जब्त कर ली जाय जो उपद्रवी तत्वों की सहायता के लिए काम में आती हो, अन्यथा नहीं। दासों के साथ भी इसी नीति के अनुसार व्यवहार किया गया। दासों के प्रति इस तनिक-सी उदार कानूनी रियायत का भी कुछ क्षेत्रों में विरोध हुआ। इसके कारण मिसूरी जैसे राज्य में, जो अभी तक पृथक नहीं हुआ था, यह चिंता-जनक प्रश्न के रूप में सामने आया। ऐसा लगता है कि लिंकन भी इस विषय पर किसी तरह के कानून के विपरीत था। इस समय उसने अपनी सारी शक्ति और ध्यान गणराज्य बनाये रखने की दिशा में केन्द्रित कर रखा था। उसके लिए दूसरे सभी मसले इसके समक्ष गौण हो गये थे।

कुछ समय बाद ही राजनैतिक पर्दे पर एक नये नेता का पुनरागमन हुआ। यह सज्जन फ्रेमोन्ट थे जो लिंकन के पूर्व रिपब्लिकन दल से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में सामने आये थे। फ्रेमोन्ट उन व्यक्तियों में से था जिन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन में कई साहसपूर्ण कार्यों में भाग लेकर नाम कमाया था। आरंभ में वह शानदार व साहसिक चरित्र का था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है मानों बाद के दिनों में उसने इन सारे गुणों को ही कहीं खो दिया था। आरंभ में सैनिक नहीं होते हुए भी उसने एक शानदार साहसिक अभियान का नेतृत्व किया, और कारोलीना के द्वन्द्वयुद्धों में लड़ता देखा गया। यह कहा जाता है कि उसने अपनी छोटी-सी टुकड़ी को साथ लेकर मेक्सिको से भूभाग छीनने में शूरवीरता का परिचय दिया था। इसके साथ यह भी जोड़ा जा सकता है कि उसका जन्म दक्षिण में हुआ था और उसने दक्षिण कारोलीना को स्वतंत्र राज्य बनाने में भी योग दिया। उस जैसे व्यक्ति को पश्चिमी विभाग की कमान सौंपना उस समय उचित लगता था। यह क्षेत्र मिसूरी प्रदेश के अंतर्गत था। इस व्यक्ति में योग्यता की कमी अथवा सुस्ती के कारण दक्षिणी सेना ने लाभ उठाया और उन्हें इस क्षेत्र में कुछ स्थानों पर विजय प्राप्त हुई। इसीके कारण जनरल लायन जैसे होनहार सेनाधिकारी का जीवन नष्ट हुआ। लिंकन के लिए उसे हटाना अरुचिकर काम

था, अतएव उसने कौशल से यह व्यवस्था की कि उसकी सहायता के लिए एक सुयोग्य सेनाधिकारी को उसके तत्वावधान में नियुक्त कर दिया। अगस्त के अंत में फ्रेमोंट ने अचानक ही सारे मिसूरी राज्य में 'मार्शल ला' की घोषणा कर दी। इससे वहाँ संकटग्रस्त व गंभीर स्थिति पैदा हो गयी। इस कानून के अंतर्गत आगे बढ़कर दक्षिण को सहायता देने वाले लोगों की संपत्ति पर अधिकार करके उनके दासों को मुक्त कर दिया गया। यह स्पष्ट है कि इस तरह के कानून के भयंकर परिणाम हो सकते थे। यह घोषणा काँग्रेस द्वारा इस विषय में पारित कानून के भी प्रतिकूल थी। लिंकन के मस्तिष्क में इसके कारण कई उलझनें पैदा हो गयीं। उसे यह गंभीर खतरा महसूस हुआ कि फ्रेमोंट के इस कदम के फलस्वरूप केन्टकी में जो समझौता-वार्ता जारी है उसको भारी क्षति पहुँच सकती है। इस अवसर पर उसने भावी को सोचकर जिस तरह का निर्णय लिया वह बताता है कि उसे केवल सैनिक स्थिति का सामान्य ही नहीं वरन् गहरा ज्ञान था। उसने इच्छा व्यक्त की कि फ्रेमोंट स्वयं इस घोषणा को वापिस ले ले। उसने उसे अपने निजी पत्रों में यह सुझाया कि वह इस घोषणा में से तीन वाक्यों को हटा ले। "तुम कहते हो कि सरकार को बचाने का यही एक मार्ग है जब कि यह स्वयं सरकार के लिए आत्मसमर्पण के सदृश है। क्या अब भी यह बहाना किया जा सकता है कि उत्तर की सरकार अमरीकी गणराज्य की सरकार है—जहाँ संविधान और कानून का राज्य है—क्या कोई राष्ट्रपति अथवा सेनापति वहाँ घोषणा द्वारा संपत्ति का स्थायी नियमन कर सकता है?" फ्रेमोंट ने यही पसन्द किया कि लोगों को यह दर्शाया जाय कि लिंकन उसके मामले में कैसे सार्वजनिक कदम उठाता है। उसने यही किया और उससे जो भी स्थिति पैदा हुई लिंकन ने उसका साहस से सामना किया। कुछ महीनों के बाद जब फ्रेमोन्ट इस तरह राजनीतिक विवादों में रस लेने लगा, सैनिक संगठन पूर्णतया अस्तव्यस्त हो गया, उसके आसपास के चाटुकार दुरुपयोग द्वारा सार्वजनिक वित्त से अपनी जेबें गर्म करने लगे तब लिंकन को बाध्य होकर फ्रेमोंट को अपने पद से अलग कर देना पड़ा। कुछ समय के लिए फ्रेमोंट सेंट लुई से बोस्टन तक के क्षेत्र में जन-नेता बना रहा, वह लोगों की निगाह में स्वतंत्रता के लिए पवित्रहृदय सैनिक बन चुका था। इन लोगों की निगाह में लिंकन निर्दयी राजनीतिज्ञ के समान था जबकि उसकी सेना विजय प्राप्त करने वाली थी तब कुछ राजनीतिज्ञों के प्रभाव में आकर उसने इस शूरवीर को नीचे फेंक दिया। यह उनको पता ही नहीं था कि जिस सेना से वे विजय की कामना

कर रहे थे उस सेना का फ्रेमोंट ने अस्तित्व ही समाप्त कर दिया था।

यह घटना बताती है कि लिंकन को युद्ध के दौरान में ऐसे कई परीक्षणों में से भी गुजरना पड़ा। गणराज्य की पुनःस्थापना के लिए उसने जो कदम उठाये उसके कारण उत्तर के डेमोक्रेट भी उस पर नाराज हो गये और उसे उग्र विचार वाले रिपब्लिकनों के क्रोध का भी शिकार बनना पड़ा। ये लोग गणराज्य को उतना ही प्यार करते थे जितना लिंकन करता था और उनके हृदय में दास-प्रथा के प्रति जो अपार घृणा थी इसके कारण लिंकन की उनसे सहानुभूति थी।

आगे के अध्याय में युद्ध के कारण लिंकन को कैसी कसौटी पर चढ़ना पड़ा उसका वर्णन है। उसकी अन्य राजनैतिक कठिनाइयाँ ऐसी ही कठिनाइयाँ थीं, पेचीदगी पूर्ण, जिनके साथ कई महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक प्रश्न भी जुड़े हुए थे। फिर भी जननेताओं के आलोचकों ने उसे वहाँ भी क्षमा नहीं किया है यह जानते हुए कि इतना काम होते हुए भी एक दिन में सिर्फ चौबीस घंटे ही उसे मिलते थे।

१८६१ के अंत में उसे एक दूसरी ही परेशानी का सामना करना पड़ा। युद्धप्रशासन के व्यवस्था-सम्बंधी कार्यों में युद्ध-मंत्री कैमेरान अयोग्य सिद्ध हुआ। अपव्यय व भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करने के लिए उस पर प्रतिनिधि सभा ने एक समिति को नियुक्त किया। उसने इस पद पर रह कर अपनी सम्पत्ति में एक भी पैसे की वृद्धि नहीं की परन्तु उसके राजनीतिक पिछलग्गुओं की चांदी बन गयी। जनता में सारे प्रशासन के प्रति असंतोष इसलिए भी तीव्र था क्योंकि युद्ध इन दिनों तनिक भी अनुकूल नहीं था। नौसेना विभाग की भी शिकायतें थीं, परन्तु राजनीतिज्ञों में वेलेस के प्रति विश्वास था; इसलिए वे उसे कुछ न कह कर कैमेरान को आड़े हाथों लेने लगे। इस बात के प्रमाण मिलते हैं जिससे यह कहा जा सकता है कि कैमेरान व्यक्तिगत रूप से बेईमान नहीं था। लिंकन को उसके चरित्र पर पूरा भरोसा था, और इसी तरह का विश्वास उसके कड़े आलोचक चेस—जो एक-एक पैसे की उपयोगिता और मितव्ययिता के लिए अड़ा हुआ था—और सीनेट सदस्य सम्नर भी करते थे। परन्तु उसे जाना ही पड़ा। उसने जनरलों को फ्रेमोंट के समान ही एक आदेशपत्र दासों से व्यवहार करने के बारे में भेजा। इस तरह उसने मंत्रिमंडल से निकलने के लिए खुद ही द्वार खोल लिया। लिंकन ने स्वयं इस विषय को समाप्त किया। उसे रूस में राजदूत नियुक्त

किया गया, वहाँ उसने योग्यता का परिचय देते हुए अपने चरित्र की पवित्रता सिद्ध की तथा लिंकन के निर्णय को स्वीकार करते हुए उसके साथ मित्रता निभायी और उसे सहयोग दिया। उसे दिसम्बर के अंत में युद्धमंत्री के पद से हटाया गया। इन्हीं दिनों एक दूसरी उल्लेखनीय घटना घटी।

लिंकन अभी भी हृदय से अपने कानूनी व्यवसाय में रुचि ले रहा था। एक ऐसा अवसर आया, जिसे उसने अपना सौभाग्य समझा कि अब वह इस उजड्ड प्रदेश से निकल बाहर की अदालतों में भी अपनी योग्यता प्रमाणित कर सकेगा। उसे इल्लीनायस के बाहर एक प्रसिद्ध मुकदमे में भाग लेना था जहाँ पूर्व के एक प्रख्यात वकील इस्ट एडविन स्टान्टन उसे सहयोग देनेवाले थे। स्टान्टन ने वहाँ लिंकन के साथ इतना अपमानजनक व्यवहार किया कि वह अपना मुँह भी नहीं खोल सका और मर्माहत होकर घर लौटा। युद्ध के पहले स्टान्टन पक्का 'डेमोक्रेट' था। बुकनन ने अपने राष्ट्रपति-काल में उसे अटर्नी जनरल बना दिया था और उसने प्रशासन की नष्ट ख्याति को पुनःस्थापित करने में महत्वपूर्ण योग दिया। वह इन दिनों वाशिंगटन में था तथा उत्तेजनात्मक रूप से सरकार की धीमी गति और उसकी कमियों की अत्यंत कड़ी आलोचना कर रहा था। यहाँ तक कि वह इस दिशा में कई अनुचित बातें भी कर बैठता था। (युद्ध के अंत में उसने खुले आम जनरल शरमन पर यह भयंकर दोषारोपण किया कि उसे दक्षिण के सोने ने, शांति के लिए, खरीद लिया है।) ऐसी ही कई बातें थीं जिससे उसके हृदय की सरलता और सच्ची दयार्द्रता के दर्शन नहीं हो पाते थे। परन्तु इसके कारण वह ऐसा शक्तिशाली प्रशासक बना जिसे बेईमानी व अयोग्यता पूर्ण असहनीय थी। वह लिंकन के प्रति और भी अधिक अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करता था। वह निरंतर उसकी मानसिक दुर्बलता की भर्त्सना करता रहता था। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सहृदय मित्र उसका दृष्टिकोण लिंकन के समक्ष पहुँचाना चाहते थे। लिंकन ने उसे युद्धमंत्री बना दिया।

ग्रीष्मकाल से लेकर तब तक उत्तर की जनता में, काँग्रेस में (जिसकी अभी बैठक हो रही थी) और राष्ट्रपति में भी एक अजीब सी बैचेनी व अस्तव्यस्तता छा गयी थी। युद्धक्षेत्र में उनकी सेनाएं कुछ भी नहीं कर पा रही थीं और इसी वातावरण में यह उत्तेजनापूर्ण १८६१ का वर्ष समाप्त हुआ। उत्तर पर उदासी का गहरा वातावरण छाया हुआ था जो और भी कई पराजयपूर्ण घटनाओं के बाद हटा।

नवाँ अध्याय

उत्तर के दुर्दिन

[१]

उत्तर की सैनिक नीति

यहाँ युद्ध की जो कहानी कही जायेगी उसमें नागरिक प्रशासक अर्थात् राष्ट्रपति का दृष्टिकोण ही प्रमुख रहेगा। हम यहाँ केवल उन घटनाओं का ही जिक्र करेंगे जिनसे राष्ट्रपति का सम्बन्ध था अथवा जिनको लेकर उन्हें वादविवाद या आलोचना का विषय बनना पड़ा। ऐसी स्थिति में युद्ध की कतिपय मनोरंजक घटनाओं और रोमांचकारी संघर्षों की चर्चा का लोभ हमें छोड़ना पड़ेगा। राष्ट्रपति युद्ध के मामले में अनुभवहीन व्यक्ति थे। यदि स्पष्ट कहा जाय तो युद्ध के बारे में सारी अमरीकी जनता ही उस समय उतनी ही अनुभवशून्य थी। अमरीकी जनता ने ब्रिटेन से उस समय स्वतंत्रता-संग्राम में विजय पायी थी जब इंगलैंड का सत्तारूढ़ दल बुरी तरह अयोग्यता व अकुशलता का शिकार बन चुका था। १८१२ से १४ तक ब्रिटेन के विरुद्ध अमरीका ने अनिर्णायक युद्ध लड़ा। उस समय ब्रिटेन ने अपनी सारी शक्ति सालामान्का और विट्टोरिया जीतने में लगा रखी थी। इन दिनों अमरीकी जनता ने जो अनुभव प्राप्त किये उनका प्रभाव वहाँ के युद्धकौशल और राजनीति पर पड़ा। कदाचित् यह प्रभाव अमरीका में आज तक भी मौजूद है। राष्ट्रपति का कार्यक्षेत्र, उनके अधिकारों की सीमा तथा उन्हें प्राप्त सलाह के उपयोग करने या न करने की छूट के बारे में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। वहाँ सैनिक नीति का जन्म कैसी पेचीदगीपूर्ण स्थिति में हुआ यह जाँच का प्रमुख विषय है। इसे समझ लेने से युद्धकाल की प्रमुख घटनाओं को समझना अधिक आसान हो जायेगा।

बुलरन युद्ध के समाप्त होने के बाद तत्काल ही मैक्लीन को पोटोमाक सेना की कमान सम्हालने के लिए वाशिंगटन बुला लिया गया। वृद्ध

सेनापति स्काट ने कुछ तो स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने, व अपनी शक्तिहीनता के कारण, और कुछ अपने मातहतों की महत्वाकांक्षा से अपने महत्व को कम आँका जाने के फलस्वरूप, नवम्बर में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। मैक्लीन को कुछ समय के लिए सारी उत्तर की सेनाओं का प्रमुख सेनापति बनाया गया। पोटोमाक क्षेत्र की सेना की कमान विशेष रूप से उसीके हाथों में रहने दी गयी। पोटोमाक की सेना के अलावा दो प्रमुख उत्तरी सेनाएं और भी थीं। इनमें एक ओहयो क्षेत्र की सेना थी। इस सेना की कमान जुलाई में जनरल बुयेल को सौंपी गयी। पश्चिमी सेना की कमान जनरल हेलोक ने सम्हाली, तथापि मिसूरी स्थित सेना की कमान स्वतंत्र रूप से जनरल फ्रेमोन्ट के हाथ में रही। ये सभी सेनाएं अभी संगठन व प्रशिक्षण के प्रारंभिक काल में थीं; ऐसी अवस्था में सैनिक दृष्टिकोण से बड़े पैमाने पर शीघ्र ही अभियान की बात सोचना दूर की चीज थी।

युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में सैनिक नीति के बारे में लिंकन के सामने तीन तरह के अलग-अलग दृष्टिकोण रखे गये। जब यह स्पष्ट हो गया कि दक्षिण भी युद्ध करने पर आमादा हो गया है तो स्काट ने यह साफ-साफ समझ लिया कि उसे शत्रु से कड़ा मुकाबला करना होगा। उसने अपने सैनिक निर्णय में पहला ध्यान यह रखा कि वाशिंगटन के सामने के क्षेत्र में पूर्णतया रक्षात्मक युद्ध लड़ा जाना चाहिए। उसकी मान्यता थी कि चार माह तक सैनिकों को स्वास्थ्यप्रद स्थानों में उचित प्रशिक्षण दिया जाय, उसके बाद एक बड़ी भारी सेना लेकर मिसीसिपी घाटी में प्रवेश कर न्यू आरलेंस तक पहुँचा जाय और इस प्रकार मिसीसिपी नदी का यह प्रदेश पूर्णतया सुरक्षित कर लिया जाय। वह चाहता था कि इस पश्चिमी सेना तथा समुद्री घेरेबंदी द्वारा दक्षिण पर दबाव डाला जाय जिससे वह बाहरी जगत से कट जाय और फिर धीरे-धीरे उस पर अपने शिकंजे को कस दिया जाय। वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि उत्तर की जनता उतावली हो रही है और इस नीति को पूर्णतया लागू करना सम्भव नहीं होगा। यथार्थ में जब बुलरन युद्ध के पूर्व स्काट की यह नीति प्रकाश में आयी तो लोगों ने इस 'अजगरी सुस्त चाल' को मूर्खतापूर्ण माना। उत्तर की जनता और काँग्रेस के प्रभावशाली सदस्यों का यह मत था कि कार्यवाही शीघ्रगामी होनी चाहिए, चाहे कितना ही अथक श्रमसाध्य कठोर कार्य और दिक्कतें ही क्यों न उठानी पड़ें। रिचमंड पर तत्काल अधिकार करने की उनकी लालसा प्रबल हो उठी थी। मैक्लीन के दृष्टिकोण का दूसरा स्वरूप था।

स्काट की तरह उसकी भी यही मान्यता थी कि पहले सेना को पूरी तरह तैयार कर लिया जाय। वह चाहता था कि पोटोमाक सेना में ही दो लाख तेहत्तर हजार कुशल प्रशिक्षित सैनिक होने चाहिए। उसके अभियान में सहयोग देने के लिए एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा भी होना चाहिए, जिसमें यातायात व रसद के कई जहाज भी हों। जब तक यह पूरा नहीं हो जाय तब तक वह आगे बढ़ने के पक्ष में नहीं था। जब उसे ऐसी-सैन्य शक्ति प्राप्त हो जाती तो वह अपनी इस अजेय सेना के साथ दक्षिण की दिशा में आगे बढ़कर सीधा वर्जीनिया पहुँच जाता और फिर अटलांटिक तट-स्थित दक्षिणी संघराज्य के सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर सेना उतार कर वहाँ स्थित एक-एक राज्य पर अधिकार करता। मैक्लीन की योजना के अनुसार अनिश्चित विलम्ब और अपार सेना भी उसे प्रदान कर दी जाती तो भी वह दक्षिण को झुका नहीं सकता था। सैनिक आलोचकों का स्पष्ट कहना था कि उस स्थिति में दक्षिणी सेनाएं तटवर्ती प्रदेश को छोड़कर अन्तर्वर्ती प्रदेशों में पीछे हट जातीं और इस तरह शत्रु उनके मर्मस्थल पर चोट करने में असफल रहता। लेकिन न तो उसे इतने सैनिक ही दिये गये और न इतना समय ही तैयारी के लिए दिया जा सकता था; फलस्वरूप उसे अपनी यह योजना छोड़नी पड़ी। फिर भी कई दिनों तक उसके दिमाग में इस तरह की कल्पना बनी रही।

उन लोगों की इच्छा की भी पूरी तरह अवहेलना नहीं की जा सकती थी, जो रिचमंड पर भारी आक्रमण करने के पक्ष में थे। ये लोग प्रभावशाली थे और निर्णायक स्थिति बहुत-कुछ इन पर निर्भर करती थी। इन दिनों रिचमंड पर जो छुटपुट परन्तु लगातार असफल आक्रमण किये गये, वे सैनिक दृष्टिकोण से कुछ लाभजनक ही सिद्ध हुए। इसके कारण शत्रु के सैनिकों व रसदसामग्री पर काफी प्रभाव पड़ा तथा इनसे दूसरे मोर्चों पर सैनिकों व रसद की कमी महसूस की जाने लगी। किसी भी तरह से सुनिश्चित की गयी सैनिक नीति में अवश्यम्भावी रूप से स्काट की योजना व जनता द्वारा रिचमंड पर आक्रमण की प्रबल उत्कण्ठा को स्थान मिलना स्वाभाविक ही था। आरम्भ में इस नीति को लागू नहीं किया जा सका, क्योंकि वृद्ध सेनापति स्काट का पद सम्हालने के लिये उत्तर के पास कोई अनुभवी व दक्ष सेनापति नहीं था। यह कहना नितान्त गलत है कि लिंकन इस दिशा में एक ठोस नीति—चाहे वह सही हो अथवा गलत—निश्चित नहीं कर सका था, फलस्वरूप उचित नीति आरम्भ में नहीं अपनायी जा सकी।

बुलरन युद्ध के दो दिन बाद ही उसने तीनों सेनाओं की भावी गतिविधि की अपनी योजना को लिपिबद्ध कर दिया। उसका अभिमत यह था कि एक सेना निरंतर रिचमंड के लिए संकट बनी रहे। दूसरी सेना ओहयो प्रदेश स्थित सिनसिनाटी नामक स्थान से आगे बढ़कर केन्टकी प्रदेश स्थित कम्बरलैंड दर्रे में होकर पूर्वी टेनेसी प्रदेश में नोक्सविले पर आक्रमण करे। तीसरी सेना मिसीसिपी नदी स्थित कैरो को अपना आधार मानकर वहाँ से १२० मील दूर दक्षिण में नदी मार्ग द्वारा मेम्फिस पर आक्रमण करे। यह स्पष्ट है कि वह कभी यह नहीं चाहता था कि पोटोमाक सेना रिचमंड की दिशा में पूरी तरह उलझ जाय। उसको यह भी चिंता थी कि ऐसी दशा में वाशिंगटन की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती थी। वह चाहता था कि पोटोमाक सेना रिचमंड की दिशा में केवल इतनी ही कार्यवाही करे कि वाशिंगटन की सुरक्षा में कोई कमी नहीं आ पाये। सारे युद्धकाल में उसकी पोटोमाक सेना के प्रति यही नीति रही कि वह नगर की संभावित आक्रमण से रक्षा के लिए तैयार रहे। दक्षिण के तीन रेल-केन्द्रों में मेम्फिस ऐसा स्थान था जहाँ से रेलमार्ग नदी-तट को छूता था और यहाँ से न्यूओरलेन्स, विक्सबर्ग तथा अन्य दक्षिणी राज्यों से सम्पर्क स्थापित होता था। नोक्सविले दूसरा केन्द्रस्थल था जिस पर अधिकार करके उत्तरी सेना वरजीनिया का पश्चिम से जो दक्षिणी रेलमार्ग द्वारा सम्बंध था, उसे भंग कर सकती थीं। परन्तु इस पूर्वी टेनेसी प्रदेश में प्रवेश करने के उद्देश्य के पीछे लिंकन के हृदय में एक दूसरी बात भी थी। इस प्रदेश की जनता हृदय से गणराज्य के पक्ष में थी। इन लोगों पर दक्षिण की सेनाओं ने आक्रमण किया था तथा उन्हें क्रूर दमनपूर्वक अपने अधीन कर रखा था। हेमन्त के दिनों में दक्षिणी दमन से कराहती इस जनता की पीड़ा-भरी अपीलें वाशिंगटन में प्रशासन को प्राप्त होती रहीं कि उत्तरी गणराज्य उन्हें इससे छुटकारा दिलवाने में सहायता करे। लिंकन को यह आशा थी कि यदि उत्तरी सेनाएं इस प्रदेश को शत्रुओं से मुक्त कर देतीं और उनके पर्वतीय प्रदेश पर उत्तर का अधिकार हो जाता तो यह निश्चिंत था कि दक्षिणी संघराज्य के ठीक मध्यवर्ती महत्वपूर्ण भूभाग में उत्तर का प्रबल व सुरक्षित अड्डा जम जाता। उसने बार-बार सेनानायकों के समक्ष अपनी योजना के इस अंश को प्रस्तुत किया। बुयेल ने इस योजना के प्रसंग में प्रमुख तर्क यह प्रस्तुत किया कि उसकी सेना को निकटवर्ती रेल व रसद के अड्डे से डेढ़ सौ मील दूर आगे बढ़ना पड़ेगा (उस समय अलगेनी क्षेत्र के पश्चिम में दो सौ मील तक ऐसा कोई रेलमार्ग नहीं था जिससे उत्तरी व

दक्षिणी भूभागों का सम्बन्ध हो)। लिंकन ने इस कमी की पूर्ति के लिए सितम्बर में प्रमुख सीनेट-सदस्यों व प्रतिनिधि सभासदों की एक बैठक बुलायी और लेक्सिंगटन से दक्षिण में केन्टकी तक रेलमार्ग बनाने के बारे में विचार-विमर्श किया। बैठक में उपस्थित लोग तत्काल ही रिचमंड पर आक्रमण के पक्ष में थे अतएव उन्हें यह योजना, जिसमें बहुत कम धन व समय खर्च होता, दीर्घकालीन व अधिक खर्चीली लगी। लिंकन का इसके बाद भी यह विचार था कि पूर्वी टेनेसी क्षेत्र में आक्रमण करना संभव है। दो वर्षों के बाद जिस परिस्थिति में इस क्षेत्र पर आक्रमण किया गया, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस बारे में उस समय लिंकन द्वारा अपनाया गया रुख सही था। यह शंका हो सकती है कि ओहयो और पश्चिम की सेनाओं को इतना अधिक दूर हटाना समझदारी का निर्णय नहीं था। उस समय दक्षिणी संघराज्य की प्रमुख सेना सेनापति जनरल जोन्स्टन के नेतृत्व में सितंबर माह से ही दक्षिणी पश्चिमी केन्टकी में आगे बढ़ चुकी थी। यदि उत्तर की सेनाएँ लिंकन की योजना के अनुसार आगे बढ़तीं तो जान्स्टन दोनों सेनाओं में से एक पर भी सफलतापूर्वक आक्रमण कर सकता था। बुयेल को इस स्थिति का आभास मिल गया था। दूसरी ओर लिंकन का जो लक्ष्य था वह समझदारी-भरा था। यदि इस मामले में पश्चिमी सेनाओं का सहयोग मिल सकता तो मिसीसिपी क्षेत्र में सैनिक अभियान को कुछ दिनों तक टाला जा सकता था। जैसी भी स्थिति रही हो, सत्य यह है कि मेक्लीन ने लिंकन की योजना का समर्थन किया। वह इस बारे में उत्सुकता से यह देख रहा था कि बुयेल शीघ्र से शीघ्र पूर्वी टेनेसी क्षेत्र में अभियान करे, क्योंकि मेक्लीन खुद भी वरजीनिया पर आक्रमण करना चाहता था और उसे वहाँ बुयेल की सेना से सहयोग की आशा थी। मेक्लीन को शायद पश्चिमी क्षेत्र का ध्यान नहीं रहा था, परन्तु वह लिंकन का सबसे बड़ा सैनिक सलाहकार था और उसे उसकी योग्यता में पूर्ण विश्वास था। बुयेल का दृष्टिकोण यह था कि यदि उसे अभियान करना ही पड़ा तो वह पश्चिमी टेनेसी की ओर होना चाहिए। इस तरह उसे अपनी पृष्ठभूमि में रेलमार्ग उपलब्ध होता और उसे जनरल जान्स्टन की सेना से सीधा मुकाबला करना पड़ता। उसकी यह इच्छा थी कि इस दौरान में हेलक टेनेसी और कम्बरलैंड नदियों की ऊपरी दिशा में आगे बढ़ जाय। पूर्वी टेनेसी को अंत में सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया जा सकता था और इस तरह दोनों सेनाएं जान्स्टन को घुटने टेकने पर मजबूर कर सकती थीं। हेलक बुयेल के साथ आगे बढ़ने के लिए राजी

नहीं हुआ। वह लिंकन और मैक्लीन की योजना से असहमत था। फ्रेमोण्ट ने पश्चिम की सेना को अस्तव्यस्त कर दिया था। हेलक उसे ठीक करने में लग गया और तब तक के लिए उसने अपनी सेना को केवल छोटी-छोटी मुठभेड़ों तक ही सीमित रखा।

तीनों ही सेनानायक—जिनमें प्रमुख सेनापति भी था—अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पकाना चाहते थे। दूसरे की क्या स्थिति है इस बारे में वे विचार तक नहीं करना चाहते थे। बुयेल एक ऐसा व्यक्ति था जो इस तरह की भावनाओं में अधिक नहीं बहा। शीघ्र अभियान नहीं करने के लिए प्रत्येक सेनानायक यही तर्क प्रस्तुत करता था कि अभी उसकी सेना तैयार नहीं है। परन्तु शीघ्र ही ये लोग सुस्त अथवा निष्क्रिय सेनानायक सिद्ध हुए। दुर्भाग्यवश बुयेल इस दोषारोपण का अधिक शिकार हुआ। उसकी सारी कार्यवाही विवाद का विषय बनी रही परन्तु वह कभी भी सुस्त नहीं था। अन्य दोनों सेनानायक हेलक और मैक्लीन सचमुच में ही आलसी थे। इस बारे में कहीं कोई मतभेद नहीं है। जैसे-जैसे १८६१ के वर्ष का अंत होने लगा यह आवश्यकता तेजी से महसूस होने लगी कि कहीं-न-कहीं कुछ कार्यवाही की ही जानी चाहिए, भले ही यह कार्यवाही सबसे अच्छी दिशा में न हो। प्रशासन पर इन दिनों ठीक वैसा ही राजनीतिक दबाव पड़ने लगा, जैसा बुलरन के युद्ध के पूर्व था, अर्थात् उसे बाध्य किया जाने लगा कि वह कहीं-न-कहीं शत्रु पर आक्रमण की कार्यवाही आरंभ करे। पोटोमाक की सेना तेजी से एक अच्छी सेना में बदल गयी। इस सेना से बीस मील दूर ही शत्रुसेना मानसास में खाइयाँ खोदे पड़ी थी। शत्रु-सेना उत्तर की सेना से अधिक अच्छी नहीं थी। लिंकन के धैर्य का बाँध टूट गया और उसने यह घोषणा की, "यदि शीघ्र ही सैनिक गतिविधि नहीं प्रारंभ की गयी तो जनता का इस मामले में जो उत्साह है वह नष्ट हो जायेगा और फिर इस सारे मामले में कहीं कोई सार ही नहीं रह जाता।" सैनिकों ने बताया कि अब सैनिक स्थिति भी दृढ़ हो चुकी थी। परन्तु लिंकन का दृष्टिकोण सही था कि लोगों में विश्वास उस स्थिति में नहीं बनाये रखा जा सकता है जब कि उन्हें किसी न किसी तरह की शीघ्र कार्यवाही की आशा हो, और उस ओर कुछ किया ही न जाय। १८६१ का वर्ष समाप्त होने के पूर्व ही सेना से इस तरह की दलीलें आनी बंद हो गयीं कि अभी और बाट देखी जाय। मैक्लीन एक लम्बे समय से शीघ्र ही अभियान करने की बातें करने लग गया था, बुयेल और हेलक अभी उलझन में ही पड़े हुए थे कि आगे बढ़ा जाय अथवा नहीं।

युद्ध के आरंभ में लिंकन ने सैनिक मामलों में जो ज्ञान प्रदर्शित किया वह सामान्य था तथा (बुलरन के युद्ध के बाद) पढ़ी गयी सैनिक पुस्तकों पर आधारित था। बाद के दिनों में उसे कई तरह के अनुभव प्राप्त हो गये थे। बाद में सैनिक मामलों को उसने कितना प्रभावित किया इसके संकेत नहीं मिलते हैं क्योंकि वह सैनिक मामलों का गंभीर अध्ययन करता था। वह अपने प्रमुख सेनापति के साथ सहमत रहने लगा और उसने उसे अपनी गतिविधि के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी। लिंकन का यह दृष्टिकोण उचित प्रतीत हुआ। आरंभ में उसकी स्थिति जरा कठिन थी। सैनिक मामलों में उसका ज्ञान बहुत-कुछ सामान्य था। इन दिनों अपने दूसरे कामों के बावजूद भी वह गंभीरता से सैनिक पुस्तकें पढ़ने लगा था और उनमें से अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करता रहता था। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि इस तरह प्राप्त ज्ञान का उसने युद्ध के मामले में समुचित सदुपयोग किया। निश्चित ही वह युद्ध को अलग-अलग रूप से नहीं देखता हुआ संपूर्ण रूप से देखा करता और उस बारे में अपना स्पष्ट दृष्टिकोण बना लेता था। वह दृष्टिकोण एक नागरिक के तौर पर पूर्णतया उचित ठहराया जा सकता है। निश्चित ही, न तो उस समय और न बाद में ही, किसी भी सेनाध्यक्ष ने उसकी भूलों को सुधारने का ही प्रयत्न किया, न उसे प्राप्त जानकारी के अतिरिक्त उससे अच्छी जानकारी अथवा उसके समान स्पष्ट और विशद सलाह ही किसी सेनाध्यक्ष ने दी। उसने अपने सेनानायकों को जो निजी पत्र लिखे हैं, उन्हें पढ़कर उत्तरी सेना के आलोचक भी, लिंकन की जीवनी-लेखक के समान ही यह कहने का लोभ संवरण नहीं कर पाये कि "वह युद्ध का योग्यतम नीति-निर्देशक था।" ग्रान्ट और शरमन यह बात नहीं कहते हैं। उनका कहना कुछ और ही है। वे कहते हैं कि लिंकन में इतनी महान विद्वत्ता थी जितनी उन्होंने कभी भी किसी में नहीं देखी। सच्चाई यह है कि लिंकन को रणनीतिज्ञ कदापि नहीं कहा जा सकता है। यदि उसे हम रणनीतिज्ञ मान लें तो उस पर यह स्वाभाविक दोषारोपण किया जा सकता है कि ग्राण्ट के वाशिंगटन पहुँचने के पहले उसने सारी सेना को छितरा दिया था जो रणकौशल की दिशा में मूर्खतापूर्ण कार्य था। भले ही वह लक्ष्य की बात ठीक तरह से जान लेता था, परन्तु एक अनुभवी कुशल सेनानायक की तरह उसे यह ज्ञान नहीं था कि किसी अभियान के लिए कितने सैनिकों की आवश्यकता रहती है, किस तरह कम से कम शक्ति से अधिक लाभ उठाया जा सकता है, कैसे इस कार्य के लिए सेना को तैयार किया जा

सकता है और सड़कों, मौसम, सैनिकों की थकान, रसद आदि को देखते हुए अभियान संभव हो सकता है अथवा नहीं? इस बारे में कोई भी दूसरा सेनानायक उससे अच्छा निर्णय कर सकता था। युद्ध-संचालन में उसकी सफलता अथवा असफलता की जाँच करने के लिए पाठक को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि क्या उसने अपने उचित अथवा अनुचित निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए सदा जोर दिया और क्या उसने जहाँ उसे उचित प्रतीत हुआ अपने निर्णय की अपेक्षा अपने सेनानायकों की बात को महत्व दिया? क्या उसने ऐसा करते समय अपने उद्देश्य अथवा विशद दृष्टिकोण को तो क्षति नहीं पहुँचने दी? उसकी शक्ति का यह प्रमाण ही कम नहीं है कि उसने प्रधान सेनाध्यक्ष के नाते शायद ही कभी अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए किसी सेनानायक को आदेश दिया होगा। भले ही उसे अपना निर्णय पूरी तरह उचित ही क्यों न लगा होगा, उसने सेना के प्रति कभी आदेशात्मक रुख अख्तियार नहीं किया। ऐसी कुछ विशेष परिस्थितियों में उसने या तो लोभ संवरण नहीं कर पाने अथवा बाध्य होकर ही इस नीति का उल्लंघन किया होगा। ऐसी घटनाएँ बाद में हमें युद्ध के दौरान में देखने को मिलेंगी अन्यथा उसने अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को बनाये रखा। ऐसे भी कई दृष्टान्त मिलते हैं जब लिंकन ने ठीक इसके विपरीत व्यवहार किया, यहाँ तक कि अपने सेनानायक की गतिविधि तो दूर रही उसके लक्ष्य अथवा मन्तव्य के बारे में भी पूछताछ नहीं की। जिस समय युद्ध की योजना तैयार की जा रही थी उस समय उसने बुयेल और हेलक से जो पत्रव्यवहार किया उससे लिंकन की भावनाओं का पता चलता है। वह खास तौर से उन पर किसी भी तरह की बात थोपने के विरुद्ध रहा। उसने सदा ही अपना दृष्टिकोण प्रारम्भ में सीधे-सादे रूप में, परन्तु बाद में अधिक गंभीरता के साथ, स्पष्टतापूर्वक अपने सेनानायकों के विचारार्थ रखा। वह सदा ही उनसे विनम्रतापूर्वक कहता—"यह आवश्यक नहीं कि आप मेरी योजना को कार्य-रूप दें; पर उसे कम-से-कम समझ तो लें।" यदि वे उसके कहे अनुसार कार्य करने में असमर्थ होते तो उन पर इससे अच्छी कार्यवाही के लिए योजना बनाकर समझाने के लिए वह जोर देता था।

[२]

मई १८६२ तक पश्चिम में युद्ध

मैक्लीन पर यह दबाव चारों ओर से पड़ने लगा कि अब उसकी सेना को आगे बढ़ना चाहिए। कई महीने गुजर जाने से दिनों-दिन यह दबाव तेज़ होने लगा व उचित भी प्रतीत होता था। अंत में मार्च १८६२ में मैक्लीन ने अपने अभियान का आरम्भ किया। इसीके साथ-साथ उत्तर की भयंकर विपदाओं की कहानी आरंभ हुई। लिंकन की कड़ी जाँच का यही समय था। कुछ लोगों का कहना है कि यह काल उसके लिए भयंकर भूलों का काल माना जा सकता है। युद्ध की अन्य बातों की अपेक्षा हमारा सम्बन्ध इन्हीं विगतों से अधिक है। पश्चिम में घटनाएं अधिक शीघ्र आरम्भ हुईं, उन्होंने तत्काल ही तेज़ी पकड़ ली और उनकी चर्चा भी अन्य घटनाओं की अपेक्षा पहले की जानी चाहिए। बुयेल अपनी योजना को कार्य-रूप देने की अनुमति मैक्लीन से प्राप्त नहीं कर सका; तथापि उसे हेलक के लिए अनुमति मिल गयी कि यदि वह सहमत हो तो शत्रुसेना का ध्यान बटाने के लिए टेनेसी और कम्बरलैंड नदियों में ऊपर की ओर जहाजी बेड़ा भेजा जा सकता है। बुयेल ने जैसा कि लिंकन ने पहले प्रस्तावित किया था और सेनापति मैक्लीन ने भी आदेश दे दिया, पूर्वी टेनेसी क्षेत्र में आगे बढ़ने का निर्णय लिया। हेलक अपनी जगह से नहीं हिला। बुयेल तब अकेले ही आगे बढ़ा। जनवरी १८६२ में उसने टामस की अधीनता में एक सैनिक टुकड़ी शत्रु-सेना के मुकाबले में भेजी। उस समय कम्बरलैंड दर्रे में से होकर दक्षिण की इतनी ही बड़ी टुकड़ी पूर्वी केन्टकी में पहुँच गयी थी। टामस ने कम्बरलैंड नदी के मुहाने की ओर पहाड़ी स्थानों के बीच मिलस्प्रिंग्स में शत्रु-सेना को बुरी तरह पछाड़ दिया। बुलरन युद्ध के बाद उत्तर की यह पहली विजय थी; अतएव इसका स्वागत होना स्वाभाविक ही था। जनवरी के अंत में बुयेल टामस के पीछे-पीछे बढ़ रहा था। उसने हेलक से किसी तरह के सहयोग की संभावना नहीं होने के कारण शत्रुसेना से बचाव के लिए अपनी सेना को दूर-दूर तक छितरा दिया था। उसको बढ़ने से रोक दिया गया क्योंकि हेलन ने बिना किसी तरह की पूर्व सूचना के ही अपना एक महत्वपूर्ण सैनिक अभियान आरम्भ कर दिया था और उस अभियान के लिए बुयेल का सहयोग जरूरी था।

कम्बरलैंड और टेनेसी नदियों में नौकायन संभव था। अपने निम्नवर्ती क्षेत्रों

में ये नदियाँ उत्तर या उत्तरपश्चिमी दिशा में बहती हुई ओहयो नदी में उस स्थान पर गिरती हैं जहाँ से ओहयो नदी कुछ ही दूरी पर स्थित कैरो नामक नगर के निकट मिसीसिपी में जा मिलती है। टेनेसी प्रदेश की सीमा पर इसी नाम की नदी में नौकायन को सुरक्षित बनाये रखने के लिए दक्षिणी संघराज्य का एक दृढ़ किला हेनरी फोर्ट था। इसके निकट ही कम्बरलैंड नदी पर दक्षिण का दूसरा मजबूत दुर्ग डोनेलसन था।

यूलीसस सेम्पसन ग्राण्ट ने मेक्सिको युद्ध में शानदार नाम कमाया था। वह युद्ध से अवकाश ग्रहण कर चुका था। गृहयुद्ध छिड़ने के पूर्व वह इल्लीनायस में अपने पिता के चमड़े के कारोबार में थोड़ी-बहुत मदद किया करता था। वह इन दिनों दो प्रमुख काम करता था; एक तो खूब शराब पीने का, दूसरा अपने अनिच्छुक मित्रों से कर्ज लेने का। पर गृहयुद्ध छिड़ते ही उसने स्वयं पर नियंत्रण कर लिया और थोड़ी-सी दिक्कत के बाद अपने राज्य की सेना में मेजर-जनरल के पद पर नियुक्त हो गया। गणराज्य की सेना में यह पद उसे बाद में मिला। उसके बाद उसने सदा ही अपने होश-हवास दुरुस्त रखे। हेलक के तत्वावधान में काम करते हुए उसने ओहयो पर कई महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया। उसने एक ऐसे स्थल को जीत लिया जिस पर दक्षिणवाले ताक लगाये बैठे थे। सैनिक महत्वपूर्ण स्थानों को तो मानों वह तत्काल ही भाँप लिया करता था। ग्राण्ट को आदेश दिया गया, अथवा उसने अपनी योजना रखकर हेलक से अनुमति प्राप्त कर ली कि हेनरी और डोनेलसन दुर्गों पर अधिकार कर लिया जाय। ग्राण्ट के अचानक अभियान तथा उत्तरी सेना को जहाजी बेड़े का सहयोग मिल जाने के कारण दक्षिणी सेनाओं को बाध्य होकर ६ फरवरी १८६२ को हेनरी दुर्ग खाली कर देना पड़ा। इस घटना के बाद ही डोनेलसन दुर्ग के सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया। उत्तरी सेना ने दस हजार युद्धबन्दी बनाये। किले में स्थित सेना ने कड़ा मुकाबला किया, यहाँ तक कि उन्हें अपनी विजय की भी संभावना हो चली थी, परन्तु इस गंभीर संकट के सामने ग्राण्ट ने दृढ़तापूर्वक पूर्ण सजगता के साथ युद्ध का संचालन किया। हेलक ने ग्राण्ट को थोड़ी-बहुत सहायता भी पहुँचायी, परन्तु बुयेल टस-से-मस नहीं हुआ। वह अपने स्वैच्छिक सैनिकों को अपने साथियों से अलग करके इस विचित्र सेना के साथ उन्हें जोड़ने को राजी नहीं हुआ और हेलक ने भी उसे अपने पूर्वनियोजित कार्यक्रम की सूचना नहीं दी थी। हेलक ने तत्काल लिंकन से प्रार्थना की कि दोनों पश्चिमी सेनाओं की सर्वोच्च कमान उसे सौंप

दी जाय तथा बुयेल उसके तत्वावधान में रह कर काम करे। हेलक की बात मान ली गयी, उसे दोनों सेनाओं का सेनापति बना दिया गया। इस अभियान के दौरान में ही यह अनुभव होने लग गया कि चाहे कोई भी कमान क्यों न सम्हाले, सेनाओं की सम्मिलित कार्यवाही बहुत जरूरी है। उस समय वाशिंगटन में हेलक द्वारा प्राप्त विजय के विरुद्ध दूसरा विरोधी दावा भी नहीं प्रस्तुत किया गया; फलस्वरूप हेलक को कमान दे दी गयी। परन्तु अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि बुयेल हेलक की अपेक्षा अधिक योग्य व्यक्ति था। ग्राण्ट की सेना डोनेलसन दुर्ग में संकटपूर्ण स्थिति में थी। उसे अल्बर्ट जान्स्टन के तत्वावधान में जो दक्षिणी सेना थी उससे भय था। पश्चिम में कुछ दूर बियरगार्ड की दक्षिणी सेना भी थी, परन्तु उससे भय खाना निरर्थक था। जान्स्टन कम्बरलैंड घाटी में पीछे हटता हुआ अपनी सैनिक स्थिति मजबूत कर रहा था। हेलक ने ग्राण्ट को इस सेना का पीछा करने को नहीं भेजकर एक अच्छा मौका हाथ से खो दिया। जैसी कि उस समय की स्थिति थी, जान्स्टन को कुछ समय के लिए कम्बरलैंड नदी के ऊपरी भाग स्थित नोशेविले नामक प्रमुख नगर को जो मुख्य रेल केन्द्र भी था, छोड़ देना पड़ा। बुयेल ने तत्काल इसे अपने कब्ज़े में ले लिया। बियरगार्ड के तत्वावधान में दक्षिणी सेना ने कैरो के निकट मिसीसिपी स्थित शक्तिशाली गढ़ी कोलम्बस को छोड़ दिया और नदी के नीचे की दिशा में वह चालीस या पचास मील दूर सुरक्षित स्थान पर पीछे हट गयी। इस तरह मिसीसिपी नदी के नौकायन को सुरक्षित करने की दिशा में उत्तर को कुछ सफलता प्राप्त हुई क्योंकि यही उसका महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसके अतिरिक्त दूर पश्चिम में मिसूरी में सेनानायक कर्टिस ने वहाँ से शत्रु सेना को पुनः अरकन्सास क्षेत्र में खदेड़ दिया और मार्च महीने में उन्हें करारी हार दी। परन्तु अब वह समय आ गया था जब कि शत्रु पर महत्वपूर्ण चोट की जा सकती थी। यह कहा जाता है कि बुयेल को यह स्पष्ट नजर आने लगा था कि हेलक और उसकी सेनाएं आपस में मिलकर टेनेसी नदी में दूर तक आगे बढ़कर और संभव हो तो पश्चिम में शत्रु के प्रमुख रेलमार्ग को पूर्णतया विनष्ट करने अथवा कब्जा करने का प्रयत्न कर सकती हैं। हेलक ने किसी भी तरह एक स्थान पर अपनी शक्ति केन्द्रित करने की ओर ध्यान नहीं दिया और जब तक कि उसके सामने गंभीर आक्रमण का संकट नहीं पैदा हुआ था तब तक उसने सेना को निरर्थक दूर-दूर तक के अभियानों में उलझा दिया। शत्रु पर आक्रमण करना उसका मुख्य लक्ष्य होना चाहिए था और इस समय शत्रुसेना जान्स्टन के नेतृत्व में

उसके सामने भी थी जिस पर शीघ्र आक्रमण करने की स्थिति में वह था भी, परन्तु इस समय उसने केवल इसी पर संतोष कर लिया कि उसने शत्रु को पीछे हटा दिया है। शत्रु-सेना बिना किसी तरह की हानि उठाये ही कुछ समय के लिए पीछे हट गयी और कुछ दिनों बाद अधिक सुसज्जित होकर बड़ी तादाद में फिर उत्तरी सेना पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगी थी। बुयेल के भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। हेलक ने जो चाहा वह उसे प्राप्त हुआ। अतएवं हमारे सामने जो घटनाएं प्रस्तुत की गयी हैं उनमें बुयेल की अपेक्षा हेलक को अधिक महत्व दिया गया है। कैसी भी स्थिति रही हो, उस समय यह आशा थी कि उत्तरी सेना महत्वपूर्ण निर्णायक युद्ध छेड़ेगी, परन्तु ६ अप्रैल तक कहीं कुछ नहीं किया गया। ६ अप्रैल को दक्षिणी सेनानायक अल्बर्ट जान्स्टन ने सुदूर दक्षिण से सहायता पाकर विशाल सेना के साथ ग्राण्ट पर आक्रमण कर दिया। ग्राण्ट टेनेसी राज्य के दक्षिणी भूभाग में नदी के निकट शिलोह पर बिना खाइयाँ खोदे व बिना किसी तरह की सुरक्षात्मक मोर्चेबन्दी के ही डेरा डाले पड़ा था। उसे निकट भविष्य में आक्रमण की आशंका भी नहीं थी। उस समय बुयेल को भी ग्रान्ट पर जो संकट आनेवाला था उसकी जानकारी नहीं थी। वह ग्राण्ट की सेना से मिलने के लिए कूच कर चुका था। ऐसा लगता है कि ग्राण्ट और हैलक दोनों ही ने लापरवाही बरती। यह कहा जाता है कि शिलोह युद्ध में दोनों ओर की सेनाओं ने, जो थोड़ी-बहुत प्रशिक्षित भी थीं, युद्धकला का अच्छा परिचय दिया। जान्स्टन और ग्राण्ट का निर्देशन इस युद्ध में स्पष्ट नहीं झलक पाया था परन्तु ग्राण्ट की सेना पर अचानक आक्रमण किया गया और उसे दूर खदेड़ भी दिया गया। फिर भी वह पस्तहिम्मत नहीं हुआ। उसी दिन दोपहर के बाद युद्धक्षेत्र में दक्षिण का सेनापति जनरल जान्स्टन मारा गया। (गलत हो अथवा सही) जफर्सन डेविस और उसके अन्य मित्रों ने जान्स्टन की मृत्यु को दक्षिण के लिए महान क्षति बताया। कई युद्धों की तरह शिलोह का यह युद्ध भी ग्राण्ट के मित्रों और बुयेल के बीच गंभीर विवाद का कारण बना रहा। इसी तरह दक्षिण में अल्बर्ट जान्स्टन के मित्रों और बियरगार्ड के मध्य इस युद्ध की स्थिति को लेकर गंभीर तनाव पैदा हो गया। ऐसा लगता है कि दक्षिण इस युद्ध में लगभग जीत ही चुका था परन्तु ६ अप्रैल को बुयेल रात को ग्राण्ट की सेना से जा मिला और उत्तर की सेना को यह नयी कुमुक मिल जाने के कारण दक्षिण ने आगे बढ़ने का प्रयत्न नहीं किया। दूसरे दिन प्रातःकाल ग्राण्ट को

और भी अधिक कुमुक पहुँच जाने के फलस्वरूप उसने शत्रु-सेना पर आक्रमण कर दिया। शत्रु-सेना में भगदड़ पैदा हो गयी और उसके सेनापति को दक्षिणी सेना को कोरिन्थ तक व्यवस्थित रूप में पीछे हटाने में कठिनाई का सामना करना पड़ा। कोरिन्थ शिलोह से चालीस मील दूर दक्षिण का एक प्रमुख रेल-केन्द्र था, जिसकी रक्षा करना जरूरी था। दूसरे दिन उत्तरी सेना-नायक जनरल पोप ने कड़े परिश्रम से नहर बना कर मिसीसिपी स्थित दक्षिण के एक महत्वपूर्ण किले पर अधिकार कर लिया और सात हजार युद्धबंदी बनाये। जनरल पोप की सेना को अब रुक जाना पड़ा क्योंकि हेलक आगे बढ़ने की योजना बना चुका था। पोप की सेना को साथ लेकर वह कोरिन्थ की दिशा में आगे बढ़ा। जहाँ भी रात को सेना का पड़ाव पड़ता, वहाँ पूरी तरह खाइयाँ खोद कर सुरक्षात्मक रूप से सेना को रखा जाता था जिससे शत्रु अचानक आक्रमण नहीं कर सके। हेलक खुद मोर्चे पर उपस्थित रहा। कोरिन्थ तक पहुँचने के लिए चालीस मील का मार्ग पार करने में उसे एक माह लगा। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने देखा कि कोरिन्थ को बिना किसी तरह के रक्तपात के ही प्राप्त कर लिया गया क्योंकि शत्रु-सेना उस नगर को खाली कर चुकी थी। वह एक इंजिनियर था; अतएव गृहयुद्ध में भी उसने अपना नपा-तुला सजगतापूर्ण सधा हुआ तरीका जारी रखा। कोरिन्थ पर हेलक के पहुँच जाने के कारण दक्षिणी सेना को मिसीसिपी नदी-तट-स्थित एक और महत्वपूर्ण किला खाली कर देना पड़ा। ६ जून को उत्तरी सेना मेंफिस पर अधिकार करने में सफल हुई। इस स्थान पर अधिकार करने की लिंकन की बलवती इच्छा थी। इस अभियान में उत्तरी जहाजी बेड़े ने मिसीसिपी-स्थित दक्षिण के जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। इसी दौरान में १ मई को नौसेनापति फारागाट ने साहसपूर्वक मिसीसिपी नदी के उत्तर की ओर शीघ्रगामी अभियान करके न्यू आरलेन्स पर अधिकार कर लिया जिससे बटलर के तत्वावधान में उत्तरी सैनिक टुकड़ी ल्यूशियाना में पाँव जमाने में सफल हो सकी। इस तरह मिसीसिपी नदी के एक बहुत बड़े भाग पर उत्तर का अधिकार हो गया। दक्षिण के हाथ में केवल सौ मील का टुकड़ा रह गया। यह भाग विक्सबर्ग से न्यू आरलेन्स तथा हडसन बंदरगाह तक था। इस महानदी की सहायक नदियों पर उत्तर की तोपवाहिनी नौकाओं का दबदबा जम गया। दक्षिणी सेना को कुछ गंभीर क्षति उठानी पड़ी परन्तु पश्चिम में उसे नष्ट नहीं किया जा सका। वह सुदृढ़ ही बनी रही। बाद में शीघ्र ही यह

सेना उत्तर की ओर सुनिश्चित दिशा में आक्रमण करने की स्थिति में आ गयी थी। इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि उत्तर को इस क्षेत्र में जो लाभ प्राप्त हुआ वह महान और स्थायी था। फिर भी उत्तर को खुशी नहीं थी। इस अभियान के सबसे बड़े युद्ध शिलोह में जो भयंकर सैनिक क्षति हुई उसका व्यापक दुष्प्रभाव पड़ा। हेलक को, जिसके तत्वावधान में इस अभियान का संचालन किया गया, पूरा-पूरा श्रेय मिला। बाद में आलोचकों ने हेलक की इतनी प्रशंसा को अनुचित ठहराया। यह स्पष्ट है कि उसने सेना को अच्छी तरह संगठित कर लिया था। लोगों की यह धारणा बन गयी कि शिलोह में ग्राण्ट की सेना आक्रमण के समय सो रही थी। उसके बारे में अन्य कई अफवाहें भी फैल गयीं और वह लोगों की निगाहों से गिर गया। पश्चिम की घटनाएँ इससे अधिक नहीं हैं। उत्तर ने १८६२ के अंत तक इस ओर इससे अधिक प्रगति नहीं की। यद्यपि दक्षिणी सेना उत्तर पर आक्रमण करने की स्थिति में थी, परन्तु उसने भी किसी तरह का महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त नहीं किया। अतएव हम यहाँ से हटकर पूर्वी युद्ध क्षेत्र की घटनाओं की ओर ध्यान दें तो अच्छा रहेगा। पूर्वी क्षेत्र में ये घटनाएं मई १८६३ तक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहीं जब कि दक्षिण का सितारा चमक उठा था और उसने सारे उत्तर में चकाचौंध पैदा कर दी थी।

[३]

मई १८६३ तक पूर्व में युद्ध की स्थिति

इस क्षेत्र में युद्ध की महत्वपूर्ण घटनाएं दक्षिणी सेनानायकों ली और स्टोनवाल जेक्सन के कारनामों से सम्बन्धित हैं। दक्षिण के दृष्टिकोण से यह अध्याय केवल भयंकर असफलताओं का ही नहीं वरन् भयत्रस्त घटनाओं का विवादास्पद अध्याय भी है। जार्ज मैक्लीन वाशिंगटन में जिस समय आया, उस समय उसे जनता का अपूर्व विश्वास प्राप्त था। उसकी तरुणावस्था के कारण भी लोगों की उसमें स्वाभाविक रुचि बढ़ गयी, यहाँ तक कि उसे 'तरुण नेपोलियन' के नाम से पुकारा जाने लगा। ३४ वर्षीय इस अधेड़ को 'तरुण नेपोलियन' कहना हास्यास्पद था, परन्तु यह इस बात का सूचक है कि लोग उसकी शक्ति में ऐसा विश्वास करने लगे थे मानों उसमें असंभव काम करने की क्षमता हो। उसने अपनी पत्नी को जो पत्र लिखे थे उन्हें अनुचित रूप से

प्रकाशित कर दिया गया। इन पत्रों से पता चलता है कि लिंकन और स्काट ने उसको जो महत्व दिया, उससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी क्षमता के बारे में जिस तरह का विश्वास प्रकट किया गया उससे उसे गर्व होने लगा और वह यहाँ तक सोचने लगा कि देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी उस जैसे अकेले व्यक्ति पर ही निर्भर करती है। उसने अपनी पत्नी को लिखा, "मैं शानदार काम करूँगा और एक ही चोट में उपद्रवी तत्वों को नष्ट कर दूँगा।" उसे शीघ्र ही एक शानदार सेना भी मिल गयी। यह कहा जाता है कि उसने खुद ही इस सेना का गठन किया था लेकिन इससे पहले कि वह इस सेना को काम में लेने का उचित अवसर प्राप्त करता, वह प्रशासन की निगाहों से गिर गया था और वाशिंगटन में उसे चर्चा का विषय बना कर गड़े मुर्दे उखाड़े जा रहे थे। कुछ समय बाद, उसके अभियान के महत्वपूर्ण दिनों में, जब उसको शत्रु की राजधानी रिचमन्ड पर अधिकार कर पाने की प्रबल संभावना थी, उसकी गतिविधि रोक दी गयी और उसे सेना सहित वापिस बुला लिया गया। बाद में जब देश पर पुनः गंभीर संकट की घड़ी आयी, तो उसे पुनः काम करने के लिए बुलाया गया। उसने उस खतरे को दूर कर दिया, तथापि थोड़े ही समय के बाद उसे सदा के लिए सेना से अलग कर दिया गया। संक्षिप्त में प्रस्तुत घटना सत्य अवश्य है, पूर्ण सत्य नहीं है। इसके कारण किसी की भी मैक्लीन के प्रति सहानुभूति हो उठती है। सैनिक जीवन से निवृत्त होने के बाद मैक्लीन के जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख भी यहाँ कर देना चाहिए। १८६४ में जब राष्ट्रपति-पद के चुनाव सन्निकट थे और उत्तर में निराशा फैली हुई थी, मैक्लीन एक बड़े दल के शूरमा के रूप में राजनैतिक रंगमंच पर आया। उसे राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार के लिए चुना गया। डेमोक्रेट लोगों ने इस समय इस विचारधारा को प्रमुख रूप दिया कि किसी भी तरह, कैसी भी शर्तों पर युद्ध का अंत किया जाना चाहिए। युद्धकाल में भी विरोधी पक्ष ने अपरिवर्तनीय परम्पराओं का पालन करते हुए उन्होंने युद्ध के शूरमा को राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार चुना। मैक्लीन ने खुले आम उनके सिद्धान्तों की अवहेलना की। वह उनमें विश्वास नहीं करता था, फिर भी वह उनका उम्मीदवार बन गया। यह बाद में साबित होता कि वह उनको नचा सकता था या खुद उनके इशारों पर नाचने वाला व्यक्ति था। वह उस वर्ष लिंकन के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में सामने आया। यह घटना ऐसी है, जिसने मैक्लीन के गुणों और दुर्भाग्य को अविस्मरणीय बना दिया। परन्तु उसका यह कार्य ऐसा था जिसने उसके जीवन व उसके

कारनामों को एक संदेह की भावना से ढक लिया।

उसके विलक्षण तथा असामान्य चरित्र का उल्लेख विस्तार से करना जरूरी है, जिससे लिंकन और उसके सम्बन्धों की अच्छी तरह से जानकारी हो जाय। उसकी सेना का उसमें अगाध विश्वास था। यह सिद्ध करता है कि वह इस दिशा में विश्वास का पात्र था। इसके अतिरिक्त उसमें दिखावे के भी विशेष गुण थे। वह एक सुन्दर घोड़ा, दबदबा जमानेवाली छड़ी आदि रखता था। वह सैनिकों को प्रशिक्षण देने की कला में सिद्धहस्त था, कुछ कमियों के बावजूद भी वह अच्छा सैन्य संगठनकर्ता था। वह अपने सैनिकों के कल्याण के प्रति सदा ही सजग रहता था। ग्रान्ट अपने सैनिकों के प्रति निर्मम व लापरवाही-भरा व्यवहार करता था, इसके विपरीत मैक्लीन अपने सैनिकों के प्रति पूर्ण सहृदय था व उनकी देखरेख पर विशेष ध्यान दिया करता था। उसके महान प्रतिद्वन्द्वी 'ली' ने जो उसकी अभियान की विशेष कमियों से पूर्ण परिचित था, सदा ही उसके साथ सैनिक होने के नाते सहानुभूति दर्शायी। उसने स्वाभाविक रूप से यह अनुमान लगाया कि मैक्लेलन भी बखेड़ेबाज राजनीतिज्ञों के षड्यन्त्र का शिकार हो गया था। 'ली' ने इसी तरह की बात उसके बारे में एक महान सैनिक इतिहासकार वुल्जले को कही थी। सैनिक जीवन के अलावा मैक्लीन ने अपने निजी जीवन में सभ्य व प्रतिष्ठित समाज का वातावरण बनाये रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने निजी जीवन में लोगों का मन मोह लेनेवाला व्यक्ति था और ऐसा कोई विपरीत उदाहरण नहीं मिलता, जिसके कारण उस दिशा में असंतोष व्यक्त किया जा सके। इसके अतिरिक्त उसने प्रतिष्ठा, देशप्रेम व राजभक्ति का जो स्तर निर्धारित कर रखा था उसका सदा ही सजगतापूर्वक पालन करता रहा और उस पर खरा भी उतरा। यदि यह प्रश्न उठाया जाय कि क्या लिंकन और देश की आवश्यकता को देखते हुए मैक्लीन उचित व्यक्ति था और क्या वह ऐसा व्यक्ति था जो भयंकर बाधाओं के सामने होते हुए भी महान कार्य को हाथ में ले सकता था तो ये ऐसे मुद्दे हैं जिनका विश्लेषण कठिन है। परन्तु उस समय मैक्लीन में (एक प्रायद्वीप के अभियान को छोड़ कर) ये गुण उपलब्ध थे। क्या उसने कभी शत्रु को पछाड़ने के लिए कोई काम किया? क्या उसने कभी किसी विशेष लक्ष्य की ओर अपना सारा ध्यान केंद्रित किया? क्या उसकी तैयारी संपूर्ण थी? क्या उसको प्राप्त जानकारी सही थी? क्या युद्ध में उसका लक्ष्य स्पष्ट था? यदि था

तो क्या उसने सरकार के सामने उसे रखने का प्रयत्न किया ? क्या उसकी स्पष्ट-वादिता अथवा उसकी सहृदयता के कारण उसके साथ विश्वासघात किया गया ? इन प्रश्नों का 'हाँ' में उत्तर देने के लिए कोई भी तैयार नहीं होगा। अमरीकी इतिहास में मैक्लीन का इतना महत्वपूर्ण स्थान है कि जिस प्रकार उसका स्वरूप निर्धारित किया गया है वह उसीके योग्य था। अत्यन्त ही हार्दिक और सही दृष्टिकोण रखते हुए मनुष्यों को न्याय-तुला पर आँकते समय उन्हें उचित अथवा अनुचित—या भले-बुरे के—रूप में नहीं छाँटा जा सकता। उनका विभाजन इस आधार पर किया जायेगा कि क्या उन्होंने विशेष काम किया अथवा नहीं किया। यदि मनुष्यों को कभी इस तरह अस्थायी न्याय उदारता-पूर्वक करना पड़े तो उन्हें यह अत्यन्त ही सही निर्णय के साथ करना होगा। मैक्लीन का स्थान तब स्पष्ट हो जाता है।

लिंकन को प्रारम्भ में एक ऐसे सेनापति की आवश्यकता थी जो भयंकर भूल करनेवाला नहीं हो। परन्तु इसके साथ ही उसे एक ऐसा व्यक्ति प्राप्त करना था जो साहसी व पुरुषार्थी होता। वह उत्तर को संकट के मुँह में अरक्षित नहीं छोड़ना चाहता था, परन्तु साथ-साथ वह दक्षिण पर भी विजय प्राप्त करना चाहता था। मैक्लीन को नियुक्त करने में उस समय कुछ लाभ भी था। परन्तु उसकी नियुक्ति के कारण वाशिंगटन की रक्षा का भार लिंकन के कंधों पर पड़ गया था, जिसे वहन करना उसके बूते की बात नहीं थी। इस तरह का कोई दूसरा विश्वासपात्र सेनानायक खोज निकालना कठिन काम था। परन्तु लिंकन के सामने जो तथ्य आये उन्हें देखकर ही उसने यह अनुमान लगाया कि मैक्लीन जैसा व्यक्ति युद्ध का अंत नहीं ला सकता।

इस युद्ध के आंचल में हम अपना ध्यान प्रमुख सेना की मुख्य-मुख्य गतिविधि की ओर ही देंगे तथा बाहरी चौकियों को प्राप्त करने अथवा अन्य छोटी-छोटी घटनाओं में नहीं खो जायेंगे। २१ जुलाई १८६१ से—बुलरन के युद्ध से लेकर ५ मार्च १८६२ तक—दक्षिण की सेना जोसफ जान्स्टन के तत्वावधान में मानसास में चुपचाप अपनी तैयारी करने में लगी हुई थी। उसने अपनी सुरक्षात्मक स्थिति बनाये रखने के लिए मोर्चाबन्दी कर रखी थी, युद्ध की खाइयाँ खोद ली गयी थीं और उन पर तोपें भी चढ़ा दी गयी थीं। शत्रु को अपनी शक्ति का ऊपरी दिखावा बताने के लिए खाइयों पर असली तोपों के साथ-साथ नकली तोपें भी लगा रखी थीं। एक समय तो यह भी आभास मिला कि यह सेना शीघ्र ही कुछ हलचल करने वाली है। जान्स्टन और

उसके सेनानायक पोटोमाक की उत्तरी सेना पर, जहाँ वह स्थित थी, आक्रमण नहीं करना चाहते थे परन्तु उनका यह विचार था कि यदि उन्हें पचास हजार या साठ हजार सैनिक और मिल जाते तो वे पोटोमाक क्षेत्र को ऊपर की ओर से पार कर मेरीलैंड पर सफल आक्रमण कर सकते थे और इस तरह मैक्लीन को अपनी मौजूदा स्थिति से दूर हटाकर वे हरा सकते थे। १ अक्टूबर को दक्षिणी राष्ट्रपति जफर्सन सेनानायकों के निमन्त्रण पर मानसास पहुँचा, परन्तु उसने यह उचित नहीं समझा कि दक्षिण के कई महत्वपूर्ण स्थानों पर जो प्रशिक्षित सैनिक रख छोड़े हैं उन्हें वहाँ से हटाकर जान्स्टन की सेना में भेजा जाये। भले ही उसके पास इसके लिए पर्याप्त कारण भी रहे हों, परन्तु उसने एक बहुत ही अच्छा अवसर हाथ से खो दिया। मैक्लीन की सेना भी जान्स्टन की सेना की ही तरह प्रशिक्षित होकर तैयार हो गयी। आरंभ में मैक्लीन के ही कथनानुसार उसकी सेना में एक लाख सैंतालीस हजार सैनिक थे। जोसफ जान्स्टन का भी कहना था कि उसके पास सैंतालीस हजार से भी कम सैनिक थे। जान्स्टन को मैक्लीन की सेना की गतिविधि व उसके सैनिकों की संख्या की पूरी व सही जानकारी प्राप्त थी। मैक्लीन को शत्रुसेना की जानकारी वरजीनिया क्षेत्र से बड़ी कठिनाई से मिल पाती थी जब कि जान्स्टन मेरीलैंड से मैक्लीन की गतिविधि का पता आसानी से लगा लेता था। दोनों सेनाओं के बीच पच्चीस मील से अधिक दूरी नहीं थी। दिसम्बर के अंत तक मौसम व सड़कें दोनों, सैनिक दृष्टिकोण से उपयुक्त रहीं। सड़कें तो मार्च तक काम में आने योग्य रहीं। यह भी कहा जा सकता है कि वे इस वर्ष पूरी तरह काम आ सकती थीं। जैसे ही हेमन्त ऋतु का आगमन हुआ, दक्षिणी सेनानायकों को ऐसा लगा कि मैक्लीन शीघ्र ही अभियान करने वाला है। जान्स्टन को महसूस हुआ कि उसकी सेना के दाहिने बाजू पर चोट की जायेगी और मानसास-रेलमार्ग का दक्षिण से सम्बन्ध काटने का प्रयत्न किया जायेगा। फरवरी में उसे यह भय हुआ कि उसकी स्थिति खतरनाक हो गयी थी। वहाँ जो रसद-सामग्री व गोलाबारूद बड़ी मात्रा में इकट्ठा था, उसे वहाँ से हटा दिया गया। मार्च के आरंभ में जब उसे सूचना मिली कि उत्तरी खेमे में असाधारण हलचल है, तब जान्स्टन उसी दिशा से आक्रमण की आशंका में पीछे हट गया। ८ मार्च को वाशिंगटन में पता चला कि शत्रु-सेना ने मानसास को खाली कर दिया है। मैक्लीन अपनी सारी सेना लेकर वहाँ पहुँचा और फिर लौट आया। जान्स्टन मानसास से हटकर दक्षिण में तीस मील दूर रापीडन

नदी के किनारे जाकर जम गया। उसे इस बात पर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि शत्रु-सेना ने उसका पीछा नहीं किया।

इस तरह कई महीने गुजर गये। समाचारपत्रों में "पोटोमाक युद्ध-क्षेत्र में सर्वत्र शान्ति" पढ़ते-पढ़ते उत्तरी जनता ऊब उठी। एक विशाल सुसज्जित सेना को लेकर उन्हें जो गर्व था वह उसकी निष्क्रियता के कारण क्रोध में बदल गया। उत्तरी लोगों की मनोभावना पर इससे इतना अधिक प्रभाव पड़ा जिसके सामने बुलरन युद्ध के कारण उत्पन्न निराशा भी कुछ नहीं थी। नवम्बर में राजनीतिज्ञ सैनिक गतिविधि के लिए जोर देने लग गये। दिसम्बर में काँग्रेस की एक संयुक्त समिति नियुक्त की गयी। यद्यपि यह साधारण और मध्यस्थ मार्गी समिति थी, परन्तु इसके सदस्य सुयोग्य थे तथा इसकी उपयोगिता भी सिद्ध हुई। इस समिति ने भी अपनी सारी शक्ति लगाकर राष्ट्रपति को पोटोमाक क्षेत्र में सैनिक गतिविधि आरंभ करने के लिए बाध्य किया। लिंकन तो पहले से ही अधिक उत्कंठित था। उसकी यह मन्शा थी कि मैक्लीन स्वयं ही सैनिक हलचल आरंभ करे जब कि उसकी योजनाओं में हस्तक्षेप और अधिक उतावलेपन को लिंकन सामने नहीं ला रहा था। यह कहना असंभव है कि मैक्लीन न जाने किस असमंजस में था। बहुत पहले ही उसने लिंकन को यह आशा बंधायी थी कि वह शीघ्र ही हमला करेगा परन्तु वह अपनी पत्नी को पत्रों में लिख रहा था, "उसे यह भय है कि विशाल शत्रुसेना उस पर आक्रमण करने वाली है।" यह निश्चित है कि उस समय और बाद में भी वह शत्रु-सेना की शक्ति के बारे में मानसिक रूप से संत्रस्त था। अंत में लिंकन ने ही खुद चलाकर आगे बढ़ने की योजना उसके समक्ष रखी। इस बारे में इतना ही कहना पर्याप्त है कि युद्धविशारद न होते हुए भी उसने जो योजना रखी थी उसने शत्रु-सेनापति जान्स्टन को भयभीत कर दिया। यह ऐसी योजना थी जिससे शत्रु बुरी तरह भय खाता था। लिंकन ने अपनी योजना मैक्लीन के विचारार्थ प्रस्तुत की। मैक्लीन ने इसे अस्वीकार कर दिया। उसने यह कारण बताया कि इस अभियान में उसे शत्रु-सेना के इतने ही सैनिकों से मुकाबला करना पड़ेगा। वास्तव में उसकी स्थिति दूसरे ही ढंग की थी। उसकी सेना शत्रु-सेना से तिगुनी थी। यदि हम बाद में यह देखते हैं कि लिंकन ने सेनापति के निर्णय को यह कह कर अस्वीकर दिया कि उसने अपने कारणों पर विशद प्रकाश नहीं डाला है तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि मैक्लीन निकट-पड़ी शत्रुसेना के बारे में निराधार व लगातार गलत अन्दाज लगा रहा था।

इस तरह उसने जो अविश्वास पैदा किया उसे आगे बढ़ाने में उसकी निरर्थक महत्वहीन कल्पनाएं भी सहायक थीं। उसके मस्तिष्क में शत्रु-सेना के प्रति जो काल्पनिक भय था उसके साथ-साथ एक निरर्थक आशा भी थी। उसके दिमाग में यह भय था कि जब सब लोग उसे शत्रुसेना पर तत्काल और उसी स्थान पर आक्रमण करने को कह रहे थे, उसको जीतना असंभव था। परन्तु वह अपने ही निर्धारित समय और निर्धारित स्थान पर शत्रु-सेना पर चोट करके निर्णायक फलप्राप्ति की आशा लगाये बैठा था। परन्तु ऐसा होना असंभव था। प्रशासन के समक्ष उसने अभियान के लिए सैनिकों व सामग्री की जो माँग रखी उसका कहीं अन्त ही नहीं था। प्रशासकों के व्यवहार के प्रति उसकी बड़बड़ाहट व खीझ सीमा पार कर चुकी थी। युद्धविभाग निश्चय ही उसे किसी भी तरह चिढ़ाना नहीं चाहता था, परन्तु इन मामलों में उसका व्यवहार असंतुष्ट व्यक्ति के समान रहा। यह एक महान रहस्य ही बना रहा कि उसे जितने भी सैनिक भेजे गये उनका क्या हुआ। लिंकन ने मैक्लीन या उस जैसे दूसरे सेनानायकों के बारे में यह किंवदन्ती बना रखी थी, "उन्हें सैनिक भेजना मानों खलिहान में से फावड़े से उलीच-उलीच कर कीड़े बाहर फेंकना है; आधे भी कभी वहाँ तक नहीं पहुँच पाते।" परन्तु उसका यही एकमात्र दोष नहीं था, इससे भी गंभीर अपराध उसका था। प्रमुख सेनापति होने के नाते उसने पश्चिम की आवश्यकताओं की ओर जरा-सा भी ध्यान नहीं दिया और दूसरी सेनाओं के लिए जो सैनिक और सामग्री भेजी जाती थी वह अपनी सेना के लिए रख लेता था। उसके साथ कठिनाइयों का अंत यहीं नहीं था। मैक्लीन खुद जानबूझ कर अपने व प्रशासन के बीच जो अच्छे सम्बन्ध थे, उन्हें नष्ट करने पर तुल गया। यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है कि वह अपने निजी व्यवहार में सभी प्रशासनिक अधिकारियों के बारे में यह कहने लगा था कि वह "मूर्खों का गुट्ट" है। वह इनके बारे में इसी तरह की धारणा बनाये हुए था। इतना तो सहन किया भी जा सकता है परन्तु वह आगे बढ़कर राष्ट्रपति के प्रति भी व्यक्तिगत रूप से अनसुनी करने व हेकड़ी से पेश आने लग गया था। लिंकन की यह आदत थी कि—भले ही इसमें उसकी भी भूल रही हो—सेनानायकों से मित्रता बनाये रखने के लिए वह मैक्लीन को अपने यहाँ नहीं बुला कर उसके घर जाया करता था। मैक्लीन उसे टाल देने की प्रवृत्ति अपनाने लगा था। उसके द्वारा पूछी गयी जानकारी को वह निरर्थक जिज्ञासा कहने लगा। वह यह भी सोचने लगा था कि लिंकन इस मामले में उसके अतिरिक्त दूसरों से भी

विचारविमर्श करता है, यह मैक्लीन के लिए ठेस पहुँचाने के समान था। इसी तरह एक दिन सायंकाल लिंकन और सेवार्ड मैक्लीन के घर पर बैठे उसके लौटने की बाट देख रहे थे। मैक्लीन आया और सीधा ऊपर चला गया। उसके पास यह संदेश भेजा गया कि राष्ट्रपति उसकी मुलाकात को आये हैं और भेंट करना चाहते हैं। उसने कहा कि वह थक चुका है और इस रात उसे क्षमा किया जाय। सेवार्ड ने इस पर जो अनिच्छा और उत्क्रोश प्रकट किया उसे लिंकन ने किसी तरह शांत किया। जैसा कि उसने एक बार कहा था, "यदि मैक्लीन हमें विजय दिला सकता है तो मैं उसके घोड़े पर चढ़ते समय रकाब तक पकड़ने को तैयार हूँ।" परन्तु इसके बाद वह कभी मैक्लीन के यहाँ भेंट करने नहीं गया। बाद में उसने मैक्लीन को सही मार्ग पर लाने का दूसरे ही ढंग से असफल प्रयत्न किया। मैक्लीन को जो आदेश उसने बाद में जारी किये उनमें से कुछ में अजीब तरह की कड़ाई प्रकट होती है। ऐसी घटना की गंभीरता को लेकर लिंकन किसी भी सामान्य सैनिक के प्रति अपना दृष्टिकोण धुँधला करने वाला व्यक्ति नहीं था। इस तरह के दयालु अधिकारी के साथ बेहूदगी से पेश आना केवल मूर्खता ही नहीं थी। इस तरह उस सेना-नायक ने अपने और सरकार के बीच जो पर्दा डाल दिया उसके अधिक दिनों तक पड़े रहने पर युद्ध में हार निश्चित थी।

लिंकन मैक्लीन को दिसम्बर में आगे कूच करवाने के प्रयत्नों में असफल रहा। दिसम्बर और जनवरी के प्रारंभिक दिनों में मैक्लीन सख्त बीमार पड़ा हुआ था। अन्य सेनानायकों के साथ सलाह-मशविरा किया गया। इन सेना-नायकों में मेक्डवेल भी था जिसे सर्वोच्च कमान इसलिए नहीं दी गयी कि सेना का उसमें विश्वास नहीं था। मेक्डवेल और अन्य सेनानायकों ने लिंकन के साथ पूर्ण सहमति प्रकट की। तभी अचानक मैक्लीन की तबीयत ठीक हो गयी और नये सिरे से जो पुनर्विचार किया गया उसमें उसने भाग लिया। उसने मेक्डवेल को डाँटा जब कि सब यह जानते थे कि जिस सेना के साथ उसको मुकाबला करना था वह वास्तव में उससे तिगुनी थी। "यह इतना स्पष्ट था कि एक अन्धा आदमी भी देख सकता था।" परन्तु मन्त्री चेस ने मैक्लीन को उसकी योजना के बारे में कड़ाई के साथ आड़े हाथों लिया। लिंकन को उसको बचाने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ा। मैक्लीन से यह स्पष्ट वक्तव्य ले लिया गया कि उसके दिमाग में यह बात है कि वह उचित समय पर अभियान करेगा। लिंकन ने बैठक स्थगित कर दी।

मैक्लीन ने बाद में जाकर अपने मित्र स्टान्टन के समक्ष दुखड़ा रोया जो इन दिनों युद्ध-विभाग में था। वह भी क्या करता? काँग्रेस की संयुक्त समिति की यह राय थी कि मैक्लीन को आगे बढ़ना चाहिए और स्टान्टन भी उसी की बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहा था। अंत में २७ जनवरी को लिंकन ने "सामान्य युद्ध आदेश" जारी किया कि २२ फरवरी को पोटोमाक और पश्चिम की सेनाएं आगे बढ़ेंगी। ऐसा लगता है कि यह बड़ा गलत कदम उठाया गया, परन्तु मैक्लीन को अब आगे बढ़ना ही पड़ा। कुछ समय तो उसने यह सोचा कि वह लिंकन की योजना के अनुसार आगे बढ़े। इसके अनुसार वह सीधा जान्स्टन की सेना पर आक्रमण करता। उसने १३ फरवरी को चेस से कहा—"मैं दस दिन में रिचमन्ड में पहुँच जाऊँगा"। परन्तु शीघ्र ही वह अपने द्वारा पूर्व निर्धारित योजना पर लौट आया जिसके बारे में उसने अब कहीं जाकर सरकार को बताया। यह एक ऐसी योजना थी जिसमें और भी अधिक विलम्ब की संभावना थी। जब २२ फरवरी भी बीत गयी और कुछ नहीं किया गया तो संयुक्त समिति ने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा कि लिंकन अभी भी मैक्लीन के पक्ष में खड़ा होता है। परन्तु मैक्लीन अब निश्चय ही आगे बढ़ने की योजना पर विचार कर रहा था। इस पद के लिए सुयोग्य व्यक्ति न मिलने के अलावा मैक्लीन ने सेना का भी गठन किया था और उसके सैनिक उसे चाहते भी थे। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में मैक्लीन की योग्यता के बारे में लिंकन को जो विश्वास हो गया था वह उसे सहज ही भंग भी नहीं करना चाहता था। उसका यह विश्वास था कि यदि एक बार मैक्लीन को अभियान के लिए रवाना कर दिया जाय तो वह अच्छी सफलता प्राप्त करेगा। सैनिक गतिविधि की आलोचना में मैक्लीन की त्रुटियों को सामने रखते हुए भी लिंकन इस मामले में सही था। मैक्लीन को उसकी सैनिक कमियों अथवा त्रुटियों के कारण नहीं हटाया गया वरन् लिंकन ने उसे दूसरे ही कारणों से अंत में हटाया।

मैक्लीन ने यह निर्णय किया कि वह समुद्री मार्ग से चेसापीक खाड़ी से कुछ दूर तट पर अपनी सेना उतारेगा। लिंकन ने उसे जो प्रश्नावली भेजी उसका संतोषजनक उत्तर मैक्लीन ने कदाचित ही दिया हो। उसने पूछा, "क्या तुम्हारी योजना में मेरी योजना की अपेक्षा कम समय और कम खर्च होगा? क्या इसमें सफलता अधिक निश्चित है? क्या उस सफलता से यह अभियान अधिक महत्वपूर्ण बन जायेगा? यदि दुर्भाग्यवश पराजय हो तो क्या

उस हालत में इससे पीछे हटना अधिक आसान रहेगा?" मैक्लीन ने जो उत्तर दिया उसमें एक ही प्रसंग महत्व का है कि शत्रु को इस अभियान की जानकारी नहीं है। यह पूर्णतया सत्य भी था। परन्तु शत्रु इसका मुकाबला कर सकता था और मैक्लीन में इतनी योग्यता नहीं थी कि वह अचानक आक्रमण करके कोई लाभ उठा सके। उसकी मूल योजना रिचमंड से पचास मील दूर पूर्व में राफानोक नदी के मुहाने स्थित डरबाना नामक स्थान पर सेना उतारने की थी। जब उसने यह सुना कि जान्स्टन और अधिक दूर दक्षिण में हट गया है तो उसने यह मान लिया—उसने बाद में कई बार कहा भी—कि जान्स्टन ने यह कार्यवाही उसके डरबाना उतरने की भनक पड़ जाने के फलस्वरूप की है। उसने यह भी कहा कि प्रशासन ने उसकी योजना को गुप्त रखने के बारे में सतर्कता नहीं बरती जिससे यह बात शत्रु के कानों में पड़ गयी। जैसा कि हम ऊपर ही देख चुके हैं, यह बात सही नहीं थी। अब उसने डरबाना जाने का कार्यक्रम बदल दिया। इसमें या तो उसीने परिवर्तन किया अथवा संभवतया सरकार ने उसे बदल दिया। अपने मातहत प्रमुख सेनानायकों की सर्वसम्मति से उसने मुनरो दुर्ग की ओर अभियान किया। मैक्लीन पहले ही दक्षिण पर सीधे आक्रमण करने की अपेक्षा इस दुर्ग पर आक्रमण को तरजीह देता था। जान्स्टन के पीछे हट जाने के कुछ ही दिनों बाद युद्ध-विभाग ने इस कार्य के लिए उसके सैनिकों को जहाजों पर चढ़ाना आरम्भ कर दिया। मुनरो दुर्ग प्रायद्वीप के उस भाग में था जो उत्तर में यार्क नदी और दक्षिण में जेम्स नदी के मुहाने पर स्थित है। इस स्थान से स्थलमार्ग द्वारा रिचमंड पचहत्तर मील दूर था। २ अप्रैल १८६२ को मैक्लीन स्वयं इस 'शानदार प्रायद्वीपी अभियान' को आरम्भ करने के लिए वहाँ उतरा। जुलाई के अंत में यह अभियान पूर्ण निराशाजनक सिद्ध हुआ।

प्रायद्वीप में सेना भेजने के पूर्व कई काम करने जरूरी थे। अभियान के लिए पश्चिम में बाल्टीमोर और ओहयो रेलमार्ग को पुनः जारी करना जरूरी था। इस काम के लिए पोटोमाक क्षेत्र में पुल का काम देने के लिए नावें जरूरी थीं, जिन्हें नहर में से होकर लाया जाता। यह योजना सफल नहीं हो सकी क्योंकि मैक्लीन के पास जो नावें थीं वे नहरी द्वार से ६ इंच अधिक चौड़ी थीं। तब लिंकन ने इस बात पर जोर दिया कि पोटोमाक के निम्नवर्ती प्रदेश में नौकायन को सुरक्षित बनाने के लिए दक्षिणी संघराज्य की तटवर्ती तोपों का भय दूर करना जरूरी है। यदि मैक्लीन नौसेना के साथ सहयोग करता

तो यह बाधा पहले ही हटायी जा सकती थी। यह काम अब किया गया। तथापि मैक्लीन की सेना को लाने-ले जाने में एक नया ही संकट अचानक ही उपस्थित हो गया परन्तु उसे भी तत्काल ही समाप्त कर दिया गया। जेम्स के मुहाने पर नारफाक बंदरगाह को जल्दी से छोड़ते समय उत्तर ने एक जहाज मेरीमाक को अधजला व बेकार करके छोड़ दिया। १ मार्च को यही जहाज़ उत्तर की नजरों के सामने भाप छोड़ता हुआ बंदरगाह से बाहर निकला। दक्षिणी सेना ने उस बेकार पोत को बाहर निकाल कर लोहे से मढ़ दिया तथा युद्धपोत बना लिया। उत्तर के तीन लकड़ी के जहाजों ने बहादुरी के साथ इस जहाज का मुकाबला किया परन्तु वह निरर्थक सिद्ध हुआ। ये जहाज उसी दिन नष्ट हो गये। शीघ्र ही इस समाचार ने उत्तर के सभी बंदरगाहों को भयग्रस्त कर दिया। ठीक उसके दूसरे ही दिन उत्तरी नौसना विभाग के मुकाबले में दक्षिण का एक नया जहाज सामने आया। यह स्वीडिश इंजिनियर एरीक्सन की ईजाद था। उसकी तुलना 'लकड़ी के तख्तों पर रखी पनीर की पेटी' से की गयी। इस जहाज का नाम मेरीमोक था और हाल ही में ईजाद किये गये नये जहाजों के ढंग का यह जहाज था। मेरीमोक और मोनीटर से तीन घंटे तक समुद्री युद्ध जारी रहा। उसके बाद ये दोनों ही जहाज बिना किसी तरह की भीषण क्षति के बंदरगाह में वापिस घुस गये। उसके बाद 'मेरीमाक' वापिस फिर कभी बाहर नहीं आया। जब मैक्लीन प्रायद्वीप में कुछ आगे बढ़ आया तो दक्षिणवालों ने इस जहाज को नष्ट ही कर दिया। इस तरह के दक्षिण के कई प्रयत्नों की विस्तार से चर्चा करना जरूरी नहीं है। बाद में उनसे सफलता अवश्य मिली परन्तु वे इतनी अधिक महत्वपूर्ण नहीं थी।

प्रायद्वीप पर पहुँचने के बाद और पहले भी मैक्लीन को कई बार अपमानित होना पड़ा। मानसास में शत्रु द्वारा बच निकलने के अपमान के फल-स्वरूप उसे बिना किसी तरह की चेतावनी दिये ही सर्वोच्च सेनापति-पद से मुक्त कर दिया गया। यह कार्यवाही बाद में उसके अभियान के दौरान में भी की जा सकती थी। परन्तु जनता में यह केवल मानसास से शत्रु के सकुशल बच निकलने की घटना के आधार पर ही प्रस्तुत की गयी और मैक्लीन ने भी इसे स्वीकार किया। उससे यह कहा गया कि वह टुकड़ी नायकों की नियुक्ति करे क्योंकि उसके पास जितनी विशाल सेना थी उसे डिवीजन के आधार पर संगठित नहीं रखा जा सकता था। उसने तब तक ठहरना पसन्द किया जब तक कि उसके तत्वावधान में जो सेनानायक थे उनका परीक्षण नहीं हो जाय।

परन्तु लिंकन इस विलम्ब के लिए तैयार नहीं था। उसने खुद ही टुकड़ी नायकों की नियुक्ति कर दी। ये वे व्यक्ति थे, जिन्हें उसने युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ने के कारण चुना था। ये चुभते हुए कड़े कदम जिस ढंग से उठाये गये, निश्चित ही उनका उद्देश्य यह था कि मैक्लीन भी इन्हें इतना ही कठोर महसूस करे। लिंकन की पहले जो उदार प्रवृत्ति थी, ये कदम उसके पूर्ण विपरीत नजर आते हैं। आरम्भ में इनका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। इसके बाद मैक्लीन को और भी गहरा आघात पहुँचा। राष्ट्रपति ने अपने आदेशों में इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि वाशिंगटन की रक्षा के लिए समुचित सेना वहाँ रहनी चाहिए। उसने यह मान लिया था कि इस बारे में सर्वोच्च-सेनापति स्वयं भी यह स्वीकार कर चुका था। उसे अचानक ही पता चला कि मैक्लीन ने कूच करते समय मेक्डवेल को एक विशाल सेना के साथ अपने पीछे-पीछे आने का आदेश दिया था। यदि इस आदेश की पूर्ति की जाती तो जो सैनिक बचे रहते वे वाशिंगटन की रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं थे। लिंकन ने तत्काल ही आदेश दिया कि मेक्डवेल और उसकी सैनिक टुकड़ियाँ वहीं रहें यद्यपि बाद में उसने इनमें से कुछ सैनिक मैक्लीन को भेज दिये। मैक्लीन ने बाद में जो कारण बताये उससे कहा जा सकता है कि उसके मन में छल की भावना नहीं थी। यदि यह मान भी लिया जाय तो भी उसने जिस तरह का उटपटाँग कदम उठाया वह अक्षम्य है। इसके अतिरिक्त वास्तव में उसने वाशिंगटन को सुरक्षित नहीं छोड़ा था। तब से लेकर इस सारे अभियान में लिंकन ने यह मार्ग अपनाया कि वाशिंगटन सुरक्षित रहना चाहिए। केवल उसके ही दृष्टिकोण से सुरक्षित नहीं वरन् सर्वोत्तम सैनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण के अनुसार यह सुरक्षा होनी चाहिए।

मैक्लीन की प्रायद्वीप में गति धीमी रही। उसने वहाँ की भौगोलिक स्थिति की सही जानकारी पूरी तरह नहीं प्राप्त की। शत्रु के बारे में जैसी उसकी आशा थी कि वह उसके मुकाबले को तैयार नहीं था, गलत साबित हुई। यह मानी हुई बात है कि उसने शत्रु के पार्कटाउन मोर्चाबन्दी तक जिसमें अधिक सेना नहीं थी, पहुँचने में बहुत समय बर्बाद किया जब कि वह आक्रमण करके उस पर सरलता से अधिकार कर सकता था। उसे शीघ्र ही जान्स्टन से मुकाबला करना पड़ा। यहाँ भी उसने शत्रु सैनिकों की संख्या आँकने में गलती की और उसकी गतिविधि के बारे में सजग नहीं रहा। प्रशासन ने उसे मदद करने में किसी भी तरह की कोई कसर नहीं उठा रखी। प्रशासन के बारे में उसकी

लगातार शिकायतें जैसे "वाशिंगटन पतन का गर्त" आदि समझने में नहीं आनेवाली बातें हैं। जिन प्रशासकों को वह "मक्कार छली भेड़ियों का झुण्ड" कहता था वे कुछ-न-कुछ ईमानदार और समझदार व्यक्ति तो थे ही। वह 'पृथकतावादियों और बदमाशों' के नाम से राजनीतिज्ञों को पुकारने लगा। उसे यह निरर्थक भ्रम हो गया था कि वे लोग उसकी सेना को नष्ट होते देखना चाहते थे। ये बातें उसने अपने निजी पत्रों में लिखी थीं। काँग्रेस में मैक्लीन और उसके सेनानायकों की जो आलोचना की गयी वह निस्संदेह ही बिना किसी दबाव के स्वतः हुई थी। लिंकन ने मैक्लीन को यहाँ तक कहा कि वह आलोचना लिंकन की ही आलोचना थी। उचित अथवा अनुचित हो टुकड़ी नायकों की उसके व्यवहार के बारे में शिकायतें सामने आयीं। लिंकन ने इन्हें जरा भी महत्व नहीं दिया। परन्तु उसने मानवीय और कृपापूर्ण शब्दों में चेतावनी अवश्य दी। गृहयुद्ध के इतिहास लेखकों के लिए मैक्लीन ने कतिपय विवादजनक मुद्दे छोड़े हैं। परन्तु इस स्तर पर कोई भी व्यक्ति जो उसका पत्रव्यवहार पढ़ेगा, वह यह निष्कर्ष निकाले बिना नहीं रहेगा कि उस जैसे व्यक्ति के साथ सम्बन्ध बनाये रखना असंभव था। उसने जो भी सबूत अपने पक्ष में प्रस्तुत किये हैं उनसे एक ही निरर्थक ध्वनि प्रकट होती है कि लोग उसकी असफलता चाहते थे। वह प्रायद्वीप में लगभग दो माह तक रहा, जब कि उसकी सेना पर जान्स्टन ने आक्रमण किया। इस समय उसकी सेना अच्छे स्थल पर नहीं थी, परन्तु उसने ३१ मई और १ जुलाई को जान्स्टन को हटा दिया। इससे उत्तर के विश्वास और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। परन्तु उसने शत्रु का पीछा नहीं किया। उसकी सेना के एक अंग ने जान्स्टन का रिचमंड के चार मील निकट तक पीछा किया। यह विश्वास के साथ कहा जाता है कि यदि वह शक्ति और स्फूर्ति से काम करता तो इस समय रिचमंड शहर को ले सकता था। उसकी देरी के फलस्वरूप, चाहे वह किन्हीं कारणों से क्यों न हुई हो, शत्रु को अपनी सेना में बड़े पैमाने पर सैनिक भरती करने और कड़ी मोर्चाबंदी का समय मिल गया। इस युद्ध में दक्षिण का सुयोग्य सेनानायक जान्स्टन बुरी तरह घायल हुआ। उसका स्थान पुरुषार्थी और उत्साही सेनानायक ली ने ग्रहण किया। मैक्लीन के कथनानुसार, जिस पर अंग्रेज लेखकों ने विश्वास किया, उसकी गतिविधि में मेक्डवेल के साथ देने की झूठी आशा के कारण गत्यावरोध पैदा हुआ। उसे यह आशा दिलायी गयी थी कि मेक्डवेल ऊपर की ओर से कूच करके उससे जा मिलेगा। उसके

इस कथन का—कि वह इस आशा के चक्कर में था—उस समय के उसके द्वारा लिखे गये पत्रों में ही खंडन मिल जाता है। तथापि मैक्लीन को गहरी निराशा का सामना करना पड़ा। वाशिंगटन मोर्चे पर अब शत्रु का भय नहीं रह गया था और लिंकन मेक्डवेल को भेजने का निश्चय कर चुका था। इस समय उसे यह सुझाया गया कि शत्रु-सेना इस ओर उलट सकती है अतएव मेक्डवेल को यहीं रहने दिया जाय। लिंकन यह जानता था कि अभी शत्रुसेना के इस ओर आने की संभावना नहीं थी और मैक्लीन ने भी उसे इसी तरह की सलाह दी थी कि शत्रु का भय वहाँ नहीं है। इसी समय स्टोनवाल जेक्सन का प्रख्यात और महत्वपूर्ण आक्रमण हुआ और वाशिंगटन की रक्षा करने के लिए लिंकन और स्टान्टन को आगे आना पड़ा। यहाँ तक कि उन्हें व्यावहारिक रूप से सैनिक गतिविधियों का संचालन करना पड़ा। वाशिंगटन के दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में मेक्डवेल की सेना के अतिरिक्त सेनानायक बांक्स और फ्रेमोंट के नेतृत्व में दो सेनायें और थीं। ये दो व्यक्ति उन राजनीतिक सेनानायकों में से थे, जिन्हें प्रारम्भ में आवश्यक समझकर नियुक्त करने की भयंकर भूल की गयी थी ओर जिसे लेकर बहुत ही अधिक आलोचना प्रत्यालोचना हुई। बांक्स निश्चय ही एक राजनीतिज्ञ था। वह पहले किसी समय कारखाने में काम करता था और अपना विकास करते हुए एक समय प्रतिनिधि सभा का अध्यक्ष भी बन गया था। वह इस समय सेना-नायक था क्योंकि वह मेसाचुसेट्स जैसे देशभक्त राज्य का शक्तिशाली व्यक्ति था। वह अपने साथ बहुत से सैनिक लाया था और लोग उसकी आज्ञा का पालन करते थे। इसके अलावा उसने सैनिक व प्रशासनिक मामलों में अच्छी सूझबूझ का परिचय भी दिया। वह सदा हृदय से कर्त्तव्यपालन करता था। यद्यपि उसने युद्ध के अंत तक सेना में उच्च पद सम्हाले रखा, उस पर कभी भी यह आरोप नहीं लगाया गया कि उसमें योग्यता की कमी थी। १८६४ में उसे अत्यंत ही कठिन अभियान का नेतृत्व करने को भेजा गया जहाँ वह सफल नहीं हो सका। बांक्स इस समय शिनान्डा की निचली घाटी में था और उससे थोड़ी दूर स्थित जेक्सन की सेना पर, जो संख्या में काफी कम थी चौकसी रख रहा था। फ्रेमोंट के लिए यह कहा जा सकता है कि वह एक माने में सैनिक था। परन्तु मिसूरी में उसने जो कुछ किया उसे देखते हुए बाद में सेना में उसको नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए था। उसकी जो नयी नियुक्ति की गयी, वह लिंकन की सबसे बड़ी भूल थी और यह अपने ढंग की विलक्षण भूल

थी। यह सरलता से समझ में आ सकता है कि कई राजनीतिक कारणों से स्वतंत्रता के इस शूरमा से काम लेना और उसे प्रतिष्ठित पद दिया जाना जरूरी था। परन्तु इस बात को महत्व नहीं देना चाहिए था और उस समय इसको आधार भी नहीं बनाया गया। लिंकन व्यक्तिगत रूप से इतना कठोर नहीं था कि वह अपने पूर्व राष्ट्रपति प्रतिद्वन्द्वी की सभी प्रार्थनाओं को ठुकरा सके। फ्रेमोन्ट खुद लिंकन के पास आया और उसने सामन्तकालीन शूरवीरों की तरह टेनेसी के गणराज्य के समर्थकों को शत्रु के चंगुल से मुक्त करने के लिए पश्चिमी वरजीनिया क्षेत्र में होकर एक सैनिक अभियान का सुझाव दिया। अतएव उसे इस समय वहाँ पहुँचना था, परन्तु कुछ कारणों से शिनान्डा घाटी के पर्वतीय क्षेत्र में रोक लिया गया। मेक्डवेल, बांक्स और फ्रेमोन्ट ने जिस ढंग से और जिन कामों के लिए अपनी सेनाएं छितरा रखी थीं यह सैनिक दृष्टिकोण से अवैज्ञानिक तरीका था। जेक्सन ली से मिलकर कितना घातक प्रहार यहाँ कर सकता था, उसकी इन्हें जानकारी भी नहीं थी और न उन्होंने कभी ऐसी बात सोची भी होगी। जेक्सन ने पहले हेमन्त ऋतु में शेनान्डा घाटी में कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया था और बाद में उसने पश्चिमी वरजीनिया पर आक्रमण किया था। ठीक इसी समय उसने अपनी साहसी और शौर्यभरी गतिविधि आरम्भ की। इसका विशद वर्णन कर्नल हन्डर्सन की प्रसिद्ध पुस्तक में किया गया है। उसके पास बहुत कम सेना थी और वह खुद शत्रु-सेनाओं से घिरा हुआ था। फिर भी उसने इन शत्रु-सेनानायकों और उनकी सेनाओं को एक-एक करके घेरा और उन्हें बुरी तरह परास्त किया। यहाँ तक कि राष्ट्रपति और युद्ध सचिव स्टान्टन भी चौंक गये, कि वाशिंगटन की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो गया है। उस समय ऐसा कोई व्यक्ति नजर नहीं आ रहा था, जिसके हाथों इन तीनों सेनाओं की सर्वोच्च कमान सौंपी जा सके। मेक्डवेल को यह काम सौंपा जा सकता था परन्तु इसके लिए उसे वाशिंगटन से हटाना पड़ता। अतएव लिंकन ने खुद ही स्टान्टन के सहयोग से इन तीनों सेनाओं की कमान अपने हाथ में ली और तीनों सेनानायकों में आपसी सहयोग के लिए वाशिंगटन से आदेश भेजने आरम्भ किये। उसका आत्मविश्वास अब पूर्ण विकसित हो चुका था। मैक्लीन के मुकाबले में उसकी सैनिक जानकारी व योग्यता कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी प्रमाणित हुई। संभवतया उसे अपनी इस योग्यता में कहीं कमी भी महसूस नहीं हुई। यह मानी हुई बात है कि नौसिखिये की तरह उसकी योजनायें अधिक जटिल थीं और अब उनकी चर्चा करने में कोई सार नहीं है। परन्तु वह नये-से-नये ज्ञान को अपना

रहा था और यहाँ तक कहा जा सकता है कि यदि फ्रेमोण्ट उसके आदेशों का उल्लंघन नहीं करता तो साहसी जेक्सन को वह कुचल सकता था। फ्रेमोण्ट ने लिंकन को अपने किये की अच्छी सजा दी। उसे निर्णायक रूप से अपने पद से अलग कर दिया गया। जेक्सन ने मेक्डवेल को मैक्लीन की सेना से नहीं मिलने दिया और अपने प्रयत्नों में सफल होकर वह जून में सुरक्षित दक्षिण में पहुँच गया। मैक्लीन रिचमंड के निकट पहुँच रहा था। ली इस समय तक जेफर्सन डेविस के दफ्तर से मुक्ति पा गया था और उसने जोसेफ जान्स्टन की सेना की बागडोर सम्हाल ली थी। लिंकन को अभी बहुत-कुछ सीखना था। उसे यह भूल समझते देर नहीं लगी कि मैक्लीन की सेना के अतिरिक्त पूर्व में जितनी सेनाएं हैं उन्हें एक ही सेनापति की मातहती में रखना था। एक अनुभवी सैनिक पोप ने पश्चिम में अच्छी सफलताएं प्राप्त की थीं और उसके विरुद्ध किसी तरह का गंभीर दोषारोपण भी नहीं था। सभी दृष्टिकोणों से वह इसके लिए उपयुक्त व्यक्ति था। उसे इन सेनाओं की—जो अब सम्मिलित रूप से वरजीनिया क्षेत्र की सेना कहलाने लगी थीं —कमान सम्हालने को बुलाया गया। कुछ दिनों बाद ही स्काट की सलाह पर लिंकन ने हेलक को भी पश्चिम से बुला लिया। उसके पुराने पद पर ग्राण्ट को नियुक्त कर दिया गया और उसे सर्वोच्च सेनानायक बनाकर सैनिक मामले में सलाहकार के रूप में वाशिंगटन में रख लिया गया, पश्चिम में सारी प्रगति हेलक की देखरेख में हुई। वाशिंगटन को जो संवाद भेजे गये उनमें हेलक ने कोरिन्थ पर अपनी कार्यवाही को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया। इस युद्ध के पूर्व उसने कभी सक्रिय सैनिक का काम नहीं किया था परन्तु एक प्रख्यात सैनिक लेखक के रूप में उसने नाम कमा लिया। कुछ वर्षों में ही वह अंतरराष्ट्रीय कानून पर अधिकृत लेखक समझा जाने लगा। इस पद पर रह कर उसने अपनी अच्छी सूझबूझ व संकट काल में निर्णय करने की बुद्धि का परिचय नहीं दिया। बाद में किसी संकट के समय लिंकन ने अपनी खरी-खरी सुनाने की आदत के अनुसार उसे कह दिया कि यदि वह संदेहजनक और संकट के समय निश्चित निर्णय नहीं ले सकता है तो उसका सैनिक ज्ञान निरर्थक है। परन्तु चाहे हेलक में अधिक सूझबूझ थी अथवा नहीं, लिंकन ने उसे पक्षपात रहित और निरर्थक विरोध न करनेवाला मान कर सेना के लिए उपयोगी समझा और उसकी सेवाएं जारी रखीं।

मैक्लीन धीरे-धीरे परन्तु दृढ़ता के साथ रिचमण्ड के निकट पहुँच रहा

था। २६ जून से दो जुलाई तक ली और मैक्लीन की सेनाओं के बीच कई मुठभेड़ें हुईं। ये मुठभेड़ें 'सप्त दिवसीय संग्राम' कहलायीं। बार-बार बाजी एक दूसरे के हाथों में आती-जाती रही। परन्तु सार यह है कि मैक्लीन ने कड़े संघर्ष के बाद एक महत्त्वपूर्ण स्थान को प्राप्त किया परन्तु वह स्थान जेक्सन की सेना के दाहिने बाजू पर पहुँच जाने के फलस्वरूप निरर्थक सिद्ध हुआ और वह स्वयं भी मानने लगा कि उसके लिए गंभीर संकट पैदा हो गया था।

कहा जाता है कि ली को मैक्लीन की एक-एक गतिविधि अच्छी तरह मालूम थी। वह उसकी अधिक सतर्कता पालने की नीति से लाभ उठाता था। मैक्लीन अधिक सावधानी के कारण यह सोचता रहता था कि युद्ध में यदि हारना भी पड़े तो किस तरह सेना को सही-सलामत पीछे हटाया जा सके। इसके फलस्वरूप विजयी होने पर भी वह आगे नहीं बढ़ सकता था। परन्तु ली ने एक बात में धोखा खाया। उसको यह विश्वास था कि मैक्लीन वापस लौटेगा और संकट में पड़ कर प्रायद्वीप के दक्षिण में अपने अभियान के प्रारंभिक स्थल पर पहुँचेगा और इसीलिए उसने अपना मार्ग बदल दिया। परन्तु मैक्लीन ने एक चाल चली। उसने अपना फौजी अड्डा नौ सेना द्वारा खाली कर दिया और सारी फौज जुलाई २ को बड़ी कुशलता से पीछे हटाकर जेम्स नदी के मुहाने से काफी ऊपर हैरीसन में ले गया। यहाँ उसकी सेना सुरक्षित रही। वे फिर रिचमण्ड पर धावा बोल सकती थीं। मैक्लीन के सिपाही अब भी उस पर विश्वास करते थे। परन्तु दक्षिणी सेनाओं को अब महान सेनानायक मिल गया था और उसे प्रशासन का पूरा-पूरा सहयोग भी प्राप्त था। इससे वाशिंगटन और उत्तर में कुछ भय और निराशा पैदा हो गयी। मैक्लीन 'सप्तदिवसीय संग्राम' के तीसरे दिन ही अपने मृत और घायल सैनिकों को देखकर दुख से कातर हो उठा और उसने युद्ध-सचिवों को एक निराशापूर्ण तार भेजा जिसमें और अधिक सेना भेजने पर अनावश्यक रूप से जोर डाला गया था। उसने लिखा—"मैं राष्ट्रपति से यही कहना चाहता हूँ कि पहले जो मैंने यह कहा था कि मेरी सेना कमजोर है, उसके लिए राष्ट्रपति द्वारा मुझे गलत समझा जाना उचित नहीं। यदि मैं अपनी सेना को बचा सकूँ तो इसमें आपकी या वाशिंगटन में किसी की भी मेहरबानी नहीं होगी। आपने अपनी पूरी कोशिश कर ली कि मेरी सेना नष्ट हो जाय"। स्टाण्टन अब भी यह प्रबल आशा व्यक्त कर रहा था कि रिचमण्ड पर एक दो दिन में ही कब्जा हो जायेगा। उसने हाल ही में सैनिक भर्ती का काम बन्द कर

दिया था। उसका यह कार्य लिंकन के प्रशासन की भयंकर भूलों में गिना जाना चाहिए। अब वह नीतिचतुर सेवार्ड द्वारा गवर्नरों से बातचीत कर रहा था कि मैक्लीन की सफलताओं का लाभ उठाने के लिए तीन लाख सेना एकत्र करने में मदद करें। लिंकन को अपने स्वभावानुसार यह चिन्ता थी कि इससे भी अधिक बुरी स्थिति हो सकती है। एक बार तो उसे लगा कि कहीं मैक्लीन पागल ही न हो गया हो, परन्तु उसने स्वयं उसे तार भेजा। यह उसकी स्वाभाविक विलक्षणता का अच्छा उदाहरण है। "हर प्रकार अपनी सेनाओं की रक्षा करो। हम कुमुक यथा शीघ्र भेजेंगे। परन्तु वह आजकल या परसों नहीं पहुँच सकती; मैंने आपको अधिक सैनिक माँगने के कारण अनुचित नहीं समझा। मेरे विचार से आपका यह सोचना ही अनुचित था कि मैंने यथा शीघ्र कुमुक नहीं भेजी। आपकी या आपकी सेना की असफलता मुझे भी उतनी ही चुभती है जितनी आपको। यदि आपको विजय न मिली या पीछे हटना पड़ा तो यह हमने इस बात का मूल्य चुकाया है कि शत्रु वाशिंगटन में नहीं आ सका। हमने वाशिंगटन की रक्षा कर ली और शत्रु ने सारी शक्ति आप पर केन्द्रित की। यदि हम वाशिंगटन को सूना छोड़ देते तो सेनाएँ आपके पास पहुँचतीं उसके पहिले ही शत्रु यहाँ घुस आता। एक सप्ताह भी नहीं हुआ कि आपने हमें सूचना दी कि रिचमण्ड से शत्रु-सेना वाशिंगटन आ रही है। यह परिस्थिति ही ऐसी थी। इसमें दोष न आपका है न सरकार का। कृपया तुरन्त वहाँ की मौजूदा हालत और परिस्थिति से सूचित कीजिए।"

सैनिकों की माँग इतनी बढ़ गयी कि उसकी पूर्ति असम्भव थी। लिंकन ने कुछ दिन बाद में मैक्लीन को समझाया कि यह माँग पूरी करना असम्भव है और कहा, "आप जो उत्तरदायित्व की बात करते रहते हैं, यदि उसमें आपका यह ख्याल हो कि मैं आपको अपनी शक्ति से बाहर काम न करने का दोष देता हूँ तो उस ख्याल को निकाल दीजिये। मैं इतना ही अनुरोध करता हूँ कि इसी प्रकार आप भी मुझसे असम्भव पूर्ति की आशा न करें।" लिंकन के अगले महत्वपूर्ण कार्य सम्बन्धी चर्चा को यहाँ छोड़ा जा सकता है यदि हम समझ लें कि वाशिंगटन की सुरक्षा की समस्या वास्तविक थी। मैक्लीन असम्भव माँगें करता रहता था। इस पर भी लिंकन ने धैर्य रखा और ऐसी परिस्थिति में भी उसे बर्दाश्त करता रहा।

हैरीसन में उतरने के पाँच दिन बाद ही मैक्लीन ने लिंकन को एक लम्बा पत्र लिखा। लिंकन के राजनीतिक कर्तव्यों पर वह एक निबन्ध जैसा था। यह

मानों भीषण सर्वनाश के संकट की उपस्थिति में लिखा गया था। उस समय उसे कोई वास्तविक खतरा नहीं था और सम्भवतः उसने सात दिन पहले ही अपने राजनीतिक सिद्धान्तों के रूप में इसे लिख लिया था। वह व्यक्तिगत संकट से ग्रस्त नहीं था, किन्तु अन्य भय जो उसने इस पत्र में दर्शाये वे मानों इसकी अनुपयुक्तता को ढंकने के प्रयत्न के समान थे। पत्र में लिखा गया—"राष्ट्रपति का सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वह उद्देश्य को न छोड़ बैठें। परन्तु उद्देश्य के लिए युद्ध ईसाईयत के सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिए। ईसाईयत के सिद्धान्त के अनुसार निजी सम्पत्ति के लिए युद्ध नहीं होना चाहिए। विशेषतः दासों की मुक्ति तो उनमें आती ही नहीं है। यदि राष्ट्रपति उन्हें मुक्त करने के उग्र विचारों को मान लेंगे, तो उन्हें सैनिक नहीं मिलेंगे।" इसके बाद पत्र में राष्ट्रपति को 'आज्ञा' दी गयी कि वह एक मुख्य सेनापति नियुक्त कर दे। यह जरूरी नहीं है कि वह सेनापति इस पत्र का लेखक ही हो। इस पत्र को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने में मूलपत्र की भावना सही झलक नहीं पायी है। परन्तु यह भावना ही एक तनाव की सूचक थी। मैक्लीन ने, उसका दृष्टिकोण कुछ भी रहा हो, वाशिंगटन छोड़ने के पहिले कभी राजनीति में दखल नहीं दिया था। इस प्रश्न पर कि इस सैनिक संकट के समय उसके द्वारा एक ऐसा पत्र लिखा गया, मानों कोई डेमोक्रेटिक राजनीतिज्ञ घोषणापत्र लिख रहा हो। लिंकन को बाद में अवश्य इसके लिए कुछ सोचना पड़ा होगा। परन्तु तुरन्त ही उसने जो तात्कालिक निश्चय किया उसमें इसका प्रभाव नहीं झलकता है। वह दूसरे दिन स्वयं हैरीसन डेक पर आ पहुँचा। मैक्लीन ने उसे पत्र दिया। लिंकन ने उसे पढ़ा और कहा—"मैं आपका आभारी हूँ।" मैक्लीन ने पत्र की एक नकल अपनी पत्नी को भेज दी कि यह "बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज है"।

लिंकन इसलिए आया था कि वह मैक्लीन और उसके सभी टुकड़ी नायकों के विचार मालूम कर सके। महत्वपूर्ण विषयों पर उनके मतों में यद्यपि काफी मतभेद था, परन्तु यह सत्य है कि अधिकांश सैनिक स्वभावतः ही कुछ ठहर कर लड़ना चाहते थे। लिंकन को यह चिन्ता बनी रही कि यदि सेना को बहुत लम्बे समय तक ठहरना पड़ा तो आगे के महीनों में उनका स्वास्थ्य कैसे बना रहेगा। उसको इससे भी चिन्ता हुई कि मैक्लीन अपनी फौज की संख्या स्पष्ट क्यों नहीं बता रहा था। उसने मोर्चे पर इतने अधिक सैनिक वहाँ दिखाये, जो उसके द्वारा भेजे गये तारों में बतायी गयी संख्या से भी बहुत अधिक थे।

फिर भी जितने सैनिक उसके पास भेजे गये वे इतने कम थे कि मृत, घायल और बीमारों की कुल मिलाकर संख्या भी इस कमी को पूरा नहीं कर सकती थी। इससे लिंकन को मुख्य प्रश्न पर ही सन्देह उत्पन्न हो गया। मैक्लीन का विश्वास था कि वह रिचमण्ड पर कब्जा कर सकता था, परन्तु इसके लिए उसने बहुत ही बड़ी सेना माँगी। कुछ सेना तो इकट्ठी की ही जा रही थी, परन्तु इससे अधिक इसलिए नहीं भेजी जा सकती थी कि वाशिंगटन की रक्षा के लिए अब तक मैक्लीन अथवा अन्य किसी ने उससे कम सेना से काम चल जायेगा, ऐसा नहीं सुझाया था।

२४ जुलाई को, उसके वाशिंगटन आने के एक दिन बाद, हैलेक को मैक्लीन और उसके सेनापतियों से बातचीत करने भेजा गया। उनकी बातचीत से यह काफी स्पष्ट था कि समस्या बहुत उलझी हुई थी। अगस्त में सेना के स्वास्थ्य के प्रश्न ने हैलेक को भी चिन्तित कर दिया, परन्तु उनकी बातचीत में अधिक चुभने वाली बात यह थी कि हर महत्व की बात पर मैक्लीन की राय अनिश्चित थी, एक बार तो उसने यह भी प्रकट किया कि वह वापिस हट जाय और पोप से जा मिले। जब हैलेक वाशिंगटन लौट आया तो मैक्लीन ने बड़ी चिन्ता के स्वर में तार भेजा कि उसे प्रायद्वीप में रहने दिया जाय और सहायता भेजी जाय। इसके विरुद्ध कई उच्चाधिकारियों ने पीछे हट जाने पर जोर दिया। लिंकन और हैलेक ने पीछे हटने की बात मान ली। उस परिस्थिति में यही एकमात्र हल था कि शत्रु पर सारी प्राप्य शक्ति लगा कर वाशिंगटन की ओर से हमला किया जाय। इससे वाशिंगटन की भी रक्षा होती रहे। किसी भी तरह इसे जल्दबाजी या नासमझी का निर्णय नहीं कहा जा सकता। न इस बहुप्रचारित बात के लिए ही आधार है कि किसी दुष्प्रभाव के कारण ही ऐसा किया गया। यह लिंकन के उन कार्यों में से था जिनके सम्बन्ध में बहुधा दुख प्रकट किया गया है। परन्तु यदि मैक्लीन की माँग पूरी कर दी जाती और वह रिचमण्ड ले भी लेता, तो ली क्या करता? ली का अपना उत्तर था कि वह बदले में वाशिंगटन पर कब्जा कर लेता। यदि ऐसा हो जाता तो दक्षिण नहीं हारता, बल्कि उत्तर घुटने टेक देता और यूरोप की सरकारें कम-से-कम दक्षिणी संघ राज्य को मान्यता दे ही देतीं।

लिंकन ने सैनिक मामलों में समझदार मंत्री की ही तरह कार्य किया। परन्तु हार पर हार हुई, जिनकी कहानी इस असमंजसपूर्ण काल के बाद कही जायेगी। प्रशासन ने मैक्लीन की सलाह नहीं मानी; फलस्वरूप हार हुई ऐसा कहा जाता

है। परन्तु युद्ध के दृष्टिकोण से देखा जाय तो उत्तर ने इस नीति के निर्णय से विजयश्री की ओर अभियान कर दिया था। मैक्लीन यदि रिचमण्ड को ले भी लेता और वाशिंगटन को सुरक्षित किया जाता, तो भी उत्तर की शक्ति को ऐसे रास्ते पर मोड़ देता कि दक्षिण को हराना कठिन हो जाता। आज यह स्पष्ट है कि उत्तर के लिए ठीक मार्ग यही था कि रिचमण्ड पर दबाव रखा जाता। दक्षिणी सेनाओं पर इस क्षेत्र में कड़ी चोटें पड़तीं और पश्चिम से दक्षिण को पृथक करने का अभियान जारी रहता। यह स्पष्ट है कि लिंकन के दिमाग में यह बात पहिले ही से थी। उसे त्यागने का लोभ अब हमेशा के लिए छोड़ दिया गया। बाद में भी दक्षिण की तीन बड़ी विजयों का बुलरन का दूसरा युद्ध, फ्रेडिक्सबर्ग और चांसलर विले पर जो अगले नौ महीनों में पायी गयीं, इस दिशा में कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। जफरसन डेविस के लिए यह अच्छा होता कि वह सब छोड़ कर अपनी सारी शक्ति इन तीन सफलताओं का उपयोग करने में लगा देता। उसने ऐसा नहीं किया। शायद यह सम्भव नहीं था। परन्तु उसने अपनी सबसे बड़ी शक्ति, अर्थात् सेनापति को, ऐसे स्थल पर उलझा दिया जहाँ वास्तविक खतरा नहीं था।

पोप ने अब अपनी उत्तर वरजीनिया में फैली हुई सेनाओं को एकत्र करना आरम्भ कर दिया था। उसने एक ऐसा आज्ञापत्र निकालने की गलती की, जिसकी गर्वपूर्ण दुस्साहिकता ने लोगों को चौंका दिया। उसने पूर्वी सैनिकों की पश्चिमी सैनिकों से तुलना करके बेइज्जती की और वरजीनिया की जनता के प्रति कड़े और अन्यायपूर्ण व्यवहार की धमकी दी। परन्तु कुछ भी हो, उसने अपना विश्वास कायम रखा, क्योंकि वह एक कुशल और कार्यशील सैनिक था। अब केवल यह समस्या शेष रह गयी कि पोप और मैक्लीन की सेनाओं को भारी संख्या में एकत्र किया जाय। पोप को यह चिन्ता थी कि जब मैक्लीन अपनी सेना का नावों द्वारा अभियान करे, तो वह आक्रमण से सुरक्षित रहे। इस लिए वह शत्रु को अटकाये रखने के लिये सीधा वरजीनिया में तेजी से बढ़ गया। वह बहुत अधिक आगे बढ़ गया था और जैक्सन की तीव्र सैनिक चालों में उलझ गया। फिर भी उसने सफलता के साथ शीघ्र ही अपनी सेना को घेरे से निकाल लिया। इसमें उसे सैनिक हानि भी बहुत हुई। मैक्लीन से सैनिक अधिकार छीना नहीं गया था; वह सेना को पोप के हवाले करने की अजीब और अपमानजनक स्थिति में रहा, यहाँ तक कि कुछ समय तो एक आदमी भी उसके हाथ में नहीं रहा, परन्तु सैनिकों को जहाज पर चढ़ाने और भेजने के काम में शक्ति

और कौशल के लिए उसे काफी मौक़ा मिल गया। लिंकन के अनुसार मैक्लीन ने यह कार्य बहुत ही धीरे-धीरे किया। यह निर्णय उसने जल्दबाजी में नहीं लिया, क्योंकि मैक्लीन ने हैलेक की आज्ञाओं को बार-बार ठुकरा कर देर की। वह दिन नजदीक आ गया जब ली के पचपन हजार के मुकाबले में पोप के साथ एक लाख पचास हजार सैनिक खड़े किये जा सकते थे। इस समय ली ने जैक्सन के साथ मशवरा करके जो चोट की, वह युद्ध के इतिहास में सर्वाधिक साहसपूर्ण कही जायेगी। उसने अपनी सेना को इस तरह शत्रु की आँख के सामने ही विभाजित किया और जैक्सन को टेढ़े-मेढ़े रास्ते से पोप और वाशिंगटन का मार्ग काटने भेज दिया। तब एक पेचीदी चालों का खेल शुरू हुआ जिसमें एक पक्ष दूसरे पक्ष की गतिविधि पर अटकलें लगाता रहा। पोप झुँझला गया और अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। वह शत्रु पर टूट पड़ा, जब कि वह पीछे हट कर सुरक्षा के साथ रुका रह सकता था और उसे ऐसा करना भी चाहिए था। २९ और ३० अगस्त को बुलरन और मानसास के पड़ोस में उसने करारी हार खायी। उसने समय से पहिले ही आशा छोड़ दी और यह कह कर कि मेरे सैनिकों का साहस भंग हो गया है, उसने वाशिंगटन बुलाये जाने की प्रार्थना की। वहाँ वह ३ सितम्बर को पहुँचा और जैसा कि उसकी सेना की स्थिति को देखते हुए आवश्यक था, उसका पद छीन लिया गया। लिंकन की राय में अब मैक्लीन इतने अपराध कर चुका था कि उसके जैसे उदारहृदय व्यक्ति में भी क्षमा की भावना उत्पन्न नहीं हो सकी। अपने सैनिकों को पोप के पास पहुँचाने के लिए मैक्लीन हिला तक नहीं। लिंकन का विश्वास था कि वह पोप की हार चाहता था। वह वाशिंगटन उस समय पहुँचा जब पोप बहुत कठिनाई में फँसा था और वहाँ उसने लिंकन से यह भी कहा कि पोप को अपनी मुश्किलों में से अपने-आप निकलने के लिए छोड़ दिया जाय। शायद उसके कहने का ढंग ही ग़लत रहा हो, लेकिन इससे लिंकन की राय बदली नहीं।

वाशिंगटन में अब इतनी शक्ति एकत्रित थी कि उस पर हमला नहीं हो सकता था। ली ने मेरीलैण्ड पर हमला बोलना निश्चय किया। कम से कम इससे फसल के समय वरजीनिया सुरक्षित रहता और इससे मेरीलैण्ड में अनेक सिपाही भी भर्ती किये जा सकते थे। इससे उत्तर में भय भी फैलता क्योंकि दक्षिणी फौजें उसी समय और पश्चिम में केण्टकी पर हमला कर रही थीं। इससे वहाँ कितनी सफलता मिलती, यह कहना मुश्किल था। लार्ड जान रसल की जीवनी

पढ़ने से यह समझ में आता है कि इतनी सफलता तो दक्षिणी सेनाओं की उत्तरी भूमि पर कोई भी अच्छी विजय प्राप्त कर लेती और दक्षिण को जफरसन डेविस की इच्छानुसार, यूरोपीय सरकारें मान्यता दे देतीं। लिंकन ने अब मंत्री मंडल और प्रशासन की परवाह न करते हुए और अपने पद की व्यर्थ अभिमान की भी चिन्ता छोड़ कर, कदम उठाया। उसने मैक्लीन को वाशिंगटन की सभी सेनाओं का सेनाध्यक्ष बनाने की मौखिक आज्ञा दी। मैक्लीन के सम्बन्ध में उसका मत अभी बदला नहीं था। परन्तु जैसा कि उसने अपने निजी सहायकों से कहा कि मैक्लीन स्वयं नहीं लड़ सकता परन्तु दूसरों को युद्ध के लिए तैयार करने में वह बेमिसाल है, सेना में आत्मविश्वास की भावना और नियमितता इतनी जल्दी अन्य किसी कार्यवाही से न आती। मैक्लीन को कुछ भी आदेश नहीं दिये गये। उसको पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी और आतुरता के साथ यह प्रतीक्षा की गयी कि वह उस अवसर के अनुकूल ही अपनी योग्यता प्रमाणित करेगा।

ली को आशा थी कि जब वह आगे बढ़ेगा तो उसके शत्रु की गति धीमी होगी। वास्तव में उसने अपनी छोटी-सी सेना को पुनः विभाजित किया और जैक्सन को एक छोटी सी टुकड़ी के साथ हार्पर्स फैरी पर एक उत्तरी किले को लेने पीछे छोड़ दिया। जेक्सन सफल भी हुआ। एक उत्तरी सैनिक को किसी दक्षिणी अफ़सर द्वारा गिरायी हुई सिगार की पेटी के साथ एक कागज मिला, जो ली द्वारा दिये गये किसी आदेश की नकल थी। इससे मैक्लीन को यह पता लग गया कि ली को पूरी तरह कुचलने का यह बढ़िया मौका है। फिर भी वह बैठा ही रहा। घुड़सवार फौज की कमी से उसे कुछ दिक्कत हुई। युद्ध के मैदान में उसका सब से बड़ा गुण यही था कि वह शत्रु को किसी प्रकार का अवसर न देने की सावधानी बरतता था। मैक्लीन की इस सुस्ती का फायदा उठा कर ली ने अपनी गलती ठीक कर ली और वह हार्पर्स फैरी की ओर हट गया। फिर भी ली बिना अपनी सेनाओं को फिर से एकत्रित किये एक ऐसे स्थल पर रुक गया जहाँ मैक्लीन को उससे लड़ने का मोह होता और जहाँ यदि ली मैक्लीन के सामने डटा रहता, तो जेक्सन उस पर विनाशकारी चोट कर सकता था। ली यह जानता था कि दक्षिण के लिए किसी भी मूल्य पर शीघ्र सफलता की आवश्यकता थी। मैक्लीन फिर भी इतनी धीमी गति से चला कि युद्ध के पहिले ही जैक्सन को ली से जा मिलने का अवसर मिल गया। उनसे मुठभेड़ के लिए उत्तरी सेना वाशिंगटन से ६० मील

उत्तरपूर्व में पोटोमेक नदी की एण्टीटम सहायक के संगम पर पहुँची। १७ सितम्बर १८६२ को मैक्लीन ने हमले की आज्ञा दी, पर सेना का स्वयं संचालन नहीं किया। उसके टुकड़ी नायकों ने ऐसे बिखरे तौर पर अलग-अलग समय में ली पर हमला किया कि उसने हर एक को हरा दिया। परन्तु अगले दिन सबेरे ली ऐसी स्थिति में फँस गया कि उसे पीछे हटना पड़ा।

सैनिक सफलता मिलने पर मैक्लीन को एण्टीटम के आगे भी युद्ध करना आवश्यक था। मैक्लीन के पास कुमुक भी आ पहुँची थी। लिंकन ने तार दिया—"उसे (ली को) कृपया बिना चोट पहुँचाये मत निकलने दीजिये।" ली चौड़ी पोटोमक नदी और अपने से दुगुनी उत्तरी सेना के बीच में पड़ गया था। पास ही दूसरी भारी सेनाएं भी थीं। मैक्लीन के अफ़सरों ने अनुरोध भी किया कि हमला जारी रखना चाहिए और ली को नदी में खदेड़ देना चाहिए। परन्तु ली को नदी पार कर लेने दी गयी और मैक्लीन दो हफ्ते तक ऐण्टीटम युद्ध-क्षेत्र में ही पड़ा रहा। हो सकता है कि वह अपनी सेना और सामग्री की अवस्था से असंतुष्ट रहा हो; कुछ सिपाहियों को नये जूतों की भी आवश्यकता थी। लेकिन ली के बहुत से सिपाही तो नंगे पैर ही चल रहे थे। मैक्लीन शत्रु की शक्ति बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहता था। ली ने बिना किसी विशेष हानि के नदी पार कर ली। लिंकन उस समय अपने राजनीतिक जीवन के सब से महत्वपूर्ण कार्य में लगा था; फिर भी वह बड़ी आतुरता के साथ मैक्लीन के कार्यों की ओर देख रहा था। वह स्वयं एण्टीटम युद्ध की स्थिति का निरीक्षण करने आया और इस विश्वास के साथ लौटा कि मैक्लीन तुरन्त आगे बढ़ेगा, परन्तु जब देखा उसके इरादे बदल गये हैं, तो लिंकन और हैलेक ने तार देकर आगे बढ़ने के लिए जोर डाला। उसका विश्वास था कि यदि कोशिश करे तो मैक्लीन ली को रिचमण्ड से दूर रख सकता है। मैक्लीन के घोड़ों की थकान की बात सुनकर उसने अक्तूबर के मध्य में कड़े शब्दों में तार दिया, "जरा यह तो कृपया बतलाइये कि एण्टीटम के बाद आपके घोड़ों ने थकान का कौनसा काम किया है।" मैक्लीन को चाहिए था कि वह जब वाशिंगटन में व्यवस्था कर रहा था तभी घोड़ों की स्थिति ठीक कर लेता। परन्तु इस समय दक्षिणी घुड़सवार सेना उसकी सेना के चारों ओर चक्कर काट गयी और फिर सुरक्षित भी वापिस चली गयी और उसकी शिथिल घुड़सेना उनका बेकार पीछा करके सम्भवतः थक चुकी थी। उसी दिन लिंकन ने अधिक सहृदयतापूर्वक लिखा, "प्रिय महाशय! आपको याद

होगा, मैंने आपके दीर्घसूत्रीपन का जिक्र किया था। क्या यह जरूरत से ज्यादा सावधानी नहीं है जब आप मान लेते हैं कि आप इतना भी करने में असमर्थ हैं जितना कि शत्रु लगातार कर रहा है ? थोड़ी देर के लिये शत्रु के स्थान पर आप अपने को मान लें। तो क्या आपकी समझ में नहीं आता कि वह रिचमण्ड से आपका सम्बन्ध २४ घंटे में काट देगा?" स्थिति की संक्षिप्त विवेचना करके वह अन्त में कहता है, "कोशिश करिये, अगर हम कभी प्रयत्न नहीं करेंगे तो सफलता भी नहीं पायेंगे। यदि हम शत्रु को इस हालत में भी नहीं हरा सकते, जब वह क्षति उठाकर भी इतनी दूर धावा करता है, तो हम उस हालत में तो नहीं ही हरा सकेंगे जब हमें उस तक पहुँचने का कष्ट उठाना पड़ेगा।" उसके धैर्य का अन्त आ गया था और वह पूर्व निश्चित निर्णय को लागू करने वाला था। २८ अक्तूबर को मुठभेड़ के पाँच सप्ताह से भी कुछ अधिक दिनों बाद मेक्लीन ने पोटोमक क्षेत्र को पार करना आरम्भ किया और इसी में एक सप्ताह लगा दिया। ५ नवम्बर को उसे उसके पद से अलग कर दिया गया और जनरल बर्नसाइड को उसका स्थान दे दिया गया।

लिंकन की यह तीव्र इच्छा थी कि पूर्ण विजय हो और उसे विश्वास था कि मेक्लीन यह काम कर सकता है। उसने उदासीनता से कहा कि इससे अच्छा और कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा। उसको यह बात बहुत चुभ रही थी कि लोग हमेशा की तरह यही दोष लगायेंगे कि मेक्लीन को डेमोक्रेट होने के कारण हटाया गया। उसने निजी तौर पर लिखा, "लोग यह जानते हैं कि सैनिक विशेषताओं पर विचार करते समय मैं राजनीति को बीच में नहीं लाता।" मेक्लीन को हटाने के लगभग एक सप्ताह बाद उसके एक मित्र ने जो रिपब्लिकी जनरल था, लिखा कि सभी सेनापतियों की शासन के साथ पूर्ण सहानुभूति होनी चाहिए। उसको मुँह-तोड़ उत्तर मिला कि युद्धक्षेत्र में रिपब्लिकों की ही तरह डेमोक्रेट भी सेवा करते हैं। परन्तु मेक्लीन के सम्बन्ध में अब लिंकन के दिमाग में गहरा सन्देह पैदा हो गया था। सम्भव है कि वह अधिक उपयुक्त व्यक्ति न पाने के कारण मेक्लीन के विलम्ब को सह लेता था। वह उस बात की चिन्ता नहीं करता था कि नागरिक जीवन में कोई अफसर किस राजनीति को अपनाता है। परन्तु वह युद्ध को ऐसे सेनापति के हाथ में नहीं सौंपना चाहता था जो अपनी राजनीति के आधार पर सैनिक गतिविधि निश्चित करे। अंत में उसने सीधे ही कह दिया कि जो शत्रु को नुकसान पहुँचाना ही नहीं चाहे उसकी क्या आवश्यकता है? उसको यह विश्वास हो चला था कि मेक्लीन में

कार्यशक्ति की कमी का यही कारण था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि मेक्लीन की यही कसौटी है कि वह ली को दक्षिण की ओर बच निकलने से रोक सकता है कि नहीं। इससे उसके सन्देह की पुष्टि हो जायेगी। ली साफ निकल गया और लिंकन ने मेक्लीन को इस विश्वास से हटाया, चाहे वह सही हो या गलत, कि उसे ली के बच निकलने का जरा भी दुख नहीं था। लिंकन के पास उस समय अन्य प्रमाण इस दिशा में नहीं थे। परन्तु बाद में जो प्रमाण मिले उससे उसका विश्वास और भी पक्का हो गया। वरमोण्ट के गवर्नर ने यह कहानी लिंकन से कही। उसका भाई जनरल स्मिथ मेक्लीन की अधीनता में काम करता था और काफी समय तक उसका गहरा मित्र रहा। लिंकन ने इस कहानी पर विश्वास किया और हम भी कर सकते हैं। न्यूयार्क का नगराधीश फर्नेडो वुड जो राजनीतिक अवसरपरस्त था, प्रायद्वीप में मेक्लीन के पास प्रस्ताव लेकर आया कि तुम राष्ट्रपति-पद के लिए डेमोक्रेट उम्मीदवार हो जाओ। इसके लिए तुमको कुछ डेमोक्रेट राजनीतिज्ञों के प्रति प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम युद्ध का संचालन इस ढंग से करोगे कि दक्षिण से समझौता हो जाय। लिंकन की दृष्टि में यह सांठगांठ 'अक्षम्य' थी। कुछ दिन की चुप्पी के बाद मेक्लीन ने स्मिथ को यह बात बतायी और अपना लिखा हुआ प्रतिज्ञा-पत्र भी दिखाया। स्मिथ ने जब समझाया कि यह तो देशद्रोह है, तो उसने वह पत्र उस समय नहीं भेजा। परन्तु एण्टीटम के युद्ध से बाद जब 'वुड' फिर आया तो इस बार मेक्लीन ने उसी आशय का पत्र दे दिया। बाद में उसने स्मिथ के समक्ष यह स्वीकार किया और पत्र की नकल भी दिखायी। स्मिथ तथा अन्य सेनापतियों ने उसकी आधीनता से उन्हें हटा लिये जाने की प्रार्थना भी प्रशासन से की। अगर उसने यह कार्यवाही की थी तो लिंकन का यह सोचना ठीक ही था कि उसे काम पर रखना खतरे से खाली नहीं था। अपने निजी पत्रों के अतिरिक्त सभी अन्य प्रमाणों के अनुसार मेक्लीन बहुत ही अच्छा व्यक्ति था और जिसे वह देशद्रोह समझता, ऐसा विचार भी उसके दिमाग में नहीं आ सकता था। यह उसके लिए सम्मान की बात है कि वह बाद में ग्राण्ट की अधीनता में काम करना चाहता था, परन्तु ग्राण्ट ने यह अस्वीकार कर दिया। उसके द्वारा दर्शाये गये अभिमत के अनुसार एण्टीटम के युद्ध के पूर्व और बाद में, राजनीतिक स्थिति बहुत खतरनाक थी और उसे अपनी ढुलमुल आदत के अनुसार यह नीति ही आसान लगी। वह शायद नहीं चाहता था कि ली निकल जाय, परन्तु उसका पक्का इरादा यह भी

नहीं था कि वह न निकल पाये। लिंकन ने इसी आधार पर समझबूझ कर अपना निश्चय किया। इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। बर्नसाइड की नियुक्ति एक भूल सिद्ध हुई। मेक्लीन की अधीनता में और भी टुकड़ी नायक थे जिन पर विशेष भरोसा हो गया था, परन्तु वे सभी वृद्ध हो चुके थे। बर्नसाइड जो उनमें सबसे पुराना था नौसेना के कार्यों में सफल हो चुका था। दक्षिण केरोलीना तट पर उसने दक्षिण के कुछ बन्दरगाह बिलकुल बन्द कर दिये थे। तब से वह मेक्लीन की अध्यक्षता में एण्टीटम में था, परन्तु कोई विशेष सम्मान नहीं पा सका। वह मेक्लीन का विश्वासपात्र था और उसके समक्ष अपनी योग्यता को महत्त्व नहीं देता था। शायद इन्हीं दोनों कारणों से लिंकन उसकी ओर झुका। लगभग युद्ध के अन्त तक वह युद्धक्षेत्र में रहा। एक हार के कारण इसे बाद में पेन्शन लेनी पड़ी। हमेशा वह लोकप्रिय और सम्मानित बना रहा। इस कठिन स्थिति में वह बुरी तरह असफल हुआ। ११ और १२ दिसम्बर १८६२ को ली की सेना रापानाक के दक्षिण में जम कर डटी रही। लिंकन द्वारा स्पष्ट चेतावनी दी जाने पर भी उसने ली की सेना पर फ्रेड्रिकबर्ग के पास, जहाँ वह वास्तव में दृढ़ता से जमी हुई थी, हमला कर दिया। उत्तरी सेना को यह हार महंगी पड़ी और भारी जन-क्षति उठानी पड़ी। बर्नसाइड की सेना लगभग विद्रोह ही कर बैठी। उसके टुकड़ी नायक, खास तौर पर जनरल हुकर उसके विरुद्ध शिकायत करने लगे। चारों ओर से विरोध की उसने परवाह नहीं की। लिंकन ने उसे रोकने की कोशिश की। हैलेक से जब बर्नसाइड के सम्बन्ध में राय पूछी गयी, तो उसने अपना त्यागपत्र सामने रख दिया। सभी अफसरों से विवाद और कहा-सुनी के बाद बर्नसाइड ने त्यागपत्र पेश किया। लिंकन इस अफसर की पहली असफलता पर हटाने या उसके मातहतों का पक्ष लेने को तैयार नहीं था और उसने त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया। बर्नसाइड ने तब एक असम्भव प्रस्ताव रखा कि सारे टुकड़ी नायकों को उस पर अविश्वास की सजा के रूप में निकाल दिया जाय। २५ जनवरी १८६३ को उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया।

उसके उत्तराधिकारी के लिए मंत्रीमंडल में काफी विवाद हुआ। पूर्वी सेना की कमान फिर से किसी पश्चिमी सेनापति को देना गलत था। चेस के कहने पर एक पुराना टुकड़ी-नायक जनरल हुकर जो अधिक वृद्ध भी नहीं था, और जिसे 'लड़ाका' हुकर कहते थे, नियुक्त कर दिया। उसको लिंकन से एक पत्र मिला। लिंकन अब वह व्यक्ति नहीं था जो साल भर पहिले मेक्लीन को

सम्हालने का उपयुक्त तरीका ढूँढ रहा था। अब वह अनुभवी हो चुका था। लोगों ने इसीलिए इस पत्र को उद्धृत भी बहुत किया है। लिंकन ने लिखा, "मैंने आपको पोटोमक की सेना का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया है। निश्चय ही मैंने उपयुक्त कारणों के आधार पर ऐसा किया है। फिर भी कुछ बातों में मैं आपसे पूर्णरूप से संतुष्ट नहीं हूँ। मैं मानता हूँ कि आप एक बहादुर और कुशल सिपाही हैं। इसे मैं निश्चय ही पसन्द करता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि आप अपने काम में राजनीति का दखल नहीं आने देते। यह आप ठीक करते हैं। आप में आत्मसम्मान है। यह बड़ा मूल्यवान गुण है, चाहे सैनिक के लिए यह अनिवार्य न हो। आप में महत्वाकांक्षा है, जो यदि सीमित रहे, तो हानि की अपेक्षा लाभ ही देती है। परन्तु मेरा खयाल है कि जनरल बर्नसाइड को आपने अपनी महत्वाकांक्षा के कारण भरसक नीचे गिराया। इसमें आपने देश के प्रति बड़ा बुरा किया और अत्यन्त प्रतिभाशाली साथी अफसर के प्रति भी बुरा किया। मैंने विश्वसनीय ढंग से सुना है कि आपने हाल ही में कहा है कि सेना और सरकार दोनों को एक तानाशाह की आवश्यकता है। मैंने आपको अध्यक्षपद आपकी इस भावना को ठीक समझ कर नहीं, बल्कि इस ओर से आँखें मूँद कर दिया है। केवल वही सेनापति तानाशाही स्थापित कर पाते हैं जो युद्ध में सफलता दिखाते हैं। मैं आप से फौजी सफलता ही चाहता हूँ और तानाशाही को भी सह लूँगा। सरकार आपको शक्ति भर मदद करेगी जैसी कि वह सभी जनरलों को करती रही है। मुझे भय है कि आपने सेनाध्यक्ष की आलोचना कर और उस पर विश्वास न रखने की भावना जो आपने सेना में भरी है, वह अब स्वयं आपके सामने आयेगी। सेना में इस तरह की भावना से आप ही क्या, नेपोलियन भी यदि जीवित होता, तो कुछ सफलता न पा सकता। अब आप जल्दबाजी मत कीजियेगा। जल्दबाजी से बचकर शक्ति और पूरी सजगता से आगे बढ़िये और विजय लेकर आइये।"

हुकर एक ऐसी ही मीठी झिड़की से खुश होकर कहने लगा, "लिंकन मुझसे पिता के समान बात करता है।" सौम्य व्यक्तित्व तथा सकुशल सेनापति के गुणों के साथ-साथ उसकी चमकीली नीली आँखें भी प्रत्येक को प्रभावित कर लेती थीं। वह अच्छा व्यवस्थापक था। सिपाही लगातार सेना से भागते जाते थे; यह उसने रोक लिया। उत्तर की घुड़सवार सेना को सुधारने की आवश्यकता उसे महसूस हुई। मेक्लीन ने सेना में जो आलस्य की भावना भर दी उससे

उसे बड़ा दुख होता था, हालांकि हर सैनिक जीवट का आदमी था। हुकर में मानसिक तनाव रहता था। थोड़ी-सी शराब पी लेने पर भी उस पर बहुत असर हो जाता था। युद्ध के समय उसने शराब पीना कतई छोड़ दिया था। उसे बहुत चतुर नहीं कहा जा सकता। ली से गहरी से गहरी मार खाकर भी उसे कभी यह महसूस नहीं हुआ कि ली एक कुशल सेनापति है।

अप्रैल के अन्त में उसने रापानोक और रापीडान नदियों को पार किया। ये नदियाँ दोनों सेनाओं के बीच थीं। मई १८६३ के प्रथम सप्ताह में सनसनीदार घटनाओं से भरा एक छोटा-सा युद्ध चांसलारविले में तीन दिनों तक लड़ा गया। इसमें हुकर को इतनी चोट लगी कि वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा और भारी क्षति उठाकर रापानोक के पार हट गया। दक्षिण को एक और आश्चर्यजनक विजय मिली; परन्तु स्टोनवाल जैक्सन ३९ वर्ष की आयु में ही इस दूसरे युद्ध में काम आ गया।

विदेशों में तो उत्तर की इस करारी हार से यह अनुमान लगाया जाने लगा कि विजय दक्षिण के ही हाथ लगेगी। लिंकन तथा उसके मंत्रियों के लिए तो यह बहुत ही निराशाजनक समय था। ली अब एक और जोरदार हमला करने वाला था। पश्चिम की सेनाओं की गतिविधि अधिक शिथिल थी। इसके कारण भी गहरी चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। परन्तु यकायक परिस्थिति बदल गयी। लिंकन की कठिनाइयाँ जिनकी ओर हमें इन युद्धों में अधिक ध्यान देना पड़ा, करीब-करीब खत्म होने वाली थी। अब हम उसके राष्ट्रपति-पद से सम्बन्धित राजनीतिक समस्याओं की ओर ध्यान देंगे। सात माह पूर्व एण्टिटम के भयानक युद्ध के फलस्वरूप ऐसे कई राजनीतिक निष्कर्ष निकले जो बाद में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।

दसवाँ अध्याय

दासता का अंत

जब इंगलैण्ड में बुलरन के दूसरे युद्ध का समाचार पहुँचा, तो लार्ड जान रसल को लगा कि उत्तर की हार निश्चित है। उसने पामर्स्टन और अपने साथियों से सलाह की कि शीघ्र ही दक्षिणी संघ राज्य को मान्यता दे देनी चाहिए या नहीं और क्या फिर जल्दी ही शान्ति और मानवता के लिए उन्हें बीच बचाव भी करना होगा। परन्तु दो ही महीने के अन्दर दक्षिण की शक्ति को मान्यता देने का यह स्वप्न ऐसी बुरी तरह नष्ट हुआ कि फ्रेड्रिक्सबर्ग और चान्सलरविले के युद्धों से भी यह बात फिर दिमाग में नहीं आयी। लुई नेपोलियन का सुझाव कि इस प्रकार के कार्य के लिए फ्रांस और इंगलैण्ड मिल जावँ, एकदम अस्वीकार कर दिया गया। इसी बीच में एण्टीटम का युद्ध हो चुका था। इससे यह सिद्ध हुआ कि दक्षिण भी उत्तर की ही भाँति जल्द और निश्चयात्मक विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा। अन्त में विजय उसी की होगी जो डटा रहेगा। इतना ही नहीं, एण्टीटम युद्ध के पाँच दिन बाद ही एक ऐसी घटना हुई जिससे इंगलैण्ड की सरकार चाहे वह किसी भी दल की होती उत्तर के विरुद्ध कोई कदम उठा ही नहीं सकती थी।

२२ सितम्बर, सन् १८६२ को अब्राहम लिंकन ने एक ऐसे घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये, जिसके मुख्य शब्द थे—"१८६३ ई० के प्रथम जनवरी के दिन वे सभी दास जो किसी भी राज्य में, अथवा ऐसे किसी राज्य के भाग में, जिसके लोग उस समय संयुक्त राष्ट्र के विद्रोही हों, इसी समय तथा इसके बाद में सदा के लिए स्वतंत्र रहेंगे।"

इस घोषणा का आशय और उसका वास्तविक प्रभाव कुछ विवेचना के बिना समझ में नहीं आ सकते, और जो व्यक्ति इस घोषणा के जन्मदाता के रूप में हमेशा याद किया जायेगा, उसके बारे में तो बहुत ही कम समझ में आ सकता है। पहिले हम इसके कानूनी पहलू को देख लें। साधारण समय में राष्ट्रपति तो क्या, काँग्रेस को भी एक दास को भी स्वतन्त्र करने की सत्ता

नहीं थी। सेनाओं का मुख्य सेनापति होने के नाते यह घोषणा एक युद्ध-कार्य के समान थी। इससे संयुक्त राष्ट्र के विरुद्ध विद्रोह करने वाले लोगों से घोड़ों और गाड़ियों की तरह दास छिन गये। यह सारी शक्ति विद्रोहियों के हाथों से छूटकर सरकार के साधनों में बढ़ गयी। एक विलक्षण भविष्यवक्ता की भाँति कुछ वर्ष पूर्व भूतपर्व राष्ट्रपति जान क्विन्सी आडम्स ने काँग्रेस के सामने कहा था कि यदि कभी विद्रोह हुआ तो ऐसा ही किया जायेगा। आडम्स का सम्भवतः यह तर्क था कि राष्ट्रपति की आज्ञा उन्हीं राज्यों में कानून होगी जिन्होंने विद्रोह किया है। लिंकन अपनी घोषणा को इस कारण कानूनी कहता था कि यह एक युद्ध-कार्य है, जो अत्यावश्यक है और उत्तरी फौजों को इससे प्रत्यक्ष ही मदद मिलेगी। यदि कानूनी प्रश्न की कभी जाँच की जाती तो अदालतें यही न्याय करती कि जिन दासों ने घोषणा के अनुसार वास्तव में स्वतन्त्रता पा ली, वे कानूनन स्वतन्त्र हैं। यह वास्तव में युद्ध-कार्य था और फौजी नतीजों ने इसे ठीक सिद्ध किया। दक्षिण के लिए आवश्यक उद्योगों में से बहुत भारी श्रम-शक्ति निकल गयी, और युद्ध का अन्त होते-होते एक लाख अस्सी हजार नीग्रो सैनिकों ने उत्तर के लिए हथियार उठा लिये। उनकी मुख्य सेवा यह थी कि उन्होंने विजित क्षेत्रों पर जहाँ गोरी फौजें नहीं रह सकती थीं, कब्जा कर लिया। उसके बिना लिंकन की राय में युद्ध कभी समाप्त ही नहीं होता। इस घोषणा का इससे भी अधिक महत्व का अप्रत्यक्ष प्रभाव हुआ कि उत्तर एक ऐसे मार्ग पर चल पड़ा जहाँ से वापिस नहीं मुड़ा जा सकता था, चाहे हथियार भले ही डाल दिये जाते। यह एक राजनीतिक निश्चय हो गया कि किसी भी तरह से हो, यदि उत्तर विजयी हुआ, तो दास-प्रथा का अन्त कर दिया जायेगा। परन्तु राष्ट्रपति की हैसियत से लिंकन का मत यह था कि उसका निश्चय दूरस्थ नतीजे के आधार पर नहीं होना चाहिए। यह महत्वपूर्ण कदम, जिससे दासता का अन्त इतनी शीघ्रता से हुआ, न उठाया जाता यदि विद्रोह को दबाने के लिए इसकी आवश्यकता उसके दिल में न उभर आती।

हम सभी ऐसे कार्यों को अधिक व्यापक रूप में ही देखना चाहते हैं और इसी प्रकार उत्तर के बहुत से लोग इस बात के लिए आतुर थे कि दक्षिण के दासों को स्वतंत्र करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। यह सोचा भी नहीं जा सकता कि युद्ध का अन्त हो जाय और दास-प्रथा जहाँ की तहाँ रह जाय। युद्ध को दास-प्रथा के विरुद्ध धर्मयुद्ध का रूप दे देने से, बहुतों का खयाल था कि सारा उत्तर एक सूत्र में बँध जायेगा और

जग उठेगा। अमरीका के विदेशस्थित राजदूतों ने भी इस तर्क का समर्थन किया। वे जानते थे कि यूरोप के लोग इस बात की वैधानिकता नहीं समझ पाते थे कि अमरीकी सरकार दक्षिणी राज्यों के घरेलू मामले पर हमला नहीं कर रही है। अंग्रेज जनता अमरीकी विधान को ही नहीं जानती थी, और जब उससे यह कहा जाता कि उत्तर दासता पर हमला नहीं करना चाहता, तो वह पूछती, "क्यों नहीं?" जो अंग्रेज उत्तर से घृणा करते थे और दासता को वास्तव में बुरा समझते और उसके प्रति शंका रखते थे, वे भी दासता के विरुद्ध जिहाद बोलने वालों की इज्जत करते थे। उनको इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं थी कि मातृभूमि से अलग होने वाले उपनिवेश एक दूसरे पर केवल किसी सैद्धान्तिक बात के लिए जुल्म करें। सेवार्ड ने एक बड़ी भूल की कि अपने विदेश स्थित राजदूतों द्वारा यह कहलवाया कि दासता पर हमला नहीं किया जा रहा है। उसको ऐसा लग रहा था कि यूरोप में रूई खरीदने वालों को अपने स्वार्थ समाप्त होते दिखायी देंगे। दक्षिण के दूत भी यही बात समझाने की कोशिश कर रहे थे कि उत्तर दासता के विरुद्ध नहीं है। अगर यह गलतफहमी मिटा दी जाती, तो अंग्रेज कभी भी बुरी तरह उत्तर के विरुद्ध न होते। सेवार्ड के बजाय लिंकन यह बात अच्छी तरह जानता था; फिर भी दासता के विरुद्ध निश्चित कदम उठाने की आवश्यकता को पूरी तरह ध्यान में रखते हुए भी वह युद्ध के सत्रह महीने तक चुप रहा, जब तक कि चोट करने का समुचित अवसर उसे न मिला।

इस तरह चुप रहने के कुछ कारण प्रत्यक्ष ही थे। वह उस समय तक सैनिक आवश्यकता के आधार पर चोट नहीं कर सकता था जब तक कि उसे पक्का विश्वास न हो जाता कि वास्तव में फौजी आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है। जब तक उसके कार्यों से दास बड़ी संख्या में स्वतंत्र नहीं होते, वह यह कदम नहीं उठाना चाहता था। मुख्य प्रश्न यह था कि यदि वह इस कदम को उठाता, तो क्या उत्तर उसका पूरा पूरा साथ देता? इस मामले में वह कांग्रेस के सदस्यों से अधिक समझता था। वे तो केवल अपने क्षेत्र के आधार पर राय कायम करते थे। उत्तर वालों में से बहुतों की कितनी सन्देहात्मक स्थिति थी। हम यह देख ही चुके हैं कि १८६१ की गर्मी में फ्रेमोण्ट के पक्ष के प्रगतिशील लोगों को उसे नाराज करना पड़ा था। वह एक वर्ष से भी अधिक समय तक एक ऐसे मार्ग पर चलता रहा जिससे उसके सबसे कट्टर समर्थक भी नाराज हो गये। उसने जानबूझ कर ऐसा किया, अन्यथा उत्तर की युद्ध के प्रति एकता खतरे में

पड़ सकती थी। यदि वह गणराज्य से हट कर दास-मुक्ति के उद्देश्य पर आ जाता, तो उत्तर वालों में फूट पड़ कर दो पक्ष हो जाने का वास्तविक खतरा था। हमें स्मरण रखना चाहिए कि उत्तर के सभी राज्यों ने यह मान लिया था कि दक्षिण के राज्यों का यह अधिकार है कि वे अपने यहाँ दासता के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय करें और अब तक उत्तर में भी चार राज्यों में दास-प्रथा जारी थी। परन्तु इस विलम्ब का यही एक मात्र कारण नहीं था। यदि लिंकन दासों को एक साथ मुक्त न करके धीरे-धीरे मुक्ति देने में सफल हो पाता, तो वह यह कदम नहीं उठाता। दिसम्बर १८६१ को अपने वार्षिक सन्देश में उसने कांग्रेस के सामने इस सम्बन्ध में अपनी नीति प्रकट की थी। उसने उत्तर के उन डेमोक्रेटों को जो दक्षिणी संस्थाओं में हस्तक्षेप के एकदम विरुद्ध थे, पहले ही यह चेतावनी दे दी कि सैनिक सफलता के लिए क्रान्तिकारी तथा कठोरतम कार्यवाही करनी पड़ सकती है और यदि अनिवार्य हुआ तो यह कार्यवाही करनी पड़ेगी। परन्तु उसने यह चिन्ता भी प्रकट कर दी कि दक्षिण के साथ युद्ध कहीं क्रान्तिकारी युद्ध का स्वरूप न ले ले, जिससे दक्षिण का सामाजिक गठन बिल्कुल ही उलट जाय। उसे गोरों के लिए ही भय नहीं था, वरन् नीग्रो लोगों के लिए भी था। बाद के एक पत्र में उसने कहा कि मुक्ति धीरे-धीरे हो, आकस्मिक नहीं। यही सब के लिए श्रेयस्कर है। परन्तु उन रिपब्लिकनों के साथ भी सहानुभूति न करना कठिन है, जो उसकी ढिलाई पर नाराज थे। उनको दुख और आश्चर्य था कि गम्भीर बातचीत में राष्ट्रपति नीग्रो समस्या की ओर हलका-सा इशारा भर करके छोड़ देते हैं; और इसलिए वे यह भी मान बैठे थे कि राष्ट्रपति उनके साथ नहीं है और उसके दिल में दास-प्रथा के विरुद्ध गहरी भावनाएँ नहीं हैं। वास्तव में उसकी भावनाएँ उनसे भिन्न थीं। निश्चय ही वह दासता से घृणा करता था। उसने दासों को कोई भी सुविधा देने का लगातार विरोध किया, क्योंकि सुविधा देने से दास-प्रथा नष्ट न होकर उस पर और पक्की मुहर लगती थी। उसकी घृणा उसे दास-स्वामियों के विरुद्ध उकसाती नहीं थी, क्योंकि उत्तर-दक्षिण, सारा देश ही इस अपराध में शामिल था। वह इस स्वाभाविक क्रोध को दुर्भावनापूर्ण मान सकता था। उसने लुईसियाना के एक नागरिक को लिखा, "मैं दुर्भावना से कुछ नहीं करूँगा। जो भी करने जा रहा हूँ, वह इतना महान कार्य है कि दुर्भावना रख कर हो ही नहीं सकता।" हम शीघ्र ही देखेंगे कि नीग्रो लोगों का यह प्रश्न इतना जटिल नहीं था। इस प्रश्न के साथ सहानुभूति भी थी और यह वास्तविक थी। उसकी दृष्टि में वे मनुष्य थे और

वह जानता था कि दास-कानून को हटा देने से ही उनकी प्रगति नहीं हो जायेगी। आज हम इन घटनाओं को ध्यान में रख कर सिंहावलोकन करें, तो हमें इससे प्रसन्नता ही होगी कि कुछ भी हो, दास मुक्त तो हुए। परन्तु यह भी कहना पड़ेगा कि इससे अधिक अच्छा ढंग दास-मुक्ति की दिशा में अपनाना सम्भव नहीं था। इस सम्बन्ध में अमरीकी लोग जितने आतुर थे, उन में लिंकन ही सम्भवतः ऐसा व्यक्ति था, जिसने इस दिशा में सही दृष्टिकोण अपनाया, जैसा कि आज भी हमारा यही दृष्टिकोण है।

१८६२ के प्रारम्भ में संयुक्त राष्ट्र सरकार ने ग्रेट ब्रिटेन की सरकार से अफ्रीकी दास-व्यापार को अधिक सख्ती के साथ दमन के लिए सन्धि की और उसी समय ऐसी घटना हो गयी कि अमरीकी कानून के अनुसार दासों का व्यापारी एक समुद्री गोरा डाकू न्यूयार्क में फाँसी पर चढ़ाया गया। इन महीनों में लिंकन निजी तौर पर यह प्रयत्न कर रहा था कि डिलावर की धारासभा में मुक्ति-कानून पास हो जाय। इससे उस राज्य में जो दास थे, उन्हें मुक्ति मिल जाती और उनके कल्याण का भी कुछ प्रबन्ध हो जाता। गणराज्य सरकार इस राज्य के दास-प्रमुखों को इस क्षतिपूर्ति के लिए अनुदान दे देती। उसने आशा की थी कि यह बात डिलावर में हो जाती तो मेरीलैण्ड भी इसे मान लेता और अन्य राज्य भी मान लेते। डिलावर की धारासभा का झुकाव तो इस योजना के पक्ष में था, पर सीनेट ने इसे रद्द कर दिया। अब लिंकन ने इस नीति के पक्ष में सार्वजनिक रूप से अपील की। मार्च १८६२ में उसने कांग्रेस को एक सन्देश भेजा, जो पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। इसमें उसने दोनों संसदीय सदनों से यह अनुरोध किया था कि क्रमिक मुक्ति जो राज्य स्वीकार कर लें, उन्हें संयुक्त राष्ट्र वित्तीय सहायता देने का विश्वास दिलायें। यह प्रत्यक्ष ही है कि यदि उत्तर के दास-राज्यों से इस बात को पहिले मनवा लिया जाता, तो दक्षिणी दास-राज्यों को विरोधी कार्य करने के लिए अधिक उपयुक्त अवसर होता और दक्षिण के उन राज्यों में, जिन्हें पहिले गणराज्य में लिया गया, लागू कर दिया जाता। सन्देश में जिस बात पर लिंकन ने जोर दिया, वह यह थी कि यदि सीमा-राज्यों ने पहले दास-प्रथा उठा दी, तो दक्षिण को यह आशा नहीं रह जायेगी कि ये राज्य कभी भी उनके साथ मिलेंगे। उसने एक पत्र-सम्पादक और अन्य व्यक्तियों को लिखे निजी पत्रों में इस बात पर जोर दिया था कि क्षतिपूर्ति देकर दास-प्रथा उठा देने का मूल्य इतना कम बैठेगा कि यह युद्ध-समाप्ति के लिए अधिक लाभजनक सिद्ध होगा। अपने प्रस्ताव

पर कांग्रेस में बहस होते समय और बाद में भी, सरहदी राज्यों के प्रतिनिधियों और सीनेट सदस्यों को निजी तौर पर बुला कर उसने अनुरोध किया कि वे शान्त रह कर व्यक्तिगत या दलीय बातों से ऊपर उठ कर व्यापक दृष्टिकोण से विचार करें कि इससे उनको कितना भारी लाभ होगा। दक्षिणी संघराज्य को यह आशा थी कि सीमास्थित राज्यों में उनके पक्ष में सहानुभूति उत्पन्न हो जायेगी। केण्टकी और मेरीलैण्ड में उसी आशा से उस वर्ष हमले भी किये गये। दक्षिणी संघराज्य इस मामले में दास-प्रभुओं के व्यक्तिगत स्वार्थों के बल पर प्रदेशों में आगे बढ़ना चाहता था। लिंकन ने कांग्रेस को कहा कि जिस आधार पर वे आगे बढ़ना चाहते हैं उसे ही नष्ट कर दिया जाय। कांग्रेस ने इतना साथ दिया कि राष्ट्रपति के प्रस्ताव को पास कर दिया। यहाँ तक कि उसने चौदह वर्ष पूर्व कोलंबिया जिले में दास-प्रथा उठा देने का लिंकन का जो प्रस्ताव था उसे पास कर दिया। दास-स्वामियों को क्षतिपूर्ति दी गयी। लायबेरिया में स्वतंत्र-दासों के पुनर्वास के लिए एक रकम अलग रख दी गयी और लिंकन के सुझाव पर नीग्रो बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध भी कर दिया गया। इस समय इतना ही किया जा सका।

इस मामले में लिंकन ने अपनी ही सूझ से काम लिया। वह अपने विचार जनता के सामने पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सका और न अपने मंत्रीमंडल में भी किसी को बता सका। मान लिया जाय कि सीमावर्ती राज्य उसकी बात मान लेते तो इससे दक्षिणी संघराज्य के इरादों पर गहरा प्रभाव पड़ता। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जब लिंकन ने पहिली बार सीमावर्ती राज्यों के प्रतिनिधियों से इसका जिक्र किया उस समय यह पूर्ण विश्वास था कि मेक्लीन वरजीनिया में विजय प्राप्त कर लेगा। परन्तु जब वह अन्त में इनसे मिला तब उसे निराशापूर्ण अपील करनी पड़ी क्योंकि उस समय सेना को प्रायद्वीप से हटा लेने का निश्चय नहीं हुआ था। यदि वरजीनिया में दक्षिण की सेना पर कस कर चोट पहुँचायी जाती तो दक्षिण के सामने अपनी सैनिक हार से बचने का एक ही रास्ता रह जाता कि वे केण्टकी पर हमला करते। बाद में उन्होंने यह किया भी। इस आशा से कि वहाँ उनके साथ मिलने की इच्छा वाले लोग विद्रोह कर देंगे। लिंकन का पूर्व निर्णय इस दिशा में बिलकुल ठीक था कि यदि दक्षिण हार जाता और काँग्रेस अपने प्रस्ताव के अनुसार कार्य करती तो सीमावर्ती राज्यों से दास-प्रथा के क्रमिक अन्त का प्रभाव दक्षिण में भी फैल जाता तथा जो राज्य गणराज्य द्वारा

क्षतिपूर्ति के आधार पर दासता को उठा देने का विरोध करते उनको बड़ी कठिनाई होती। इसके पश्चात् स्वतंत्र राज्य इस दिशा में देरी करने वाले राज्यों के प्रति ऐसे वैधानिक कदम उठाते कि उन्हें क्षतिपूर्ति बिना ही दास-प्रथा उठानी पड़ती। इस तरह के प्रस्तावों की क्रियान्विति तथा उसके विरुद्ध भय की भावनाओं को अधिक दबाना सम्भव नहीं था। लिंकन पर यह दोष लगाया ही नहीं जा सकता कि वह बिना गम्भीरतापूर्वक सोचे समझे ही कोई नीति निर्धारित कर लेता था। हम यह सारांश निकाल सकते हैं कि १८६२ में उसको यह आशा थी कि वह मुक्ति की ऐसी धारा बहा देगा जिसमें ये सब बुराइयाँ बह जायेंगी। परन्तु इतना उग्र कदम वह न उठा सका और उसे पुराने ही तरीकों पर काम करना पड़ा।

इस आशा को छोड़ने के पूर्व ही वह यह समझ गया था कि आवश्यकता पड़ने पर उसे क्या मार्ग अपनाना होगा? सीमावर्ती राज्यों से उसने १२ जुलाई १८६२ को अन्तिम अपील की। उस समय मेक्लीन की फौज हेरीसन तट पर ही पड़ी थी, दूसरे ही दिन उसने निजी तौर पर सेवार्ड और वेल्स से कहा कि "मैं इस परिणाम पर पहुँच रहा हूँ कि यह सैनिक आवश्यकता है और राष्ट्र की मुक्ति के लिए आवश्यक है कि हम दासों को स्वतंत्र कर दें अन्यथा हमें हार खानी पड़ेगी।" २२ जुलाई को उसने अपने मंत्रीमंडल के सामने दास-मुक्ति की घोषणा का पहला मज़मून पढ़ा। उनका मत जानने के पूर्व ही उसने यह स्पष्ट कह दिया कि वह दृढ़ निश्चय कर चुका है। अनेक सदस्यों ने बहुत से प्रश्न उठाये जिन पर वह पहिले ही सोच कर निर्णय कर चुका था, परन्तु बाद में उसने अपने एक मित्र को बताया कि सेवार्ड ने एक ऐसा प्रश्न उठाया जो उसके दिमाग में आया ही नहीं था। उसने कहा कि प्रायद्वीप में हार के बाद ही ऐसी घोषणा करना पीड़ामय रुदन-सा प्रतीत होगा। परन्तु यदि किसी सैनिक विजय के बाद यह घोषणा की जायेगी तो अच्छा प्रभाव होगा।

सेवार्ड की बात ठीक थी। यदि प्रत्यक्ष हार और निराशा की स्थिति में घोषणा की जाती तो उत्तर में फूट के बादल मँडरा आते और विदेशों में सुप्रभाव का अवसर कम हो जाता। लिंकन घोषणा करने का पक्का इरादा रखते हुए भी इस एतराज को मान गया। उसने अपना मज़मून अलग उठा कर रख दिया और यह निश्चय कर लिया कि उपयुक्त समय आने तक घोषणा नहीं की जायेगी। सम्पूर्ण प्रश्न को ही उसने अनिर्णीत रख दिया और समय की बाट देखने लगा।

अगले दो महीने में उसे युद्ध की ही चिन्ता नहीं रही बल्कि उसके लिए एक बड़ी दुविधा भी थी। उसको अधिक दुख नहीं हुआ कि इस एकाकी कार्य में उसे किसी भी विचारधारा या दल की सहानुभूति नहीं मिली। अब उसे उत्तर में डेमोक्रेटों के विरोध का मुकाबला करने को तैयार रहना था क्योंकि उन्होंने कांग्रेस में उसके द्वारा पास कराये प्रस्ताव का खुल कर विरोध किया था और उसे उग्र रिपब्लिकी गुट्ट से भी मुकाबला करना था। उन्होंने इस प्रस्ताव को हृदय से नहीं माना। इस वर्ष मई में उसको दूसरी बार एक रिपब्लिकी जनरल को सजा देने पर मजबूर होना पड़ा, क्योंकि उसने जोश में आकर इस महान नीति के प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया था। जनरल हण्टर ने एक छोटी सैनिक टुकड़ी लेकर दक्षिण कारोलिना में पोर्ट रायल तथा रूई उत्पादक टापुओं पर अधिकार कर लिया था। उसने बड़ी शान के साथ अभिमानपूर्वक घोषणा कर दी कि दक्षिण कारोलिना, जोर्जिया और फ्लोरिडा के दास स्वतंत्र हैं। निश्चय ही इसे यों ही टाला जा सकता था। गर्मी के दिनों में कांग्रेस भी विद्रोहियों की सम्पत्ति को जब्त करने के सम्बन्ध में नया कानून बनाने में लगी थी। कुछ पश्चिमी रिपब्लिकी इस जब्ती में बड़े लाभ देख रहे थे कि इसके कारण कुछ और दास भी स्वतंत्र हो जायेंगे। ऐसा प्रतीत हुआ कि सम्भवतया इस जब्ती के कानून को राष्ट्रपति अस्वीकार कर देगा। मृत विद्रोहियों की संपत्ति को कानूनन जब्त करना एक अनुचित कार्य था। लिंकन इस बात के लिए तैयार नहीं था कि उनसे बदला लेने की क्रूरता के लिए संविधान को बदला जाय। उस प्रस्ताव में से आपत्ति-जनक भाग निकाल दिया गया और लिंकन ने स्वीकृति दे दी। बहुत से रिपब्लिकी तो इतने पर भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखने ही लगे थे। इधर कई कांग्रेसी सदस्य भी मंत्रीमण्डल से ईर्ष्यालु हो गये। उनको यह झुँझलाहट आने लगी कि वे कानून बनाएँ इससे पहिले उनके लिए यह जान लेना आवश्यक हो गया है कि "बादशाह सलामत को क्या पसन्द है।" तात्कालिक कांग्रेस, योग्य, कार्यशील, और वास्तव में देशभक्त थी। वह लिंकन का नेतृत्व स्वीकार न करने के कारण घृणा की पात्र नहीं कही जा सकती। परन्तु वह भी मजबूरी के कारण ऐसा कदम उठा रही थी।

अगस्त और सितम्बर में लिंकन इसी दुविधा में झूलता रहा। एक ओर तो वह डरता था कि कहीं यह कार्य क्रान्तिकारी न हो, दूसरी ओर उसे लगा कि वह कायर व उत्साहहीन है। उसके इरादों को यथार्थ रूप में जनता के समक्ष रखना

अच्छा नहीं होता। दास-प्रथा के पक्षपातियों को उसने साफ लिख दिया, "यह हमेशा के लिए समझ लेना अच्छा होगा कि मैं इस कार्य में उस वक्त तक हार नहीं मानूँगा जब तक कि हर तदबीर नहीं अपना ली जायेगी।" उग्र उत्साही विरोधियों से उसने बिल्कुल ही भिन्न तरीके से बात की। जब बुलरन का दूसरा युद्ध होने वाला था, होरेस ग्रीली ने न्यूयार्क ट्रिब्यून में एक खुला पत्र प्रकाशित किया जिसमें उसने लिंकन के दास-प्रथा के प्रति झुकाव के विरुद्ध शिकायत की। लिंकन ने तुरन्त ही उसका उत्तर प्रकाशित किया। उसने कहा, "इस पत्र में कतिपय तथ्य व विचार मेरे दृष्टिकोण से गलत हैं, मैं उनको विवाद का विषय नहीं बनाना चाहता हूँ। यदि इसमें कड़ा और निरंकुशतापूर्ण स्वर झलकता है तो भी मैं अपने मित्र के सम्मान में इसको लेकर छींटाकशी नहीं करना चाहता। इस युद्ध में मेरा सर्वोपरि उद्देश्य गणराज्य की रक्षा करना है। यदि मैं इसकी रक्षा बिना किसी दास को स्वतंत्र किये कर सकता हूँ तो मैं वैसा करूँगा और यदि इसकी रक्षा के लिए सब दासों को स्वतंत्र करना आवश्यक होगा तो मैं वैसा भी करूँगा। यदि कुछ को स्वतंत्र करके और बाकी के दास बने रहने से ही यह कार्य होता है तो मैं वह भी करने को तैयार हूँ। जब मुझे लगेगा कि मेरे कार्य से उद्देश्य को हानि पहुँचती है तो मैं वैसा नहीं करूँगा और यदि इस दिशा में आगे बढ़ने में लाभ है तो मैं अधिक गतिशील कदम उठाऊंगा। मैं इन नये विचारों को इतनी ही जल्दी अपना लूँगा जितनी जल्दी मुझे इनकी सत्यता प्रतीत हो जायेगी।"

इस समय उसके लिए ऐसी मनमानीपूर्ण सामान्य बातें लिखना आसान था परन्तु एक या दो सप्ताह बाद पोप की हार के कारण उसे एक ऐसे वादविवाद में उलझना पड़ा जिससे उसकी भावनाओं में कड़वाहट आ गयी। इस बात से उसको वास्तव में दुख हुआ कि जब वह दास के विरुद्ध लड़ रहा था तो इली-नायस के पादरी उसे अधार्मिक कह कर उसका विरोध कर रहे थे। ग्रीली से पत्रव्यवहार होने के एक हफ्ते बाद शिकागो के कई गिरजाघरों का एक प्रतिनिधि-मण्डल उसके पास आया। उसके कुछ सदस्यों ने भगवान के नाम से उसे आज्ञा दी कि वह दासों को स्वतन्त्र कर दे। उसने कहा कि परस्पर विरोधी मत और सलाह लेकर लोग मेरे पास आये हैं। दोनों ही पक्ष के लोग धर्मगुरु हैं और दोनों का ही समान रूप से विश्वास है कि वे भगवान की इच्छा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। मैं समझता हूँ, इनमें से कोई एक पक्ष अपने विश्वास में भूल कर रहा है; कुछ हद तक दोनों भूल में हैं।

मेरा ख्याल है कि यदि भगवान मेरे कर्तव्य के सम्बन्ध में अपनी इच्छा दूसरों को प्रकट करता है तो यह सम्भव है कि वह सीधा मुझ पर ही अपनी इच्छा प्रकट कर देगा। हमारी आज की स्थिति में भगवान के नाम पर दासों की मुक्ति के लिए की गयी घोषणा का क्या महत्व है? मैं कोई ऐसा आज्ञापत्र नहीं निकालना चाहता जिससे सारी दुनिया यह देखे कि इस तरह की घोषणा अव्यावहारिक है। मुझे आप गलत न समझें क्योंकि मैंने इन आपत्तियों का जिक्र किया है। आपकी इच्छानुसार कार्य करने में इनसे मेरी कठिनाइयों का पता लगेगा। मैंने दास-मुक्ति की घोषणा करने के विरुद्ध निश्चय नहीं किया है। सारा मसला अभी विचाराधीन है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह विषय दिन और रात मेरे दिमाग में चक्कर काटता रहता है। जो कुछ मुझे भगवान की इच्छा लगेगी मैं वैसा ही करूँगा।" इस भाषण की भाषा विशेषकर इसमें व्यंग का पुट होने के कारण, बहुत ही चिन्तित और चिढ़े हुए व्यक्ति की मालूम होती है परन्तु इसमें जो कुछ गंभीरता है उससे लिंकन का असली विचार प्रकट होता है।

सितम्बर १८६२ के महीने में उसने अपने गहन विचारों को एक निबंध में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, यह पन्ने उसकी मृत्यु के बाद मिले। इसमें गहरा दुख व अनिश्चय प्रकट होता है। उसने लिखा कि भगवान की इच्छा ही सर्वत्र सफल होती है। बड़े युद्धों में हर दल भगवान की इच्छा के अनुसार कार्य करने का दावा करता है। दोनों ही गलती पर हो सकते हैं पर उनमें से एक तो अवश्य ही गलती पर है। भगवान एक समय में एक ही बात के पक्ष और विपक्ष में नहीं हो सकता। वर्तमान गृहयुद्ध में भगवान का मन्तव्य दोनों दलों के मन्तव्यों से भिन्न हो सकता है; परन्तु भगवान की सर्वोत्तम इच्छा की सफलपूर्ति मानव के द्वारा ही सम्भव हो पाती है। मैं तो यह कहने के लिए तैयार हूँ कि सम्भवतः यह युद्ध भी भगवान की इच्छा है और उसकी यह भी इच्छा है कि यह अभी जारी रहे। यदि भगवान चाहता तो दोनों दलों को प्रेरणा देता। उसकी इच्छा पर ही निर्भर करता कि गणराज्य बना रहे अथवा नष्ट हो जाय। सम्भवतया वह इस युद्ध का सूत्रपात भी नहीं करता। युद्ध आरम्भ होने के बाद भी वह चाहे जिसे विजयी बना सकता। परन्तु युद्ध अभी भी जारी है।" लिंकन को तो अपना यह स्पष्ट कर्तव्य दिख रहा था कि गणराज्य के लिए सुरक्षा का कार्य ही उसे करना है। फिर भी उसका अभिमत प्रतिनिधि-मण्डल के मत के अनुकूल था और वह यह सोचता था कि वह मुक्ति की ओर

कदम उठा कर भगवान की इच्छा ही पूरी कर रहा है। यह तर्क कि महान कार्य उपयुक्त अवसर आते ही कर डालना चाहिए, सिद्धान्त में तो बहुत स्पष्ट है परन्तु यह हमेशा विवादग्रस्त रहेगा कि कौन-सी घड़ी उपयुक्त है। उसने कुछ समय बाद में बताया कि अन्त में वह कैसे निश्चय पर पहुँचा।

एण्टीटम के युद्ध का समाचार जिस दिन उसे मिला उसने घोषणापत्र को फिर से पढ़ा, फिर वह युद्धक्षेत्र में मेक्लीन से मिलने गया। परन्तु युद्ध के बाद पाँचवें दिन मंत्रीमंडल की अचानक बैठक बुलायी गयी। जब मंत्री लोग एकत्र हो गये तो उनके मनोरंजन के लिए उसने आर्टेमसवार्ड की कृतियों में से 'उटिका में भीषण अत्याचार' पढ़कर सुनाया। आर्टेमसवार्ड की अन्य कृतियों की तुलना में यह निबंध उनसे कहीं कम मनोरंजक है; परन्तु यह पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई थी। स्टाण्टन के अतिरिक्त सभी लोगों ने इस निबन्ध में रस लिया। लिंकन के दिमाग पर जब बहुत भार रहता था तो उसे इसी तरह के विनोद से कुछ सहारा मिलता था। स्टाण्टन लिंकन द्वारा गंभीर समस्याओं के मध्य इस तरह की हल्की-फुल्की बातों व मनोरंजन की आदतों को पसन्द नहीं करता था। परन्तु लिंकन अपने मानसिक भार को हल्का करने में इन बातों का सहारा ले लेता था। इस प्रकार स्थिति की गंभीरता को हल्का कर उसने मंत्रीमंडल से कहा, "मैंने दास-प्रथा और युद्ध के सम्बन्ध में काफी सोचा है। कुछ सप्ताह पूर्व आपको घोषणा-पत्र का मजमून भी पढ़कर सुनाया था। तभी से मैं इस विषय में सोचता रहा हूँ, इस कार्य के लिए दूसरा समय चुना जा सकता परन्तु अब इसके लिए उपयुक्त समय आ गया है। जब विद्रोही सेना फ्रेड्रिकबर्ग पर थी तो मैंने इरादा किया था कि मेरीलैण्ड से जब वह निकाल दी जायेगी तो मुक्ति का सर्वोत्तम घोषणापत्र जारी कर दूँगा। मैंने इस बारे में किसी से जिक्र न करके अपनी आत्मा और ईश्वर से प्रतिज्ञा की कि मैं यह कार्य पूरा करूँगा। विद्रोही फौज खदेड़ दी गयी है और अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आ गया है। मैंने आपको इसीलिए बुलाया है कि मैंने जो लिखा है उसे सुन लें। मुख्य विषय पर मैं आपसे सलाह नहीं चाहता हूँ क्योंकि उस पर मैंने स्वयं निश्चय कर लिया है। आपमें से किसी के प्रति भी अशिष्टता प्रकट करने के लिए मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ।" तब उसने घोषणा के शाब्दिक चयन और अन्य विगतों के सम्बन्ध में सुझाव माँगे। अन्त में उसने कहा, "मैं एक बात और कहूँगा, कतिपय दूसरे लोग इस मामले में मुझसे अच्छा कार्य कर सकते हैं, यह मैं जानता हूँ। यदि मुझे यह निश्चय हो जाता कि सार्वजनिक

विश्वास मेरे बजाय आपमें से किसी पर अधिक है और कोई वैधानिक तरीका मुझे मालूम होता जिसके द्वारा ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर सकता तो उसको यह काम सौंप देता। मैं आनन्द से उसकी बात मान लेता। यद्यपि मैं महसूस करता हूँ कि कुछ समय पहिले की तरह मैं अब इतना विश्वासपात्र नहीं रह गया हूँ। परन्तु सभी बातें ध्यान में रख कर देखता हूँ तो मेरे अतिरिक्त और कोई जनता का इतना विश्वासपात्र नहीं है। ऐसा कोई दूसरा तरीका ही नहीं है कि मैं यह काम किसी को सौंप सकूँ। इस समय यह काम मेरे जिम्मे है, अपनी ओर से अच्छे से अच्छा कार्य करूँगा और अपने कार्य का उत्तरदायित्व भी मुझे ही लेना होगा।" उसके बाद उसने घोषणापत्र का प्रारूप पढ़ा। इस पर बहुत देर तक वादविवाद हुआ। थोड़े-बहुत संशोधन भी रखे गये। उसने बताया कि कैसे वह इस निश्चय पर पहुँचा। "एण्टीटम के युद्ध के पूर्व जब असहाय होकर मैंने भगवान के आगे बच्चे की भाँति यह वादा किया कि यदि हमारी जीत हुई और विद्रोही सेना मेरीलैण्ड से निकाल दी गयी तो मैं इसे इस बात का संकेत मानूँगा कि मुझे आगे बढ़ना चाहिए।" यह अजीब-सा लगता है कि जब उसे मार्ग दिखायी नहीं दिया तो उसने समस्या को इस प्रकार भगवान के सुपुर्द कर दिया। भगवान ने यह प्रश्न दासों के पक्ष में तय कर दिया।

यह महत्वपूर्ण घटना क्रमिक प्रगति की सूचक है। इस घोषणा के क्या-क्या परिणाम रहे यह हमें आगे चलकर ज्ञात होगा। आरम्भ में ये परिणाम लिंकन की आशा के अनुकूल नहीं थे। लिंकन ने अपने एक मित्र को पत्र में लिखा कि समाचार-पत्रों में प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों से सराहना पाना एक अहंकारी व्यक्ति की सबसे बड़ी इच्छा हो सकती है। परन्तु सेना में जो भर्ती का काम था, उस ओर लोगों द्वारा अधिक रुचि नहीं दर्शायी गयी। अक्तूबर और नवम्बर में कांग्रेस के चुनाव थे। कई राज्यों में डेमोक्रेटों की विजय हुई हालांकि यह भी कम बात नहीं है कि रिपब्लिकन भी न केवल न्यू इंगलैण्ड तथा सुदूर पश्चिमी राज्यों में बल्कि सीमावर्ती दास-राज्यों में भी डटे रहे। डेमोक्रेट लिंकन के कट्टर विरोधी बन चुके थे। वे और भी कई कारणों से उससे नाराज थे। उनकी मुख्य शिकायत राष्ट्रपति के विरुद्ध यह थी कि वह गृहयुद्ध को दास-प्रथा-विरोधी जिहाद का रूप दे रहा था। उनकी चुनाव घोषणा थी "गणराज्य और संविधान अपरिवर्तनशील रहे"। जनता ने उस समय और उसके बाद भी उनकी इस बात को सुना। इसका कारण लोगों में युद्ध को लेकर निराशा

थी। एक तरह से तो यह उचित प्रतीत होता है कि लिंकन ने इस घोषणापत्र को सैनिक विजय तक रोक रखा और भी अनेक बातों से यह भी पता चलता है कि उसमें जनता का अधिक विश्वास नहीं रह गया था, परन्तु किसी व्यक्ति में जनता के विश्वास का अनुमान लगाना कठिन होता है और जो शक्तियाँ जनमत को सबसे अधिक प्रभावित करती हैं उन्हें जल्दी से समझा नहीं जा सकता। ऐसा बहुत कम प्रकट होता है कि उसकी शक्ति और चरित्र जनता में अपना प्रभाव जमा रहे थे। फिर भी कुछ दिनों पूर्व जो 'बुड्ढा अब्राहम' और 'चचा अब्राहम' कहा जाता था वह अब सामान्य ग्रामीणों में 'पिता अब्राहम' बन गया था। उसके निजी सहायक बताते हैं कि वह यह समझने लगा था कि उसके खुलेआम दिये गये भाषणों का प्रभाव कांग्रेस की अपेक्षा जनमत पर अधिक गहरा पड़ता था। दिसम्बर १८६२ में अपने वार्षिक सन्देश में लिंकन ने सम्भवतः परिणाम की फलवती आशा न रखते हुए ही कांग्रेस के सामने दास-प्रथा के प्रति समुचित और अंतिम तौर पर कार्यवाही करने के सम्बन्ध में एक विस्तृत नीति रखी। उसने कहा, "जनता के सामने एक वैधानिक संशोधन रखा जाय जिसमें ये बातें हों। जो राज्य सन् १९०० के पूर्व दास-प्रथा का अन्त कर देगा उसे संयुक्त राष्ट्र की हुंडियों में क्षतिपूर्ति की रकम दी जायेगी; वह राज्य चाहे विद्रोही हो या नहीं। जो दास युद्ध के फलस्वरूप एक बार स्वतंत्र हो गये हैं वे हमेशा के लिए स्वतंत्र रहें और उनके मालिकों को क्षतिपूर्ति दी जाय। कांग्रेस को अधिकार हो कि वह नीग्रो लोगों की बस्तियाँ बसाने के लिए धन व्यय कर सके। यदि इन बातों का अधिकांश संविधान में संशोधन किये बिना ही पूर्ण हो जाता तो भी गणराज्य में स्थायी शांति लाने के लिए यही उपाय अच्छा था। उसने अपने सन्देश में यह अनुरोध किया कि गणराज्य के पुनर्गठन के लिए यह बहुत आवश्यक है कि सम्पूर्ण उत्तर दासता के प्रश्न पर एक राय हो। इस सम्बन्ध में राजनीतिक दल अपनी स्थिति पर फिर से विचार कर लें। उसने कहा, "शान्तिकालीन अतीत की हठधर्मी गतिशील वर्तमान के लिए अनुपयुक्त है। इस स्थिति में कठिनाइयों के ढेर लगे हैं और हमें स्थिति को सम्भालना ही है। हमें इस समस्या के बारे में नये ढंग से सोचना होगा, नये ढंग से कार्य करना होगा। हमें अपने जोश को ठंडा रखना होगा तभी हम देश को बचा सकेंगे। साथी नागरिको! इतिहास के निर्णय से हम बच नहीं सकते। हम लोग कांग्रेसी और प्रशासक दोनों ही इसके लिए याद किये जायेंगे। व्यक्तिगत महत्व या न्यूनता हम में से किसी को बचा नहीं सकेगी। हमारा दावा है

कि हम गणराज्य के पक्ष में हैं। संसार हमारे इस दावे को भुला नहीं सकेगा। हम जानते हैं कि गणराज्य की रक्षा कैसे की जाय। और संसार से यह बात छिपी नहीं है। दासों को स्वतंत्रता देकर हम स्वतंत्र व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी अक्षुण्ण करने जा रहे हैं। स्वतंत्रता जो विश्व की सर्वोत्तम आशा है या तो हम प्रतिष्ठा-पूर्वक बचा सकेंगे अथवा पतित होकर उसे खो देंगे। संभव है, दूसरे तरीके भी सफल हो जायें परन्तु यह तरीका तो असफल हो ही नहीं सकता।" उसके अंतिम शब्द युद्ध का अन्त करने के लिए उत्तरी हथियारों के अतिरिक्त उत्तरी नीति जो कर सकती है उस पर अत्यधिक विश्वास प्रकट करते हैं। विजय के बाद शान्ति-स्थापना के लिए यदि सब दल मध्यम नीति अपना कर कार्य करते तो उसका प्रभाव अप्रतिम होता। हर ईमानदार डेमोक्रेट जिसने उस समय दासता के विरुद्ध कोई भी कार्य करने से इन्कार किया तीन वर्ष बीतने से पहिले ही पछताया होगा और हर समझदार रिपब्लिकी जिसने मध्यम मार्ग को बुरा समझा, बाद में दुखी हुआ ही होगा। परन्तु उस समय कुछ नहीं किया गया। ऐसा समझा जाता है कि लिंकन को भी आशा ऐसी ही थी। परन्तु मुक्ति की घोषणा तो उस महीने में की ही जाने वाली थी। युद्ध के अन्त तक देश में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती कि देश को दासता के सम्बन्ध में कुछ निश्चय करना ही पड़ता। लिंकन ने लोगों को दासता के प्रति सजग करके इतना काम तो कर ही दिया।

इसके पूर्व अनेक उत्तरी राजनीतिज्ञों में—जो मुक्ति के प्रश्न पर आपस में झगड़ते थे—भय और चिड़चिड़ाहट से और युद्ध की धीमी गति को लेकर प्रशासन के साथ झगड़ने से लिंकन के मंत्रीमण्डल में संकट उपस्थित हो गया। उग्रवादी लोग यह समझते थे कि प्रशासन में सेवार्ड के प्रभाव के कारण ही सारी खराबियाँ हो रहीं हैं। कुछ लोगों के हाथ उसका एक मूर्खतापूर्ण निजी पत्र पड़ गया। इंगलैण्ड के एडम्स को लिखे गये इस पत्र में उसने कुछ ही महीने पहिले मुक्ति के पक्षपातियों की भर्त्सना की थी। उन्होंने सेवार्ड को गिराने के लिए कुछ रिपब्लिकी सीनेट सदस्यों के एक गुट्ट को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे दल और राष्ट्र के नाम पर बोलें और राष्ट्रपति के पास एक प्रस्ताव लेकर मंत्रीमंडल में ऐसे विशेष परिवर्तनों की मांग करें जिससे युद्ध के ज्यादा अच्छे परिणाम निकलें। इस तरह के विरोधी मतावलंबी असन्तुष्ट लोग युद्ध में सफलता की मांग करने के लिए भी मिल जाते हैं। अनुदार सीनेट सदस्य इस प्रस्ताव में

इस आशा से शामिल हो गये कि इससे सेवार्ड के साथ-साथ चेस और स्टाण्टन भी निकल जायेंगे जिन्हें वह खास तौर पर नहीं चाहते थे। सेवार्ड ने यह सुनकर लिंकन के हाथ में त्यागपत्र दें दिया। परन्तु इस बात को प्रकट नहीं किया गया। अभिमानी होते हुए भी वह चतुर था और उसके साथ काम करने में आनन्द आता था। बुद्धिमान प्रधान की मातहत में वह काम का आदमी था, परन्तु मूर्ख प्रधान के हाथ में पड़ कर बाद में वह हानिकारक ही सिद्ध हुआ। स्टाण्टन सबसे अधिक राजभक्त था और युद्ध-विभाग के प्रधान के रूप में वह सुयोग्य सिद्ध हुआ। चेस के सम्बन्ध में बाद में एक बार लिंकन ने कहा कि वह काफी अच्छा और योग्य व्यक्ति है। अर्थमंत्री के रूप में लिंकन का उस पर पूरा विश्वास था। उसके स्थान पर दूसरा व्यक्ति ढूँढ़ लेना आसान नहीं था। परन्तु यह व्यक्ति आत्मसम्मानी और सच्चा होते हुए भी अधम वृत्ति का था। कुछ समय बाद लिंकन को मालूम पड़ा कि यदि उसे किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के विरुद्ध कुछ कार्य करना पड़ता तो चेस चुपचाप उस व्यक्ति के पास जाकर कहता कि यदि मैं राष्ट्रपति होता तो ऐसा करता ही नहीं। इस मौके पर उसे पता था कि चेस ने ही सेवार्ड के विरुद्ध सीनेट-सदस्यों को उभाड़ा है। यद्यपि लिंकन दोनों को उनकी योग्यता की दृष्टि से रखना चाहता था परन्तु यह भी चाहता था कि वे एक दूसरे को गिराने में सफल न हो पायें, नौ प्रमुख सीनेट-सदस्यों का प्रतिनिधि-मंडल सेवार्ड के विरुद्ध जब अपनी शिकायतें पेश करने आया तब उनके सामने सारा मंत्रीमण्डल बैठा था, सेवार्ड नहीं था क्योंकि वह त्यागपत्र दे चुका था। उसने अपनी मौजूदगी में मंत्रियों के सामने अपने मामले को रखने के लिए कहा। बड़ी अजब स्थिति हुई। चेस को, सभ्यता के नाते, प्रमुख मंत्री के रूप में सेवार्ड का पक्ष लेना पड़ा। उसीने तो इन्हें सेवार्ड के विरुद्ध भड़काया था। प्रतिनिधि-मण्डल सेवार्ड को निकलवाने में असफल होकर चला गया। चेस ने स्वभावतः ही दूसरे दिन त्यागपत्र दे दिया। अब चूँकि दोनों के त्यागपत्र उसके हाथ में थे, लिंकन ने दोनों को जनसेवा से न हटने के लिए तैयार कर लिया। इस तरकीब से उसने गणराज्य को भारी खतरे से बचा लिया। डेमोक्रेटों का विरोध, युद्धसंचालन के विरुद्ध तो नहीं परन्तु उसके लिए हर आवश्यक कार्य के विरुद्ध बढ़ रहा था। ऐसी हालत में कोई भी महत्वपूर्ण त्यागपत्र रिपब्लिकी लोगों में जो अब अपने को 'गणराज्यवादी' कहते थे, खतरनाक फूट पैदा कर देता।

१ जनवरी १८६३ को राष्ट्रपति ने मुक्ति को कार्यान्वित करने के लिए दूसरे

घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये। दक्षिण के छोटे राज्य जिन्होंने विद्रोह नहीं किया था, अपवाद कर दिये गये। नौसेना के अधिकारियों को यह आज्ञा दी गयी कि जो दास उनसे रक्षा माँगें उनकी स्वतंत्रता की वह रक्षा करें। दासों को कहा गया कि वे हिंसा से दूर रहें और यदि उन्हें अवसर दिया जाय तो योग्य मजदूरी पर ईमानदारी से काम करें। सभी योग्य दासों को सेना में भर्ती कर लिया गया विशेष तौर पर किलों में सैनिक कामों के लिए। १८६३ का अन्त होने के पहिले ही करीब एक लाख अश्वेत व्यक्ति सेना में आ गये थे। युद्ध-क्षेत्र में और श्रमिकों के रूप में, दोनों में वे लगभग बराबर संख्या में थे। उनकी बड़ी आवश्यकता भी थी क्योंकि उत्तर से स्वयंसेवक अब कम आ रहे थे। रेल लाइनों की मरम्मत और रक्षा दोनों ही उत्तरी स्वयंसेवक पसन्द नहीं करते थे। अश्वेत सैनिक टुकड़ी भी खूब लड़ी और हर प्रकार से उसका कार्य अच्छा रहा। जफरसन डेविस ने दासों और उनके श्वेत अफसरों से बदला लेने की जालिमाना धमकियाँ दीं। वे निरर्थक रहीं, परन्तु भयंकर क्रोध की हालत में नृशंस रक्तपात की एक घटना अवश्य हुई अन्यथा इस धमकी को व्यक्तिगत तौर पर कभी कार्यान्वित नहीं किया गया। लिंकन को यह सोच कर बड़ा आनन्द आता था कि जब जनतांत्रिक सरकार गणराज्य की विजय के फलस्वरूप सुदृढ़ होकर निर्दोष सिद्ध होगी तो कुछ अश्वेत लोग तो ऐसे रहेंगे ही जो याद करेंगे कि हमने गम्भीरता, दृढ़ता तथा सधी हुई संगीनों से मनुष्य जाति को उस लक्ष्य तक पहुँचाया है। प्रारम्भ में तो अनेक उत्तरी अफसर हब्शियों को सेना में भर्ती करने के विरुद्ध थे। सेण्ट गौडिन्स नामक एक महान अमरीकी कलाकार ने एक स्मरणीय मूर्ति बनायी, जिसमें यह दिखाया गया है कि रोबर्ट गौल्टशा नामक एक मैसेचुसैट का प्रतिभाशाली और लोकप्रिय अफसर अपने प्रिय सैनिक दल को छोड़कर एक अश्वेत दल के नायक के रूप में बहादुर सिपाहियों के साथ जी जान लड़ा कर लड़ता है और उसी में प्राण उत्सर्ग कर देता है।

इन हब्शी सैनिकों को एकत्र करना और शिक्षा देना सुगम था; परन्तु पश्चिम में ग्राण्ट की सेना के संरक्षण में जो विस्थापितों की भीड़ आ गयी थी, उसे स्थान देना, काम देना और उनको अनुशासन में रखना कठिन था। उनके लाभ के लिए जो कार्य किए गये उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। परन्तु जान ईटन नामक सैनिक पादरी के संस्मरणों से लिंकन की नीग्रो प्रश्न सम्बन्धी भावनाओं पर अधिक प्रकाश पड़ता है।

ग्राण्ट ने पश्चिम में हब्शियों का प्रबन्ध करने के लिए उसे चुना था। जब ईटन को अपने कार्य से कुछ समय बाद वाशिंगटन आना पड़ा और वह राष्ट्रपति से मिला तो उस पर यह प्रभाव पड़ा कि राष्ट्रपति इस मामले में छोटी-से-छोटी तथा व्यापक बातों से भी अच्छी तरह परिचित है। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य उसे इस बात पर हुआ कि बचपन के दिनों में थोड़ा ही वास्ता पड़ने पर भी नीग्रो लोगों की विशेषताओं का इतना गहरा ज्ञान उसको था कि उत्तर में और किसी को शायद ही हो। लिंकन ने उससे बहुत से प्रश्न पूछे जो यद्यपि देखने में साधारण थे किन्तु उनकी गम्भीरता ईटन भी तुरन्त ताड़ गया। इन प्रश्नों में पश्चिम के सभी प्रकार के व्यक्तियों के बारे में ही नहीं बल्कि उसकी देखरेख में जो साधारण हब्शी थे उनकी समझ, विचार, आशाओं के बारे में भी और खास तौर पर उन थोड़े से हब्शियों के, जो प्रसिद्ध हो जाने के कारण अपनी जाति के सर्वोत्तम उदाहरण थे, पिछले इतिहास और वर्तमान प्रगति के बारे में इतनी बारीकी व विशेषज्ञता से पूछताछ की कि उसके दिल में लिंकन के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। बाद की मुलाकातों से उसकी श्रद्धा और बढ़ गयी और छोटी-छोटी बातों से ही सही, लिंकन की सहानुभूति पर उसका विश्वास जम गया। ईटन का काम हो जाने के बाद राष्ट्रपति हेटी के निकट एक छोटे-से टापू पर हब्शी बस्ती बसाने का जिक्र करने लगा। दक्षिणी अक्षांशों में एक 'डरमेटोफिलस पेनी ट्रान्स' या 'जीगर' नाम का एक कीड़ा पाया जाता है जो नंगे पैरों के नाखूनों में घुस बैठता है। इससे बहुत ही भयंकर दर्द होता है। इस बस्ती में इस 'जीगर' ने बीमारी फैला रखी थी और उसे रोकने का हर प्रयत्न असफल हो रहा था। लिंकन इस कठिनाई की ओर प्रत्यक्ष ध्यान ही नहीं दे रहा था बल्कि युद्ध के संकट के समय विक्सबर्ग और गेटिसबर्ग से कुछ ही दिन बाद बहुत व्यस्त होने पर भी काऊ टापू के हब्शियों के पैरों की उँगलियों के रोग के सम्बन्ध में चिन्तित था। ईटन को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ। एक बार फिर जब वह मिला तो राष्ट्रपति ने बहुत ही झिझक कर पूछा कि क्या फ्रैड्रिक डगलस को तुम मुझसे मिलने के लिए राजी कर सकते हो। अवश्य ही वह उसे तैयार कर सकता था। फ्रैड्रिक डगलस हब्शी पादरी था और नीग्रो दासों में उत्पन्न पैदा हुए सभी व्यक्तियों में योग्यतम था। उत्तर में नीग्रो जाति के अनेक सच्चे मित्रों से वह मिला ही होगा। वह लिंकन की नीति की कुछ कमजोरियों से दुखी होकर उससे मिलने गया। खास तौर से उसकी शिकायत यह थी कि दक्षिणी सेनाओं

ने नीग्रो कैदियों को मार डाला था और राष्ट्रपति ने उनसे बदला नहीं लिया था। राष्ट्रपति से मिलकर जब वह लौटा तो वह बहुत ही प्रसन्न था। इसलिए नहीं कि वह अब लिंकन की नीति को समझ गया था, बल्कि इस बात पर कि लिंकन ने दुखी होकर कहा था कि दूसरों की करतूतों के बदले में और लोगों को मारना कितना बुरा है और फिर ऐसी नीति का परिणाम कितना भयंकर होगा। उसको एक बात से और भी सन्तोष था, जिसकी विचित्रता का आभास भी दुखपूर्ण है। डगलस आनन्द से चिल्ला उठा, "उसने मेरे साथ हब्शी होते हुए भी मनुष्य समझ कर बर्ताव किया। उसने मुझे यह महसूस ही नहीं होने दिया कि श्वेतांग और अश्वेत में कोई अन्तर है।"

लिंकन का सबसे महत्वपूर्ण भाषण वही था जो उसने रंगभेद के सम्बन्ध में नीग्रो लोगों की सभा में दिया। उस सभा में ऐसे ही लोग थे जो या तो जन्म से स्वतंत्र थे या जिन्हें स्वतंत्र हुए कुछ समय हो गया था, और अपनी जाति के नेता समझे जाते थे। लिंकन का उद्देश्य उनको इस बात के लिए उत्साहित करना था कि वे कहीं अच्छी आबहवा में बस्ती स्थापित करने का प्रयत्न करें। वह जानता था कि यदि उसने ऐसे नीग्रो लोगों से बात की कि जिनके मस्तिष्क पर दासता हावी थी तो असफलता ही होगी। वह बस्ती बसाने के आयोजनों में लगा रहा, क्योंकि उसकी राय में इनकी प्रगति के सब तरीकों से यही सर्वोत्तम था। "उनकी जाति जिस पर संसार में अधिक-से-अधिक अत्याचार किए गये हैं, स्वतंत्र होने पर भी श्वेतांगों के बराबर पहुँचने से बहुत दूर रहेगी। किन्हीं भी दो जातियों में इतना प्रत्यक्ष अन्तर नहीं है और यह दोनों के लिए खराब है। इसके कारण अमरीका में भी जहाँ इनके साथ अच्छा बर्ताव किया जा रहा है एक रोक लग जायेगी।" इस कड़वे सत्य को उसने बिना किसी बनावट के खोल कर रख दिया। ऐसी सभा में यही सम्भवतः सबसे बड़ी चतुराई थी, उसने ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिलाया कि प्रगति होने पर यह बात न रहेगी और साधारण गोरे व्यक्ति में आज काले आदमी से घृणा करने की जो भावना है वह चली जायेगी। परन्तु इससे यह स्पष्ट हो गया कि वह अपने में और अपने श्रोताओं में इतनी निकटता और समानता अनुभव करता था जो सामाजिक सम्मेलन और राजनीतिक मेल से भी अधिक व्यापक थी। उसने व्यापक निःस्वार्थ दृष्टि से उतनी ही सीधे और विश्वास के साथ अपील की जितनी कि वह अपने लोगों के समक्ष करता था। श्वेतांगों के समान ही काले लोगों में भी लोक भावना समझने वाले व्यक्ति की

ही भाषा का उसने व्यवहार किया, जिससे वे लोग अपने को गौरवशाली और एक ही भगवान की सन्तान समझने में आनन्द प्राप्त करें।

यहाँ हम युद्ध में निर्बाध सफलताओं का जो घटनाचक्र प्रस्तुत होने वाला था उसे छोड़ कर अमरीका में दासता-उन्मूलन की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। १८६३ में यह स्पष्ट हो गया कि मिस्सूरी और मेरीलैण्ड में जनमत दासता-उन्मूलन के पक्ष में बन रहा था। कांग्रेस में प्रस्ताव पेश किये गये कि यदि वे राज्य दास-प्रथा को उठा दें तो उन्हें क्षतिपूर्ति दी जाय और तुरन्त हटा दें तो और अधिक क्षतिपूर्ति दी जाय। इन प्रस्तावों के पक्ष में प्रत्येक सदन में बहुमत था, परन्तु प्रतिनिधि सदन में डेमोक्रेटों का अल्पमत भी अड़ंगेबाजी से उनको रद्द कर देता था क्योंकि उस सदन की कार्यरीति इसके अनुकूल थी। रिपब्लिकनों का बहुमत इस सम्बन्ध में बहुत सचेष्ट नहीं था। वे कहते थे कि गलती के लिए क्षतिपूर्ति क्यों? उनको लगने लगा था कि शीघ्र ही बिना क्षतिपूर्ति के ही दासता समाप्त हो जायेगी। परन्तु उनके नेता इन प्रस्तावों के पक्ष में पूरा जोर लगाते थे। इनके प्रस्ताव के गिर जाने के बाद फिर भी पश्चिम वरजीनिया, केण्टकी और टेनेसी के राजभक्त दास-प्रभुओं को क्षतिपूर्ति देकर अपनी ओर कर लेने का प्रस्ताव रखना गलत था क्योंकि ये बड़ी शीघ्रता से गणराज्य में लाये जा रहे थे। १८६२ के दिसम्बर-सन्देश के बाद लिंकन की समझ में आ गया कि क्षतिपूर्ति से दासता उठाने का प्रयत्न ठीक नहीं है क्योंकि राजभक्त और विद्रोही दोनों को ही क्षतिपूर्ति देने का उसमें वादा किया गया था। परन्तु उसके प्रशासन ने डेलावर में हर दास को स्वतंत्र व्यक्ति बना कर फौज में भर्ती कर लिया। १८६४ के वर्ष में इन राज्यों में जनमत अजीब ढंग से प्रकट होने लगा। उस पतझड़ में मेरीलैण्ड के लोगों ने, जिन्होंने २ वर्ष पूर्व लिंकन की बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, अपने विधान में यह सुधार कर दिया कि दास-प्रथा की क्षतिपूर्ति उठा दी जाय। कैण्टकी और टेनेसी में भी इसी ओर झुकाव हो रहा था। मिसूरी ने जनवरी १८६५ में मेरीलैण्ड जैसा ही किया। इस बीच में लुईसियाना को फिर जीत लिया गया था। इन राज्यों के गणराज्य-समर्थक लोगों को लिंकन उत्साहित करता था और उनकी रक्षा करता था। अभी काँग्रेस उनकी परवाह नहीं करती थी और उसके सेनाधिकारी इससे जलते थे। ये सभी मिल गये और उन्होंने ऐसा राज्य विधान बना लिया, जिस में दास-प्रथा उठा दी गयी। लिंकन ने उनको सुझाया था कि ऐसी योजना बनाओ कि अच्छे पढ़े-लिखे हब्शी मताधिकार प्राप्त कर लें। उसकी मृत्यु के

चार वर्ष बाद संविधान में एक संशोधन पारित हो गया कि अमरीका में जाति या रंग के कारण मताधिकार में अन्तर नहीं रहा। सभी नीग्रो लोगों को बिना किसी भेदभाव के मताधिकार देने की बात चेस जैसे लोगों के हृदय-शून्य तर्कों को भी पार कर गयी क्योंकि प्रत्येक मानव का जन्मजात हक मताधिकार तो है ही, परन्तु यह कानून इन लोगों को आवारागर्दी आदि कानूनों द्वारा फिर से अप्रत्यक्ष तौर पर दास बना लिए जाने से बचाने का सर्वोत्तम तरीका था।

बहाना चाहे जो रहा हो, परन्तु यह कानून दोनों जातियों में अच्छे सम्बन्ध बनाने के मार्ग में बड़ी कठिनाई उत्पन्न करता था। इस मामले में सच्ची नीति वही होती जो दक्षिण अफ्रीका की केप कालोनी में रोड्स आदि राजनीतिज्ञों ने अपनायी थी। लुईसियाना के सम्बन्ध में लिंकन ने ऐसा कहा भी था। यह तो सोचना गलत होगा कि नीग्रो अधिकारों का पक्ष लेकर भी स्थायी भेद को स्वीकार करके, मार्ग निकालने की योग्यता लिंकन के साथ ही खत्म हो गयी परन्तु कई वर्षों तक ऐसा महान नीग्रो-समर्थक उत्पन्न नहीं हुआ।

दासता और स्वतंत्रता के सिद्धान्तों को निश्चित करने का महत्वपूर्ण प्रश्न अंतिम निर्णय की ओर पहुँच रहा था क्योंकि छः दास राज्यों में जनमत बन रहा था। १८६४ के रिपब्लिकी सम्मेलन ने फिर लिंकन को राष्ट्रपति-पद के लिए अपना उम्मीदवार चुन लिया और यह घोषणा कर दी कि सारे अमरीका से दासता उठा देने के लिए वे संविधान में सुधार करेंगे। चाहे यह सुझाव लिंकन की ओर से आया हो या नहीं पर सम्मेलन से यह प्रस्ताव पास कराने में उसके प्रभाव का उपयोग अवश्य किया गया। १८६४ में, कांग्रेस को दिये गये अपने संदेश में उसने संशोधन का अनुरोध किया। निर्वाचन को देखने से यह अनिश्चित हो रहा था कि अगली कांग्रेस यह कदम उठायेगी या नहीं। परन्तु लिंकन ने इस अनिश्चित रुखवाली कांग्रेस से कहा कि यदि तुरन्त ही सम्भव हो तो उत्तर को सर्वसम्मति से यह कार्य करना चाहिए। इसका प्रभाव जल्दी ही फैलेगा। सीनेट में तो प्रस्ताव पास हो गया, परन्तु प्रतिनिधि सभा में तो मत लेने के कुछ ही घंटे पहिले तक भी दो तिहाई बहुमत मिलना एकदम अनिश्चित था। थोड़े से सन्देहात्मक मतदाताओं को अपनी ओर लाने में लिंकन ने भी भाग लिया था। वह एक महान कानून को स्थगित होता देखने के बजाय कुछ सिद्धान्तरहित विरोधियों को डरा-धमका कर इसे पास करा लेना अधिक अच्छा समझता था। राजनीतिक व्यक्तिओं द्वारा प्राप्त की

गयी जानकारी से उसने दो कांग्रेसियों को छाँटा। अनुमान यह है कि उन पर ऐसे देश-द्रोह का सन्देह था जिस पर लिंकन के समय का सैनिक कानून बेरहमी से उन्हें कुचल सकता था। उसने उनको बुलाया और बताया कि इतने मत मिल जाने पर यह प्रस्ताव पास हो जायेगा। "मैं संयुक्त राष्ट्र अमरीका का राष्ट्रपति हूँ और अमरीका के राष्ट्रपति के हाथ में युद्ध-काल की बड़ी भारी और भयंकर शक्ति होती है। मैं तुमसे यह आशा करता हूँ कि तुम स्वयं ये मत एकत्र करो।" चाहे इस गलत चाल ने असर किया हो या नहीं परन्तु ३१ जनवरी १८६५ को यह प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में दो तिहाई से भी अधिक मतों से पास हो गया और दर्शकों की भारी भीड़ हर्ष से उछल पड़ी, पहिले की सब मान्यताओं को तोड़ कर आनन्द-प्रदर्शन में पागल हो उठी। इस दृश्य को आज भी कुछ लोग याद करते हैं। इसी साल १८ दिसम्बर को, जब लिंकन को मरे आठ महीने हो चुके थे, विलियम सेवार्ड ने राज्य मंत्री की हैसियत से यह घोषित किया कि संविधान के तेरहवें संशोधन को राज्यों की आवश्यक बहु संख्या ने मान लिया है। इस तरह यह उत्तरदायित्वरहित वादविवाद जिसका उसने पूर्वाभास दे दिया था और जिसमें उसका भी बहुमूल्य प्रयत्न था, हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

आज अंग्रेजी साम्राज्य और अमरीका की भिन्न विकास वाली जातियों में अच्छे मानवीय सम्बन्ध रखने की निरन्तर कठिनाई को हल करने में बहुत लोग लगे हैं। परन्तु इस कठिनाई के सामने हम उन लोगों की महान सेवा को नहीं भूल सकते जिन्होंने पहिले इंगलैण्ड में और फिर अमरीका में इस मुख्य सैद्धान्तिक भूल को निकाल दिया कि कोई मनुष्य जाति ऐसी भी हो सकती है जो मानव होने का दावा भी नहीं करे। ऐसे लोगों में विलियम लायड गैरीसन थे जिन्होंने अपने आँखों अपने श्रम को फलते देख लिया। वे लिंकन को जानते थे और उनके साथ उनका मैत्रीपूर्ण व्यवहार भी रहा। ऐसे भी कुछ उदाहरण हैं जब कि भिन्न चलन और तरीके वाले लोग बिना जाने एक ही उद्देश्य में लगे हुए थे। उन दोनों की स्थिति यही थी। एक ओर गैरीसन दास-मुक्ति का विचार कर रहा था और उधर लिंकन अस्पष्ट भविष्य में सम्मानपूर्ण सार्वजनिक कार्य की तैयारी कर रहा था। लिंकन अपने इस कार्य को निजी सफलता नहीं समझता था। वह अपने को एक साधन मात्र मानता था। उसने एक बार इस सम्बन्ध में कहा, "मुझे लगता है कि मैंने घटनाओं पर काबू नहीं किया बल्कि घटनाओं ने मुझे चलाया।" सन् १८६४ में जब

कुछ बच्चों की ओर से एक प्रार्थनापत्र भेजा गया कि कोई बच्चा अब गुलाम न हो तो उसने लिखा था, "कृपया इन बच्चों से कहिए कि मुझे बड़ा आनन्द है कि उनके नन्हें दिलों में न्यायप्रियता और सहानुभूति इतनी अच्छी तरह भरी है, और यद्यपि उनकी इच्छा पूरी करना मेरी शक्ति के बाहर है, फिर भी वे याद रखें कि भगवान ने उनकी इच्छा पूरी की है और ऐसा लगता है कि आगे भी करेगा।" फिर भी उसने अपने बचपन की प्रतिज्ञा पूरी करके दिखायी। मानवीय स्वतंत्रता के लिए जब भी अवसर आया उसने दास-समस्या पर गहरी चोट की। निजी महत्वाकांक्षा या भय को बीच में नहीं आने दिया। यह सम्भव है कि शान्त सिंहावलोकन के बाद इस विलक्षण व्यक्ति के सम्बन्ध में उसके अप्रत्यक्ष गुणों की जो धारणा है, वह घटेगी नहीं, बढ़ेगी।

ग्यारहवाँ अध्याय

विजय का आगमन

[१]

१८६३ के अन्त तक युद्ध

पूर्वी युद्धक्षेत्र की घटनाओं को हमने १८६३ के ग्रीष्मारम्भ तक देख लिया है। उस समय ली दूसरी बार उत्तर पर हमला करने वाला था। पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र के बारे में १८६२ की मई के बाद से हमने चर्चा नहीं की। उस समय से वर्षान्त तक वहाँ किसी पक्ष ने कोई निश्चित प्रगति नहीं की। परन्तु सैनिक प्रशासन की कठिनाइयाँ बहुत थीं। लिंकन के जीवन में भी, पूर्वी सेना के सम्बन्ध में, मुक्ति सम्बन्धी नीति के विषय में और पश्चिम के युद्ध संचालन सम्बन्धी चिन्ताएँ इन महीनों में भारी तनाव उत्पन्न कर रही थीं।

जब हैलेक को पश्चिम से बुला लिया गया तो लिंकन के पास सभी सेनाओं के अध्यक्ष के रूप में वाशिंगटन में एक जनरल आ गया। हैलेक बौद्धिक तौर पर एक असाधारण व्यक्ति था। उससे यह आशा की जा सकती थी कि वह युद्ध को एक व्यापक दृष्टि से देखेगा। वह क्षुद्र भावनाओं से मुक्त था। लिंकन की इस राय के प्रमाण भी हैं। अतः वह उपयोगी सलाहकार था और कुछ समय तक तो कोई व्यक्ति उस पद के लिए उससे अच्छी योग्यता वाला था भी नहीं, परन्तु लिंकन को शीघ्र पता चल गया कि उसमें इच्छाशक्ति की कमी है। उसे यह जानने में भी देर नहीं लगी होगी कि उसका चुनाव ठीक नहीं रहा। राष्ट्रपति को मजबूर होना पड़ा कि वह उस विशेषज्ञ की सलाह का योग्यतम उपयोग करे, लेकिन उस पर पूरी तरह निर्भर रहना उचित नहीं था।

मई १८६२ में जब हैलेक कोरिन्थ आ गया तो पश्चिमी और मध्य टेनेसी से शत्रु को निकाला जा चुका था। उसने अपना ध्यान पूर्वी टेनेसी के गणराज्य-समर्थकों को बचाने की योजना की ओर दिया। जनरल किरबी स्मिथ की अध्यक्षता में एक दक्षिणी सेना वहाँ कब्जा किये पड़ी थी। उसका उद्देश्य चाटानुगा पर, जो उससे १५० मील पूर्व में था, कब्जा करके

फिर टेनेसी नदी की घाटी में होकर पूर्वी टेनेसी पर हमला करना था। टेनेसी नदी चाटानूगा के पीछे पर्वतों को काटती चली जाती है। इस उद्देश्य के लिए यदि वह अपनी सारी सेना लेकर बोरगार्ड की दक्षिणी सेना की ओर पहिले बढ़ता तो अच्छा रहता। बोरगार्ड कोरिन्थ से ५० मील और दक्षिण हट कर स्वस्थ जलवायु में आराम और भर्ती के लिए पड़ा था। उसे उस समय या तो अल्पसंख्यक फौज लेकर ही लड़ना पड़ता अथवा विक्सबर्ग के किले में बन्द होकर बैठना पड़ता। हुआ यह कि हैलेक ने जून का महीना कोरिन्थ से चाटानूगा की ओर जानेवाली रेल लाइन की मरम्मत ही करने में निकाल दिया। जब उसे वाशिंगटन बुलाया गया तो उसने वहाँ ग्राण्ट को अपने स्थान पर नियुक्त कर दिया। ग्राण्ट उसके मातहत मुख्य सेनाधिकारी था और कई महीने से बेकार बैठा था। उसे एक सेना का स्वतंत्र नायक बना दिया गया। उस सेना को मिसीसिपी के पास बोरगार्ड के सामने डटा रहना था और केवल बचाव ही करना था क्योंकि उसे आशा थी कि वह सेना का एक भाग बुयेल के लिए तैयार रखे। बुयेल ने जल्दी ही सेना मांग ली। बुयेल अब स्वतंत्र सेनाध्यक्ष था। उसे हैलेक ने हुक्म दिया कि वह चाटानूगा की ओर बढ़े और कोरिन्थ को सामग्री-प्राप्ति का केन्द्र रखे। बुयेल की यह योजना थी कि चाटानूगा पर हमले का आधार नैशविले हो जायेगा। यह टेनेसी के बीच में है और रेल मार्ग भी छोटा था। इसमें दक्षिणी घड़सवारों के हमलों का अवसर कम था। हैलेक के चले जाने पर बुयेल ने आधार बदलने की अनुमति ले ली, जून का सारा महीना हैलेक की गलत योजना के कारण रेल की मरम्मत में ही बर्बाद हो गया। जब बुयेल को अपनी योजना के अनुसार बढ़ने की आज्ञा मिल पायी और जब वह चाटानूगा के नजदीक पहुँच रहा था तो दक्षिणी घुड़सवार सेना ने जुलाई और अगस्त में दो बार नैशविले से उसका सामग्री-मार्ग काट दिया। इससे भारी क्षति हुई और उसे बहुत देर लग गयी। अगस्त के अन्त तथा सितम्बर के आरम्भ में किरबी स्मिथ ने बोरगार्ड से अधिक सैनिक मंगा कर अपनी सेना को मजबूत कर लिया। चाटानूगा के उत्तर पूर्व की घाटियों में होकर पूर्वी टेनेसी से पर्वत पार किया और केण्टकी में जा धमका। उसने अपनी सैनिक टुकड़ियाँ केण्टकी की इण्डियाना सीमा में लुईविले पर और ओहियो में सिनसिनाटी पर हमला करने के लिए भेज दीं। जब लगभग एक सप्ताह की अनिश्चितता के बाद यह पता चला कि किरबी स्मिथ की सारी शक्ति इस हमले पर लगी है तो बुयेल को पीछे हटना ही पड़ा। इसी बीच में

बोरगार्ड के बीमार हो जाने के कारण उसकी जगह जनरल ब्रेग ने ले ली थी। उसने कुछ सेना तो ग्राण्ट को रोके रहने के लिए छोड़ दी, बाकी को लेकर किरबी स्मिथ की मदद को चला गया और बुयेल की सेना तथा लुईविले के बीच में जा डटा। इसी मार्ग की रक्षा के लिए बुयेल स्मिथ की ओर बढ़ने वाला था। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रेग, जिसे अब स्मिथ आसानी से मदद भेज सकता था, ऐसा अवसर पा गया कि बुयेल से युद्ध करने में उसे भारी सहूलियत हो जाती। परन्तु दक्षिणी सेनापति को यह गलतफहमी हो गयी कि केण्टकी उनका साथ दे रही है। वहाँ राजधानी फ्रैंकफोर्ट पर कब्जा करने और बाकायदे राज्य सरकार कायम करने में उन्होंने राजनीतिक लाभ की कल्पना की। अतः ब्रेग फ्रैंकफोर्ट में किरबी स्मिथ से मिलने चल दिया। यह जगह बुयेल के मार्ग से काफी पूर्व में थी। इसलिए वह आसानी से २५ सितम्बर को लुईविले में वापिस हो गया।

इस घटना को उत्तर में और भी चिन्ता से देखा जा रहा था क्योंकि दक्षिणी सेना ने बुलरन के दूसरे युद्ध के आसपास ही केण्टकी पर हमला आरम्भ किया था। बुयेल लुईविले में एण्टीटम युद्ध के एक सप्ताह बाद ही पहुँचा। लोगों के सामने यह प्रश्न था कि इस विजय का लाभ लेकर आगे कैसे बढ़ा जाय। प्रभावशाली और समझदार व्यक्ति, विशेषतः पश्चिमी राज्यों में, बड़े जोर से बुयेल की शिथिलता की शिकायत कर रहे थे। आश्चर्य यह है कि केण्टकी के डेमोक्रेट जिनको उसकी काल्पनिक त्रुटियों से सबसे अधिक हानि पहुँची उसके प्रति विश्वास प्रगट कर रहे थे। परन्तु उसके अपने सैनिक उसे नहीं चाहते थे, क्योंकि वह कट्टर नियमपालक तो था पर उसमें न तो चतुराई थी और न अन्य प्रभावशाली गुण ही थे। ओहियो, इल्लीनायस और इण्डियाना में उनके निजी पत्रों के आधार पर बुयेल के विरुद्ध वातावरण बन रहा था। ओहियो और इण्डियाना के गवर्नरों से भी, जो उसे भर्ती के लिए सिपाही भेजते थे उसके सम्बन्ध बिगड़ रहे थे। उन्हीं पर आक्रमण के बादल मँडरा रहे थे। बुयेल का सबसे अधिक शक्तिशाली मित्र मैक्लीन था। उसके दीर्घसूत्रीपन का दोष बुयेल के सिर भी, तर्करहित ही सही, परन्तु अनिवार्यतः मढ़ा जाने लगा। हैलेक ने दिल से उसका पक्ष लिया। परन्तु लिंकन ने शीघ्र ही समझ लिया कि एक ढुलमुल व्यक्ति दूसरे दीर्घसूत्री का पक्ष ले रहा है। स्टाण्टन, जो युद्धविभाग में अपनी क्षमता के कारण प्रभावशाली हो गया था बुयेल को निकालना चाहता था। लिंकन को आशा थी कि

लुईविले पहुँचने पर बुयेल तुरन्त हमला करेगा। चाहे बहुत अधिक न हो परन्तु उसकी फौज ब्रिग और स्मिथ की सम्मिलित सेना से अधिक हीं थी और घुड़सवारों के अतिरिक्त अन्य बातों में भी कम न थी। यदि कुछ महीने पहिले हैलेक ने जीवट से काम लिया होतां तो पश्चिमी सेनाएँ महान सफलताएँ प्राप्त कर सकतीं और यदि प्रारम्भ में बहुत बड़ी फौजें एकत्र करने का प्रयत्न किया जाता तो उनकी शिक्षा, संगठन व संचालन की कठिनाइयाँ किसी भी लाभ की तुलना में अधिक हो जातीं। बुयेल कुछ दिनों लुईविले में ही रहा। उसके पास भारी कुमुक आती रही। परन्तु वे सब नये भर्ती किये सिपाही थे। वहीं पर लिंकन ने उसको हटा दिया और उसके सहायक वरजीनिया निवासी टामस को नियुक्त कर दिया। यह नियुक्ति अच्छी रही। टामस उत्तर के उन चार सेनापतियों में से था जिन्होंने गृहयुद्ध में स्थायी महत्व पाया। परन्तु टामस को बुयेल के साथ किया गया अन्याय चुभा और उसने विशाल हृदय से उसका पक्ष लेते हुए एक पत्र द्वारा नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया। वास्तव में बात यह थी कि लिंकन ने अपने आदेशों को जारी होने से पहले ही रद्द कर दिया था, क्योंकि उसने यह समझ कर आज्ञा निकाली थी कि बुयेल केवल बचाव कर रहा है; परन्तु तुरन्त ही उसे समाचार मिल गया कि हमला प्रारम्भ हो गया और उस स्थिति में वह सेनाध्यक्ष बदलना नहीं चाहता था।

८ अक्तूबर को एक छोटी-सी आकस्मिक मुठभेड़ से युद्ध का प्रारम्भ हुआ। बुयेल के पास ५८०० सैनिक थे, ब्रेग के पास इससे आधे ही थे; पर थे सभी युद्ध में दक्ष। बुयेल अपनी अधिक संख्या का कोई लाभ नहीं उठा सका। इसमें टुकड़ी-नायकों का कसूर हो सकता है, क्योंकि उनसे ही भिड़न्त हुई और उन्होंने इसकी खबर उसे तुरन्त नहीं दी। बुयेल की सेना पर कड़ा वार हुआ और उसे भारी क्षति हुई। इसका उत्तर में बुरा प्रभाव पड़ा और जो जनविरोध केण्टकी पर दक्षिणी हमला होने के समय आरम्भ हुआ था, वह बढ़ गया। युद्ध के बाद ब्रेग पीछे हट गया और किरबी स्मिथ से जा मिला। उनकी सम्मिलित सेनाएं बुयेल की संख्या से बहुत कम नहीं थीं। परन्तु कुछ दिन बाद ब्रेग ने केण्टकी से हट जाने का निश्चय कर लिया क्योंकि उसे वहाँ सैनिक नहीं मिले। उसके इरादे को समझ कर बुयेल ने उसका कुछ दूर पीछा किया, परन्तु यह देख कर कि भारी सेना के लायक यह सड़क नहीं थी, नेशविले के उत्तर में रेल के किनारे-किनारे बाउलिंग ग्रीन पर पड़ाव डाल दिया। उसका इरादा यह था कि वह पतझड़ में नेशविले के कुछ दक्षिण पहुँच जाय और वहाँ से

चाटानूगा जाने के लिए ग्रीष्म तक रुका रहे। वाशिंगटन से उसको कहा गया कि वह तुरन्त चाटानूगा की ओर बढ़ जाय। परन्तु उसने दृढ़ उत्तर दिया कि मैं असमर्थ हूँ और यह भी कह दिया कि यदि सेनाध्यक्ष बदलना हो तो यह उपयुक्त अवसर है। अक्तूबर के अन्त में उसे हटा दिया गया। इस बीच में दक्षिणी फौज ने जो ग्राण्ट का सामना करने के लिए छोड़ दी गयी थी, उस पर हमला कर दिया। दो मुठभेड़ों में वह बुरी तरह हरा दी गयी। इस बार ग्राण्ट का सहायक जनरल रासक्रांस उत्तरी सेना का स्थानीय अध्यक्ष था। रासक्रांस को अब योग्य नायक समझा जाने लगा। वह उनमें से था जिनको तत्कालीन डींग हांकने वाले सैनिक तानाशाही के लिए उपयुक्त समझते थे। उसे अब बुयेल का स्थान दे दिया गया जिसे टामस ने लेने से इन्कार कर दिया था। वह नैशविले तक बढ़ा, परन्तु बुयेल की ही भाँति अड़ गया और जब तक उसको इतनी सामग्री नहीं मिल पाती कि रेल पर निर्भर न रहना पड़े, वह आगे नहीं बढ़ना चाहता था। अन्त में वह चाटानूगा की ओर करीब ३० दूर मील मरफ्रीबोरो पहुँच गया। यहाँ ३१ दिसम्बर १८६२ को ब्रेग ने थोड़े से सैनिकों के साथ उस पर हमला कर दिया और प्रारम्भिक सफलता प्राप्त कर ली, परन्तु शीघ्र ही रासक्रांस और उसके सहायक टामस और शेरीडान ने पासा पलट दिया। ब्रेग को भारी क्षति पहुँची और कुछ दिन रासक्रांस के पीछे लौटने की बाट देख कर वह चाटानूगा के निकट कम्बरलैण्ड पर्वतों में एक स्थान पर हट गया। इस प्रकार मरफ्रीबोरो की विजय उत्तर की विजय गिनी गयी। उससे हाल ही की फ्रेड्रिकबर्ग की हार का थोड़ा बदला मिल गया। परन्तु इसका कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं हुआ। लगभग छः महीने तक रासक्रांस आगे नहीं बढ़ा। उत्तर की सेनाएँ पर्वतों से पश्चिम में सम्पूर्ण टेनेसी पर १८६२ के पूर्वार्ध की अपेक्षा अधिक सुरक्षा से कब्जा किये रहीं, परन्तु मार्ग की कठिनाइयों के फलस्वरूप संचार साधनों की असुविधा और दक्षिणी घुड़सवार सेना अधिक समक्ष होने के कारण आगे नहीं बढ़ पायी। लिंकन ने जोर दिया था कि जिस क्षेत्र में वह हमला करे वहीं से खाद्य सामग्री एकत्र करें, परन्तु बुयेल और रासक्रांस ने इस विचार को अव्यावहारिक बताया। वास्तव में कुछ समय तक सभी उत्तरी सेनापति इसे अव्यावहारिक ही समझते रहे।

इस प्रकार चाटानूगा, जिस पर हैलेक द्वारा कोरिन्थ लिए जाने के बाद ही कब्ज़ा हो जाने की आशा थी, एक वर्ष से भी अधिक दक्षिणी सेना के हाथ

में रहा। बुयेल को हटा दिया जा चुका था क्योंकि उसी पर इस असफलता और केण्टकी पर भयानक हमले का दोष प्रारम्भ में डाला गया था। इससे असन्तोष ही पैदा हुआ। परन्तु मुख्य दोष तो हैलेक को ही दिया जा सकता है क्योंकि पश्चिम में सेनापति के रूप में उसकी गलतियों का ही यह परिणाम था। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि बुयेल में असाधारण सूझ या साहस था। यह मांग भी ठीक ही थी कि यदि मिल सके तो इन दोनों गुणोंवाला व्यक्ति ही नियुक्त किया जाय। परन्तु वह कम-से-कम सोच समझ कर ही काम करता था और अपनी योग्यतानुसार भरसक प्रयत्न करता था। उसकी आलोचना उसके सम्बन्ध में निकट जानकारी रखने वाले लोगों द्वारा भी बहुत हुई। यह आलोचना उसकी प्रत्यक्ष कठिनाइयों को देखे बिना अथवा जिस स्तर से उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए था उसका खयाल किये बिना ही की गयी थी। अतः वह मेक्लीन से भी अधिक अयोग्य सेनापति माना गया। लिंकन, निःसन्देह उसके कार्य पर उसी प्रकार ध्यान देता रहा जिस प्रकार वह रासक्रांस के कार्यों पर देता था। असन्तुष्ट होकर उसने उसे साहसहीन और जिद्दी करार दे दिया। कुछ मामलों में तो पश्चिमी सेनाध्यक्षों के साथ व्यवहार में उसके प्रशासन का भी दोष था। यह एक साधारण राजनीति की बात हो गयी कि युद्ध में विजय पाने का तरीका यह बन गया कि हारे हुए सेनापतियों के साथ इतनी कठोरता का व्यवहार किया जाय जितनी फ्रान्स की राजक्रान्ति के दौरान में किया गया था। लिंकन उस हद तक नहीं गया। लेकिन उसके ही अधिकार से हैलेक ने अनिच्छा होते-हुए भी बुयेल को हटाने के पहिले पश्चिम के सेनापतियों में यह भावना पैदा करने के लिए पत्र लिखा कि जो पहिले महत्वपूर्ण कार्य करेगा उसे तरक्की दी जायेगी। बाद में निःसन्देह ही लिंकन की अनुमति से ग्राण्ट और रासक्रांस को यह बताया गया कि उन दोनों में से जो पहिले विजय-लाभ करेगा उसे संयुक्त राष्ट्र की सेना के मेजर जनरल का पद दिया जायेगा। अपने कार्यों के प्रति वास्तविक अभिमान रखने वाले व्यक्तियों के साथ इस प्रकार व्यवहार करना ठीक नहीं था। यह उन थोड़े ही मामलों में से है जिनमें लिंकन ने भूल की। यह भूल उसकी स्वाभाविक उदारता के कारण नहीं बल्कि युद्ध-कौशल के अभाव के कारण हुई। परन्तु अधिकांश में उसने यह प्रश्न ठीक ढंग से ही सुलझाया। बुयेल के साथ औरों की भाँति उसे भी असंतोष था। परन्तु वह उस वक्त तक परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं था जब तक कि यह परिवर्तन इससे अच्छा सिद्ध न हो। टामस की नियुक्ति वास्तव में बुरी

नहीं थी। उस समय ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि योग्य उत्तराधिकारी मिल जाने पर भी बुयेल को रखना मूर्खता होती, क्योंकि इण्डियाना का गवर्नर युद्धकालीन गवर्नरों में से योग्यतम था, और जिन पर बुयेल निर्भर था, वे अब मिल कर उसका विरोध कर रहे थे। इस विरोध की ओर ध्यान न देना गलत था। लिंकन को पूर्व के सेनापतियों की भाँति पश्चिम वालों से व्यक्तिगत पहचान नहीं थी। इसलिए वह इस बात के लिए लगातार प्रयत्नशील रहता था कि उनके सम्बन्ध में यथासम्भव स्पष्ट और पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ले। वह हमेशा मनुष्यों को आँकता रहता था और आकस्मिक आगन्तुकों से बेकार की गपशप करके जो उसे छोटी-छोटी घटनाएँ बताते या नया खयाल दे जाते, वह गम्भीर बातें मालूम कर लेता था। युद्ध के पूर्वार्ध में उच्च सेनाधिकारियों की खोज उसके शासन के लिए सबसे कठिन समस्या रही। इसमें सन्देह नहीं कि वह गुणी व्यक्ति को खोज निकालने और पदवृद्धि करने के लिए हमेशा यत्नशील रहता था। उसको वास्तव में यह जँच गयी थी कि उसके कुछ सेनापतियों में युद्ध-संचालन के लिए आवश्यक जीवट और निडरता की कमी है। यह बात कुछ सेनापतियों के बारे में चाहे गलत हो परन्तु साधारण तौर पर ठीक थी। दूसरी ओर यह भी विचारणीय था कि अपनी युद्धशक्ति कम होने के कारण उसका प्रभाव घट रहा था और इसका उसे ध्यान था। उस पर हर प्रभावशील क्षेत्र से यह दबाव पड़ रहा था कि जो जनरल हारे उसे हटा दिया जाय। उस समय के समाचारपत्र और निजी पत्र यह प्रगट करते हैं कि विजयी जनरल न ढूँढ पाने के कारण उसके विरुद्ध भारी असन्तोष फैला था। इस स्थिति में उसकी अपनी स्थिरता, और अपने मातहत लोगों को काफी मौका देने का उसका निश्चय बड़ा ही महत्वपूर्ण और समझदारी का था।

यह ऐसा अवसर था जब लिंकन के सभी विरोधी शांत नहीं हो गये थे; फिर भी उसकी मानसिक उलझनें खत्म होने जा रही थीं। पश्चिम के युद्ध की चर्चा करते समय हम देखते हैं कि कैसे लिंकन ने एक असफल सेनापति का साथ देना ठीक समझा और उसी असफल सेनापति में वही गुण थे, जिन्हें वह अन्यत्र खोज रहा था। जनरल ग्राण्ट की प्रसिद्धि का विरोधी रूप संसार को अच्छी तरह ज्ञात है। युद्ध के पूर्व तक वह एक अजाना सैनिक मात्र था। १८६२ की पतझड़ के पूर्व जब उसकी सेना कोरिन्थ और मेम्फिस के बीच में पड़ी थी, उसकी गतिविधि पर असफलता के बादल छाये

हुए थे। डोनेलसन किले पर विजय प्राप्त कर लेने पर भी अधिकांश लोग उसे केवल अयोग्य और अक्खड़ ही समझते थे। अपने जीवन की सबसे बड़ी सफलता उसे भयंकर रक्तपात के बाद मिली थी, जिसके कारण अधिकांश लोगों में उसकी निर्दयता और अयोग्यता ही चर्चा का विषय बनी रही। आठ वर्ष तक राष्ट्रपति बने रहने से भी उसकी ख्याति नहीं फैली। बाद में जब वह सम्मानित होकर यूरोप गया तो सर्व साधारण पर यही प्रभाव पड़ा कि वह एक अशिष्ट व्यक्ति है। इस प्रकार ग्राण्ट को हम उसके थोड़े से सच्चे और प्रेमी मित्रों के तथा अपने संस्मरणों में जो उसने जीवन की संध्या में दरिद्र हो जाने पर लिखने आरम्भ किये और मृत्यु की यातनाओं के बीच समाप्त किये, आश्चर्यजनक और कुछ अर्थों में दमनीय व्यक्ति के रूप में पाते हैं। जिस समय उसे सैनिक शिक्षा के लिए उसके पिता ने वेस्टपाइन्ट भेजा उस समय वह एक लज्जाशील देहाती युवक था, जो खेती के सभी कामों में तत्पर रहता था और कुशल अश्व-चालक भी था। परन्तु सफल किसान बनने की आवश्यक योग्यता उसमें न थी। वहाँ उसने अधिक सफलता नहीं प्राप्त की और न अपने मित्र ही बना पाया। उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वह सेना को छोड़ कर गणित का अध्यापक बनने की इच्छा करने लगा। परन्तु उसीके शब्दों में मानव-इतिहास में सबसे अधिक न्यायशून्य मैक्सिको युद्ध छिड़ गया और जैसा कि बाद में वह सोचता था, उसने अपने-आप को खुली आबहवा में रख कर तपेदिक से बचा लिया। उसके बाद उसने सेना से अवकाश ग्रहण किया, पर खेती तथा अन्य सभी प्रयत्नों में असफल रहा। जब गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो उन्तालीस वर्ष की आयु में भी वह अटपटा और साधनहीन व्यक्ति बना रहा। शराब में वह जैसे डूबा ही रहता था और अपने पिता के चमड़े के उद्योग में कभी-कभी हाथ बटा लेता था। वह अव्यावहारिक तथा अशिष्ट था। उसमें मिलनसारी, चुस्ती, योग्यता और सामाजिक व्यवहारों की बेहद कमी थी। ऊपर से रुखा नज़र आते हुए भी वह सरल स्वभाव का, सच्चा, उदार और लज्जाशील व्यक्ति था। उसकी विभिन्न विषयों में अधिक रुचि नहीं थी। उसमें गूढ़ भावनाएँ, विनोदप्रियता भी अधिक नहीं थी। वह सदा अपने सामने प्रस्तुत समस्याओं को गम्भीरता से लेता था और जहाँ संवेदनशील होना आवश्यक होता वहाँ वह अत्यन्त संवेदनशील था। उसके मित्रों का कहना है कि वह बहुत ही कम क्रोध करता था। केवल एक अवसर ऐसा है जब वह क्रोध से उबल उठा था। उसकी रसद-गाड़ी में चालकों द्वारा जानवरों, घायलों और बीमारों के

प्रति बरती जानेवाली लापरवाही ऐसी थी जिसे वह कभी सहन नहीं कर सकता था, अन्यथा उसने कभी भूल कर भी अपनी स्वाभाविक गंभीरता व मानसिक संतुलन को नहीं खोया। ग्रान्ट ने अपनी सेना में हब्शियों की देखभाल के लिए पादरी ईटन को नियुक्त किया था। इस कारण वह ग्रान्ट को निकट से समझ सका था। ईटन ने लिखा कि वह सदा ही गंभीर समस्याओं के भार से दबे रहने पर भी छोटे-से-छोटे मजदूर की भलाई के बारे में पूर्ण सहृदयता के साथ चिंतित रहता था। ऐसी कई बातें हैं जहाँ उसकी कोमल भावनाओं की झलक मिलती है। एक बार एक होटल की भीड़ में जिसमें वह साधारण व्यक्ति की भाँति मिल गया था वहाँ उसके मातहत एक बूढ़े अफसर ने उसके मनोरंजन के लिए एक कामुक कहानी कह डाली। उसका ख्याल था कि ग्रान्ट इससे अप्रसन्न नहीं होगा। ग्रान्ट ने उस अफसर की वृद्धावस्था का लिहाज करके उसके साथ कड़ा व्यवहार नहीं किया, लेकिन उसका चेहरा तमतमा उठा। शर्म और ग्लानि से उसका रोम-रोम सिहर उठा। इस प्रकार की कई विलक्षण छोटी-छोटी बातें हैं जिन्हें आसानी से उद्धृत किया जा सकता है। उसने जो कर्तव्यपरायणता दिखायी उसके साथ इन घटनाओं का उल्लेख उसे महानता की श्रेणी में रख देता है। राष्ट्रपति-पद के लिए इस तरह का सरल व्यवहार ही पर्याप्त नहीं था। भले ही इस व्यवहार से उसके मित्र प्रभावित थे परन्तु वह इस तरह की सरलता के आधार पर ही अपने को राष्ट्रपति-पद के योग्य समझ बैठा था। लिंकन के साथ ग्रान्ट की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वह लिंकन से कोसों दूर था। लिंकन उसे सबसे अधिक चाहता था। सैनिक योग्यता उसमें चाहे जितनी रही हो उसमें सेनापति के लिए आवश्यक नैतिक गुण अवश्य थे। यह भावना कि हम युद्ध में सफल हो सकते हैं और हमें सफल होना ही है उसमें कूट-कूट कर भरी थी। वह अपने व्यक्तिगत संकट की परवाह नहीं करता था, लोगों की उसके बारे में यही राय थी। परन्तु वह इस बारे में दूसरा ही दृष्टिकोण रखता था। वह युद्ध में क्षति अथवा आक्रमण में असफलता पाने पर भी अपने दिमाग को संतुलित रखता था। वह कभी इस बात की कल्पना नहीं करता था कि शत्रु क्या कर रहा होगा? वह हमेशा यही मानकर चलता था कि शत्रु उससे उतना ही डरता है जितना वह शत्रु से। उसकी सैनिक योग्यता निर्भीकता व दृढ़ता के कारण अधिक प्रभावशाली बन गयी थी। यह कहा जा सकता है कि वह राजनीतिक गुणोंवाला सेनापति था क्योंकि वह हमेशा अपनी सरकार के उद्देश्यों को सामने रखता था। एक मानें में उसमें यह गुण अच्छा सिद्ध हुआ।

उसने पहले ही समझ लिया था कि युद्ध का अन्त दो प्रकार से हो सकता है। या तो दक्षिण को पूरी तरह काबू में करके अथवा गणराज्य के नष्ट हो जाने पर। उसने यह पहिले से ही जान लिया था कि उत्तर के साधन तो अपरिमित हैं परन्तु उत्तर की जनता में साहस अन्त तक नहीं बना रहेगा, ऐसा खतरा है। इसके विपरीत दक्षिण की स्थिति दूसरी तरह की थी। अतः वह सैनिक के रूप में राष्ट्र की सेवा अधिक अच्छी तरह कर सकता था, क्योंकि उस स्थिति में विजय या असफलता से हुए व्यापक प्रभाव को जान सकता था।

दक्षिण के सेनापति ली और जेक्सन के बीच जैसी प्रगाढ़ मैत्री थी वैसी ही उत्तर में आपसी विश्वास व मित्रता सेनापति ग्राण्ट और उसके सहायक सेनापति विलियम शरमन में भी हो गयी थी। युद्ध की समाप्ति में ग्राण्ट के जितना ही महत्वपूर्ण हाथ शरमन का भी था। शरमन तत्काल निर्णय लेने की सूझबूझ वाला व्यक्ति था। वह खुशमिजाज था तथा उसमें बच्चों जैसी चपलता पायी जाती थी। इसके अतिरिक्त वह अपने सुस्त सेनानायकों के लिए कठोर सेना-पति भी था। वह हमेशा यह मानता रहा कि ग्राण्ट ने उसे केवल विश्वासपात्र ही नहीं माना बल्कि अपना उदाहरण उसके सामने रख कर उसको सुयोग्य भी बनाया। यह उस जैसे कुशल सैनिक और ग्राण्ट के लिए श्रेय की बात है।

ग्राण्ट को मेम्फिस और कोरिन्थ के बीच रक्षात्मक युद्ध के लिए जमे रहना था। बुयेल चाटानूगा की ओर बढ़ रहा था। बाद में जब दक्षिणी सेना केण्टकी पर और पूर्व में हमला कर रही थीं उस समय ग्राण्ट पर भी आक्रमण किये गये, जिससे वह दूसरी ओर नहीं बढ़ सका। उसने शत्रु को मार भगाया हालांकि वह उस समय इस सफलता का लाभ उठाने के लिए आगे नहीं बढ़ सका। जब केण्टकी का धावा बेकार हो गया और ब्रेग की दक्षिणी सेनाएँ उत्तर की सेनाओं के सामने मध्य टेनेसी में से पीछे हट रही थीं तो ग्राण्ट, हैलेक और उत्तर की सरकार के लिए यह प्रबल सम्भावना हो गयी कि अब मिसीसिपी नदी की विजय पूरी की जा सकेगी। दक्षिण के लिए मिसीसिपी का जो महत्व था वह पहिले बताया जा चुका है। यदि मिसीसिपी पर उत्तर का अधिकार हो जाता तो संपूर्ण दक्षिणी-पश्चिमी भूभाग भी दक्षिणके हाथ से चला जाता। उत्तर में जनमत की यह प्रबल भावना थी कि किसी भी तरह इस महानदी पर नौका संचालन की अड़चनें दूर हो जाना आवश्यक है। दक्षिण वालों के हाथ में यह नदी विक्सबर्ग किले से लेकर १२० मील दूर दक्षिण में हडसन बन्दरगाह तक थी। यहाँ हडसन में एक सर्वोत्तम स्थान कब्जे में करके उस पर उत्तर ने किलेबंदी

कर ली थी। विक्सबर्ग मेम्फिस से अथवा मेम्फिस और कोरिन्थ के बीच ग्राण्ट जंक्शन से १७५ से १८० मील दूर दक्षिण में है। ग्राण्ट इन तीनों स्थानों को सेना के लिए आधार बना सकता था। ये ही उत्तर के हाथ में थे। विक्सबर्ग और कुछ दूर दक्षिण में लम्बी एक पर्वत श्रेणी मिसीसिपी के पूर्व में नदी के ठीक किनारे तक फैली हुई है। नदी का प्रवाह यहाँ से अचानक पहले उत्तरपूर्व की ओर, फिर दक्षिण-पश्चिम की ओर बहता है। नदी के ये दो मार्ग विक्सबर्ग की तोपों की मार में थे। ये तोपें घाटी से २०० फुट ऊपर स्थित थीं। किले का पूर्वी भाग और तलहटी का हिस्सा भी बचाव की दृष्टि से अच्छी स्थिति में था। विक्सबर्ग के उत्तर में मिसीसिपी का पूर्व प्रदेश नदी के डेल्टे में स्थित है। यहाँ की जमीन दलदली है और नदी विभिन्न धाराओं में बट गयी है और उनके किनारे घने जंगल हैं। नौ सेनापति पोर्टर की अध्यक्षता में उत्तर की नौ सेना का मिसीसिपी पर कब्जा था। उत्तर की सेनाएँ नदी के पश्चिमी किनारे पर विक्सबर्ग और उससे कुछ दूर तक निर्विघ्न घूम सकती थीं, परन्तु ग्राण्ट और सरकार के सामने यह जटिल प्रश्न था कि विक्सबर्ग के निकट खुले भाग में शत्रु पर आक्रमण के लिए सेना को कैसे उतारा जाय।

ग्राण्ट का कार्य नवम्बर १८६२ में प्रारम्भ हुआ। वह अपनी अधिकांश सेना लेकर मेम्फिस से रेल के सहारे दक्षिण को बढ़ा। कुछ समय बाद उसने शरमन को एक टुकड़ी देकर मिसीसिपी में याजू नदी के संगम तक जाने के लिए, जो विक्सबर्ग से कुछ उत्तर पश्चिम है, भेज दिया। योजना यह थी कि यहाँ शरमन उतर जाय और विक्सबर्ग स्थित शत्रु पर अकस्मात् धावा बोल दे, क्योंकि शत्रु की अधिकांश फौज तो उत्तर से आती हुई ग्राण्ट की सेना को रोकने में लगी रहेगी। ग्राण्ट की सेना का रसद-मार्ग दक्षिणी घुड़सवार सेना के हमले द्वारा काट दिया गया था और उसे लौटना पड़ा। इधर शरमन जब पहुँचा तो शत्रु पूरी तरह तैयार था और फ्रेड्रिक्सबर्ग में बर्न साइड की हार से पन्द्रह दिन बाद ही उसकी सेना हार गयी। उत्तर की असफलताओं में से यह पहली थी। इतने पर भी ग्राण्ट को, जो सरकार के साथ अपने सम्बन्धों में विशिष्ट रूप से सच्चा और राजभक्त था, पूर्ण विश्वास और सहायता मिलती रही। इस समय एक ऐसी घटना हो गयी जिससे ग्राण्ट के लिए बड़ी कठिनाई पैदा हुई। उसकी सामान्य बातों की चर्चा जरूरी है क्योंकि यही एक आखिरी अवसर था जिस पर लिंकन के सैनिक प्रशासन की अन्तिम आलोचना की गयी। जनरल मेक्लर्नेंड इल्लीनायस का एक महत्वाकांक्षी चतुर, साहसी वकील तथा राज-

नीतिज्ञ था। वह लिंकन का पूर्वपरिचित विरोधी भी था। डगलस की मृत्यु के बाद इल्लीनायस में वह और एक दूसरा वकील लोगन सबसे अधिक शक्तिशाली डेमोक्रेट थे। लोगन ग्राण्ट के मातहत सेनापति के पद पर प्रतिष्ठापूर्वक काम करता था। यह दुहराना आवश्यक नहीं है कि योग्य व्यक्तियों की कमी के कारण उत्तर और दक्षिण में नागरिक प्रशासक लोगों को सैनिक पदों पर रखना पड़ रहा था। उनमें से बहुतों ने, लोगन की तरह, अथवा दक्षिणी सेनापति पोल्क की तरह, जो अमरीकी ऐपिस्कोपल गिरजे में पादरी था, बहुत अच्छी सेवाएँ की थीं। मैक्लनेंड ने जल्दी ही उच्च पद प्राप्त कर लिया और जब कि ऐसे अन्य लोगों की सैनिक रुचि घट गयी उसकी सैनिक रुचि कम नहीं हुई थी। ग्राण्ट उस पर अविश्वास करता था, लेकिन यह अनुचित सिद्ध हुआ। अक्टूबर १८६२ में मैक्लनेंड लिंकन के पास आया और उसने सुझाया, "मैं मिसीसिपी को शत्रु से मुक्त करने के लिए स्वयं इल्लीनायस इण्डियाना और आयोवा से सेना खड़ी कर सकता हूँ।" वह स्वयं ही इस कार्य पर लगाये जाने की भी आशा करता था। उन दिनों भर्ती बहुत कम हो पा रही थी और इस प्रस्ताव को ठुकराना उचित नहीं था। मैक्लनेंड ने इतने स्वैच्छिक सैनिक इकट्ठे कर लिये थे कि उनसे वास्तव में एक सैनिक टुकड़ी खड़ी की जा सकती थी। ग्राण्ट की मातहती में उसे मिसीसिपी पर हमलावर टुकड़ी ले जाने के लिए नियुक्त कर दिया गया। यह आक्रमण पहिले शरमन प्रारम्भ कर ही चुका था। शरमन की क्षमता अभी ग्राण्ट के अतिरिक्त और कोई नहीं मानता था, काँग्रेस की संयुक्त कमेटी इसके विरुद्ध हो गयी थी। कुछ समय पहिले ही समाचारपत्रों ने यह घोषणा कर दी थी कि वह पागल हो गया है। विक्सबर्ग में शरमन की हार हो जाने के बाद ही मैक्लनेंड आ पहुँचा और उसने सुझाव रखा कि दक्षिणी सेनाओं के मजबूत किले अरकनसास चौकी पर हमला किया जाय। यह किला इसी नाम की नदी के किनारे पर था जहाँ से विक्सबर्ग पर तोपधारी नौकाएँ हमला कर सकती थीं। यह हमला जनवरी १८६३ के प्रारम्भ में सफल हो गया और फिर उसे ग्राण्ट की अध्यक्षता में काम करने को बुला लिया गया। मैक्लनेंड की रही-सही आशा भी जाती रही क्योंकि वह ग्राण्ट से स्वतंत्र रह कर काम करना चाहता था। इस आक्रमण के बाद वह अयोग्य सिद्ध हुआ। वह निश्चय ही ग्राण्ट की आधीनता स्वीकार नहीं करना चाहता था और उसके विरुद्ध षड्यंत्र भी करने लगा था। जब ग्राण्ट ने प्रशासन से कहा कि वह मैक्लनेंड से सन्तुष्ट नहीं है तो

तुरन्त ही उसे विश्वास दिलाया गया कि वह उसे नायक-पद से हटाने के लिए स्वतंत्र है। आखिरकार कुछ महीने की जाँच के बाद उसने उसे हटा दिया।

१८६३ के प्रारंभिक तीन महीनों में फ्रेड्रिकबर्ग के युद्ध से छिन्न-भिन्न पोटोमक की सेना को पुनः संगठित किया जा रहा था। इस सेना द्वारा ली की सेना पर आक्रमण चांसलरविले में किया गया। मध्य टेनेसी क्षेत्र में ब्राग व रासक्रांस आमने-सामने डटे हुए थे। दोनों को यह सन्तोष था कि वे लोग मिसीसिपी क्षेत्र में सेना भेज कर अपनी स्थिति कमजोर नहीं होने देंगे। ग्राण्ट ने पहले जो आक्रमण किये थे उनसे भी अधिक सजगता के साथ नये आक्रमण किये गये, परन्तु उसका प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुआ। विक्सबर्ग किले के पश्चिम में मिसीसिपी के मोड़ के आर-पार नहर बना कर किले को महत्व-हीन करने की कोशिश की गयी। तब एडमिरल पोर्टर तथा उसकी नौसेना की मदद से याजू पर ग्राण्ट ने सुरक्षित सेना उतारने का प्रयास किया। याजू विक्सबर्ग से जरा ऊपर मिसीसिपी में मिलती है। इस मार्ग से वह अपनी फौजें विक्सबर्ग के पिछले भाग में उतार सकता था। इसके बाद ग्राण्ट और पोर्टर ने मिसीसिपी के बहुत ऊपर से कई दिनों से बन्द पड़े जलमार्ग में होकर याजू नदी के मुहाने की ओर से विक्सबर्ग के उत्तर पूर्व सेना उतारने का प्रयत्न किया। इस मार्ग से दक्षिण की मुख्य सेना के दाहिने पहुँचा जा सकता था परन्तु यह उपाय दक्षिण ने याजू नदी पर एक दृढ़ किला बनाकर बेकार कर दिया। एक बार फिर जलमार्ग बनाने की कोशिश की गयी। इस बार विक्सबर्ग से लगभग ४० मील उत्तर में एक नहर में होकर झीलों तथा नदी की धाराओं में से सेना ले जाने का भी उपाय किया गया। याजू की एक बड़ी सहायक नदी रेड जो सुदूर दक्षिण में है, उसमें जा निकलने का प्रयत्न किया गया। इस योजना के सफल होने से विक्सबर्ग किले पर आक्रमण किया जा सका था। दक्षिण ने इन सारी योजनाओं को बेकार कर दिया। इन कार्यों के लिए इंजीनियरी सूझ-बूझ व अथक परिश्रम की ज़रूरत थी। खराब मौसम और ग्राण्ट के सिपाहियों के बीमार होने के कारण सैनिक पस्तहिम्मत हो गये। सेना के स्वाभाविक असन्तोष का उत्तर में भी बुरा प्रभाव पड़ा तथा उसने उग्र रूप धारण कर लिया। मैक्लर्नेंड ने षड्यंत्रों को क्रियात्मक रूप दे दिया। उसे अभी हाल ही में सेनानायक का पद दिया गया था। खेद की बात है कि बहुत से अखबारों ने उस समय ऐसे समाचार छापने आरम्भ कर दिये कि ग्राण्ट फिर से शराब में धुत रहने लगा है। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इन दिनों वह शराब को

छूता भी नहीं था। यह कहा जाता है कि जिन लोगों ने उसके साथ यह शैतानी की थी उन्हें ग्राण्ट ने पहले युद्धों के समाचारों पर प्रतिबन्ध लगा कर नाराज कर दिया था, क्योंकि वह यह आवश्यक समझता था कि युद्ध के समाचारों पर प्रतिबन्ध रहे। कुछ ने तो बाद में स्पष्ट स्वीकार किया कि वह इन दिनों नहीं पीता था परन्तु उन्होंने आश्चर्यजनक रूप से क्षमा-याचना करते हुए कहा कि उनका काम तो जनता को समाचार देना है। योग्य तथा अधिक ईमानदार पत्रकारों ने इस बात पर जोर दिया कि ग्राण्ट ने अपनी अयोग्यता सिद्ध की है। चेस ने उनकी शिकायत पर ग्राण्ट के हटाये जाने के लिए जोर दिया। ग्राण्ट के विरोध के जोर पकड़ने के पहिले ही लिंकन ने मिसीसिपी की स्थिति के बारे में और विस्तृत जानकारी की आवश्यकता महसूस कर ली थी। उसको एक उपाय भी मिल गया। उसने युद्ध विभाग के एक योग्य अफसर को जिसने ग्राण्ट तथा उसके आधीन अफसरों का विश्वास प्राप्त कर लिया था पश्चिमी सेना के साथ जाने और समाचार भेजने के लिए तैयार कर लिया। इस प्रकार जानकारी प्राप्त करने के बाद भी लिंकन ग्राण्ट के विरुद्ध प्रचार से घृणा करता था। वह कहता, "मैं उस सेनापति को छोड़ नहीं सकता क्योंकि वह वीर सैनिक है।" ग्राण्ट के शराब पीने की शिकायत होने पर वह पूछता कि वह कौनसी शराब पीता है, फिर कहता कि मैं दूसरे सेनापतियों को भी ऐसी ही शराब भेजना चाहता हूँ। दिसम्बर में ग्राण्ट द्वारा असफल हो जाने के बाद उसने कभी भी उसकी योजना को पसन्द नहीं किया था। फिर भी ग्राण्ट के प्रति उसका यह व्यवहार उल्लेखनीय है। लिंकन की यह कामना थी कि ग्राण्ट उसी मार्ग को प्रारम्भ में ही अपनाता तो अच्छा रहता जिस मार्ग पर चल कर वह अंत में सफल हुआ। लिंकन ने ग्राण्ट की सैनिक गतिविधि में हस्तक्षेप नहीं किया। उसने बाद में कहा भी कि उसे यह आशा थी कि ग्राण्ट खुद सैनिक मामलों का उससे अधिक जानकार था।

मार्च के अन्त में ग्राण्ट ने एक उल्लेखनीय निश्चय किया कि अपनी संपूर्ण सेना को विक्सबर्ग के दक्षिण में ले जाय और उस ओर से विक्सबर्ग पर पहुँचे। शरमन ने उसे जोर देकर कहा कि वह नदी के उपयोग को बिलकुल ही भूल जाय, अपनी पूरी सेना वापिस मेम्फिस लायी जाय और रेल से धीरे-धीरे ही सही फिर से विक्सबर्ग की ओर बढ़ा जाय। उसने स्वयं माना कि सैनिक समझदारी के आधार पर तो यही उचित तरीका था परन्तु उसका निश्चय था कि मेम्फिस लौटने से जो निरुत्साह छा जायेगा वह राजनैतिक तौर पर बहुत बुरा

होगा। विक्सबर्ग के ३० मील दक्षिण में ग्राण्डखाड़ी पर नदी के किनारे दक्षिणी सेना के कब्जे में एक और सुसज्जित किला था। यहाँ तक पहुँचने के लिये ग्राण्ट को नौसेना की मदद आवश्यक थी ताकि पश्चिमी किनारे से इसे पार किया जा सके और वहाँ सामग्री पहुँचायी जा सके, क्योंकि नदी के किनारे की पश्चिमी सड़कें इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं थीं। नौ-सेनापति पोर्टर अपनी तोपधारी नावों, भारवाही जलयानों को रात में विक्सबर्ग की तोपों की नाक के नीचे होकर निकाल ले गया और उसे कोई विशेष क्षति नहीं पहुँची। ग्राण्डखाड़ी ३ मई को जीत ली गयी और ग्राण्ट की सेना इस नये अड्डे पर जम गयी। अब एक नयी शंका उठ खड़ी हुई। लुइसियाना में जनरल बैंक्स इसी समय हडसन बन्दरगाह को घेरने की तैयारी कर रहा था। ग्राण्ट के लिए यह अच्छा मौका था कि वह दक्षिण में जाता और उसकी सहायता करता। हडसन बन्दरगाह पर कब्जा करने के बाद बैंक्स की सेना लेकर वह विक्सबर्ग पर पिल पड़ने की स्थिति में आ सकता था। लिंकन को भी उस समय यही ठीक लगा। उसने उसे बधाई का पत्र भेजा और लिखा कि पहिले ग्राण्ट की जो राय थी वह अधिक सही थी। उसने यह मंजूर किया कि उस समय वह गलती पर था। बैंक्स अभी बढ़ने के लिए तैयार नहीं था और विक्सबर्ग, जिसके विरुद्ध पूरी तैयार हो चुकी थी, शत्रु द्वारा शीघ्र ही और मजबूत किया जा सकता था। ग्राण्ट को बैंक्स से जा मिलने की आज्ञा—हालांकि बहुत कुछ उसकी मर्जी पर छोड़ दिया गया था—वास्तव में भेज दी गयी थी। परन्तु यह आदेश वहाँ कई दिनों बाद पहुँचा। उसने ग्राण्डखाड़ी वाला अड्डा छोड़ दिया था और अपनी सेना का अभियान उत्तर की ओर कर दिया था। उस रास्ते से अधिक रसद ले जाना कठिन था। उसने सैनिकों को आदेश दिया कि वह जितनी सामग्री साथ ले जा सकें, ले लें और मार्ग में जो कुछ मिले उससे काम चलायें। उसके साथ पैंतीस हजार सिपाही थे, जनरल पेम्बर्टन बीस हजार सैनिकों के साथ विक्सबर्ग में डटा हुआ था। ग्राण्ट की सेना को अभी तक इससे ही मुकाबला करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त नगर में कुछ और शत्रु-सेना थी। जोसफ जोन्सटन को, जिसने सारे युद्ध में दक्षिण की ओर से उसे सबसे अधिक सताया था, जफरसन डेविस ने पश्चिम का सर्वोच्च सेनाध्यक्ष बना कर भेजा। विक्सबर्ग से ४५ मील पूर्व मिसीसिपी की राजधानी जैक्सन में उसने ग्यारह हजार सैनिक एकत्र कर लिये थे। ग्राण्ट ने शत्रुसेना की अच्छी तरह खबर ली। उसने जान्सटन की शक्ति को छिन्नविच्छिन्न

करने के बाद पेम्बर्टन को कई मुठभेड़ों में हराया। १६ मई को चेम्पियन पहाड़ी पर, चान्सलर विले के बाद १५ दिन से भी कम समय में प्राप्त हुई इस विजय से उसको यह विश्वास हो गया कि उत्तर अवश्य विजयी होगा। विक्सबर्ग पर जो हमला किया गया उसमें भारी क्षति हुई और वह असफल रहा। पेम्बर्टन को अंत में विक्सबर्ग में ही अधिक उलझ जाना पड़ा और इस तरह ग्राण्ट के लिए मिसीसिपी और याजू नदी द्वारा उत्तर से सम्पर्क स्थापित करने का रास्ता साफ हो गया। पेम्बर्टन और जोन्सटन में पहले से ही मतभेद था, जोन्सटन का खयाल था कि जब शत्रु की तोपधारी नावें हर हालत में विक्सबर्ग होकर निकल जाती हैं और पेम्बर्टन की वह मदद नहीं कर सकता है तो उसे विक्सबर्ग छोड़ कर अपनी सेना को बचाना चाहिए। इस से बहुत पहले कि ग्राण्ट पर हमला करने के लिए जान्सटन के पास कुमुक आये, ग्राण्ट की सेना बढ़ा कर पचहत्तर हजार कर दी गयी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के दिन ४ जुलाई १८६३ को विक्सबर्ग ने हथियार डाल दिये। ग्राण्ट ने दुर्गरक्षकों की—जिन्होंने बहुत ही कष्ट सहे थे—खूब अच्छी आवभगत की और उन्हें अपने ही वचन पर घर जाने के लिए छोड़ दिया। पेम्बर्टन ने चिढ़ कर ग्राण्ट के साथ अभद्रता का व्यवहार किया। परन्तु इसके बावजूद विजयी ग्राण्ट ने उसके प्रति बहुत अच्छा व्यवहार करके अपनी सहृदयता का परिचय दिया। राष्ट्रपति को भेजे गये संवादों में ग्राण्ट ने यही बात सब से अधिक गर्व के साथ लिखी कि "मेरे आदमियों द्वारा एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा गया जिससे विजित पक्ष की भावनाओं को ज़रा भी ठेस लगे।" जोन्सटन को जैक्सन नगर से बहुत भारी सामग्री शरमन के लिए छोड़ कर भागना पड़ा। परन्तु उसका पीछा नहीं किया जा सका। पाँच दिन बाद ९ जुलाई को हडसन बन्दरगाह के रक्षकों ने, जिसे कुछ ही दिन पहिले बैंक्स ने घेर लिया था परन्तु हमले के लिए उसके पास काफी सेना नहीं थी, विक्सबर्ग का समाचार सुनकर हथियार डाल दिये। अब लिंकन उत्तर में गर्व के साथ यह कहता था कि मिसीसिपी अब निर्बाध रूप से समुद्र से मिलने को जाती है, अर्थात् अब मिसीसिपी नदी से लेकर समुद्र तट तक उत्तर का संचार वहन है। विक्सबर्ग की विजय के साथ ही लिंकन तीन दिन पहले से ही एक और विजय के समाचार दे रहा था। विक्सबर्ग और इस दूसरी विजय से युद्ध का नकशा ही बदलने लगा, चांसलरविले के युद्ध के बाद पूर्व में दोनों पक्षों की सेनाएं एक महीने से अधिक समय से निष्क्रिय पड़ी रहीं। फौज में अनिवार्य भर्ती का कानून अभी पास हुआ था। उत्तर में असन्तोष और राजद्रोह

फैलाने वाले लोग अनेक प्रकार से सक्रिय थे। ऐसा मालूम होता है कि जेफर-सन डेविस ने उत्तर पर हमला करके सैनिक संकट मोल लेने में कोई राजनैतिक लाभ नहीं समझा। ली का विचार दूसरा ही था और वह अपनी सफलता को आगे बढ़ाना चाहता था। अन्त में जून १८६३ में वह उत्तर की ओर चल दिया। इस बार वह पेन्सिलवेनिया के महान औद्योगिक क्षेत्रों को लक्ष्य बना कर चला। साथ ही उसका उद्देश्य यह था कि हुकर को वाशिंगटन से दूर हटाया जाय। पहले यह समाचार पाकर कि ली रापानोक पार कर चुका है, हुकर ने सोचा कि वह स्वयं दक्षिण जाये और रिचमण्ड पर हमला करे। लिंकन ने हुकर की इस योजना का विरोध करते हुए उसे सुझाया कि वह इस तरह मार्ग में पड़ने वाली नदी पार करने के पश्चात्, शत्रु-सेना के आक्रमण कर देने पर संकटजनक स्थिति में फँस जायेगा। उसकी हालत उस बैल की तरह होगी जो कटघरा लांघते समय बीच में ही अटक जाता है। इस तरह वह कई दिनों तक रिचमण्ड नहीं ले पायेगा और उसका मार्ग पीछे से कट जायेगा। इसके अतिरिक्त, लिंकन ने कहा कि उसका वास्तविक लक्ष्य ली की सेना है, रिचमण्ड नहीं। बाद में ली की गतिविधि को वह जितना ही अधिक जान सका, उसी के आधार पर हुकर ने अपनी सेना की गतिविधि समझदारी और चतुराई से जारी रखी। लिंकन ने उसे सुझाया कि वह ली के रसद मार्ग पर कमजोर स्थलों पर पीछे से चोट करे। परन्तु हुकर ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया। उसने यह ठीक ही किया। यह निरर्थक था, क्योंकि ली जिस प्रदेश में से गुजर रहा था वहाँ सरलता से वह अपनी सेना के लिए सामग्री जुटा सकता था। ली का लक्ष्य बाल्टीमोर या फिलाडेल्फिया और वाशिंगटन था। हुकर उसकी सैनिक गतिविधि का ध्यान रखते हुए चोट करने का उपयुक्त अवसर देखने लगा। अपने उच्च पदाधिकारी हैलेक की अविवेकी आज्ञाओं से उसको बाधा पहुँची। इससे वह चिढ़ गया और झगड़ा करने लगा। लिंकन ने अपनी चतुराई से उसे फिलहाल शान्त करके काम पर बनाये रखा। अचानक २७ जून को जब कि एक मुठभेड़ की सम्भावना थी, हुकर ने अपना त्यागपत्र भेज दिया। सम्भव है, वास्तव में उसकी यही इच्छा थी, परन्तु इसे लेकर विवाद करने का समय नहीं था। यह भी हो सकता है कि चांसलरविले में जिस तरह वह हताश हो गया था उसी तरह यहाँ भी वह अपना आत्मविश्वास खो बैठा था। लिंकन ने यही उचित समझा कि हुकर की ऐसी मानसिक स्थिति को देखते हुए त्यागपत्र स्वीकार कर लेना ही ठीक है। उसने तुरन्त ही अपने एक सहायक जनरल जार्ज मीड को उसकी

जगह नियुक्त कर दिया। यों तो यह व्यक्ति दुबला-पतला अध्ययनशील, तथा तेजतर्रार था परन्तु वह न तो प्रतिभाशाली, न जनप्रिय और न सैनिक दृष्टि-कोण से योग्य था। वह पहिले कई युद्धों में ऐसी सफलताएं प्राप्त कर चुका था कि लिंकन का उस पर विश्वास जम गया। हुकर को बाद में एक सहायक-पद, जिस पर रह कर वह प्रगति दिखा सके, दे दिया गया। उसने सेना से छुट्टी ली और मीड के प्रति शुभ कामनाएं प्रदर्शित कीं। इस समय उत्तर में भारी उत्तेजना फैल रही थी। मेक्लीन को वापिस बुलाने पर बड़ा जोर दिया गया। लिंकन ने ठीक ही कहा कि इससे किसी को भी इतनी सुविधा नहीं होगी, जितनी स्वयं उसको।

ली अब अपने शत्रु की चालों को पूरी तरह न जान पाने के कारण अपना मार्ग टटोल रहा था, क्योंकि उसने अपनी अधिकांश घुड़सवार सेना को मुख्य औद्योगिक केन्द्र हैरिसबर्ग की ओर हमला करने भेज दिया था। मीड अपनी सेना को फैला कर ली के पूर्व की ओर बढ़ने की गतिविधि पर ध्यान रखता हुआ उसके समानान्तर चलता रहा। दोनों सेनापति बचाव की लड़ाई ही लड़ना चाहते थे। अचानक १ जुलाई को, मीड द्वारा पद सम्भालने के तीन ही दिन बाद, गेटिसबर्ग नगर के उत्तर में दोनों ओर के अग्रिम रक्षकों में आकस्मिक मुठभेड़ हो गयी और इसने युद्ध का रूप धारण कर लिया। स्थिति ऐसी बन गयी कि जो भी पक्ष अपनी शेष सेना को यहाँ केन्द्रित कर लेता उसे विजय प्राप्त हो जाती। युद्ध के पहले दिन ली को निश्चित विजय मिली। उत्तरी सेना को गेटिसबर्ग के पास दक्षिण की पहाड़ियों में खदेड़ दिया गया। इन पहाड़ियों की कड़ी चट्टानों के कारण शत्रु उस पर कोई हमला नहीं कर सका। मीड युद्ध प्रारम्भ होते समय १० मील दूर था और उसे युद्ध की सम्भावना नहीं थी, परन्तु वह दूसरे दिन पूरी सेना बटोर कर आ धमका। यह स्थान उसके लिए युद्ध के दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं था; फिर भी बाध्य होकर उसे वहीं लड़ाई करनी पड़ी। उसकी राय थी कि ली ने दूसरे दिन आक्रमण की योजना बना ली थी। यदि स्टोनवाल जैक्सन जिन्दा होता और उसके साथ होता तो योजना सफल हो जाती। परन्तु ली के प्रतिभाशाली मातहत अधिकारी स्ट्रीट ने हमला करने ही का विरोध किया और उसने उस दिन और दूसरे दिन भी उसकी आज्ञा का मजबूरी तथा बहुत ही सुस्ती से पालन किया। ३ जुलाई १८६३ को ली ने अपना हमला फिर शुरू किया। पहली मुठभेड़ों में तो उत्तर की सेना को जंगल में छिपे हुए शत्रु से लड़ना पड़ा था। अब भयंकर गोलाबारी के बाद संपूर्ण

दक्षिणी सेना तीव्र हमला करने के लिए मैदान में सामने आ गयी थी। मीड की सेना उसे देख सकती थी। इस हमले को उत्तर की तोपों ने कुचल दिया। गेटिसबर्ग की मुठभेड़ और युद्ध में उत्तर के तिरानवे हजार सैनिकों में से तेइस हजार मारे गये और दक्षिण के अठहत्तर हजार में से लगभग इतने ही कट गये। इसका फल यह हुआ कि जीत के एक दिन बाद ही ली को पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा। ली द्वारा यह अभियान जारी रखना तभी बुद्धिमत्तापूर्ण होता यदि उसे पूरी सफलता मिल जाती। गेटिसबर्ग का यह युद्ध गृहयुद्ध में प्रमुख स्थान रखता है।

इसका महत्व उसके तात्कालिक नतीजे के आधार पर नहीं बल्कि इस बात से देखा जाना चाहिए कि उत्तर एक बड़े भारी खतरे से बच गया। लिंकन ने मीड को बधाई का सन्देश भेजते हुए ली का पीछा करने का अनुरोध किया। परन्तु उसने न तो ३ जुलाई को और न ली के बाद में पीछे हटते समय भी उसका दृढ़ता के साथ पीछा किया। १२ जुलाई को वह पोटोमाक क्षेत्र से और दक्षिण में चला गया। मीड ने पहले दिन उस पर हमला करने का विचार किया था, परन्तु युद्ध समिति में अपने मातहतों के विरोध के कारण रुक गया। लिंकन की राय में ऐसी बैठक होनी ही नहीं चाहिए थी। उसका निर्णय तो प्रत्यक्ष ही गलत था क्योंकि यह इस आशा पर आधारित था कि ली स्वयं हमला करेगा। मीड के आदेशों में निहित इस वाक्यांश पर "शत्रु को हमारी भूमि से खदेड़ दो" वह बहुत ही क्रोधित हुआ। उसने कहा, "क्या हमारे सेनापति कभी इस बात को नहीं समझेंगे कि सारा देश ही हमारा भूभाग है, केवल उत्तर ही नहीं।" मीड सतर्क अवश्य था परन्तु वह मेक्लीन की तरह हतोत्साही और प्रभावहीन नहीं था। जिस शत्रु-सेना को एण्टीटम में मेक्लीन परास्त नहीं कर सका था, उसे देखते हुए मीड को जिस शत्रु-सेना से सामना करना पड़ा, वह उससे कहीं अधिक थी। जब लिंकन ने एक तार द्वारा उसके कार्यों के प्रति असन्तोष व्यक्त किया तो उसने त्यागपत्र देने की इच्छा दर्शायी। लिंकन ने इसे अस्वीकार कर दिया और एक अन्य अफसर द्वारा यह कहलाया कि उसका लक्ष्य मीड को अपमानित या लांछित करने का नहीं था। उस जैसे साहसी, प्रतिभाशाली और सच्चे व्यक्ति के प्रति वह कृतघ्नता या अविश्वास की भावना कैसे रखता।

मीड की कमियों के प्रति उसके मन में जो आक्रोश पैदा हो गया था उसे संतुष्ट करने के लिए उसने विलक्षण रूप से एक विशद आलोचनात्मक पत्र

लिख डाला परन्तु यह उतनी ही विलक्षण बात है कि उसने वह पत्र मीड को कभी नहीं भेजा। धीरे धीरे ली का पीछा करते हुए मीड शत्रुक्षेत्र में जा पहुँचा। चार मास तक दोनों की सेनाएं अनिश्चित पैंतरे बदलती रहीं। उसने ली को पहले रापानोक के पार, फिर रापीडौन के पार धकेल दिया। परन्तु वह अपनी सेना को खतरे में देखकर बुद्धिमानीपूर्वक तुरन्त पीछे भी हट गया। दिसम्बर में दोनों सेनाएँ रापानोक नदी के तटों पर आमने-सामने सर्दी की ऋतु के कारण पड़ाव डाल कर रुक गयीं और शीघ्र ही नया युद्ध छेड़ने के लिए वसन्त की बाट देखने लगीं।

१८६३ के पतझड के दिनों में मध्य पश्चिम में भी अनेक मुठभेड़ों में उत्तर की विजय हो गयी। यह विजय विक्सबर्ग और गेटिसबर्ग की विजय से कम स्मरणीय नहीं थी। अन्त में विक्सबर्ग की विजय के बाद रासक्रांस मध्य टेनेसी में बढ़ने के लिए तैयार था। कठिन प्रदेश में जहाँ टेनेसी नदी कम्बरलैण्ड पर्वत तथा उसकी समानान्तर उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम स्थित पीछे की पर्वत श्रेणियों को काटती है, उसने सैनिक चतुराई से चाटानुगा पर ब्रेग की फौज को बगल से जा घेरा और उसे सितम्बर के प्रारम्भ में उस शहर से हट जाने के लिए मजबूर कर दिया। ब्रेग ने पीछे हटते समय एक चालाकी की। उसने अपनी सेना की हालत और मार्ग के बारे में गलत खबरें रासक्रांस तक पहुँचा दीं। वह असावधानी से उसका पीछा करता गया। इस बीच में विक्सबर्ग की सेनाओं को रासक्रांस की मदद के लिए लाया जा सकता था। पर हैलेक ने पहले ही से उसको पश्चिम में अपने दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण कामों के लिए फैला दिया था। परन्तु कुछ समय बाद विक्सबर्ग की सेना का एक भाग ओहयो में जनरल बर्नसाइड को वापिस भेज दिया गया। लिंकन इतने दिनों से पूर्वी टेनेसी के गणराज्य समर्थकों को सहायता देना चाहता था। बर्नसाइड लेक्सिंगटन के निकट पर्वतश्रेणी पार कर के पूर्वी टेनेसी में होता हुआ केन्टकी पहुँच गया। वह शत्रु के विरुद्ध डटा रहा और उसके विरुद्ध लौंगस्ट्रीट नाक्सविले पर जो सेना भेजी गयी-उसे हरा दिया। अंत में पश्चिमी फौज के शेष सैनिक रासक्रांस के पास पहुँचे। परन्तु वे लोग उसकी हार होने के पहले नहीं पहुँच पाये थे, क्योंकि अपनी क्षति की पूर्ति करने के लिए दक्षिणी अधिकारियों ने अधिक से अधिक सैनिक ब्रेग के पास भेज दिये और वह इकहत्तर हजार सैनिक लेकर चाटानुगा की ओर लौट पड़ा। रासक्रांस भी अपने सत्तावन हजार सैनिकों को झूठमूठ रक्षात्मक युद्ध के बहाने फैलाकर ब्रेग का पीछा कर रहा था। दोनों सेनाओं की

बिना किसी स्पष्ट आशा के चाटानुगा के दक्षिण-पूर्व की पहाड़ी के उधर चिका-मौगा खाड़ी पर एक दूसरे से मुठभेड़ हो गयी। सितम्बर १९ और २० को चिकामौगा की पहाड़ियों और जंगलों में जो युद्ध हुआ उसमें सम्पूर्ण गृहयुद्ध-काल में लड़े गये युद्धों से भी अधिक क्षति दोनों पक्षों की हुई। दूसरे दिन ब्रेग के आक्रमण से रासक्रांस की पंक्ति टूट गयी और यदि टामस असाधारण बहादुरी से लौटती हुई सेना का मार्ग सुगम बनाने के लिए डट कर सामना नहीं करता तो शेष सेना में बुरी तरह भगदड़ मच जाती। इस प्रकार रासक्रांस चाटानुगा तक पीछे हट गया। परन्तु वहाँ उसे अपने मार्ग के कट जाने का खतरा था। वरजीनिया में मीड की सेना की एक टुकड़ी हुकर की अधीनता में उसकी मदद के लिए तुरन्त भेज दी गयी। वास्तविक कठिनाई के समय रासक्रांस निर्णय नहीं ले पाता था। अतः उसकी जगह टामस नियुक्त कर दिया गया। ग्राण्ट को सम्पूर्ण पश्चिमी सेनाओं का मुख्य सेनाध्यक्ष नियुक्त करके चाटानुगा भेज दिया गया। वहाँ दोनों ओर से अनेक जटिल सैनिक अभियानों के बाद २४ और २५ नवम्बर १८६३ को अन्त में एक बड़ा युद्ध हुआ। ग्राण्ट के पास साठ हजार सिपाही थे, ब्रेग ने लौंग स्ट्रीट को बर्नसाइड पर हमला करने भेज दिया। इसके कारण उसके पास तैंतीस हजार सैनिक ही रह गये थे। परन्तु उसके मोर्चे के लिए एक के बाद एक ऊँची और गहरी पर्वत-श्रेणियाँ थीं, जिन पर वह जम सकता था। वह युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा, हुकर तो इसे बादलों के ऊपर का युद्ध कहा करता था। जब एक ओर शरमन और दूसरी ओर हुकर बढ़ रहा था, उस समय टामस की टुकड़ी ने शत्रु के इन्तजार से थक कर स्वेच्छा से बिना किसी तरह की आज्ञा पाये ही एक ऐसी पर्वतश्रेणी पर कब्जा कर लिया जिसे शत्रु सेनापति और ग्राण्ट अभेद्य मानते थे। इस युद्ध में दक्षिणी सेनाओं में बुरी तरह भगदड़ मच गयी और उसका पीछा किया गया। ब्रेग की सेना-पंक्ति नष्ट हो गयी और उसे सीधे जार्जिया में खदेड़ दिया गया। इस साल के सैनिक संघर्षों का सिंहावलोकन करने पर यह कहा जा सकता है कि दक्षिण ने उत्तर पर जो महान आक्रमण किया था, वह असफल हो गया। अब दक्षिणी संघराज्य का प्रभुत्व केवल अटलांटिक तटवर्ती राज्य अलाबामा और मिसीसिपी राज्य के कुछ भूभाग पर ही रह गया था।

युद्ध का क्या परिणाम होगा इसमें कहीं संदेह नहीं रह गया था। अब लिंकन द्वारा युद्ध के मामलों में हस्तक्षेप की आवश्यकता बहुत कम हो गयी थी। हम इन मामलों में उसकी बुद्धिमानी अथवा उसकी योग्यता की कमी

का अनुमान कर सकते हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि वह युद्ध को बारीकी और बुद्धिमानी से समझ रहा था, परन्तु यह सिद्ध करने के लिए हमें ढेरों प्रमाण इकट्ठे करने पड़ेंगे। यह ठीक ही है कि उत्तर की व्यापक युद्ध नीति, जो मुख्यतः सही थी, उसका जन्म कई लोगों के विचारविमर्श के बाद हुआ था। उसके प्रशासन में सबसे अधिक क्रियाशील शक्ति उसी की थी। उसने आरंभ से ही युद्ध के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण बना लिया था और वह इसकी प्रत्येक समस्या से भली-भाँति परिचित हो गया था। यही कारण है कि वह अभियानों की गतिविधि में स्पष्टता और एकसूत्रता कायम रख सका। हम देखेंगे कि कई दिनों तक सेना को भर्ती करना उसके बूते का काम नहीं रहा और जो सेना थी उसका सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जाय, इसमें उसके अपने ज्ञान की कमी और सलाहकारों की अयोग्यता के कारण कुछ गलतियाँ हुईं। आरंभ में वह चाहता था कि योग्य सैनिक सलाहकारों पर ही सारा उत्तरदायित्व छोड़ दे और अन्त में उसे ऐसा करना भी पड़ा। हम देख चुके हैं कि लंबे समय तक एक उत्तरदायी राजनीतिज्ञ होने के कारण उसे अपनी इच्छा को दबा देना पड़ा। उसका पहला काम तो इस समय यह था कि वह सर्वोत्तम अफसर चुने। सम्भव हो सके तो मौजूदा अफसरों के स्थान पर अच्छे व्यक्ति नियुक्त करे। अच्छे अफसर उस वक्त कम थे। वह चाहता था कि सैनिक अफसरों को केवल इतना ही निर्देश दिया जाय कि उनकी युद्धकला, स्थान का चुनाव व गतिविधि के साथ उसका निर्देशन भी मेल खा जाय। इनमें उससे कई गलतियाँ हुईं। उस पर दोषारोपण किया जाता है कि वह कुछ स्वार्थी तत्वों के कारण अथवा अकारण ही सही निर्णय को रद्द कर देता था। परन्तु उस समय की इन घटनाओं के साथ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जायँ तो ये सभी आरोप निराधार सिद्ध होंगे। यह प्रकट ही है कि वह जिन व्यक्तियों से व्यवहार करता था उनको बड़ी जल्दी समझ लेता था और उसके साथ दृढ़ व्यवहार के साथ साथ दयालुता का रुख भी रखता था। यह आश्चर्यजनक है कि एक ओर लिंकन सेना की शक्ति और योग्यता को क्रियाशील देखना चाहता था, फिर भी दूसरी ओर जब कभी उसे सुस्त सेनानायकों को इसके लिए हटाना भी पड़ता तो वह कई दिनों तक टाल दिया करता था। वह यह कदम लंबी प्रतीक्षा के बाद उचित अवसर या नितान्त आवश्यकता होने पर ही उठाता था। यह उल्लेखनीय है कि जितनी स्पष्टता और सही ढंग से वह स्थिति को समझ सकता था उतनी ही स्पष्टता और सरलता के साथ वह नम्रतापूर्वक अपनी राय

दिया करता था। एक बार उसने हुकर को लिखा, "यह सम्भव है कि मैं उस समय गलती पर था और अब भी हो सकता हूँ। परन्तु मुझ पर जो बड़ी भारी जिम्मेदारी है उसे देखते हुए चुप भी नहीं रह सकता। मैं अब केवल यही चाहता हूँ कि तुम उस स्थिति में आ जाओ जहाँ हैलेक और तुम दोनों मिलकर अपने सही निर्णयों को क्रियान्वित कर सको। यदि तुम दोनों को मेरी तुच्छ राय भी इस दिशा में विचारणीय प्रतीत हो तो उस पर भी विचार कर सकते हो।" स्वभावतः विनम्र होते हुए भी लिंकन में समय पर महत्वपूर्ण निर्णय करने की दैवी शक्ति थी। उसके निर्णय बाद में सही सिद्ध होते थे, परन्तु यह कहना कठिन है कि वह किन आधारों पर यह निर्णय लेता था। कदाचित् ऐसे राजनीतिज्ञ बहुत थोड़े हैं जो अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण, न कि इस तरह की शक्ति के अभाव में, उचित अवसर के लिए लम्बे समय तक प्रतीक्षा करते रहे हों।

युद्ध की संकटपूर्ण स्थिति टल जाने के बाद कई राज्यों के गवर्नरों ने युद्ध के स्मृतिचिह्नों के स्वरूप गेटिसबर्ग को एक राष्ट्रीय समाधिस्थल का रूप दिया। १९ नवम्बर १८६३ को इसका समर्पण समारोह हुआ। अपने समय के महान वक्ता एडवर्ड इवरेट ने उस अवसर पर प्रमुख भाषण दिया। समारोह के अन्त में राष्ट्रपति से कुछ थोड़े से शब्द कहने के लिए कहा गया। उस सभा में इवरेट ने अपने श्रोताओं को दो घण्टे तक जो मनोरंजक भाषण दिया उसमें अब किसी को भी दिलचस्पी नहीं हो सकती, हालांकि उसके भाषण में भावनाओं का समावेश तथा तब तक के युद्ध का सिंहावलोकन था। अब्राहम लिंकन ने जो थोड़े से शब्द कहे उनसे श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय श्रोताओं ने यह अनुमान ही नहीं किया होगा कि लिंकन का यह भाषण आंग्ल भाषा के उत्कृष्ट साहित्य का अंग बन जायेगा और चिरस्मरणीय रहेगा। उस सभा में प्रसिद्ध साहित्यिक जान हे भी—जो लिंकन का सबसे अधिक प्रशंसक था—मौजूद था। हे का कथन है कि एवरेट ने समयानुसार अच्छा भाषण दिया परन्तु वृद्ध लिंकन का भाषण उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल था। लिंकन के भाषण के शब्द थे—"सतासी वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने इस महाद्वीप पर एक नये राष्ट्र को जन्म दिया। वह स्वतंत्रता में पनपा। इस राष्ट्र ने स्वतंत्रता में सांस ली और इसी सिद्धान्त के लिए ही उसने जीवन धारण किया कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं। इस समय हम एक भारी गृहयुद्ध में लगे हैं। इसमें हमारी कसौटी यही है कि क्या ऐसा राष्ट्र जो इसी वातावरण

में विकसित हुआ और इसी उद्देश्य के लिए समर्पित किया गया, बहुत समय तक जीवित रह सकता है अथवा नहीं। आज हम इस युद्ध के कुरुक्षेत्र में खड़े हैं। इस रणस्थली के भूभाग को हम हुतात्माओं की चिरशान्ति के लिए समर्पण कर रहे हैं, जिन्होंने अपने-जीवन का इसलिए उत्सर्ग कर दिया कि राष्ट्र जीवित रहे। यह सभी तरह से उचित और उपयुक्त है कि हम ऐसा करें। परन्तु एक व्यापक अर्थ में इस भूमि को हम समर्पण नहीं कर सकते। इस भूमि को उन शूरवीरों ने, मृत और जीवित योद्धाओं ने, पहले से पवित्र कर दिया है। इसलिए हमारा यह प्रतिष्ठा संस्कार का कार्य इस दृष्टिकोण से अधिक महत्व का नहीं है। हम में क्या सामर्थ्य है कि हम उस पवित्रता में कुछ भी जोड़ या घटा सकें। संसार इस बात की चिन्ता नहीं करेगा कि हमने यहाँ क्या कहा; परन्तु इन शूरवीरों ने यहाँ जो किया उसे वह कभी नहीं भूल सकता। हम जो शेष रह गये हैं उनका यह कर्तव्य है कि जिस उद्देश्य को उन्होंने यहाँ लड़ कर आगे बढ़ाया उसे पूरा करने के लिए अपने-आप को उत्सर्ग कर दें। जो कार्य हमारे सामने अधूरा पड़ा है उसके लिए समर्पित हो जाना ही हमारा कर्तव्य है। इन सम्माननीय शहीदों से हम जनकार्य के लिए अधिक प्रेरणा प्राप्त करें जिसके लिए उन्होंने अपना पूर्ण उत्सर्ग ही कर दिया। हम यहाँ यह दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं कि इनका जीवनोत्सर्ग व्यर्थ नहीं जायेगा। इस राष्ट्र में भगवान की कृपा से एक नयी ही स्वतंत्रता का जन्म होगा और इस धरती पर यह सिद्धान्त 'जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए सरकार' अमिट रहेगा।"

[२]

अनिवार्य भर्ती और १८६३ की राजनीति

वर्तमान युद्धों की भीषणताओं को देखते हुए हम अमरीकी गृहयुद्ध, उसकी जटिल समस्याओं तथा उसमें किये गये अनेक प्रयत्नों का मूल्य कम आंकने की इच्छा कर सकते हैं। निष्पक्ष इतिहासकारों का यह मत है कि गृहयुद्ध के पूर्व जितने भी युद्ध हुए उनमें इतने अल्प समय में इस तरह अपार धनजन की गंभीर क्षति कभी नहीं हुई। मालप्लाकेट जैसे युद्धों में भी भीषण रक्तपात नहीं हुआ। इन चार वर्षों में इतनी लड़ाइयाँ हुईं कि उन्हें गिना नहीं जा सकता। इनमें कई युद्ध गेटिसबर्ग की तरह ही इतने भीषण थे कि सेना के एक चौथाई सैनिक मारे गये। युद्धान्त के दिनों में दक्षिणी सेना को उत्तर की विशाल सैन्यशक्ति से टक्कर लेनी पड़ रही थी। उत्तरी सेनाओं के लिए भले

ही यह युद्ध की विजय का अभियान था परन्तु गेटिसबर्ग को छोड़ कर उन्हें भी गम्भीर स्थिति का सर्वत्र सामना करना पड़ा। अमरीका एक नया देश था और युद्ध के लिए वहाँ कोई तैयारी नहीं थी, अतएव वहाँ कितने सैनिक मारे गये या कितने सैनिक सेना में भर्ती किये गये इसके सही-सही या विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। परन्तु जो उचित अनुमान लगाया जा सकता है, उसके अनुसार उत्तर और दक्षिण में जनजीवन की इतनी क्षति हुई कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में आरंभ के दिनों में जो जनसंख्या थी, उस अनुमान से प्रत्येक व्यक्ति के पीछे एक व्यक्ति की मृत्यु हुई। जितने व्यक्ति मारे गये उनमें आधे उत्तर के और आधे दक्षिण के थे। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण की जनसंख्या के अनुपात से दक्षिण की हानि उत्तर से दुगुनी थी। किसी भी पक्ष को आवश्यक सिपाही बिना जबर्दस्ती किये नहीं मिले। दक्षिण ने आवश्यकता उत्पन्न होते ही शीघ्रता से अधिक तत्परता के साथ युद्ध के अन्त के पहले ही अपने क्षेत्र के सभी वयस्क पुरुषों को सेना में भर्ती कर डाला था। उत्तर में प्रत्यक्ष ही इस दिशा में कम प्रयत्न किया गया। युद्ध के समय स्वयंसेवक नहीं मिलने पर अनिवार्य भर्ती की प्रणाली का प्रयोग किया गया। इस प्रणाली के अनुसार युद्ध के अन्त में अठानवें हजार गोरे सिपाही सेना में थे। इनका अनुपात उस समय की जनसंख्या के साथ १ और २५ का था। अधिक आवश्यकता पड़ने पर बहुत बड़ी तादाद में सैनिक भर्ती की पूरी तैयारी थी। आरंभ में युद्ध के बीस महीने तक केवल स्वयंसेवक प्रणाली ही जारी थी। परन्तु युद्ध में नष्ट होती हुई सेनाओं को पूरी करने के लिए यह संख्या पर्याप्त नहीं थी। उत्तर की ओर से सेना में ८६०७१७ सिपाही थे और अनुपात १ और २७ का था। इंगलैण्ड में प्रथम महायुद्ध में जितनी स्वयंसेवकों की भर्ती हुई तथा उसका जो प्रभाव पड़ा, अमरीका के गृहयुद्ध में उत्तरी स्वयंसेवकों की भर्ती के स्तर से वह अधिक था या नहीं, यह ऐसा तुलनात्मक प्रश्न है जो भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि इन्हीं दो युद्धों में स्वयंसेवक भर्ती की प्रणाली वहाँ की सरकारों द्वारा कड़ी-कसौटी पर कसी गयी। वे उस प्रणाली को छोड़ना नहीं चाहते थे। दोनों स्थितियों में कुछ अन्तर अवश्य है। इंगलैण्ड को अधिक परिपक्व राजनीतिक तथा सामाजिक संगठनों का लाभ प्राप्त था और उपनिवेशीय सेनाएं भी प्राप्त थीं जिन्हें लार्ड रोबर्ट द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जा चुकी थी। इंगलैण्ड को अपनी आवश्यकता तुरन्त ज्ञात हो गयी। युद्ध के उद्देश्य से प्रत्येक वीर व सभ्य पुरुष के हृदय में राष्ट्रप्रेम अधिक स्पष्टता से स्थान प्राप्त कर चुका था। इसके विपरीत उत्तरी

अमरीका में इन सब बातों के अतिरिक्त स्थानीय, जातीय व राजनैतिक दल होने स्वाभाविक थे। इन पर राष्ट्रीय उद्देश्य का गहरा असर नहीं था। परन्तु इससे असाधारण स्वार्थ अथवा मूर्खता सिद्ध नहीं होती। जनता के कुछ अल्पसंख्यक तत्वों द्वारा जो उदासीनता दर्शायी गयी, जैसी कि इंगलैण्ड में अल्पसंख्यकों ने युद्ध के समय प्रकट की थी, उससे बलिदान की जनभावना पर और अधिक प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त उत्तर की जनता की सामान्य देशभक्ति की जाँच स्वयंसेवक प्रणाली की असफलता से नहीं बल्कि उसके बाद में बरती गयी प्रणाली की सफलता से ही की जा सकेगी। इंगलैण्ड के सम्बन्ध में भी किसी दिन कितने सैनिक सेना में थे ऐसे ठीक वक्तव्य सरकार की ओर से प्राप्त नहीं हैं, परन्तु जो भी बातें प्रकाशित हुई हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रथम महायुद्ध में पन्द्रह महीने के बाद भी जब कि जबरन भर्ती नहीं हो रही थी सेना में भर्ती ब्रिटिश सिपाही केवल ब्रिटिश जनता के १ व १७ के अनुपात में थे। ब्रिटेन में उत्तरी राज्यों की अपेक्षा सैनिक उम्र के लोग कम अनुपात में थे। उत्तरी राज्यों में तो बाहर से आकर बसे हुए लोग भी बहुत थे। यदि प्रत्येक देश के सैनिकों में उस युद्ध के समय तक हताहतों व घायलों की संख्या और भी जोड़ दी जाय तो ये आंकड़े अधिक प्रभावशाली हो जायेंगे। जब उत्तर को स्वयंसेवक प्रणाली छोड़नी पड़ी उस समय ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी कि नागरिक कार्यों से पुरुषों को हटा देने मात्र से ही लोग राष्ट्रीय संकट समझने लगते। न ऐसी ही स्थिति पैदा हुई थी कि सरकार को कुछ विशेष लोगों की भर्ती रोकनी पड़ती। युद्ध से किसी तरह का सम्बन्ध न रखने वाले नये उद्योग भी पनप रहे थे। खाद्य पदार्थों का उत्पादन तथा निर्यात तेजी से बढ़ रहा था। इस तरह इस अनिवार्य प्रश्न का उपरोक्त दर्शाये गये कारणों को सामने रख कर उत्तर देने में ईर्ष्या की झलक नहीं है। स्वैच्छिक सैनिक भर्ती के प्रयत्नों की किसी अन्य राष्ट्रों के प्रयत्नों से तुलना की जाय तो यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उत्तर इस परीक्षण में पूरी तरह सफल हुआ। ऐसे राष्ट्र चाहे वह जनतंत्रात्मक हो अथवा दूसरे या दक्षिण की तरह भिन्न सिद्धान्तवाले हों, सैनिक भर्ती को गौरवपूर्ण मानते रहे हैं। इनमें से कुछ देशों में तो सार्वजनिक सहमति से पीढ़ी-दर-पीढ़ी युवक तथा अधेड़ अवस्था के लोग आवश्यकता के समय देश के प्रति अपने को सौंपने को तैयार रहते हैं और जब आवश्यकता नहीं हो और न उत्तेजना का ही समय हो, तो सैनिक शिक्षा प्राप्त करने में जो समय व शक्ति व्यय की गयी, उसे सन्तोष के साथ

स्वीकार करते हैं। यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि जनता पर जो बलात भर्ती लागू की जाती है उसकी तुलना क्या स्वैच्छिक भर्ती के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियों को जो त्याग और कष्ट उठाना पड़ता है, उससे की जा सकती है?

जिस ढंग से युद्ध आरंभ हुआ उससे यह समझना आसान है कि दक्षिण उत्तर की अपेक्षा जल्दी सेना इकट्ठी करने के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित कर सका। सुमटर किले पर गोलीबारी के पूर्व दक्षिण के दस राज्यों में से केवल सात ही उनके साथ थे, तभी राष्ट्रपति जफरसन डेविस की सेना में तत्कालीन संयुक्तराज्य अमरीका की सेना से दुगुने सैनिक थे। इस संख्या को तिगुनी तक बढ़ा देने का उसके पास कानूनी अधिकार था। यद्यपि कुछ राज्यों में इसका विरोध भी हुआ और दक्षिण के युद्ध विभाग तथा जनसेना में कुछ झगड़ा भी हुआ, परन्तु अलग हुए राज्य जो सिद्धान्ततः अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग थे, उन्होंने रक्षा के लिए दक्षिणी संघ राज्य की आज्ञा मानी।

यह स्पष्ट नहीं है कि स्वैच्छिक भर्ती लगातार चालू रखने में दक्षिणी लोगों ने अपनी त्याग की भावना का कहाँ तक परिचय दिया। परन्तु कांग्रेस ने तो अपने राष्ट्रपति को आवश्यक अधिकार देकर बहुत ही अधिक गतिशीलता का परिचय दिया और वहाँ १६ अप्रैल १८६२ को जबरन् भर्ती का कानून पास कर दिया गया। दक्षिण का राष्ट्रपति किसी भी श्वेतांग को जो दक्षिण निवासी और १८ तथा ३५ से बीच की उम्र का हो, सेना में भर्ती कर सकता था। केवल कुछ कानूनी रियायतें थीं। निश्चय ही रियायतों के कठिन प्रश्न को लेकर कुछ दिक्कतें अवश्य आयीं। अनेक विरोधी प्रभावों के कारण दक्षिण की कांग्रेस ने इनके सम्बन्ध में कई कानून बनाये और वापिस भी लिये। कुछ समय बाद सब रियायतें हटा दी गयीं और पूरी तरह दक्षिणी राष्ट्रपति के हाथ में यह निर्णय छोड़ दिया गया कि नागरिक जीवन के विभिन्न कार्यों में कौन-कौन आवश्यक है। सितम्बर १८६२ में तो १७ और ५० के बीच की उम्र के सभी लोगों पर यह नियम लागू कर दिया गया। आवश्यकता के कारण की हुई जबरन भर्ती में जो कठोर कदम उठाये गये उनका तीव्र विरोध होना स्वाभाविक था। एक दल तो इस कानून को अवैधानिक घोषित करना चाहता था। दक्षिणी संघ राज्य में सार्वभौम सत्ता वाले राज्य भी शामिल होने के कारण स्थानीय स्वैच्छिक सैनिक संगठन को अपनी मांग निर्धारित करने में दिक्कत होती थी। इतनी जटिल परिस्थिति में सरकार को चाहे वह जनता के प्रति उदार भी होगी, यह कानून बड़ी कठोरता से लागू करना पड़ा। दक्षिण की जबरन भर्ती में

जो कठोरता थी उसकी भावनाएं उत्तर में सर्वत्र फैल गयीं और यह सोचना अतिशयोक्ति है कि उत्तर से पृथकता दक्षिण की जनता की राय के कारण नहीं, वरन् दक्षिणी शासकों की निरंकुशता के फलस्वरूप हुई। सेना छोड़ कर भागने की घटनाओं के साथ-साथ जबरन भर्ती का काम १८६४ के साल में बहुत बढ़ गया था। परन्तु सेना में भागने की प्रवृत्ति भर्ती की प्रणाली के विरोध में नहीं, बल्कि दक्षिण का बहुत सा भाग हाथ से चले जाने के कारण तथा युद्ध में बुरी तरह हार जाने की भावना के कारण बढ़ गयी। दक्षिणी सरकार के अंतिम दिनों में जबरन भर्ती की प्रणाली बिलकुल बेकार हो गयी। परन्तु यह दिखायी देता है कि जफरसन डेविस की सैनिक तानाशाही लोगों की कायरता के कारण न होकर उसके दृढ़ स्वभाव के कारण थी।

उत्तर की जनसंख्या दुगुनी होने के कारण जबरन भर्ती की आवश्यकता इतनी जल्दी नहीं पड़ी। उत्तर में उन दिनों जब कि भर्ती अधिक नहीं हो रही थी, इसी तरह का प्रभाव वहाँ भी व्यापक हो गया। इसी समय सरकार ने यह भूल की कि ३ अप्रैल १८६२ को केन्द्रीय भर्ती का दफ्तर तोड़ दिया और अफसरों को और कामों पर भेज दिया गया। बहुत से लेखक इस गलती को स्टाण्टन के सिर मढ़ते हैं। चाहे यह उसकी करतूत रही हो, परन्तु इससे लिंकन निर्दोष सिद्ध नहीं हो सकता। यह कोई विभागीय काम तो था नहीं बल्कि सर्वोच्च नीति सम्बन्धी काम था। यह आशा की जा सकती थी कि लिंकन अपने स्वाभाविक ज्ञान और इससे होने वाले व्यापक प्रभावों को पहले से समझ कर गलती को ठीक कर देता। यह मानना ही होगा कि अभी तक लिंकन की दृढ़ इच्छाशक्ति और निर्णय की योग्यता पूरी तरह विकसित नहीं हो पायी थी। स्टाण्टन संकीर्ण दिमाग का व्यक्ति था परन्तु इसके साथ-साथ वह बुद्धिमान राजभक्त और निर्भीक भी था। उसको युद्ध-विभाग में उस पालतू चीते की तरह रखा गया था जो भ्रष्टाचार, लापरवाही, धोखा, राजनैतिक सांठगांठ पर आक्रमण करता रहे। यह कार्य उसकी छोटी-छोटी गलतियों में से था जिसे उसके आलोचकों ने उसकी विलक्षण उपयोगिता की तुलना में कभी अधिक महत्व नहीं दिया। उसका विभागीय दृष्टिकोण आसानी से समझा जा सकता है। भर्ती होने के लिए रंगरूट इतनी जल्दी और इतनी अधिक संख्या में आ रहे थे कि उनको संगठित करना और सामान देना कठिन हो रहा था। इस काम में संलग्न दफ्तर को कोई ऐसी योजना समझ में नहीं आयी जिसका भर्ती के बाद में आवश्यकता होने पर भी उपयोग किया जा सके। धन का अपव्यय बहुत अधिक

हुआ था और स्टाण्टन ने इस छोटी-सी बचत को बुरा नहीं समझा, भले ही इससे वाशिंगटन की जनता को आश्चर्य ही हुआ हो। मैक्लीन अधिक से अधिक सैनिकों की मांग कर रहा था। "जितने उसके पास आदमी हैं उन्हीं से वह कुछ अभियान तो करे!" स्टाण्टन को वास्तव में यह सहज विश्वास हो गया था कि मैक्लीन एक बार पिल पड़ेगा तो दक्षिण को कुचल कर रख देगा। परन्तु घटनाचक्र ने इस गलती को भयंकर रूप दे दिया। इन्हीं दिनों दक्षिण अपना जबरन भर्ती कानून पास करनेवाला था। मैक्लीन रिचमण्ड की ओर बढ़ने के बजाय मार्कटाइन के सामने अड़ गया और दक्षिण को जबरन भर्ती करके सैनिक इकट्ठा करने का मौक़ा दे दिया। हैलेक दक्षिण की ओर चींटी की चाल चल रहा था। यदि वह जल्दी बढ़ता तो दक्षिण का एक बड़ा प्रदेश सैनिक भर्ती के लिए न रह जाता। प्रायद्वीप में मैक्लीन की असफलता के कारण उत्तर में गहरी निराशा हो गयी और भर्ती का काम फिर चालू किया गया। जब स्वयंसेवकों की मांग की गयी तो बहुत ही अच्छी संख्या में लोग आगे आ गये। परन्तु १८६२ के साल में असफलता ही हाथ लगी। बुलरन का दूसरा युद्ध एण्टीटम के बाद का अनिश्चित युद्ध, फ्रैड्रिकबर्ग की हार और इनके साथ ही साथ बुयेल तथा रासक्रांस की कई लम्बी असफलताएँ ऐसी थीं जिनके कारण जब भी और जहाँ भी दक्षिण के हमले का खतरा पैदा हुआ उत्तरी सेना में भर्ती होने की भावना को काफी बल मिला। परन्तु लगातार निराशा के कारण यह भरती उस सीमा तक नहीं पहुँची कि दक्षिण को हराया जा सके। यह कहना पड़ेगा कि असैनिक कामों में वेतन अच्छा मिलता था। लिंकन को उस समय देशभक्ति की भावनाओं में यह कमी बहुत अखरी। परन्तु अब शान्ति से सिंहावलोकन करते हैं तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं लगती।

१८६२ के उत्तरार्ध में जबरन भर्ती करने के अधिकार को प्रयोग करने की कोशिश की गयी। जनसेना बनाने के सम्बन्ध में कई राज्यों में पुराने कानून चले आ रहे थे ताकि गणराज्य की सेना में भर्ती की जो कमी हो, वह पूरी की जा सके। इस प्रकार भर्ती किये गये व्यक्तियों की संख्या इतनी कम थी कि तत्कालीन उत्तर की सेनाओं को स्वैच्छिक सेना के अतिरिक्त कुछ दूसरा नाम ही नहीं दिया जा सकता था। सरकार ने जो उस समय भर्ती की प्रणाली में आवश्यक सुधार करके अपनी स्थिति को दृढ़ करने की कोशिश की, उसकी छानबीन करना व्यर्थ है, क्योंकि वह सुधार बहुत जल्दी ही पूर्णतया असफल हो गया।

जबरन भर्ती कानून ३ मार्च १८६३ को लागू हुआ। सारे देश में से भर्ती करने के लिए एक संगठन बनाया गया परन्तु यह संगठन पूरी तरह गणराज्य की सरकार के अधीन था। एक योग्य अफसर जनरल जे. बी. फ्राई को उसका अध्यक्ष बनाया गया। फ्राई पहिले बुयेल के अधीन उच्च पदाधिकारी था। अब उसकी उपाधि प्रोवोस्ट मारशल जनरल थी। उसका काम जिले और तहसीलों के सैनिक पुलिस अध्यक्षों द्वारा २० और ४५ वर्ष के बीच की आयु के सभी पुरुष नागरिकों की सूची तैयार करना था। वह हर जिले से सरकार को समय-समय पर आवश्यकतानुसार सैनिक भर्ती की संख्या निश्चित कर देता था। स्वेच्छा-भर्ती का काम भी उसके हाथ में दे दिया गया ताकि दोनों तरह की भर्ती में कोई दिक्कत न हो। शान्ति के समय सभी योग्य पुरुष नागरिकों की भर्ती की किसी भी प्रणाली से यह पद्धति भिन्न थी। यदि किसी जिले से आवश्यक संख्या में स्वयंसेवक भर्ती नहीं होते थे तो जबरन भर्ती की जाती थी। जबरन भर्ती जब आरम्भ हुई तो भर्ती योग्य लोगों की सूची में लाटरी डाल कर सैनिक चुन लिये जाते थे, परन्तु वास्तविक भर्ती से बचने का तरीका भी था जिसका पता लिंकन के लेखों से चलता है। यह तरीका बहुत पुराना था तथा सब देशों में सिद्धान्ततः प्रचलित भी था। जिस किसी व्यक्ति के नाम पर लाटरी निकलती तो वह चाहे अपनी जगह किसी और को भी भेज सकता था। बदले में जानेवाले एक आदमी को उस समय एक हजार डालर तक मिल जाते थे। इस कार्य के लिए जिन्सों की तरह ही सौदेबाजी करने वाले दलालों का भी एक वर्ग उत्पन्न हो गया। व्यापारी, डाक्टर, वकील आदि जो अपना घर नहीं छोड़ सकते थे, परन्तु देश सेवा भी करना चाहते थे, बदले में वे अपने बजाय दूसरा सैनिक खरीद कर भेज देते थे। परन्तु उनके लिए ऐसा करना बाद में अनिवार्य नहीं रह गया था, क्योंकि लिंकन के ज़ोर देने पर कानून में रियायत रख दी गयी जिससे गरीब आदमी खरीद कर सैनिक भेजने के बोझ से बच सकता था। वह व्यक्ति तीन सौ डालर या साठ पौंड हर्जाना देकर बच सकता था। यह रकम स्वस्थ व्यक्ति द्वारा प्राप्त वेतन स्तर से अधिक नहीं थी। इस धारा के अनुसार जो धन एकत्र होता था उससे भर्ती का खर्च भी निकल आता था।

जबरन भर्ती के कानून का यह व्यापक प्रभाव पड़ा कि इससे स्वेच्छा-भर्ती को प्रोत्साहन मिला। स्वयंसेवकों को सरकार से विशेष पारितोषिक मिलता था, जो जबरन भर्ती किये गये सैनिकों को नहीं मिलता था। उन दिनों राज्य, जिले और

तहसीलें अपने क्षेत्र के लिए संख्या निश्चित हो जाने, स्वयंसेवक भेज कर उसे पूरा करने के लिए एक दूसरे से होड़ करने लगे थे। इस प्रकार सरकार द्वारा दिये जाने वाले पारितोषिकों की रकम बढ़ जाती थी। यह तो स्वाभाविक ही है कि एक नये देश में जिसकी कृषक जनता दूर-दूर तक फैली हो, नये औद्योगिक शहर अव्यवस्थित हों, जहाँ अनेक दिक्कतें हों, वहाँ बदले में आदमी देनेवाले दलाल गलत आदमी भी देने लगे थे। कुछ पेशेवर उचक्कों ने पारितोषिक पचा जाने का एक व्यापार भी निकाल लिया। वे पारितोषिक के लिए भर्ती हो जाते, फिर सेना से भाग निकलते, दूसरी बार पारितोषिक के लिए फिर भर्ती हो जाते और फिर भाग निकलते और यह क्रम बराबर जारी रखते। ऐसे जाली भर्ती होने वाले लोगों की संख्या अधिक थी। स्थानीय क्षेत्रों के लिए जो सैनिक संख्या निर्धारित की जाती थीं उसके सम्बन्ध में भी शिकायत रहती थी। यद्यपि उसके लिए संख्या निर्धारण करते समय इस प्रयत्न में कोई कोरकसर नहीं रक्खी जाती थी कि किसी के साथ ज्यादती न हो। कानून के कार्यान्वय के सम्बन्ध में कुछ विरोध हुआ। परन्तु यह विरोध इतना व्यापक नहीं था। इस तरह का तथाकथित विरोध राजनीतिज्ञ विरोधियों की ओर से था। सामान्यतः देश ने उस कानून को सैनिक आवश्यकता का स्वरूप मान लिया था। जिस भावना और जिस ढंग से यह कानून स्वीकार किया गया उसका अनुमान किसी भी समय की सैनिक भर्ती की मांग से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए दिसम्बर १८६४ में जब कि युद्ध समाप्ति के निकट आ रहा था २,११,७५२ व्यक्ति सेना में भर्ती हुए। इनमें से १,९४,७१५ साधारण स्वयंसेवक थे, १०,१९२ जबरन भर्ती वालों के बदले में आये हुए व्यक्ति थे। और केवल ६,८४५ व्यक्ति ही वास्तव में जबरन भर्ती करके लाये गये थे। यह और भी अधिक महत्व की बात है जिन्होंने भर्ती से बचने के लिए तीन सौ डालर जुर्माना दिया उनकी संख्या केवल चार सौ साठ थी। परन्तु १०,१९२ व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने अपने बदले में दूसरे सैनिक भेजने के लिए इससे तिगुना धन खर्च किया था। युद्धान्त तक जो सैनिक भर्ती हो चुके उनके अलावा उत्तर के पास भर्ती के लिए नामजद किसी भी समय बुलाये जा सके, ऐसे बीस लाख से भी अधिक अतिरिक्त व्यक्ति थे। उत्तर को इतनी कठिनाई नहीं झेलनी पड़ी जितनी दक्षिण को। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस मामले में उत्तर की जनता ने अपनी सरकार का समय पर पूरी तरह साथ दिया।

कुछ राजनीतिज्ञों ने यह सवाल खड़ा किया कि क्या यह कानून वैधानिक है? परन्तु सर्वोच्च न्यायालय में अपील करके कभी इसकी जाँच नहीं की गयी। इसमें तो सन्देह करने का कोई कारण नहीं है कि इस सम्बन्ध में लिंकन के अपने अकाट्य तर्क थे। संविधान ने कांग्रेस को यह अधिकार दिया था कि वह सेनाएँ एकत्र करें और सम्भालें। परन्तु इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं है कि उसके लिए कौन-सी विशेष पद्धति अपनायी जाये। दक्षिणी संघ राज्य का जो नया संविधान गंभीर विचार-विमर्श के बाद तैयार किया गया था उसमें भी इस बारे में अस्पष्टता ही है। लिंकन ने कहा कि यदि संविधान सेना भर्ती करने का तरीका निश्चय करने का पूरा अधिकार केवल कांग्रेस को नहीं देना चाहता तो भर्ती के तरीके के सम्बन्ध में एक भी शब्द लिखे बिना कभी भी यह अधिकार न देता। उसने लिखा है, "जबरन भर्ती का सिद्धान्त नया नहीं है। सभी राष्ट्रों में सदा ही किसी न किसी रूप में उस सिद्धान्त का उपयोग किया जाता रहा है। हमारे विधायकों को यह अच्छी तरह मालूम था कि सेना-भर्ती का यह भी एक तरीका है। हमारी स्वतंत्रता के कुछ ही पहिले इसका उपयोग किया गया था।" वास्तव में हम देख ही चुके हैं कि हर राज्य को जबरन फौजी काम लेने का कुछ अधिकार था और वह अधिकार प्रारम्भ से ही था। उनके पूर्वज इस सिद्धान्त को अपने पितृ-देशों से लाये थे और अब स्वतंत्र होने पर भी इनके पितृ-देशों में लाटरी डाल कर सेना में भर्ती करने का तरीका समाप्त नहीं हो पाया था। राज्य की अपार सैन्य-शक्ति के विरुद्ध जो भावना अंग्रेजों में परम्परा से चली आ रही थी वह अमरीकी उपनिवेश-वासियों में भी भरी हुई थी। परन्तु यह भावना कभी भी सेना में भर्ती करने के तरीकों का विरोध करने के रूप में प्रकट नहीं हुई। अवश्य ही सेना की संख्या को नियंत्रण में रखने का रूप इस भावना ने अवश्य ले लिया और सेना में भर्ती का यह अधिकार अमरीका और इंगलैण्ड दोनों स्थानों पर पूर्ण सफल रहा। इसलिए इस कानून के विरुद्ध अमरीका में जो आवाज उठायी गयी उसे अवैधानिक समझा जा सकता है। इसके लिए यह कहा जा सकता था कि यह सैनिक तानाशाही की ओर ले जानेवाला कदम है। यह निरी राजनीतिक बकवास मात्र थी क्योंकि यह दलील न तो किसी तर्क पर आधारित है और न आज भी इसके प्रति ऐसी लोक-भावना ही है।

उत्तरी जनता ने जिनमें डेमोक्रेट ही अधिक थे इन तर्कों को इसी रूप में लिया। उनमें ऐसी भावना वास्तव में थी ही नहीं कि जबरन भर्ती अनावश्यक

है अथवा उससे अनिवार्यतः कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। सम्भवतः इसीलिए लिंकन ने जनता और विशेषतः डेमोक्रेट विरोधियों के लिए तैयार किये गये अपने भाषण को कभी प्रकाशित नहीं किया। उसने कहा था, "युद्ध के प्रारम्भ में और तब से लगातार सेना में भर्ती होने योग्य व्यक्तियों के सामने अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ रहती हैं। कुछ भर्ती के पक्ष में हैं, कुछ विपक्ष में। इन प्रवृत्तियों के प्रभाव के फलस्वरूप ही या तो वह स्वयंसेवक के रूप में सेना में भर्ती होता है अथवा नहीं होता। इन प्रवृत्तियों में देशभक्ति, राजनैतिक पूर्वाग्रह, महत्वाकांक्षा, व्यक्तिगत साहस, जीवट की चाह, बेकारी और सहूलियत अथवा इनके विपरीत परिस्थितियाँ रहती हैं। इन प्रवृत्तियों के तुलनात्मक प्रभाव के फलस्वरूप जो कुछ सैनिक रूप में स्वेच्छा से प्राप्त हो सकता था वह हमारे पास है और आगे भी रहेगा। फिर भी हमें और अधिक सैनिक चाहिए। यदि हम यह पूर्ति नहीं करते हैं तो हमें अपना प्रारम्भिक उद्देश्य छोड़ देना चाहिए। साथ ही जो खून अब तक बहा, जो धन अब तक व्यय हो चुका, उसे भी भूल जाना चाहिए। इस आवश्यकता को पूरी करने के लिए ही भर्ती का कानून पास किया गया है। आप में से जो सैनिक नहीं बनना चाहते उन्हें यह कानून पसन्द नहीं है। यह स्वाभाविक भी है और इसका अर्थ यह नहीं है कि इनमें देशभक्ति की कमी है। जो बातें हमें पसन्द नहीं आतीं, उन्हें जबरन स्वीकार करने का तरीका कभी भी उचित और आवश्यक नहीं हो सकता। ऐसी नापसन्द बातों का विरोध करने के लिए हम कई तरह के तर्क ढूँढ़ ही लेते हैं।" इसी प्रकार की कुछ दलीलों का उत्तर उसने अपने पूर्व परिचित ढंग से देना आरम्भ किया। अमरीका में पूर्वकालीन जबरन भर्ती के उदाहरण देकर उसने कहा, "हमें यह देखना है कि यह कठिनाई अब किस बात में रह गयी है। हमारे पितृगणों ने जिस स्वतंत्र सरकार को स्थापित करने के लिए और हमारे पितामहों ने जिसे कायम रखने के लिए इन सभी आवश्यक साधनों का उपयोग किया क्या उनसे भी हम हट जाँय। क्या हम पतित हो गये हैं? क्या हमारी जाति में से पौरुष समाप्त हो गया है?" शासन पर अन्यायी होने के दोषारोपण का उत्तर देते हुए उसने कहा, "यह कानून ऐसे ही बहुत से कानूनों में से एक है जिसका उद्देश्य दुख और सुख को समान रूप से बाँटना है। इनमें से एक भी कानून की व्यवस्था करते समय जिसे हम विचारों में पूर्ण सही मानकर सूक्ष्म स्वरूप में ढाल लेते हैं, उसे व्यावहारिक रूप देने में इतनी बारीकी का ध्यान नहीं रखा जा सकता। उदाहरण के तौर पर जब तक प्रत्येक व्यक्ति की आय के

अनुसार कितना-कितना कर देना आवश्यक है इसका निर्धारण नहीं कर लें तब तक किसी को भी कर देने के लिए मजबूर नहीं करें तो वह कर-कानून केवल कागजी ही रह जायेगा। इतना ही नहीं यह भी अगर सोच लें कि जब तक यह निश्चय न हो जाय कि सभी को कर देना है तब तक किसी को मजबूर नहीं किया जाय तो भी वह कर-कानून अव्यावहारिक ही रहेगा। ठीक इसी तरह की कठिनाई बलात् भर्ती के कानून के सम्बन्ध में पूरी तरह से लागू होती है। वास्तव में यह कठिनाई बलात् भर्ती में और भी अधिक है।" फिर उसने ऐसी कई कठिनाइयाँ बतायीं। उसने कहा, "इन सभी बातों में चाहे अधिक से अधिक ईमानदारी भी बरती जाय तो भी गलतियाँ होंगी। सरकार ऐसे मामलों में कानून की व्यवस्था जितनी स्पष्टता, सद्भाव और ईमानदारी से संभव हो उसे ध्यान में रख कर यथासम्भव करती है। ठीक हो सकने वाली गलतियों को सुधार लेना चाहिए। उपरोक्त दृष्टिकोणों तथा इन सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर यह कहना आवश्यक है कि मैं भर्ती-कानून को ईमानदारी से कार्यान्वित होते देखना चाहता हूँ।" इस तरह विचार व्यक्त करने का उसका यह अपना अनूठा तरीका था। हम देख ही चुके हैं कि कभी-कभी वह पहले अपने विचारों को स्पष्टता से लिख लेता था और फिर इस पर सोचता था कि उन्हें प्रकाशित किया जाय या नहीं। भाषण के ये पन्ने उसकी मृत्यु के पहले कभी प्रकाश में नहीं आये। यह कहा जाता है कि उसके कार्यालय की किसी परम्परा के कारण वह उसे बाहर नहीं भेज सका, परन्तु उस परम्परा को उसने इस ख्याल से और भी निभाया होगा कि जिन ईमानदार लोगों के लिए उसने यह लिखा था उनसे किसी तरह की अपील करना आवश्यक ही नहीं था। जो व्यक्ति इतनी बुद्धिमत्ता से लिख कर भी यह समझ लेता है कि इस समय चुप रहना ही अधिक श्रेयस्कर है, उसकी बुद्धिमानी में कहीं संदेह का स्थान नहीं रह जाता।

जबरन भर्ती कानून के विरोध को हम विरोधी दल के प्रचार का एक अंग मान सकते हैं। इस कानून का विरोध गिरजाघरों या सामान्य विचारकों द्वारा जो किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्धित नहीं थे, नहीं किया गया। हम देख चुके हैं कि १८६२ के उत्तरार्ध में डेमोक्रेटिक दल की शक्ति फिर बढ़ गयी थी। ऐसे महत्वाकांक्षी व्यक्ति जो चाहे किन्हीं प्रवृत्तियों के कारण ही सही, युद्ध काल में युद्ध के विरुद्ध ऐसे प्रचार को बुरा नहीं मानते थे, वे विरोधी दल के नेता बनना चाहते थे। यह स्वाभाविक था कि उत्तर में उन्हें ऐसे लोग मिल ही

जाते, जो उनकी बात पर ध्यान देते। विशेषकर उस समय भी इस ओर इस कारण भी ध्यान गया कि युद्ध में सफलता नहीं मिल रही थी। दासमुक्ति की घोषणा की निन्दा करने में उनको विरोध के लिए अच्छा मसाला मिल गया था। यह ध्यान देने की बात है कि इस घोषणा के कुछ ही दिनों बाद मैक्लीन ने एक सामान्य आदेश जारी कर दिया कि सबको सरकारी आज्ञा माननी अनिवार्य है। उसमें यह भी संकेत था कि जहाँ तक राजनीतिक भूलों को सुधारने का सवाल है उसका निराकरण, चुनाव में जनता किस ओर मत देती है इस आधार पर ही हो सकता है। यह कहना भारी भूल है कि बहुत से डेमोक्रेट युद्ध के विरुद्ध थे, यद्यपि कुछ लोग युद्ध को नापसन्द करते थे और ये लोग जोरों से अपना विरोध प्रकट भी करने लगे थे; परन्तु अधिकांश डेमोक्रेट गणराज्य के प्रति इतनी गहरी राजभक्ति रखते थे जितनी ग्रीली जैसे पक्के रिपब्लिकी नेता की थी। ग्रीली के लिए तो बाद में यह राजभक्ति भी बनाये रखना कठिन हो गया था। स्वाभाविक ही था कि कुछ डेमोक्रेट ऐसे थे जिन्हें इस तरह की राजनीति में अब कुछ अवसर दिखायी दिया। ये लोग संकीर्ण दिमाग के थे जो छोटी-छोटी बातों पर मामूली सी त्रुटियों को लेकर ही कुप्रचार आरम्भ कर देते थे। ऐसे व्यक्ति अपने दिल में सोचने लगे कि कहीं यह मक्कार प्रशासन शत्रु से भी अधिक घृणित सिद्ध न हो, ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। ऐसे सभी लोगों में एकता हो गयी जो युद्ध से घृणा करते थे और ये लोग यह सोचने लगे कि इस युद्ध का संचालन उनके हाथों में होता तो अच्छा था।

सरकार की व्यवस्था में भी कई ऐसी बातें थीं जिनकी आलोचना की जा सकती है। इस तरह की आलोचना व दलीय सिद्धान्त के पुनर्जन्म ने स्वतंत्रता को अर्थहीन बना दिया और उन लोगों को शासन व्यवस्था का सर्वोच्च समालोचक मान लिया गया जो खुद ही पद सम्भालने को लालायित थे। यदि ये लोग अपने स्वार्थों को तिलाञ्जलि देकर सरकार की उचित आलोचना करते तो अच्छा था। सैनिक व्यवस्था के अतिरिक्त दो बातें और थीं, जिनकी विशेष चर्चा आवश्यक है। परन्तु इन दोनों के बारे में लिंकन की जानकारी अपने आलोचकों से अधिक थी और यह जानकारी वर्णनातीत थी। एक तो फौजी ठेकों आदि में अनापशनाप खर्च और प्रशासन में भ्रष्टाचार बुरी तरह फैला हुआ था। परन्तु मंत्रीमण्डल के सदस्य उनका अन्त करने के लिए उतने ही चिन्तित थे जितने कि दूसरे आलोचक, और उस समय आलोचना की नहीं, वरन् सरकार को सहयोग देने की आवश्यकता थी। दूसरी बात थी, सैनिक

कानून का प्रयोग। यह एक जटिल प्रश्न था। यहाँ इस बारे में कुछ कहना आवश्यक है। परन्तु इस सम्बन्ध में उन्हीं लोगों के अभिमत से लाभ होता जो सरकार के पक्ष में थे और हृदय से उनके साथ थे।

प्रत्येक विद्रोह अथवा गृह-युद्ध में राजनीतिज्ञ तथा उनके अधीन सैनिक अधिकारियों को जनरक्षा तथा सामान्य न्याय के लिए कुछ ऐसे नियम तथा प्रणालियाँ लागू करनी पड़ती हैं जिन्हें शान्तिकाल में न्यायालयों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। बड़े युद्ध, मसलन् फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के बाद इंगलैण्ड का गृहयुद्ध और अमरीकी गृहयुद्ध में पिट तथा लिंकन जैसे राज-नीतिज्ञों को भी जो इस तरह की स्थिति को भली प्रकार सम्भाल सकते थे, उन्हें इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण दूसरे कामों में लगे रहना पड़ा। विशेषकर नीति सम्बंधी जटिल समस्या वास्तविक युद्ध-क्षेत्र में नहीं होती। वहाँ तो सेनापति की इच्छा ही कानून हो जाती है। परन्तु कठिनाई युद्ध से दूर के क्षेत्रों में होती है, जिन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है अथवा उस समय पैदा होती है जबकि युद्ध की आग भीतर ही भीतर सुलग रही हो। लिंकन की सरकार को पहिले उन षड्यंत्रों से अपनी रक्षा करनी पड़ी जिन्हें वाशिंगटन में महसूस किया जा रहा था; परन्तु उन्हें साबित करना कठिन था। बाद में भी उसे ऐसी ही कई जटिल समस्याओं को हल करना पड़ा। उसके सामने यह प्रश्न मुख्य था—जब शत्रु के एजेण्ट सैनिक भर्ती के विरुद्ध गुप्त रूप से काम कर रहे हों, जब किसी भर्ती करने वाले सैनिक पर नागरिकों की भीड़ के टूट पड़ने की आशंका हो और स्थानीय पुलिस तथा कलक्टर विश्वास के योग्य न रह गये हों तो क्या किया जाना चाहिए? इसमें सन्देह नहीं कि प्रारम्भ में सेवार्ड व स्टाण्टन जैसे मंत्री तथा स्थानीय जोशीले सेनापति यदाकदा इन समस्याओं को जल्दबाजी में हल कर लेते थे और लिंकन भी सरकारी कर्मचारियों की गलती सुधारने के बजाय उनका साथ देता था। लिंकन का यह दावा था कि मुख्य सेनाध्यक्ष की हैसियत से गृहयुद्ध के सम्पूर्ण काल में सभी नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता पर वे चाहे देशभक्त हों या विद्रोही, उसका कानूनी अधिकार था। यह अधिकार उसी तरह का था, जैसा कि अपनी सेनाओं द्वारा शत्रु के देश पर कब्जा करने पर उस सेना के सेनापति का होता है। उसकी यह मान्यता थी कि जिस व्यक्ति को इस अधिकार से हानि पहुँचती है, उसके पास इससे बचने का कानूनन कोई उपाय नहीं था। वह केवल यही कर सकता कि इसके लिए लिंकन को ही दोषी ठहराये। वह यह भी जानता था कि उसका यह अधिकार सभी स्थानों में जहाँ

शत्रु का प्रभाव किसी भी रूप में पहुँचना सम्भव था वहाँ रहेगा, अर्थात् सम्पूर्ण देश में उसका अधिकार लागू होगा। इसे वह इंगलैंड के सामान्य कानून का सिद्धान्त ठहराता और कहता कि संविधान ने इस सिद्धान्त को पूर्ण शक्ति के साथ जारी रहने दिया। सामान्य कानून के सिद्धान्त के सम्बन्ध में उसके इस दृष्टिकोण के बारे में चाहे जो कहा जाय, परन्तु संविधान का जो उसने यह अर्थ किया इसे आज सभी गलत ही कहेंगे। स्पष्ट तौर पर संविधान ने सैनिक कानून की अस्पष्टता को ही नहीं समाप्त कर दिया बल्कि इस दिशा में वह और भी आगे बढ़ गया। इंगलैण्ड में पार्लियामेण्ट जनरक्षा के लिए आवश्यक कोई भी विशेष कानून बना सकती है। केवल राजा ही उसे रद्द कर सकता है। अमरीकी संविधान ने उस संसदीय अधिकार को बहुत ही संकुचित कर दिया। इसके अतिरिक्त इंगलैंड में वेलिंगटन और केसलरी द्वारा प्रारम्भ किया हुआ एक तरीका अभी तक चला आता है, जिससे कि सैनिक कानून के अधिकार का प्रश्न ही अलग हो जाता है। संकट के समय गवर्नर यह सोचता है कि क्या करना ठीक है। उस समय वह यह नहीं सोचता है कि कानून कि मंशा क्या है। यह तो वह जानता है कि उसके कार्यों के सम्बन्ध में बाद में जांच अवश्य होगी; परन्तु वह यह भी जानता है कि यदि उसने और उसके अधिकारियों ने मूर्खता से काम नहीं लिया है और उन्होंने सचाई से काम किया है, तो कानूनी सजाओं से उन्हें मुक्ति-कानून (इण्डेम्निटी ऐक्ट) बचा लेगा। अमरीकी संविधान में मुक्तिकानून (इण्डेम्निटी ऐक्ट) जैसे किसी कानून की गुंजायश नहीं है। कानूनी दृष्टि से तो लिंकन ने जो अधिकार बरते थे, सभी अवैधानिक ही थे। जिन तर्कों से लिंकन अपने कार्यों को कानूनी सिद्ध करता था, वे इस दृष्टि से तो ठीक हैं कि कानून क्या होना चाहिए। परन्तु जो कानून उस समय था उसकी दृष्टि में वे उचित नहीं थे। वह इस तर्क को अधिक महत्व नहीं देता था, क्योंकि वह साफ-साफ कहता था कि मैं छोटी बातों में कानून तोड़ना पसन्द कर लूँगा पर कानून की समूची शृंखला को नष्ट नहीं होने दूँगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह जब अपने अधिकार को नैतिक तथा कानूनी तौर पर सिद्ध करता था तो उसके दिल में बेईमानी होती थी। संविधान को वह सम्भवतः ऐसे ढंग से मानता था कि आज के वकीलों के लिए उसे समझना कठिन है। कानून का अर्थ लगाने के लिए हैमिल्टन ने जिस प्रकार का सिद्धान्त बनाया था, सम्भवतः कुछ उसी तरह का सिद्धान्त लिंकन भी मानता था। हैमिल्टन ने लिखा था कि कानून पर कई प्रकार के बंधन और नियंत्रण हैं, जैसे प्रचलित

सामान्य कानून, जनता की सुविधाएँ, औचित्य और कानून बनानेवालों की उस नीति का खयाल जो वे आज की परिस्थिति में बुद्धिमानी और ईमानदारी के साथ सम्भवतया लागू करते। कानून के शब्दों को कट्टरता से लागू न कर स्वाभाविक न्याय की दृष्टि में उनका अर्थ किया जाय।

अपने इस काल्पनिक विशेषाधिकार से लिंकन ने युद्ध के प्रारम्भ से अन्त तक बहुत से खतरनाक व्यक्तियों की गिरफ्तारी की आज्ञा दी। आज्ञापत्र फ्रान्स के राजाओं द्वारा निकाले हुए 'लैत्र द काशेर' अर्थात् गिरफ्तारी के हुक्म के रूप में सेवार्ड और स्टाण्टन द्वारा जारी किये जाते थे। १८६३ में उसने सार्वजनिक तौर से इस बात पर खेद प्रकट किया कि ली और जोसेफ जोन्स्टन की आरम्भ में इस कानून के मातहत गिरफ्तारी उसकी आज्ञा के अभाव में नहीं की जा सकी। जब सन् १८६२ के अन्त में इस विशेषाधिकार के विरोध में आन्दोलन उठा तो उसने कई राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर बुद्धिमानी का परिचय दिया। १८६३ में फिर कांग्रेस ने संविधान के अधिकारों का प्रयोग करते हुए एक और कानून पास किया। इसके अनुसार जहाँ राष्ट्रपति उचित समझे, वहाँ व्यक्ति-स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार को रद्द कर सकता था। सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय में, जो संयोगवश लिंकन के पुराने मित्र डेविड द्वारा ही लिया गया था, यह स्पष्ट कर दिया गया कि इस कानून की वैधानिकता नहीं के बराबर है। कुछ भी हो, फिर भी कानून में कई सतर्कता की धाराएँ जोड़ दी गयी थीं पर सरकार ने इनकी परवाह नहीं की, क्योंकि वह तो सैनिक कानून सम्बन्धी लिंकन के सिद्धान्त पर चलती थी। अंत में सारे देश में ही सैनिक-कानून लागू कर दिया गया और बहुत से व्यक्तियों को भर्ती के लिए निरुत्साहित करने, अर्थात् सेना छोड़ भागने के लिए प्रोत्साहित करने जैसे अपराधों में गिरफ्तार कर लिया गया और स्थानीय सेनानायकों की आज्ञा से फौजी अदालतों में मुकदमा चला कर उन्हें सजाएँ दी गयीं। इन अपराधों पर साधारण अदालतें सजा नहीं दे सकती थीं, क्योंकि सामान्य नियमों द्वारा यह अपराध मान्य नहीं थे। सैनिक कानून पर लिंकन ने इसलिए जोर दिया कि कहीं जबरन भर्ती कानून असफल न हो जाय। परन्तु भर्ती सम्बन्धी अधिकारों के अतिरिक्त भी १८६३ के बाद कनाडा में दक्षिण के एजेण्टों द्वारा रचे गये उत्तर विरोधी षड्यंत्रों की कमी नहीं थी और कई गुप्त समितियाँ सक्रिय थीं। लिंकन तो इनका मजाक बनाया करता था। परन्तु कई बार स्थानीय सेनानायकों को उनके बारे में गम्भीरता से सोचना पड़ा और डेमोक्रेटों का एक प्रभावशाली

नेता वैलेण्डिघम तो यह शेखी बघारता था कि उत्तर में ऐसी समितियों के पाँच लाख सदस्य हैं। सरकार इस दिशा में कड़े कदम उठा रही थीं और इन कदमों का विरोध मृतप्राय हो गया, क्योंकि जनता का यह विश्वास हो चला था कि ऐसी कठोर कार्यवाही आवश्यक है। जनता में यह भावना भी घर कर गयी थी कि कुछ डेमोक्रेट जिसे रक्तपिपासु सम्राट 'अब्राहम लिंकन' कहते थे, वह व्यक्ति ऐसी मिट्टी का बना हुआ था जिससे तानाशाह नहीं बनते हैं और जो रक्तपिपासु तानाशाह जीवित थे उनमें लिंकन का कहीं स्थान नहीं था। नागरिक न्यायालयों ने उसके मामले में हस्तक्षेप की कोई कोशिश नहीं की। उन्होंने कहा, कानून कुछ भी हो हम सेनाध्यक्षों का मुकाबला नहीं कर सकते। ऐसे मामलों में अंग्रेजी न्यायालय भी कई बार हस्तक्षेप नहीं करते थे और इस आधार पर नहीं कि सेनाध्यक्ष के पास शक्ति थी वरन् इसलिए कि उसके अपने अधिकार होते थे। फिर भी वे इस मामले पर विचार करते समय यह अवश्य देखते कि उनके इस क्षेत्र में युद्ध का प्रभाव है या नहीं, क्योंकि सैनिक प्रशासन तभी लागू हो सकता है जब युद्ध की स्थिति हो। यह कानूनी विवाद जिस प्रकार उत्पन्न हुआ उससे साधारण जनता को कोई नसीहत नहीं मिली। १८६५ में सर्वोच्च न्यायालय में बड़ी गम्भीरता से मिलिगन नामक एक व्यक्ति के व्यक्ति-स्वातंत्र्य अधिकार को लेकर मुकदमा चला। युद्ध—जिसके आधार पर वह अधिकार छीना जा सकता था—कई महीने पूर्व समाप्त हो चुका था। उस समय किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि वह व्यक्ति अपना अधिकार भोगने के लिए जिन्दा भी है या उसे बहुत पहले गोली मारी जा चुकी थी।

कुछ थोड़े से मामलों के छोड़ कर इन प्रतिरोधी दमनकारी कार्यवाहियों में लिंकन ने खुद कभी कोई भाग नहीं लिया। सेना में नियम पालन के प्रश्न को लेकर ही उसे जितना काम करना पड़ता था, इसीसे उसकी शक्ति और समय पर बड़ा भारी बोझ पड़ जाता था और वह जनकल्याण के लिए इसे अधिक उचित मानते हुए भी अपने मंत्रियों और सेनापतियों के काम की छानबीन करने के बजाय उनका ही पक्ष लेता था। उसका ख्याल था कि इससे कोई बड़ा भारी अन्याय नहीं होगा। बहुत सम्भव है, वह यहाँ गलती पर था। डेमोक्रेट ही नहीं बल्कि सीनेट सदस्य जान शरमन, जो एक शक्तिशाली और समझदार रिपब्लिकी नेता था उसकी इन हरकतों को गलत समझता था। स्टाण्टन के अधीन गुप्तचर पुलिस के सम्बन्ध में गन्दी कहानियाँ कही जाती थीं और सैनिक न्यायालयों की

कार्यवाहियों के उल्लेख भी अच्छे नहीं थे। इन न्यायालयों में वे अफसर नियुक्त किये जाते थे जो युद्ध क्षेत्र में बेकार सिद्ध होते थे। जान शरमन के अनुसार अनेक जिलों में तो सामान्य कानूनों से काम चल जाता था। उस समय राजनैतिक कैदियों की संख्या हजारों तक पहुँच गयी थी। परन्तु अन्यथा कुछ भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तात्कालिक गम्भीर स्थिति पर जरा भी दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि उत्तर में शत्रु के समर्थक बहुत तादाद में थे। इससे भी कुछ अन्तर नहीं पड़ता कि ऐसे अपराधों में दंडित कई उच्च पदाधिकारी, प्रतिष्ठित और सम्माननीय व्यक्ति थे। यदि ऐसे व्यक्ति सक्रिय राजभक्त होते तो उन पर देशद्रोह के आरोप का अवसर ही न पैदा होता। यह भी सम्भव है कि कई बार अजाने व साधारण व्यक्ति इस तरह झूठे विद्रोहपूर्ण आरोपों अथवा पुलिस के घृणित एजेण्टों के शिकार बन जाते थे। फिर भी इसके कारण कड़ा सैनिक-कानून जारी रखने के लिए लिंकन को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। ऐसे निरर्थक दमनकारी कई मामले भी सम्भवतः हुए होंगे उनसे बचने का उपाय अमरीका की न्याय और पुलिस की साधारण कार्यप्रणाली में नहीं है। यह लगभग मानी हुई बात है कि सामान्य नियमों को ही यदि रहने दिया जाता तो जनहित पर भयंकर खतरा पैदा हो जाता। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि इस तरह कुछ व्यक्ति सताये जाने से बच जाते, बहुत से व्यक्तियों को बुरी तरह सताया जाना इस संकट से बड़ा खतरा नहीं था। सरकार लोगों को इसलिए नहीं पकड़ा करती थी कि उनके विचार हानिकारक थे, बल्कि उस समय पकड़ती थी जब वे कुछ ऐसे ही देशविरोधी कार्य करते थे। लिंकन की यह राय थी कि इस प्रकार के ये कार्य साधारण न्यायालयों के लिए सम्भालना उनकी सामर्थ्य के बाहर है। उसने कहा, "मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि अपराध करने के बाद सजा दूँ बल्कि यह है कि इन्हें अपराध करने से ही रोक दूँ।" कुछ लोगों को यह बात स्वतंत्रता के अधिकारों के विरुद्ध भावना-सी लगेगी परन्तु उसका यह कहना ठीक ही था कि साधारण अपराधों के मुकाबले में इस प्रकार के अपराध अधिक आसानी से समझ में आ जाते हैं। जब सरकार पर संकट पड़ने की चर्चा हो रही हो और वहाँ खड़ा हुआ एक आदमी कुछ नहीं कहता है तो, उसके बारे में स्पष्ट पता चल जाता है कि वह किधर है। यदि उसे रोका नहीं गया तो वह अवश्य ही शत्रु की मदद करेगा; यदि वह और लाग-लपेट की बात करता है तो उसके दोषी होने की सम्भावना और अधिक बढ़ जाती है। किसी भी सूरत में लिंकन स्पष्टता और निर्भयता से इस बात के पक्ष में था कि शत्रु

को सहायता पहुँचानेवाली बातचीत या ऐसे कार्य कोई करे तो उसे कठोरता के साथ दबा देना चाहिए और उस समय शान्तिकाल के कानून की परवाह नहीं करनी चाहिए। कुछ समय बाद हम इस पर विचार करेंगे कि क्या इस तरह की बातें करनेवाला व्यक्ति वास्तव में हृदय से रक्तपिपासु था?

विरोधी पक्ष डेमोक्रेटिक दल जिसने १८६३ के पूर्वार्ध में कुछ प्रगति की थी, दो भागों में बट गया था। एक पक्ष में पश्चिम में फैले असन्तोष के प्रति विरोध करने वाले लोग थे, जिनका नेता ओहयो का कांग्रेसी सदस्य क्लीमेण्ट वैलेण्डीग्रम था। दूसरे पक्ष में उदार दृष्टिकोण के लोग थे। इनका नेता था होरेशियो सीमूर, जो चुनाव में हार जाने पर, १८६२ के अन्त से १८६४ तक न्यूयार्क राज्य का गवर्नर बना रहा। इस उग्र पक्ष को वहाँ के लोग अमरीका में पाये जाने वाले एक जहरीले साँप 'रेडहेड' के नाम से पुकारते थे। इस घृणित नाम से उन्हें ही पुकारा जाता था जो दक्षिण की विजय तक चाहते थे, परन्तु सामान्यतः वे लोग भी इससे नहीं बच पाते थे जो केवल युद्ध बन्द करने के पक्ष में थे। युद्ध बन्द करने की यह मांग दास-मुक्ति की घोषणा से सरकारी नीति में जो परिवर्तन हुआ उसके विरोध में उठायी गयी थी। वैलण्डीघम ने जनवरी १८६३ में कांग्रेस में कहा, "गणराज्य की रक्षा का युद्ध तुम्हारे हाथों से असफल तो होगा ही पर उसमें भयंकर रक्तपात भी होगा, यह बहुत महंगा पड़ेगा। गणराज्य की रक्षा को तो मानो तुमने तिलांजलि दे दी है, अब तुम खुल कर हब्शियों के हितों के लिए लड़ रहे हो। परन्तु क्या तुम्हें इसमें सफलता मिली है? फ्रेड्रिकबर्ग के शहीदों से पूछो, 'क्या यह युद्ध जारी रखना चाहिए?' मेरा उत्तर है, 'नहीं, एक दिन भी नहीं, एक घड़ी भी नहीं।' तो फिर क्या होना चाहिए? क्या हम पृथक हो जाँय? मेरा उत्तर है, 'कदापि नहीं; युद्ध बन्द करो। अस्थायी समझौता कर लो और तुरन्त विदेशी मित्रों की मध्यस्थता स्वीकार कर लो।' मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि युद्ध का स्पष्ट और अस्पष्ट उद्देश्य दास-प्रथा को राज्यों में से उठाना था और हमारी वर्तमान जनतंत्र प्रणाली को हटा कर साम्राज्यशाही स्थापित करना था।" यह बात कहना किसी प्रकार भी देशद्रोह नहीं था परन्तु यह निरा पाखण्ड मात्र था। देश में दासमुक्ति के नाम पर तानाशाही का तथाकथित षड्यंत्र नहीं था। गंभीर संकट के समय यह सुझाव पूर्णतया गलत था। ऐसी कोई सम्भावना थी ही नहीं कि दक्षिण से पृथकता के अतिरिक्त कोई समझौता सम्भव हो। वैलेण्डिघम वास्तव में उग्रवादी था परन्तु उसमें सैद्धान्तिक

ईमानदारी जैसी कोई बात नहीं थी। बाद में उसने दक्षिण में जाकर वहाँ के नेताओं से गणराज्य में मिल जाने की बातचीत भी की, परन्तु वह राजनीतिक बहुरूपिया साबित हुआ। उसका वहाँ कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस समय बर्न-साइड ओहयो में सेनापति था। उसने निश्चय किया कि इस तरह के प्रचार का सेना पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है; अतएव यह देशद्रोह है। निश्चय ही यह देशभक्ति तो थी नहीं। जब मई १८६३ में वैलेण्डिघम ने ओहयो में हिंसात्मक और सरकार विरोधी उग्र भाषण दिया तो उसने उसको घर से गिरफ्तार करके सैनिक न्यायालय के सामने प्रस्तुत किया। उसे सजा हो गयी। सभी डेमोक्रेटों ने इसका तीव्र विरोध किया। चांसलरविले के बाद ही लिंकन को इस विरोध का मुकाबला करना पड़ा। उसने बर्नसाइड के इस काम पर खेद प्रकट किया। बर्नसाइड ने एक समाचारपत्र को विरोधी समाचार छापने पर बंद करवा दिया। इससे भी तीव्र विरोध उठ खड़ा हुआ तो लिंकन को बर्न-साइड के आदेश रद्द करने पड़े। उस समय जनता में उसने इतना ही कहा, "मुझे दुख है कि आवश्यकता के कारण ऐसा करना पड़ा।" प्रत्यक्ष ही है कि उसने खतरनाक देशद्रोही के विरुद्ध अपने एक ईमानदार सेनाध्यक्ष का पक्ष लेना ठीक समझा। वैलेण्डिघम को लेकर उसने एक व्यावहारिक विनोद का प्रसंग पैदा किया और वह सफल भी हुआ। वैलेण्डिघम को वास्तव में छोड़ दिया गया। उसे ले जाकर सेना ने दक्षिण वालों को सौंप दिया, मानो एक युद्धबन्दी वापिस किया जा रहा हो। ओहयो के डेमोक्रेटों द्वारा यह मांग करने पर कि उसे घर वापिस आने दिया जाय, लिंकन ने कहा, "मैं इसके लिए तैयार हूँ; पर शर्त यह है कि आपका वह नेता यह प्रतिज्ञा करे कि वह युद्ध का विरोध नहीं करेगा और सेना की क्षमता बढ़ायेगा।" लिंकन के इस सुझाव को उन्होंने "टालना मात्र" कहा। वैलेण्डिघम दक्षिण से कनाडा जा पहुँचा और वहाँ से षड्यंत्र करने लगा। नवम्बर में उसकी अनुपस्थिति में ही उसको ओहयो के गवर्नर पद का उम्मीदवार खड़ा कर दिया गया, परन्तु वह भारी मतों से हार गया। उसकी हार का कारण गेटिसबर्ग और विक्सबर्ग थे। अगले वर्ष गिरफ्तारी की परवाह न करते हुए वह अमरीका आ धमका था। परन्तु उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई और उसे निराश होना पड़ा। ओहयो और न्यूयार्क की सभाओं से उसकी गिरफ्तारी के विरोध में प्रस्ताव पास कर लिंकन के पास भेजा गया तो लिंकन ने सफाई में सैनिक कानून सम्बन्धी अपने पूर्व-घोषित विचारों के अनुसार उत्तर दिया। उसमें एक वाक्य है जिसका उत्तर में

सबसे अधिक प्रभाव पड़ा—"क्या यह ठीक होगा कि मैं एक सीधे-सादे सैनिक युवक को जो सेना से भागता है, गोली मार दूँ और उस मकार उपद्रवी का बाल भी बाँका न करूँ जो उसे छोड़ भागने के लिए उकसाता है?" इसमें कहीं कोई धोखा या दुराव जैसा कुछ नहीं है। परन्तु यह नहीं मान लेना चाहिए कि यह दलील किसी वकील की दिमागी सूझ है। यह उस व्यक्ति के दिल से निकला हुआ वाक्य है जिसका हृदय सेना से भागे हुओं पर रोजाना मौत की सजा बहाल करते-करते रो उठा था।

गवर्नर सीमूर वैलेण्डिघम के बजाय अधिक प्रख्यात विरोधी था। उसने युद्ध-समाप्ति के लिए नहीं कहा। वह कहता था कि युद्ध एक वैध सरकार द्वारा वास्तव में लड़ा जा सकता है जो संविधान को अक्षुण्ण रख कर जनता में एकता बनाये रख सके, न कि उग्रवादियों की तरह दासमुक्ति की दुष्टनीति बरते। यह भी कहा जा सकता है कि वह बढ़ती हुई घूंसखोरी से वास्तव में दुखी था। युद्ध के ठेकों से घूसखोरी बढ़ती थी। परन्तु आलोचक की तरह उसने मनुष्य की इस स्वाभाविक कमजोरी की ओर से मुँह फेर लिया और यह सोच लिया कि युद्धकालीन बोझ से दबा हुआ प्रशासन इसे आसानी से नष्ट कर सकता है। यह सरलता से समझाया जा सकता है कि कट्टर डेमोक्रेटों की उस समय कैसी मुश्किल थी। दो ही साल पहिले उन्होंने इस पक्ष में मत दिये थे कि दास-प्रथा का विस्तार रोका न जाय, और अब उनसे कहा जा रहा था कि गणराज्य की रक्षा के लिए एक ऐसी सरकार का साथ दो जो सैनिक कानून की शक्ति से दासप्रथा को सचमुच ही नष्ट किये दे रही थी। पूर्णतः स्वाभिमानी डेमोक्रेट सीमूर का रुख भी ऐसा होना स्वाभाविक ही है। गवर्नर सीमूर की बहुत सी बातें अच्छी थीं और उसके काम देशभक्ति से पूर्ण थे। उसकी मुख्य बातों को हम थोड़े में बता देते हैं। १८६२ के अन्त में उसका गवर्नर के पद पर निर्वाचन महत्वपूर्ण घटना समझी गयी क्योंकि सब से अधिक प्रभावशाली पद पर एक नये नेता का उदय हुआ। लिंकन ने अपने अधिकार के अनुसार यह मान कर कि सीमूर युद्ध के संचालन से पूर्णतः सहमत है और साथ देगा, एक सर्वोत्तम काम किया। मार्च १८६३ में पद पर आने के बाद उसने उसे अपने पास पत्र लिख कर इस बात के लिए बुलाया कि दोनों के विचारों में भिन्नता होने के कारण युद्ध संचालन में सहयोग कैसे दिया जा सके इसे स्पष्ट कर लिया जाय। केवल यह उत्तर देने में कि उसे लिंकन का पत्र मिला, गवर्नर ने तीन सप्ताह लगा दिये। उसने लिखा

कि वह पूरा उत्तर बाद में देगा। उत्तर कभी भेजा ही नहीं गया। वैलेण्डिघम की गिरफ्तारी का उसने दृढ़ता से विरोध किया। जुलाई १८६३ में जबरन भर्ती कानून न्यूयार्क शहर में लागू किया गया। तभी उस कानून के कारण एक सबसे बड़ी अप्रिय घटना घटी। विदेशों से आये हुए, खासकर आयरलैण्ड के लोगों की एक भीड़ ने भर्ती के काम को जबरदस्ती रोक दिया। रिपब्लिकी नेताओं के घरों में आग लगा दी और दमकल को आग बुझाने से रोक दिया, जो नीग्रो मिला उसे जला कर मार डाला और कुछ को पेड़ों और लालटेनों के खम्भों से बाँध कर जला दिया। अश्वेत बच्चों के यतीमखानों में आग लगा दी गयी। बड़ी कठिनाई से पुलिस ने मासूम बच्चों को बचाया। चार दिन तक शहर में बलवा होता रहा। जब नयी सेना आयी तब कहीं व्यवस्था हो सकी। बहुत दिनों के बाद फिर भर्ती सफलता से शुरू हो गयी। गवर्नर सीमूर बलवे के समय शहर में आया। उसने इस उपद्रवी भीड़ को नम्र शब्दों में कहा कि अगर तुम भले प्रकार से बर्ताव करोगे तो तुम्हारी शिकायतें दूर करने में मैं मदद करूँगा। उसने यह भी मान लिया कि उनका यह उपद्रव उनकी तकलीफों के कारण हुआ। वह अन्त तक लिंकन से यही शिकायत करता रहा कि मजबूरन भर्ती की संख्या कुछ जिलों पर बेईमानी करके अधिक डाल दी गयी है। यह ठीक है कि उसने इस कानून का वैधानिक आधार पर ईमानदारी से विरोध किया और लिंकन से प्रार्थना की कि जब तक न्यायालयों में उसकी वैधानिकता निश्चित न हो जाय तब तक के लिए इस कानून को रोक दिया जाय। इस सम्बन्ध में लिंकन ने पूर्ण औचित्य से कहा, "मैं सर्वोच्च न्यायालय में अपील की सहूलियत करा देता हूँ परन्तु सैनिक आवश्यकता के कारण भर्ती बन्द करने के लिए राजी नहीं हो सकता।" सीमूर द्वारा बाधक बनने की हरकतें सिर्फ इस कानून के विरोध तक ही सीमित नहीं रही बल्कि वह भर्ती की निर्धारित संख्या को हमेशा बेईमानीपूर्ण बताता रहा। बलवे के पहिले इस सम्बन्ध में कुछ शिकायत नहीं हुई थी। सम्भव है कि पहिले कोई भूल हुई होगी। लिंकन ने संख्या को तुरन्त कम करके इस भूल का निराकरण कर दिया। सीमूर ने तब भी अपनी शिकायतें जारी रखीं। अन्त में उसे वाशिंगटन बुलाया गया कि वह अपनी इस शिकायत के सम्बन्ध में स्टाण्टन से बात कर ले, परन्तु उसने सामने आने से इन्कार कर दिया।

गवर्नर सीमूर को अपने समय का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता था और सामान्यतया निश्चय ही वह भला आदमी भी था। परन्तु उसके असराहनीय

व्यवहारों को देखते हुए यह अतिशयोक्तिपूर्ण है कि उसे न्यायप्रिय कहा जाय।

इस प्रकार दास-मुक्ति की घोषणा के बाद उत्तर के लोगों में मानों यह धुन सवार हो गयी थी कि अच्छी सरकार बननी चाहिए। एक संगठित विरोधी दल भी वर्तमान शासकों का स्थान लेने के लिए उत्सुक था। कई प्रतिष्ठित व्यक्ति भी इस दल में शामिल हो गये। परन्तु यह समझना कठिन है कि ऐसे कौन से समान आधार थे जिन पर वह एक बने रहते और दल भंग नहीं होता। ऐसे उग्र नेताओं का, एक तत्कालीन उपन्यास 'देशरहित व्यक्ति' में ठीक ही मजाक बनाया गया है। उनकी सफलता इस बात पर निर्भर थी कि देश युद्ध में हार जाय और सरकार के विरुद्ध जनता भड़क उठे। परन्तु ऐसी स्थिति केवल पराजय से ही आ सकती थी, वे जिन बुराइयों की आलोचना करते थे उनसे नहीं। १८६३ के उत्तरार्ध में युद्ध अच्छी तरह चल रहा था। इल्लीनायस में गणतंत्र-समर्थकों की एक विशाल बैठक बुलायी गयी। लिंकन को वहाँ जाकर बोलने का लोभ हुआ, परन्तु वह केवल सन्देश भेज कर ही रह गया। इस संदेश से वह राजनीतिक वक्ता ही प्रकट होता है। उसमें उसने यह स्पष्ट बता दिया कि शान्ति की बातचीत जैसी आजकल हो रही है वह कपटपूर्ण प्रवंचना है। "दक्षिण राज्य का अर्थ है दक्षिणी सेनाएँ और उनके संचालक। वास्तव में उनकी ओर से शान्ति व समझौते का कोई सुझाव नहीं आया। यदि आया होता तो लोगों को मालूम ही होता।" साथ ही उसने मुक्ति की नीति को स्पष्ट किया। उनको भी समझाया, जो गणराज्य के पक्ष में थे परन्तु जो यह स्वीकार नहीं करते थे कि सभी मनुष्य स्वतंत्र है। "कुछ भी हो गणराज्य की रक्षा के लिए नीग्रो लोगों को, जो उत्तर के लिए लड़ रहे हैं, स्वतंत्रता के अधिकार का वचन दिया गया था और यह वादा पूरा किया जाना चाहिए।" ज्यों-ज्यों युद्ध का सबसे अधिक संकट का वर्ष समाप्त होने आया त्यों-त्यों लोगों को लिंकन जिस बाधा-भरे लक्ष्य पर पहुँचने वाले मार्ग पर चल रहा था वही उचित प्रतीत हुआ। फलस्वरूप लिंकन को आशा से भी अधिक सम्मान प्राप्त हुआ।

[३]

१८६४ में युद्ध

यह सामान्य सैनिक मत है कि युद्ध के अन्तिम दिनों में जेफरसन डेविस को अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को उत्तर पर भारी हमला करने के लिए एकत्र

करना चाहिए था। गेटिसबर्ग के युद्ध में भी, यदि वह चार्ल्सटन किले से सेनाएं हटा लेता तो दक्षिण की सैनिक शक्ति को बीस हजार से अधिक बढ़ा सकता था। चार्ल्सटन पर १८६३ में जल व स्थल मार्ग दोनों ओर से उत्तर ने हमला करने के लिए फौजें भेजीं। यह हमला हालांकि सैनिक दृष्टिकोण से ठीक नहीं था, परन्तु इससे दक्षिणी फौजें बँट गयीं। १८६४ के प्रारम्भ में डेविस ने दक्षिणी सेना को चार्ल्सटन में ही रखा। इसके अलावा एक और छोटी-सी सेना उसने अपने राज्य मिसीसिपी में भी रखना आवश्यक समझा। लौंगस्ट्रीट उस समय टेनेसी के दक्षिण-पश्चिमी भाग में था जहाँ उससे अच्छा काम लिये जाने की आशा थी, परन्तु उससे कोई काम नहीं लिया गया। मुख्य सेनाओं में एक तो ली की सेना थी जो रेपीडान के दक्षिण में थी और दूसरी ब्रेग की सेना थी जो चाटानूगा के दक्षिण डाल्टन में थी। ब्रेग अब जोसेफ के मातहत डाल्टन में नियुक्त किया गया। दक्षिण इस समय ऐसी मजबूत स्थिति में था कि उत्तर को उस पर काबू करने में बहुत समय लगता। परन्तु दक्षिणी सेना के लिए उचित यह था कि वह एक बड़ा भारी हमला उत्तर पर करती। ली और लौंगस्ट्रीट की सम्भवतः यही राय थी। जेफ़रसन डेविस १८६४ के अन्त में भी इसी विचार पर अड़ा रहा कि उत्तर की जितनी अधिक सेना दक्षिण में आयेगी उसे निश्चय ही हराया जा सकेगा। उसका यह भी विश्वास था कि उत्तरी सेना के मार्ग में यदि निरंतर बाधा पहुँचायी जाती रहेगी तो उत्तर अवश्य हार जायेगा। वास्तव में उत्तर युद्ध से थक चुका था। उस समय यदि दक्षिण से कोई जोरदार आक्रमण हो जाता और उत्तर यदि उसमें नहीं हारता तो पुनः वहाँ लड़ने के लिये जोश आ जाता। परन्तु जेफ़रसन डेविस अपने सबसे अच्छे सैनिक अधिकारियों की राय से चलना नापसन्द करता था। इसके विपरीत लिंकन सदा ही सैनिक अधिकारियों की राय से चलता था। डेविस हमेशा जोन्सटन और बोरगार्ड से झगड़ता रहता था। ब्रेग को उसने पश्चिम से हटा दिया। परन्तु रिचमण्ड में उसको मुख्य सलाहकार नियुक्त कर दिया और ली जैसे महान सेनानायक को युद्ध-नीति की व्यापक कमान नहीं सौंपी।

१८६४ के प्रारम्भ में उत्तर की यह योजना थी कि चाटानूगा से दक्षिण की ओर अंतर्वर्ती भूभाग में बढ़ा जाय। ग्राण्ट तथा फेरागट चाहते थे कि मैक्सिको खाड़ी स्थित अलाबामा में मोबाइल पर फौज तथा नौ सेना से भी एक साथ हमला किया जाय, उस समय सरकार के सामने दूसरी समस्याएं भी थीं, इसलिए

ऐसा नहीं किया जा सका। १८६३ में मार्शल बजाइन ने मैक्सिको पर हमला कर दिया और लुई नेपोलियन के अभागे साथी आर्क ड्यूक मैक्सिमिलियन को वहाँ का सम्राट बनाने की कोशिश की। मनरो सिद्धान्त के मुताबिक अमरीकी महाद्वीप पर यूरोप का प्रभाव, विशेषतः सामन्ती तत्वों का, संयुक्त राष्ट्र अमरीका को जरा भी पसन्द नहीं था। इस घटना से उत्तर में भारी सनसनी फैल गयी। यहाँ तक कि १८६४ में एक अर्थहीन संशोधन हेनरी विण्टर डेविस के प्रस्ताव के विपक्ष में पास हो गया। उसका अर्थ यही था कि फ्रान्स के साथ युद्ध घोषित कर दिया जाय। अब यह लिंकन और सेवार्ड की जिम्मेदारी थी कि इस आफत को दूर रखें। सेवार्ड अब पूरी तरह लिंकन के विचार मानने लगा था। उनका यह कर्तव्य था कि उस स्थिति में आत्मसम्मान को कायम रखते हुए फ्रान्स की सरकार को यह बता दें कि दोनों में किसी भी दिन शत्रुता पैदा हो सकती है। उन्होंने इतना काम अवश्य कर दिया। उनको यह पता चल गया कि फ्रान्स फिलहाल मैक्सिको में पैर जमा कर टैक्सास की ओर बढ़ेगा। दक्षिण की सेनाएं टैक्सास में घिर कर अपने अन्य भागों से अलग हो गयी थीं और उनको हराने की कोई जल्दी भी नहीं थी। फ्रान्स की गतिविधियों को ध्यान में रख कर यह आवश्यक समझा गया कि टैक्सास में गणराज्य के अधिकारों को दृढ़ किया जाय। लुइसि-याना से जनरल बैंक्स को मोबाइल भेजी जाने वाली सेनाओं के साथ टैक्सास भेज दिया गया। मई १८६४ में उसके टैक्सास पहुँचने के अनेक प्रयत्न रेड नदी पर करारी हार के कारण समाप्त हो गये। इस हार से उत्तर में बहुत उत्तेजना फैली और बैंक्स की प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी। इस हार का और भी भयंकर नतीजा हो सकता था। दक्षिणी सेना ऐडमिरल पोर्टर की नौ सेना पर कब्जा कर सकती थी और मिसीसिपी पर जो विजय पायी गयी वह बेकार हो जाती। इस अभियान में उत्तर की भारी सैनिक शक्ति नष्ट हो गयी।

ग्राण्ट अपनी सेनाओं से चाटानूगा के दक्षिण में जोन्सटन के विरुद्ध युद्ध करता—इसके पूर्व यह आवश्यक था कि मिसीसिपी में फैली हुई दक्षिण की सेनाओं को कुछ सबक सिखाया जाता। ग्राण्ट ने इसके लिए पूर्व में जाने वाले रेल मार्ग को नष्ट कर देने का निश्चय किया। इसके लिए उसने टामस को चाटानूगा पर छोड़ा, और शरमन को मिसीसिपी के दक्षिणी भाग में मुख्य रेलकेन्द्र मेरीडियन भेज दिया। फरवरी में शरमन वहाँ पहुँचा। यद्यपि मेम्फिस से इस कार्य के लिए भेजी गयी एक सहायक सेना को पीछे हटना पड़ा परन्तु शरमन का काम निर्विघ्न पूरा हो गया और उसने मेरीडियन के आसपास की रेल की पटरी

नष्ट करके ग्राण्ट का मन्तव्य पूरा कर दिया।

निर्णायक महान संघर्ष के पूर्व कई काम करने जरूरी थे। १ मार्च १८६४ को कांग्रेस के एक कानून के अनुसार, जो इस उद्देश्य के लिए आवश्यक था, लिंकन ने ग्राण्ट को लेफ्टिनेण्ट जनरल का पद दे दिया। यह पद वाशिंगटन के बाद किसी को नहीं दिया गया था और स्काट को भी यह पद केवल अवैतनिक रूप में दिया गया था। इस पद को प्राप्त करने पर ग्राण्ट राष्ट्रपति के अधीन सभी उत्तरी सेनाओं का अध्यक्ष हो गया। ग्राण्ट इस नये सम्मान को प्राप्त करने वाशिंगटन पहुँचा। उसने शरमन से एक पत्र द्वारा इसके लिए सहमति ले ली थी। परन्तु वह वापिस लौटकर पश्चिम आने वाला था। शरमन ने पश्चिमी सेनाध्यक्ष बनने की खुद की इच्छा होते हुए भी निःस्वार्थ भाव से ग्राण्ट को जोर देकर पश्चिम बुलाया था। उसको यह डर था कि भयग्रस्त राजनीतिज्ञ कहीं ग्राण्ट का दिल न तोड़ दें। उसे शंका थी कि ये लोग उसे वहीं रोक लेंगे और वह तंग आकर काम छोड़ देगा। उन्होंने उसे नाराज तो कर ही दिया था परन्तु उस समय यह बात नहीं हुई और न इस ढंग से ही हुई जैसी शरमन को आशा थी। ग्राण्ट के शरमन पर विश्वास था कि वह पश्चिम में अपने काम को पूरा कर देगा। वाशिंगटन में लिंकन के कहने पर उसको महसूस हुआ कि पूर्व में जो आवश्यक कार्य है वह उसीको पूरा करना होगा। वह थोड़े दिनों के लिए शरमन के साथ सैनिक योजना बनाने पश्चिम गया। योजना यह थी कि शरमन अपने एक लाख सैनिक लेकर जोन्सटन की साठ हजार सेना पर आक्रमण कर उसे नष्ट करे और ग्राण्ट एक लाख बीस हजार की सेना लेकर ली की साठ हजार की फौज के पीछे लगे और डटकर मुकाबला करके उसे नष्ट कर दे। यह कोई नयी सूझ नहीं थी। परन्तु दोनों को यह भय था कि उसे पूरा करने में भारी खतरा उठाना पड़ेगा। लिंकन और ग्राण्ट पहले कभी नहीं मिले थे। ग्राण्ट पहली मुलाकात के अवसर पर बहुत सतर्क रहा। वह लिंकन को पसन्द करने के लिए तैयार था परन्तु वह उसकी गलत आज्ञाओं से डरता था और उसे ऐसी आज्ञाएं जारी करने से निरुत्साहित करने का इरादा लेकर वहाँ गया था। स्टाण्टन ने भी उससे कह दिया था कि लिंकन अपने अच्छे स्वभाव के कारण ही उसके सामने रखी जाने वाली योजनाओं पर काल्पनिक बातें करेगा। यह बिल्कुल अनुचित था। स्टाण्टन राजनीतिज्ञों और अफसरों को अपने ही कर्तव्यों तक सीमित रखने की दृष्टि से सभी आगन्तुकों को झिड़क देता था। इसके विरुद्ध लिंकन सभी

तरह के व्यक्तियों के साथ-कभी-कभी आश्चर्यजनक उत्सुकता से बात करने के लिए तैयार रहता था, परन्तु यह उसका अपना ही तरीका था। वह इन लोगों से हर समय कुछ-न-कुछ जानकारी प्राप्त करता रहता था। निश्चय ही उसमें सब से बड़ी योग्यता यह थी कि जब-वह किसी मार्ग को चुन लेता तब उसके लिए किसी की भी सलाह न लेता। ग्राण्ट जब अप्रेल के अन्त में वाशिंगटन् के युद्धक्षेत्र में वापिस गया तो वह लिंकन का पूर्ण विश्वासपात्र होकर गया तथा अंत तक वैसा ही बना रहा। लिंकन को जब सामान्य तौर पर उससे सन्तोष प्राप्त हो गया तो उसने उसे अपनी सैनिक योजनाओं के लिए पूरी छूट दे दी। उसने ग्राण्ट को लिखा, "वसन्त में दूसरा युद्ध आरम्भ होने के कारण आपसे मुलाकात होने की आशा नहीं है, अतः इस पत्र के द्वारा मैं आपके कार्यों के प्रति पूर्ण सन्तोष व्यक्त करता हूँ। आपकी योजना की तफसील न मुझे मालूम है और न मैं जानना चाहता हूँ। आप सतर्क, आत्मनिर्भर व्यक्ति हैं, इससे मैं आप पर कोई भी इच्छाविरुद्ध अंकुश या दबाव नहीं डालना चाहता। मुझे यह चिन्ता है कि करारी हार अथवा अधिक संख्या में हमारे सैनिक कहीं युद्धबन्दी न बनाये जायँ। इस दिशा में आप ध्यान देते रहना। मैं जानता हूँ कि ये बातें मेरे बजाय आपके ध्यान में अधिक होंगी। अगर किसी चीज की कमी हो और उसे देना मेरी सामर्थ्य में हो तो उसे मांगने में मत हिचकिचाना। बहादुर सेना, उचित उद्देश्य आपके साथ हैं ही, भगवान आपकी मदद करे।" ग्राण्ट ने उत्तर दिया, "मैं देश की सेना में स्वयंसेवक के रूप में जब से आया तब से अब तक मेरे सामने कभी शिकायत करने का कोई अवसर नहीं आया। मैंने कभी, अपने काम में रोड़े अटकाने की, प्रशासन अथवा युद्ध सचिव के विरुद्ध, कभी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शिकायत नहीं की। वास्तव में तो जब से मुझे सभी सेनाओं का अध्यक्ष पद मिला है, इतने भारी उत्तरदायित्व और सफलता का महत्व ध्यान में रखते हुए भी मैं आश्चर्यचकित हूँ कि बिना किसी तरह का कारण पूछे ही मेरी हर बात आसानी से मान ली जाती है। यदि मेरी सफलता में किसी तरह की कमी रहे तो उसमें दोष आपका नहीं होगा।" अब से सैनिक घटनाओं के सम्बन्ध में लिंकन की जिम्मेदारी काफी कम हो गयी और इसलिए युद्धान्त तक की घटनाओं को हम संक्षेप में देंगे।

पोटोमाक की सेना में जाने के बाद ग्राण्ट ने मीड से प्रसन्न हो उसे अपनी मातहती में सेनानायक बना कर रख दिया। उससे कहा गया कि जहाँ ली जाय वहाँ तुम उसका पीछा करते रहो। लिंकन की राय के अनुसार पहले ही उस

का लक्ष्य ली की सेना बन चुका था। अगर ली मजबूरी से या अपनी इच्छा से रिचमण्ड में जा बैठे तो लक्ष्य रिचमण्ड हो सकता है अन्यथा रिचमण्ड पर आक्रमण नहीं किया जाय। ग्राण्ट को आशा थी कि वह ली को खुले रूप से युद्ध करने के लिए मजबूर कर देगा। चाहे युद्ध खुले में हो अथवा खाइयों के पीछे, वह उससे लड़ने पर तुला हुआ था। उसका अनुमान यह था कि यदि रिचमण्ड में उत्तर की अपेक्षा ली की आधी भी क्षति हो सकी तो उस स्थिति में उत्तर की कमी तो पूरी हो सकेगी पर ली की कमी कभी पूरी नहीं हो सकेगी। उसको इस बारे में बहुत कुछ निराशा ही मिली। उसे अपने से अधिक चतुर सेनापति से मुकाबला करना पड़ा। ली और उसकी सेना उस उबड़खाबड़ प्रदेश के एक-एक इंच को जानती थी। इस क्षेत्र में जो भी मुठभेड़ें हुईं उनमें ग्राण्ट के सैनिकों को शत्रु की चुनी हुई मोर्चाबन्दी पर लड़ना पड़ता और वह अपने मोर्चे के सामने कंटीले तार के घेरे और खड़े कर लेता था। उन दिनों यह नया तरीका था। ग्राण्ट ने लिखा कि वह इसी ढंग से लड़ता रहेगा चाहे सारी गर्मी का मौसम भी क्यों न निकल जाय। इस अभियान में गर्मी, पतझड़, सर्दी और प्रारम्भिक वसन्त भी बीत गया। रेपीडान पार करते ही वह उस कंटीली झाड़ियों के जंगल में फँस गया जिसे '*भूलभूलैया*' के नाम से पुकारा जाता था। उसे आशा थी कि यहाँ से बिना मुठभेड़ ही निकल जायेगा और साथ ही जल्दी से ली के दाहिने जा पहुँचेगा। परन्तु रास्ते में ही ली मिल गया। ५ और ६ मई को दोनों सेनाओं में अनिर्णायक युद्ध हुआ। ग्राण्ट के १७६६० और ली के दस हजार से ऊपर सैनिक मारे गये। इस मुठभेड़ में ग्राण्ट की दृष्टि से तो कुछ लाभ ही हुआ। उसकी सेना ली की बाँईं ओर चली ताकि वह ली के बगल में होकर आगे निकल जाय, फिर भी ली मार्ग में ही स्पाट सिल्वानिया कोर्ट हाउस के निकट आ पहुँचा। यहाँ उसने पहले ही अपनी स्थिति व मोर्चेबन्दी दृढ़ कर ली थी। ८ मई से १२ मई तक जबरदस्त मुठभेड़ हुई। ग्राण्ट के अठारह हजार तथा ली के भी इतने ही सैनिक मारे गये। परन्तु बाँईं ओर से ली भी अब आर्थआना नदी के पार जा डटा। ली की सेना पर आक्रमण किया गया और उसे पीछे हटा दिया गया परन्तु पीछा नहीं किया गया। इसी प्रकार की पैंतरेबाजी जारी रही, पर जम कर युद्ध कहीं नहीं हुआ। ग्राण्ट ली के दाहिने बाजू की ओर से निकलना चाहता था और ली रिचमण्ड को बचाने का प्रयत्न करने लगा। ली ग्राण्ट को रिचमण्ड से दस मील उत्तर पूर्व कोल्ड हारबर पर जहाँ मैक्लीन हारा था

आगे बढ़ाता हुआ ले आया। इसी बीच ग्राण्ट ने बटलर के साथ एक सेना समुद्र से जेम्स को भेजी और उसे रिचमण्ड के दक्षिण में उतरने की आज्ञा दे दी। रिचमण्ड तथा वहाँ से २२ मील दूर दक्षिण में पीटर्सबर्ग किले में बहुत ही कमजोर सेना बची थी। बटलर अपना प्रचार तो बढ़ाचढ़ा कर करता था, परन्तु वह निकम्मा सिद्ध हुआ। पीटर्सबर्ग लेने का बहुत ही अच्छा मौका था, परन्तु उसका आक्रमण पूर्ण असफल रहा। १ से ३ जून तक ग्राण्ट अपने जीवन के सबसे संकटपूर्ण कार्य में लगा हुआ था। दृढ़ता से खाइयों में जमे शत्रु से उसे लड़ना पड़ा। इन मुठभेड़ों में उत्तर के चौदह हजार सैनिक मारे गये परन्तु दक्षिण को विशेष क्षति नहीं हुई। उसके केवल सत्रह सौ सैनिक मारे गये। यही युद्ध ऐसा था जिसको लड़कर ग्राण्ट को पछतावा हुआ। अब उसने निर्णय कर लिया कि वह ली से रिचमण्ड के अलावा अन्यत्र लड़ने का प्रयत्न नहीं करेगा। उसने १२ जून को अचानक जेम्स के पार पीटर्सबर्ग के पूर्व सिटी पाइंट पर अपनी सेना उतार दी। अब ली के लिए रिचमण्ड और पीटर्सबर्ग के घेरे का मुकाबला करना आवश्यक हो गया। यदि वह वाशिंगटन पर हमला करने उत्तर की ओर बढ़ता तो ग्राण्ट उसके पीछे से आक्रमण करता और खुले युद्ध का अवसर भी उसे मिल जाता, परन्तु इसी अवसर पर उत्तर की एक और हार हुई। बारूद से सुरंग उड़ाने के तुरन्त बाद पीटर्सबर्ग को चढ़ाई करके लेने का प्रयत्न किया गया। बर्नसाइड और उसके अधीन अफसरों की गलती से भारी नुकसान के साथ-साथ यहाँ हार भी हुई। बर्नसाइड त्यागपत्र देकर अलग हो गया। घेरा तो कई दिनों तक चलनेवाला था। वास्तव में इतनी असफलताओं के होने पर भी कोल्ड हारबर में भी गलती की गयी। इन असफलताओं के बावजूद भी ग्राण्ट की दृढ़ योजना आगे बढ़ रही थी। दक्षिण की सेनाएं बुरी तरह घट रही थीं। ली इन्हें अब बड़ी मुश्किल से मोर्चे पर खड़ी कर सकता था। ग्रान्ट ऐसी स्थिति में था कि वह अधिक हानि न उठा कर भी लक्ष्य तक पहुँच सकता था। अन्त अभी भी दूर था, पर अन्त उसके पक्ष में निश्चित हो चुका था। कुछ समय बाद ही उसकी सेना शिथिल हो गयी और वेस्ट पाइंट के अफसरों की नजरों में वह गिर भी गया। परन्तु उसकी अपनी इच्छा दृढ़ थी। यद्यपि लिंकन ने विनम्रता से यही कहा कि इतनी भारी क्षति नहीं होनी चाहिए। परन्तु ग्राण्ट पर उसका विश्वास कम नहीं हुआ।

वाशिंगटन के लोग जो इन सब घटनाओं को बेचैनी की भावनाओं से देख रहे थे—अब निराश हो गये। जुलाई के प्रारम्भ में ही उन्हें एक भीषण संकटपूर्ण

स्थिति में फँस जाना पड़ा। उत्तर का सेनापति सीगेल जो शेननदोआ घाटी के निचले भाग में बाल्टीमोर और ओहओ रेल मार्ग की रक्षा कर रहा था, जून में ग्राण्ट की एक योजना के अनुसार दक्षिण की ओर बढ़ा परन्तु लापरवाही और सुस्ती से। जनरल अरली ने, जिसे ली ने भेजा था, उसे मार्ग में हरा दिया। उसने उत्तर के जनरल हण्टर की सेना को घेर कर हटा दिया। बाद में जनरल ल्यू वालेस को भी मार्ग में उसने कम सैनिक होने के कारण खदेड़ दिया और ११ जुलाई को वाशिंगटन शहर के सामने आ धमका। वाशिंगटन के सामने अड़ना तो एक धमकी मात्र थी परन्तु वहाँ किले की सेना में केवल नये भर्ती किये गये रंगरूट ही थे। ग्राण्ट ने जो कुमुक भेजी वह जिस दिन अरली आया उसी दिन वहाँ पहुँच गयी। यदि उस साहसी जनरल ने मार्ग में कुछ दिन खराब न किये होते तो ऐसा अवसर आ गया था कि वह वाशिंगटन में घुस पड़ता। भले ही वह बाद में वहाँ अधिकार बनाये नहीं रख सकता। उसने एक किले पर आक्रमण किया। लिंकन वहाँ मौजूद था। उसने व्यक्तिगत संकट की तनिक भी परवाह नहीं की। पहले भी उसने ऐसा ही किया था। परन्तु सैनिक अधिकारियों ने बहुत जिद्द की कि वह हट जाय। शत्रुसेना का आक्रमण शीघ्र समाप्त हो गया और थोड़े ही दिनों में अरली पोटोमाक के पार सुरक्षित बच कर पहुँच गया। ग्राण्ट ने इससे यह धारणा बना ली कि शेननदोआ की घाटी को दक्षिण के लिए जरा भी उपयोगी नहीं रहने दिया जाय।

जिस दिन ग्राण्ट ने रेपीडान को पार किया उसी दिन शरमन चाटानूगा से चल दिया। जोसफ जोन्सटन ने उसका रास्ता बार-बार खाइयों में जम कर रोका। शरमन ग्राण्ट से भी अधिक सचेत रह कर बढ़ रहा था। उसे निष्कंटक मार्ग मिला था और भूमि भी ऊबड़खाबड़ नहीं थी। उसने शत्रु की सभी व्यूह-रचनाओं और मोर्चेबंदियों को बेकार कर दिया और उसे अटलाण्टा की ओर रेल के सहारे-सहारे धीरे-धीरे पीछे धकेलता गया। अटलाण्टा चाटानूगा से दक्षिण-पूर्व में एकसौ बीस मील दूर जार्जिया में एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र था। उसने केवल एक बार जून के अन्त में अटलाण्टा से बीस मील उत्तर में केनसौ पर्वत पर जोन्सटन के पड़ाव पर हमला किया। इससे उसे कुछ निरर्थक हानि हुई और यह सीधा आक्रमण बेकार भी रहा। परन्तु शायद उसने यह दिखाने के लिए हमला किया कि आवश्यकता के समय वह शत्रु पर आक्रमण करने की स्थिति में भी है। जोन्सटन रक्षात्मक युद्ध में काफी

सफल रहा। उसने यथासाध्य शरमन को आगे बढ़ने से पूरी तरह रोका और उसको अटकाये रखा। परन्तु जेफरसन डेविस ने उस सेनापति की सैनिक चाल को न समझ कर वेवकूफी व क्रोध के कारण उसे हटा दिया और जनरल हुड को उसकी जगह भेज दिया। इस नौसिखिये जनरल ने कई बार युद्ध किया। इससे दक्षिण की सेना में अटलाण्टा के युद्ध के पूर्व ही चौंतीस हजार सैनिक मारे गये जब कि शत्रु की हानि तीन हजार सैनिकों की ही हुई। शरमन ने रणकौशल का परिचय देकर दो सितम्बर को उससे अटलाण्टा खाली करवा लिया।

इस बीच में एडमिरल फारागट ने एक अन्तिम साहसिक सफल अभियान कर दिखाया। पांच अगस्त को अपूर्व नौसैनिक युद्ध करके उसने मोबाइल बन्दरगाह और उसके किलों पर कब्जा कर लिया। यद्यपि शहर दक्षिणी सेना के हाथ में रहा इससे शरमन उससे मिल न सका वरना दक्षिण के दो भागों में बँट जाने का खतरा था।

वाशिंगटन के निकट भी एक महत्वपूर्ण युद्ध की आग सुलगने वाली थी। अरली के अवांछित आगमन के बाद तीन सप्ताह तक वाशिंगटन के निकट सैनिक अव्यवस्था रही। अचानक अरली अपना पीछा करने वाली सेना पर उलट पड़ा और इस बार पेन्सिलवानिया पर एक और आक्रमण हुआ। ग्राण्ट इतनी दूर था कि किसी योग्य सहायक द्वारा ही निर्देशन कर सकता था। परन्तु हण्टर में इतनी योग्यता नहीं थी। हैलेक तो पहले की तरह अब भी बेकार सिद्ध हुआ। लिंकन ने भर्ती के लिए फिर आवाहन कर दिया पर अब वह सैनिक आज्ञायें नहीं निकालना चाहता था। इसी समय उसकी राजनैतिक चिन्ताएं भी अधिक बढ़ गयी थीं। उसके निर्णय अब पहले से अधिक दृढ़ नहीं रहे। परन्तु उसके मित्रों का मत है कि उसकी दृढ़ता व शक्ति इस बोझ से टूट रही थी। ऐसे ही कई कारणों से वह सैनिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता था। निश्चय ही यह बुद्धिमानी थी। एक अगस्त को ग्राण्ट ने जनरल फिलिप शिरीडान को अस्थायी तौर पर शेनान दोआ भेज दिया, और यह इच्छा प्रकट की कि वहाँ मैदान में जितनी सेनाएं हैं, उसे उनका अध्यक्ष बना दिया जाय तथा वह सेना लेकर शत्रु के दक्षिण में पहुँचे और अन्त तक उसका पीछा करता रहे। लिंकन ने ग्राण्ट को तार भेज दिया, "यह तरीका ठीक है। किन्तु आपने जब से यह आज्ञा निकाली है तब से जो भी पत्र आदि यहाँ से गये हों उन पर नजर डालिये कि क्या यहाँ किसी के दिमाग में भी यह बात है कि हमारी सेना को शत्रु के दक्षिण में खड़ा किया

जाय। मैं फिर कहता हूँ कि न तो ऐसा किया ही जायेगा और न इसकी कोशिश ही होगी। आपको चौबीसों घंटे इसी ओर ध्यान देना होगा और यह काम जरूरन करना होगा।" ग्रान्ट तब हण्टर की सेना में पहुँचा और शेरीडान को उसकी जगह नियुक्त कर दिया। पतझड़ की इस मुठभेड़ में (जिसमें शेरीडान प्रसिद्ध हो गया) उन्नीस अक्टूबर को सेडार क्रीक पर उसने अरली को अन्तिम रूप से हरा दिया। अब सारी निचली घाटी उसके अधिकार में आ गयी। जाड़े के लिए पड़ाव डालने के पहले ही उसने उस जिले को ऐसा बर्बाद कर दिया कि रिचमण्ड को वहाँ से दानापानी व सैनिक मिलना ही दुश्वार हो गया और फिर कभी वह जिला दक्षिण को उत्तर की ओर बढ़ने में सहायक सिद्ध नहीं हुआ।

नवम्बर के महीने में शरमन ने एक नयी और असाधारण चाल चली, यह विचार उसका अपना था। ग्राण्ट ने इसके लिए अनमने मन से आज्ञा दी। लिंकन उससे चिंतित भी हुआ। हालांकि उसने हस्तक्षेप न करने में दृढ़ता दिखाई। उसने अपनी सेना को अटलाण्टा के किले में रख दिया। वहाँ के निवासियों को सहायता देकर सुरक्षात्मक स्थानों पर भेज दिया और अपनी फौज को वहाँ थोड़ा आराम भी दिया। परन्तु वह सुदूर दक्षिण में था। इस प्रदेश को वह "जेफ डेविस साम्राज्य" कहता था। हुड लगातार रसद मार्ग पर हमले करके उसे परेशान कर सकता था, वह बोरगार्ड की देखरेख में और सहायता इकट्ठी कर रहा था। शरमन को मालूम हो गया कि वह टेनेसी पर हमला करने का विचार कर रहा है। उसने अपनी फौज के दो हिस्से किये। टामस को बहुत से सैनिक देकर सुदूर क्षेत्र में टेनेसी की रक्षा के लिए भेजा और शेष बची सेना को लेकर पूर्वी समुद्र तट की ओर चल दिया। अपनी संचार व्यवस्था की ओर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। मार्ग में ही वह सामग्री जुटाता गया और जार्जिया को भी युद्ध का वास्तविक भार उसने महसूस करा दिया। पन्द्रह नवम्बर को वह पूर्व की ओर बढ़ा। हुड बोरगार्ड की आज्ञा से शीघ्र ही उत्तर की ओर बढ़ चला। वहाँ नैशविले के किले में सतर्क टामस घटनाचक्र की टोह ले रहा था। टेनेसी के बीच में नैशविले से करीब बीस मील दूर दक्षिण फ्रेंकलिन पर हुड ने जनरल शोफील्ड पर हमला कर दिया और वह बुरी तरह हारा भी। शोफील्ड को टामस ने नैशविले पर कुमुक आने तक हुड को रोकने के लिए भेजा था। शोफील्ड धीरे-धीरे नैशविले की ओर हटता गया। हुड जल्दबाजी में उसका पीछा करता रहा। उसके पास फौज कम

थी; केवल चौंवालिस हजार सैनिक थे, परन्तु वे सब अनुभवी थे। ग्राण्ट और वाशिंगटन स्थित अधिकारियों को बड़ी चिन्ता हो रही थी कि टामस ने शत्रु सेना को इतना आगे कैसे आने दिया। ग्राण्ट को टामस में शरमन की तरह विश्वास नहीं था, उसने बार-बार कार्यवाही करने के लिए अनुरोध किया। परन्तु टामस का अपना दृष्टिकोण था और वह जिद् करके उचित अवसर की बाट भी देखता रहा। कुछ दिनों बाद बर्फ जम जाने के कारण आगे बढ़ना असम्भव हो गया। ग्राण्ट ने पहले ही लोगन को टामस की सेना का सेनानायक नियुक्त करके भेज दिया और अधिक चिन्तित होकर स्वयं पश्चिम आने को तैयार हो गया। तभी यकायक समाचार मिला कि पन्द्रह-सोलह दिसम्बर को टामस ने हुड पर हमला करके उसकी सेना को पूरी तरह तितर बितर कर दिया। युद्ध के बाद पीछा करके उसने तेरह हजार से भी अधिक युद्धबन्दी बनाये। टामस के सैनिक एक गीत 'जब हम जार्जिया में होकर चलते हैं,' जो बाद में प्रसिद्ध हो गया, गाते थे जिसे शरमन बर्दाश्त नहीं कर सका। उसके आदमी तो जार्जिया में होकर जाते समय दूसरा गाना गाते थे। वह भी अपनी तरह का महान गीत था। "जान ब्राउन का शव यहीं समाधि में है सो रहा—पर अमर आत्मा शहीद की हमारे साथ चल रही, विजय! विजय!! महा विजय!!!" उनका अभियान खेल जैसा था परन्तु एक तरह से तो यह बड़ा कठोर खेल था। उनके रास्ते के आसपास पड़ी दक्षिण की छोटी-छोटी सेनाओं से उनको अधिक तकलीफ नहीं पहुँची। उन्होंने दक्षिण के रेल मार्ग को कड़े परिश्रम तथा चतुराई से पूर्णतया नष्ट कर डाला। रेल पटरियों को गरम करके तोड़-मरोड़ कर लुढ़का दिया। जार्जिया जैसा धनी क्षेत्र जो दक्षिणी लोगों का मुख्य खलिहान था, उसे पचास-साठ मील की चौड़ाई में उन्होंने पूरी तरह बर्बाद ही कर दिया। जो फसल वे खा नहीं सके उसे तहस-नहस कर दी। यह सब विध्वंस सैनिक टुकड़ियाँ भेज कर कराया गया था। यथासम्भव व्यक्तिगत घरों की लूटपाट को रोका गया था। परन्तु ऐसा हुआ अवश्य। शरमन का एक सुयोग्य घुड़सवार सेनानायक इसके कारण बदनाम भी हो गया और 'विली चाचा' उसका नाम पड़ गया। उसके दिल में इन भगोड़े लुटेरों के प्रति हमदर्दी भी थी। ये लोग फौजों में से भागे हुए सिपाही थे जो स्वतंत्र रूप से लूटमार करते थे। शरमन को मालूम हुआ कि ये अच्छे सैनिक थे, परन्तु जार्जिया में इन्होंने गम्भीर अपराध अधिक नहीं किये। जो शिकायतें की गयीं उनमें अधिकांश गम्भीर नहीं हैं, जैसे प्यानो तोड़ दिया या अच्छी शराब

की बोतल गायब हो गयी आदि। इस प्रकार लोगों को कष्ट पहुँचाने की भी कम घटनाएं ही घटीं और अब युद्ध के अधिक दिन जारी रहने की सम्भावनाए समाप्त हो गयीं। बड़े दिनों के कुछ ही समय पहले शरमन ने अटलांटिक तट स्थित सवाना शहर पर कब्जा कर लिया। इसमें बहुत-सी तोपें और अन्य सैन्य सामग्री उसके हाथ लगी। जल्दी ही वह अपनी विजय के लिए उत्तर की ओर बढ़ने वाला था। लिंकन ने उसे बधाई का पत्र लिखा जिसमें यह स्वीकार किया गया, "पहले मुझे बहुत डर था परन्तु मैं उसे प्रकट नहीं कर सकता था और सौभाग्य से वह डर गलत साबित हुआ।" रिचमंड और पिटसबर्ग की रक्षा के लिए जो एक मात्र किला बचा था इसके चारों ओर ग्राण्ट अपनी पूरी शक्ति से घेरा डाल रहा था! इसका विस्तार इतना बड़ा था कि चारों ओर से घेरना असम्भव था! कुछ समय तक दक्षिण से पिटसबर्ग आनेवाली तीन रेलों पर वह आक्रमण भी करता रहा और उसने शत्रु को वहाँ से मिलनेवाली रसद के मार्ग को काट देने की कोशिश की। परन्तु मुख्य रेल केन्द्र पर वह कब्जा करने में असफल रहा। वह अपनी सेना खाइयाँ खोद कर जमाने में लगा रहा और इन खाइयों को धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ाने लगा। ली को मजबूर होकर अपनी छोटी-सी सेना को अधिकाधिक छितराना पड़ा। कुछ समय बाद उसकी सैनिक पंक्ति टूटने लगी और युद्ध का अन्त निकट आ गया था।

यह कहना आवश्यक नहीं है कि समूचे दक्षिण संघ राज्य में निराशा फैल चुकी थी। रिचमण्ड में भोजन सामग्री समाप्त होने लगी। भर्ती बन्द हो चुकी थी। सेना से सिपाही और अधिक भागने लगे थे। लम्बे युद्ध की कहानी को समाप्त करने से पहिले यहाँ दक्षिण के विरूद्ध जो आरोप लगाये गये हैं उन पर भी नजर डाल ली जाय। मुख्य आरोप यह था कि कुछ शिविरों और जेलों में कई हजार युद्धबन्दियों को बहुत सताया गया। ये अत्याचार वास्तविक और भयंकर थे। इनकी विगतों में जाना अच्छा नहीं है। परन्तु जिस दयनीय अवस्था में जीवित रह कर ये युद्धबन्दी युद्ध के बाद स्वदेश लौटें और अत्याचार की जो कहानी उन्होंने कही उससे कई वर्षों तक उत्तरी लोगों के दिलों में दक्षिण के लिए तीव्र घृणा रही। इस मामले में सारा दोष छोटे अधिकारियों का था। कुछ हद तक जफरसन डेविस और उसके प्रशासन का भी हो सकता है परन्तु दक्षिणी लोग इतनी बुरी हालत में पिसते हुए ऐसा ही करते यह स्वाभाविक भी था परन्तु इससे दक्षिणी अधिकारीगण, सैनिक तथा जनता सभी लोगों पर निर्दयता का दोष नहीं लगाया जा सकता। ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह लेखक उनकी

शूरवीरता की प्रशंसा करते समय उनका उचित मूल्यांकन करने में कोई कसर रखे और न उनके युद्ध की जो गौरव गाथा है उसे कम आंका जाय—चाहे लेखक दक्षिण की हार से प्रसन्न ही क्यों न हो।

[४]

राष्ट्रपतिपद पर लिंकन का पुनर्निर्वाचन

बहुत दिनों की तलाश के बाद योग्य सेनापति मिल जाने से अब लिंकन सैनिक मामलों में हस्तक्षेप न करके एक बुद्धिमान पर्यवेक्षक की तरह रहने लगा। अब वह ऐसा रुख अख्तियार कर सकता था जो उसे पसन्द भी था। जब वह विशेषज्ञों से मिलता और उसकी राय यदि भिन्न भी होती तो वह अधिक जोर नहीं देकर यही कहता कि उससे वे ही सम्भवतः अधिक जानते हैं। यह अच्छी बात थी क्योंकि १८६४ में उसकी राजनीतिक चिन्ताएं इतनी बढ़ गयी थीं कि सम्टर किले पर आक्रमण के बाद जब से युद्ध छिड़ा, उतनी कभी नहीं रही। वे सभी प्रदेश जो दक्षिण के हाथ में थे अब पूरी तरह गणराज्य की सेनाओं के कब्जे में आ गये, वहाँ सरकार-गठन की कठिन समस्या चरम सीमा तक पहुँच गयी थी। ऐसा लगने लगा कि युद्ध जल्दी ही समाप्त हो जायेगा; इसलिए सन्धि का प्रश्न उत्कट हो रहा था। उधर राष्ट्रपति-पद का चुनाव पतझड़ में होने वाला था। यह समस्या इतनी विकट व विलक्षण थी कि विजय प्राप्त करने पर भी उत्तर को अपनी लक्ष्यपूर्ति में हार माननी पड़ती।

यह लिंकन के भाग्य में नहीं था कि वह दक्षिण के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देता। यह काम निम्न प्रतिष्ठाहीन व्यक्तियों और भ्रष्ट लोगों के हाथों में चला गया। परन्तु आरम्भ में उसने इस मामले में जो तरीके अपनाये वे उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी वरजीनिया को—जहाँ गणराज्य-समर्थक जनसंख्या थी—एक सामान्य राज्य बन जाने की स्वीकृति दे दी गयी। परन्तु जहाँ उत्तर का कब्जा दृढ़ नहीं था और जहाँ राज्य का थोड़ा सा भाग ही अधिकार में था या जहाँ अधिकांश जनता दक्षिण के पक्ष में थी, वहाँ सरकार-गठन में इतनी आसानी नहीं थी। लेकिन गवर्नर सर्वत्र नियुक्त किये गये। टेनेसी में यह पद एण्ड्रयू जानसन नामक कट्टर गणराज्य-समर्थक को दिया गया। वह इसी राज्य की ओर से सिनेट का सदस्य था। लुइसियाना तथा अन्य राज्यों में लिंकन ने उन नागरिकों को प्रोत्साहित किया जो हृदय से गणराज्य-समर्थक राज्य सरकार का गठन करने को तैयार थे। जहाँ यह सिद्धान्त मान लिया गया वहाँ उनरी

सैनिक गवर्नर रखना आवश्यक था। मिसूरी में भी फौजी अध्यक्ष और जनसेवा में तथा सरकार में तिहरी कशमकश जारी रही। इन छोटी-छोटी कठिनाइयों को, जो लगातार पैदा होती रहती थीं, लिंकन सदा ही दृढ़ता और चतुराई से, सहानुभूति व भय दिखा कर हल कर लेता था। बाद में कांग्रेस के विरोधी रुख से भी जटिलता खड़ी हो गयी क्योंकि दोनों ही सदन दक्षिणी राज्यों के प्रतिनिधियों या सिनेट-सदस्यों को वहाँ अपने साथ स्थान देने से इन्कार कर सकते थे। ऐसे राज्यों में दास समस्या प्रमुख थी। लिंकन तो यथासम्भव धीरे-धीरे स्थानीय धारासभाओं के जरिये ही मुक्ति लाना चाहता था और मताधिकार केवल थोड़े से पढ़े-लिखे नीग्रो लोगों को ही देना चाहता था, परन्तु उस समय इस दिशा में कुछ हुआ नहीं। कांग्रेस के उग्रवादी सदस्य तो यह मानते रहे कि लिंकन मुक्ति के प्रति दृढ़ नहीं है। दास-प्रथा के अतिरिक्त जो लोग हाल ही में देश के विरुद्ध हथियार ले कर लड़े थे उन्हें सरकार में भाग लेने दिया जाय या नहीं, इस पर कांग्रेस के राजनीतिज्ञों का अपना महत्वपूर्ण रुख था। लिंकन की स्पष्ट भावना यह भी थी कि तर्कवितर्क में न उलझकर यथा शीघ्र विजित दक्षिण में राज्य सरकारें स्वतः बन जानी चाहिए। उसने एक सैनिक गवर्नर को लिखा, "इन चुनावों में जनता को पूरी तरह से अपनी इच्छा प्रकट करने दो। यथासाध्य कानूनी तौर पर चलो, परन्तु अधिक से अधिक लोगों को मत देने की सुविधा प्रदान करो।" वह जिस बात से सबसे अधिक डरता था वही उसकी मृत्यु के बाद हुई। उत्तर के कई राजनीतिज्ञ यह चाहते थे कि कांग्रेस के चुनाव के लिए उत्तरी लोगों को प्रतिनिधि बना कर दक्षिण भेजा जाय और उन्हें संगीनों के बल चुनवा लिया जाय। यह बड़े अपमान व निर्लज्जता की बात होती। कुछ समय तक लिंकन की कांग्रेस से पटती रही पर १८६४ में तीव्र मतभेद पैदा हो गया। उसने दक्षिणी राज्यों के पुनः निर्माण के लिए एक योजना प्रस्तुत की थी। युद्ध की संयुक्त समिति के प्रधान वेड और हेनरी, विण्टर डैविस सदन में कड़े आलोचक व प्रभावशाली वक्ता होने के अलावा शक्तिशाली भी थे। दोनों ने मिल कर विधेयक पारित करा लिया कि कोई भी राज्य अपनी ही योजना से निर्मित हो सकता है। यह योजना लिंकन की योजना से भिन्न थी। यह प्रस्ताव राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए लिंकन के पास कांग्रेस की बैठक के अंतिम समय में आया। उसके कमरे में उपस्थित दूसरे मित्र प्रतिनिधियों ने उसे जोर देकर कहा कि वह हस्ताक्षर कर दें क्योंकि वे स्थिति से भयभीत हो रहे थे। उसने उसे मेज पर बिना हस्ताक्षर

किये ही पड़ा रहने दिया। वह प्रस्ताव कांग्रेस की बैठक समाप्त होने के बाद बेकार हो गया। लिंकन अपनी योजना को रूप देने में लगा रहा। यह जुलाई १८६४ की बात थी। उसके सामनें दुबारा चुने जाने की समस्या भी थी। डेमोक्रेट अधिक शक्तिशाली हो रहे थे और कट्टर रिपब्लिकन भी उससे नाराज हो गये थे। उसने कहा कि यदि वे इसी प्रश्न को उठायेंगे तो निश्चय ही भारी क्षति पहुँचा सकते हैं। वास्तव में वेड और डेविस उसके पुनःनिर्वाचन के विरुद्ध जोर-शोर से प्रचार कर रहे थे। उसने कहा, "कुछ भी हो, मुझे जो ठीक लगता है उस लक्ष्य से अधिक दूर नहीं हट सकता। मैं अपने आप में कुछ मापदंड, कुछ सिद्धान्त तो बनाये रखूँ।" इस प्रस्ताव के लागू कर देने पर दक्षिण में राज्य सरकारों के बनाने के देशभक्तिपूर्ण प्रयत्न निरर्थक हो जाते। नवगठित राज्यों पर इस प्रस्ताव से यह भी जोर डाला जा सकता कि वे दास-प्रथा को उठावें। दासमुक्ति की घोषणा में कोई कसर रह गयी हो तो उसे दूर करना भी इस प्रस्ताव का उद्देश्य था। परन्तु यह सारा कार्य पूर्णतया अवैधानिक था। दासमुक्ति का एक ही अन्तिम मार्ग था, संविधान में संशोधन करना। लिंकन अब इसीलिए चिन्तित हो उठा था। यह केवल पाण्डित्य या बुद्धि-प्रदर्शन का प्रश्न नहीं था क्योंकि यदि किसी नीग्रो के स्वतंत्रता-अधिकार को लेकर न्यायालय कोई वैधानिक त्रुटि निकाल देते तो बाद में बड़ी मुश्किल पैदा हो सकती थी। लिंकन के सही दृष्टिकोण का उस समय कुछ मूल्य नहीं था। संभवतया बहुत-सी छोटी छोटी बातों में लापरवाही के कारण तथा इस दिशा में भी अत्यन्त थक जाने और व्यस्त हो जाने के कारण वह स्वभावतः स्वतंत्र व्यक्ति की तरह दूसरों के प्रभाव को मान लेता अथवा अपने लिए राजनीतिक सुविधा जुटाने में कुछ अनुचित रियायतें भी प्रदान कर देता। उसके ये तरीके बाद में आड़े हाथों लिये जा सकते थे। वह यही कार्य करता अथवा दूसरा कोई कदम उठाता, इस तरह उसकी नैतिक जाँच का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि अपने पुनर्निवाचन व भावी निर्धारण में जो संकट सामने था उसके निवारण के लिए वह एक छोटे-से राजनैतिक अवसर को भी हाथ से नहीं जाने देता था। विभिन्न दलों और उसके बीच जब विवाद के प्रारम्भिक दिन थे, उसने लिखा, "समय-समय पर मैंने वही बातें कहीं और वही काम किया जो मुझे उचित प्रतीत हुआ। जनता यह सब जानती है। यदि वह मेरी बात मानती है तो अहसान नहीं करती, और मुझे विश्वास है कि यदि वह किसी दूसरे की बात नहीं मानती है तब अवश्य ही मुझ पर उसका अहसान

है। सुधारवादी व रूढ़िवादी दोनों ही कई बातों में मुझसे सहमत हैं और कुछ बातों में असहमत हैं। मैं चाहता हूँ कि दोनों पक्ष वाले सभी बातों में मुझसे सहमत हो जायँ क्योंकि तब वे एक दूसरे से भी सहमत हो जायेंगे। कोई भी शत्रु किसी भी ओर से आक्रमण करे, उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। परन्तु वे यह पसन्द नहीं करते हैं। मैं उनके इस अधिकार पर अँगुली नहीं उठा सकता। मैं भी अपना कर्तव्य करूँगा। मिसूरी या अन्य स्थानों के सेनाध्यक्ष मेरे प्रति जिम्मेदार हैं, सुधारक या रूढ़िवादियों के प्रति नहीं। मेरा कर्तव्य है कि मैं सब की बातें सुनूँ। अन्त में अपने दायरे में मुझे ही निर्णय करना है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं।"

जुलाई महीने में दक्षिणी सेनापति अरली के वाशिंगटन पर हमला करने से लिंकन को राजनीतिक चिन्ताओं से कुछ छुटकारा मिला, परन्तु इसी समय एक गंभीर समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया और उसकी सहनशीलता पर इतना अधिक भार पड़ा जितना उसके सम्पूर्ण राष्ट्रपति-काल में कभी नहीं पड़ा था। युद्ध के बाद शान्ति स्थापना का अर्थ केवल यह नहीं था कि सैनिकों के स्थान पर राजनीतिज्ञों को नियुक्त कर दिया जाता। जब दो पक्ष लड़ रहे थे, एक गणराज्य के लिए और दूसरा उससे अलग होने के लिए, तो किसी एक को तो अपना पूरा दावा छोड़ना ही पड़ता। परन्तु यहाँ तो एक तीसरी सम्भावना दिखाई देने लगी थी। दक्षिणी राज्यों के गणराज्य में सम्मिलित होने को निमंत्रण देते समय उन्हें यह अधिकार देने की बातें भी चल रही थीं कि यदि वे गणराज्य से असन्तुष्ट हों तो उन्हें पृथक होने का अधिकार रहेगा। वास्तव में यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया जाता यदि यह प्रस्तुत किया जाता और मान भी लिया जाता तो उत्तर के लिए उद्देश्यों का अत्यन्त ही हीन समर्पण होता। यह उससे भी भयंकर बात होती क्योंकि युद्ध में असफल रहने पर केवल यही तो कहना पड़ता कि दक्षिण को जीता नहीं जा सका। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता हर राज्य में विदेशियों व फूटपरस्तों के बहुमत के आधार पर निर्भर करती। लिंकन ने इसका कड़ा विरोध किया। वह गणराज्य को दृढ़ नींव पर स्थापित करने के लिए कटिबद्ध था। वह इस बात के लिए कृतसंकल्प था कि राष्ट्रपति अथवा उसके प्रतिनिधि के कार्य या शब्दों में ऐसी कोई बात न रहे जो पृथकता को तनिक भी स्वीकार करती हो। कुछ लोग भले ही जेफरसन डेविस को देशद्रोही के रूप में फाँसी देकर खुश होते परन्तु फिर भी वे उसको एक विदेशी राष्ट्र के प्रमुख के रूप में मानकर समझौते

की बात करना भी चाहते थे। परन्तु लिंकन का मत दूसरा था। वह उसके सिर का एक बाल भी बांका नहीं होने देता और उसके साथ घुलमिल कर बातचीत भी कर लेता, परन्तु उसे एक विदेशी राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने की अपेक्षा मर जाना कहीं अधिक पसन्द करता। यदि वह इस बात को स्वीकार कर लेता तो युद्ध में बहा खून निरर्थक जाता। युद्ध की कठिनाई और निराशा के कारण बहुत से लोग यह सीधी सी बात भी नहीं समझ पाये। बार-बार इस महत्वपूर्ण समस्या को टालने के प्रयत्न किये गये। यहाँ तक स्थिति पैदा हो गयी कि लोगों में यह प्रचार घर कर गया कि दक्षिण समझौते को तैयार है परन्तु लिंकन इसके लिए तैयार नहीं है। बाद में यह केवल निरा भ्रम सिद्ध हुआ। जेफ़रसन डेविस ने अन्त तक यही कहा कि दक्षिण या तो स्वतंत्र रहेगा या नष्ट हो जायेगा। हालांकि स्टीफन और अनेक दक्षिणी नेताओं ने अपने राज्यों में जनता से शान्ति स्थापना की बातचीत भी की। जेफ़रसन डेविस ने सारा दारोमदार अपनी सेना पर ही रखा। उसके विरुद्ध आन्दोलन का एक ही नतीजा हुआ कि युद्ध समाप्ति के दो महीने पहले ही डेविस ने दक्षिण के मुख्य सेनाध्यक्ष ली को अपना कट्टर समर्थक बना दिया। लिंकन द्वारा इस भ्रम का स्पष्ट शब्दों में निराकरण करना बेकार था। यह भ्रम बना ही रहा और उससे उत्तरी एकता के लिए खतरा पैदा हो गया।

अब लिंकन ने एक दूसरा तरीका अपनाया, यह सामान्यतः सफल भी हुआ। जब ईमानदार लोग उसके पास आकर यह कहते कि दक्षिण को समझौते के लिए तैयार किया जा सकता है तो उसने उन्हें समझाया कि वे खुद जाकर इस मामले में जेफ़रसन डेविस से मिल लें और बातचीत करके देखें। रिपब्लिकी संगठन के अध्यक्ष ने एक प्रभावशाली समिति के कहने से लिंकन से इस मामले में बातचीत चलायी। परन्तु वह समझदार व्यक्ति था। लिंकन ने उसे वह सन्देश लिख डाला जो जेफ़रसन डेविस को भेजना था। वह लिंकन की बात अच्छी तरह समझ गया। पहले भी दो बार सन्धि के लिए उत्तर के दूत सेनाएं पार करके दक्षिण भेजे गये थे कि डेविस से बात कर लें। यह उनके खुद के ऊपर छोड़ दिया गया कि वे लिंकन की ओर से आने का बहाना न करें। उत्तर के सब से बड़े शत्रु से उनकी दिलचस्प बातचीत हुई। उससे उन्होंने धार्मिक अपील भी की कि वह समझौता कर ले। मेक्सिको पर फ्रान्स के इरादे बताते हुए उत्तर और दक्षिण द्वारा मिल कर सम्मिलित युद्ध के लिए भी सुझाव दिया। वे भी निराश लौटे और लिंकन के दृष्टिकोण को उन्होंने सही ठहराया।

जुलाई में प्रख्यात सम्पादक होरेस ग्रीली, जिसे लोग ईमानदार मानते थे, भी अपने मन में बुरी तरह यह महसूस करने लगा कि दक्षिण के दो गुप्तचर जो नियाग्रा में डेमोक्रटों से बात करने आये थे, वास्तव में दक्षिण के राजदूत थे और लिंकन से मिलना चाहते थे। उसने लिंकन से प्रार्थना की कि उन्हें मिलने दिया जाय। लिंकन ने ग्रीली को नियाग्रा भेजा ताकि वह स्वयं उन कथित राजदूतों से मिले। उसने उसे लिखित अधिकार भी दे दिया कि वह नियमानुसार औपचारिक प्रमाणपत्रवाले किसी भी व्यक्ति को उसके पास ला सकता है। बातचीत के आधार के लिए उसने दो स्पष्ट शर्तें रखीं। एक तो गणराज्य की अधीनता मान्य होगी और दूसरी दास-मुक्ति। जिन व्यक्तियों से ग्रीली मिला उनको औपचारिक वार्ता जैसा कोई अधिकार नहीं था। ग्रीली ने खीझ कर लिंकन से अनुरोध किया कि इन विलक्षण दूतों द्वारा डेविस को यह सन्देश भेजा जाय कि वह इन्हें नियुक्त कर दे तो हम इनसे संधि वार्ता करेंगे। इसका तो यह अर्थ हुआ कि उत्तर संधि की बात स्वयं आरम्भ करें, ऐसा व्यवहार स्पष्ट ही मूर्खतापूर्ण सिद्ध होता। लिंकन ने इसे अस्वीकार कर दिया। लिंकन को अब ग्रीली ने ऐसे विवादास्पद झमेले में उलझा लिया कि या तो लिंकन को चुप रहना पड़ता अथवा उसे ग्रीली के उस पत्र को प्रकाशित करना पड़ता जिसमें उसने बहुत जोश के साथ शान्ति के पक्ष में लिखा था। इसके प्रकाशन से उत्तर में गहरी निराशा फैलने की आशंका थी। ग्रीली भी यही चाहता था। लिंकन ने चुप रहना ठीक समझा और ग्रीली अपने समाचार-पत्र में उसको मूर्खतावश रक्तपात के लिए जिम्मेदार ठहराता रहा। इस तरह के विचार सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करना हानिकर था। लिंकन को अपने प्रति 'जिद्दी रक्तपिपासु' जैसे शब्दों से बदनाम किये जाने के कारण गहरा दुख हुआ।

अब हम लिंकन और उसके मंत्रीमंडल की चर्चा करेंगे। लिंकन का अपने मंत्रियों पर एकछत्र शासन था। वह उन सबसे सम्मिलित रूप से सरलतापूर्वक सभी मसलों पर राय लिया करता था। जब वे आपस में झगड़ने लगते तो वह उन्हें डाँट देता था, जैसे एक अध्यापक झगड़ालू छात्रों को डांटा करता है। ऐसे झगड़ालू लोगों को वह इस ढंग से एक बनाये रखता कि लोग आश्चर्य करते थे। कामरान को जल्दी घर बैठना पड़ा। कालेबस्मिथ को भी इसी प्रकार मंत्री पद से हटना पड़ा। आन्तरिक मामलों के विभाग के मंत्री पद पर अशर को नियुक्त किया गया। यह व्यक्ति सभी दृष्टियों से सुयोग्य सिद्ध हुआ।

१८६४ के अन्त में प्रसिद्ध वकील बेट्स भी अपने काम से थक कर मंत्रीपद से अलग हो गया और लिंकन ने प्रसन्नतापूर्वक जेम्स स्पीड को उस पद पर नियुक्त किया। जेम्स स्पीड जोशुआ स्पीड का भाई था जो लिंकन का अन्तरंग मित्र था। उसकी इज्जत लिंकन इसलिए करता था कि वह कभी पदलोलुप नहीं रहा। जेम्स स्पीड भी लिंकन की राय में ईमानदार और भला आदमी था और उन थोड़े सन्तुलित लोगों में से था जो बड़ा पद पाने पर भ्रष्ट नहीं हो जाते थे।

ब्लेयर जितना प्रसन्नचित्त था उतना ही वह दूसरों के लिए असहनीय भी था। वह सभी लोगों पर निरर्थक और बुरी तरह कटाक्ष किया करता था। जब उसके दल के उग्रवादी उससे बुरी तरह घृणा करने लगे तब उसने लिंकन से कहा कि जब उसको उचित प्रतीत हो वह उसे हटा सकता है। ऐसा समय भी आया जब लिंकन के निर्वाचन को लेकर गम्भीर संकट पैदा हो गया। उस पर यह जोर डाला गया कि यदि लिंकन ब्लेयर को हटा दे तो उसका पुनर्निर्वाचन निश्चित हो जायगा। यह महत्वपूर्ण बात है कि उसने ब्लेयर को बलि चढ़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने से इन्कार कर दिया। कुछ दिनों बाद जब उसका अपना पुनर्निर्वाचन सुनिश्चित हो चुका था, और रिपब्लिकी दल में भी अधिक एकता लानी आवश्यक थी तब उसने ब्लेयर को हटा दिया। उस समय तक ब्लेयर की झगड़ालू प्रवृत्ति निर्लज्जता की सीमा तक पहुँच गयी थी। वह तुरन्त ही लिंकन के पक्ष में प्रचार करने में लग गया। लिंकन को इस तरह छोड़ कर जानेवाले लोगों में एक को छोड़ सभी उसके मित्र बने रहे। लिंकन के अधिक महत्वपूर्ण मंत्रियों में से वेल्लेस ने नौ सेना में कड़े परिश्रम के साथ बिना किसी तरह के प्रचार व प्रसिद्धि के भी सराहनीय काम किया। स्टाण्टन ठीक इसके विपरीत था। लिंकन और उसके सम्बधों के बारे में पूरा ग्रन्थ लिखा जा सकता है। इन दोनों विलक्षण और असंगत लोगों का साथ में काम करने का एक अनोखा तरीका भी निकल आया। यह स्पष्ट है कि लिंकन अपने सहायकों से काम लेते समय इस बात का ध्यान रखता था कि वह उन्हें सदा ही सहयोग देता रहे। जो हृदय से काम करना चाहें उनके काम में हस्त-क्षेप न करे। कई छोटे-छोटे मसलों पर उसने स्टाण्टन को विरोध करने तथा अपने विरुद्ध प्रचार करने की छूट दे रखी थी। उसने एक बार कहा, "क्या तुमसे स्टाण्टन ने यह कहा है कि मैं एक गधा हूँ? तो फिर मैं गधा ही होऊँगा क्योंकि वह अक्सर ठीक ही कहता है और उसे मैं ऐसा लगता होऊँगा तभी वह

यह कहता होगा।" किन्तु जब उसे अपने लक्ष्य की अधिक चिन्ता रहती तो वह स्टाण्टन के कामों में हस्तक्षेप करता और स्टाण्टन को पंगु बना डालता। जब लिंकन के साथ ऐसे प्रार्थियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती जिनकी प्रार्थना स्वीकार करने जैसी नहीं होती तब वह उन्हें स्टाण्टन के पास भेज देता। ये लोग या तो राष्ट्रपति से प्रसन्न होकर या उसके यह कहने से कि प्रशासन पर उसकी कुछ चलती नहीं, चकराकर सीधे स्टाण्टन के पास जाते। वह हमेशा उन्हें 'नहीं' कह देता। उसे 'नहीं' कहने में ही आनन्द आता। इससे ऐसा लगेगा मानों लिंकन अपनी बदनामी को इस प्रकार दूसरों पर डाल देता था। परन्तु जब कभी स्टाण्टन पर कोई गम्भीर या अनुचित आरोप लगाया जाता तो लिंकन इस बात का सदा ध्यान रखता था कि वह सारा दोष स्वयं अपने सिर पर मढ़ ले और उसे साफ बच जाने देता। यह बात समझ लेने पर दूसरों के सिर बदनामी डालने का विचारमात्र ही लिंकन के प्रति अनुचित जँचेगा। इन दोनों के आपसी सम्बन्धों का सार यही है कि अपने से घृणा करने वाले स्टाण्टन को वह पूरी तरह सहयोग देता था परन्तु वह इसका दिखावा नहीं करता था। स्टाण्टन भी लिंकन से घृणा करता या उसकी प्रशंसा करता रहा हो, भला व्यक्ति मानता रहा हो अथवा उसे बुरा समझता रहा हो या खुलेरूप से घृणा भी करता रहा हो, पर इस सबके बावजूद भी अपने विभाग का सफल संचालन करता रहा। उसका यह क्रम जारी रहा और एक दिन ऐसा आया जब लिंकन उसके लिए पूजनीय व्यक्ति बन गया। सेवार्ड ने इस ऐतिहासिक काल में प्रारम्भ से अन्त तक शानदार काम किया। वह इस संकटकाल में भी लिंकन की अधीनता में विदेशी मामलों को अन्त तक बिना किसी तरह के तनाव या दुर्घटना के सम्भालता रहा। जब वह किसी के अधीन नहीं था तब उसकी योग्यता उसके अभिमान के कारण निरर्थक हो गयी थी। फिर भी यह स्पष्ट है कि लिंकन के प्रति ईर्ष्या के विशेष कारण रहते हुए भी वह कभी भी यह सोच नहीं सका कि कर्तव्यपालन में निजी स्वार्थ कैसे बाधक हो सकता है।

मंत्रीमंडल के अन्य योग्यतम व्यक्तियों के साथ दूसरी ही बात थी। साल्मन पी. चेस अपनी योग्यता पर अभिमान करने के पूर्व यथार्थ में कुशल व सुयोग्य व्यक्ति था। लिंकन और उत्तरी जनता को यह विश्वास था कि वह वित्तीय व्यवस्था अत्यंत निपुणता से सम्हालेगा। लिंकन अपने निकटवर्ती सभी व्यक्तियों की तुलना में उसकी सामान्य योग्यता को अधिक महत्व देता था। परन्तु लिंकन को वह अविश्वास और घृणा से देखता था। जो लिंकन के महत्वपूर्ण पत्रों और

प्रेम से बातचीत की क्योंकि वह उसे उसकी योग्यता के कारण पसन्द करता था। उसने त्यागपत्र वापस लिवा लिया। बाद में चेस ने बहुत कुछ अपनी मनमानी की। एक बार फिर उसने क्रोध में आकर त्यागपत्र भेज दिया। किसी ने यह सुन लिया और वह लिंकन के पास आकर कहने लगा कि चेस के चले जाने से वित्तीय अव्यवस्था पैदा हो जायेगी। इस पर लिंकन के उत्तर का यह आशय था, "चेस का ख्याल है कि देश के लिए वह अनिवार्य हो गया है, उसके अंतरंग मित्र भी यह जानते हैं। वह यह क्यों नहीं समझ पाता कि जनता उसकी आवश्यकता के बारे में उसके मित्रों की तरह नहीं सोचती। वह यह भी सोचता है कि उसे राष्ट्रपति होना चाहिए। इस बारे में उसे जरा भी सन्देह नहीं है। वह यह सोच ही नहीं सकता कि सभी लोग एक साथ खड़े होकर ऐसी बात क्यों नहीं कहते। वह एक सुयोग्य राजनीतिज्ञ है और हृदय से देश-भक्त है। साधारणतः मेरी जानकारी में जितने व्यक्ति हैं उनमें से किसी भी व्यक्ति से अधिक योग्यतापूर्वक वह अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यों का निर्वाह करता है। मैं सामान्यतया उसे ध्यान देने के लिए कहता रहता हूँ। परन्तु वह चिड़चिड़ा और असन्तुष्ट हो गया है और उसे चैन नहीं आयेगा। वह या तो मुझे तंग करने पर तुला हुआ है अथवा वह चाहता है कि मैं उसका कंधा थपथपाऊँ और पद नहीं छोड़ने के लिए उसकी खुशामद करूँ। मैं नहीं सोचता कि मुझे ऐसा करना चाहिए और मैं यह करने नहीं जा रहा हूँ। यदि वह अलग होना चाहता है तो मैं उसे पदमुक्त कर दूँगा।" उसने ठीक ऐसा ही किया। १८६४ में जून के अन्तिम दिनों की यह बात है। उस समय लिंकन अपने पुनः निर्वाचन के सम्बन्ध में बहुत चिन्तित था। इधर चेस का त्यागपत्र, उधर ब्लेयर को नहीं हटाना, ये मामले ऐसे थे जिनसे ऐसा असन्तोष बढ़ सकता था जो उसके लिए खतरनाक सिद्ध होता। अपने-आपको अनिवार्य मानने वाले व्यक्ति का उत्तराधिकारी भी उसे तुरन्त ही मिल गया। लिंकन का कपटपूर्ण विरोध करने में चेस को सबसे अधिक आनन्द आने लगा। लिंकन द्वारा इसके प्रतिकार का अवसर अभी नहीं आया था।

राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन का प्रश्न साल के आरम्भ से नवम्बर मास के चुनाव तक बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। पहले जब युद्ध की गतिविधि उत्तर के पक्ष में थी तो यह समस्या थी कि किसी रिपब्लिकी उम्मीदवार को खड़ा किया जाय। निश्चय ही यह ऐसा समय नहीं था जब कि सामान्य योग्यता व साधारण चरित्र वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति चुनकर उसके हाथों राष्ट्र के जीवन की बागडोर सौंपी जा सकती हो।

परन्तु १८३२ में जैक्सन दुबारा चुना जा चुका था फिर भी उसके बाद राष्ट्रपति को दूसरी बार चुन लेने की पद्धति जारी नहीं हुई। हम यह देख ही चुके हैं कि लिंकन और उसके दल के कई लोगों में कशमकश थी। ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं था। राजनीतिज्ञों का आन्तरिक गुट्ट यह विचार करता था कि कौनसा उम्मीदवार ऐसा होगा जो देशवासियों का समर्थन पा सकेगा। वे गहरी चिन्ता के साथ इस बारे में सोच रहे थे क्योंकि उत्तर में देशद्रोह तेजी से बढ़ रहा था और उन्हें भय था कि डेमोक्रेट डट कर मुकाबला करेंगे। सचाई यह है कि उन्हें इसमें भी सन्देह था कि लिंकन सर्वोत्तम उम्मीदवार होगा। वे कहने लगे, "हमारी आलोचना का जो जोशभरा रुख है वह जनता के रुख के कारण है।" वे यह भूल गये कि साधारण जनता का झुकाव उस व्यक्ति की ओर होगा जो उस समय भी उनकी सेवा ईमानदारी से कर रहा था। अन्य सम्मत्र उम्मीदवारों में चेस और फ्रेमोण्ट के सहायक सबसे अधिक कार्यशील थे। जनरल बटलर का भी कुछ प्रभाव था। वह अधिक उपयोगी होते हुए भी सज्जन नहीं कहा जा सकता। बटलर मेसाचुसेट का एक सफल वकील था। १८६१ में जब बाल्टीमोर में शत्रु आ धमका तो वह राज्य की जनसेना का अध्यक्ष बन गया और तब से वह लगातार जनता के समक्ष प्रतिष्ठित रहा, जब तक कि मई १८६४ में लिंकन के मित्रों के सन्देह के कारण उसकी सैनिक अयोग्यता के प्रदर्शन का मौका नहीं आया। उसमें एक प्रकार की युक्तिशील धृष्टता भी थी, इसके साथ ही कार्यशीलता का जोश व प्रत्युत्पन्नमति भी थी। इनसे वह अपने सेना-संचालन के प्रशासनिक कार्यों में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। इस प्रकार के युद्ध में जनरल का पद कुछ ऐसा था कि उसको लड़ाई का काम कम करना पड़ता था और प्रशासन का अधिक। बटलर ने आरंभ में युद्ध में हब्शी दासों को शत्रुसंपत्ति मान कर जब्त कर लिया और इस तरह उसने अन्य जनरलों की अपेक्षा दिलचस्पी और अधिक परिश्रम से नीग्रो समस्या को हल करने में रुचि दिखायी। इससे यह स्वाभाविक ही था कि रिपब्लिक राजनीतिज्ञों की निगाहों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ ही जाती। अतएव इस तरह के स्वैच्छिक सेनाध्यक्षों में जो कभी भी सुयोग्य सैनिक सिद्ध नहीं हुए, बटलर के लिए कहा जाता है वही एक ऐसा व्यक्ति था जो निरंतर इस कमी के बावजूद ख्याति प्राप्त करता रहा। अंत तक वह विश्वास के साथ सेना में उच्च पद का दावेदार बना रहा और जब वह ग्राण्ट के नेतृत्व में पिटसबर्ग में असफल रहा तो प्रारम्भ में वह उससे कुछ अप्रसन्न रहा, परन्तु बाद में वह

किसी-न-किसी तरह उस सेनाध्यक्ष को प्रभावित करता ही रहा। इस तरह का कोई संकट पैदा ही नहीं हुआ कि जनता इस व्यक्ति को शूरवीर के रूप में मानने लगेगी। वह न तो कुशल ही था, न सुयोग्य और चतुर ही; परन्तु उसने अनुभवी राजनीतिज्ञों को भी ऐसा उल्लू बना रखा था कि वे लोग लिंकन के पुनः राष्ट्रपति चुने जाने के बाद भी इस कल्पना को महत्व देते रहे कि बटलर जनता के लिए उचित उम्मीदवार सिद्ध होता।

ग्राण्ट को भी नामजद करने की कई लोगों की इच्छा थी। यह एक ऐसा प्रस्ताव था जिसके प्रति सहानुभूति भी थी। ग्राण्ट की योग्यता व उसके गुणों को देखते हुए आवश्यक था कि उसे उसके हाथ में जो काम था उससे हटाया जाय।

उस वर्ष के प्रारम्भिक महीनों में क्रियाशील राजनीतिज्ञ चिन्तित होकर आपस में गुप्त मंत्रणाएं कर रहे थे कि राष्ट्रपति-पद के लिए कौन अधिक सफल होगा। इन लोगों में, लिंकन के प्रति देश भर में जो भावना थी उसका लेशमात्र भी विचार नहीं था। मई में सुधारवादियों के एक गुट्ट ने जो फ्रेमोण्ट के समर्थक थे, कुछ लोगों की एक सार्वदेशिक सभा आयोजित की और एक डेमोक्रेट नेता को राष्ट्रपति के लिए उम्मीदवार नामजद कर दिया। उनकी अपनी सफलता का कहीं कोई अवसर नहीं था। परन्तु वे इससे कुछ रिपब्लिकी मतों को तोड़ कर डेमोक्रेट उम्मीदवार की मदद अवश्य कर सकते थे। इसके अतिरिक्त ऐसे भी लोग थे जो आरंभ में अति उग्रवादी थे परन्तु असफल होने के कारण कट्टर प्रतिक्रियावादी बन गये थे; उन्हें लिंकन का मध्यम मार्ग पसन्द नहीं था। कई महीनों के बाद जब रिपब्लिकनों की विजय लगभग निश्चित हो गयी तो उनमें निर्णय की एकता आ गयी क्योंकि ब्लेयर के त्यागपत्र से कुछ लोग लिंकन के पक्ष में आ गये और फ्रेमोण्ट को समझा कर उम्मीदवारी वापिस लेने के लिए राजी कर लिया गया। इसी बीच रिपब्लिकन दल ने अपने प्रतिनिधि, जून के प्रारम्भ में ही बाल्टीमोर की एक परिषद में भेज दिये थे। जब ग्राण्ट ली को हराने के लिए रवाना हुआ तो कुछ छोटे-छोटे गुट्टों का खुला विरोध होते हुए भी युद्ध के प्रति उत्तर के लोगों में अपूर्व उत्साह था। पहले तो ऐसा लगा कि वह अच्छी प्रगति कर रहा है। कोल्ड हार्बर की हार थोड़े दिनों पूर्व ही हुई थी। उसकी असफलता पर अभी ध्यान नहीं गया था। जब किसी व्यापक और गम्भीर प्रश्न पर निर्णय करना होता है, तो सर्वोत्तम राजनीतिज्ञों और पत्रकारों को छोड़ कर, साधारण नागरिक अक्सर किसी और ही तरीके से अधिक

शांति से निर्णय कर लेते हैं। वास्तव में, कुछ गम्भीर राजनीतिज्ञ तो बाल्टीमोर परिषद् को स्थगित करने के लिए उत्सुक थे, क्योंकि उनको यह डर था कि ये प्रतिनिधि अभी लिंकन के विरुद्ध गहरी घृणा से ओतप्रोत नहीं हुए थे जितना वे लोग उसके प्रति अपने दिलों में घर किये हुए थे। बाल्टीमोर की परिषद् में एक राज्य के प्रतिनिधि ग्राण्ट को चाहते थे। परन्तु लिंकन को शीघ्र ही सर्व-सम्मति से राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार चुन लिया गया। इसी परिषद् ने यह घोषणा कर दी कि दासमुक्ति के लिए संविधान में संशोधन कर दिया जाय। लिंकन उपराष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता था। उसने ठीक किया। पर अन्त में परिणाम अच्छा नहीं रहा। परिषद् ने एण्ड्रयू जानसन को चुन लिया। जानसन, जिसे लिंकन मुश्किल से ही निभा सकता था, प्रारम्भ में एक नौसिखिया दर्जी था। उसने लिंकन की ही तरह अपने को ऊपर उठाया और टेनेसी के गणतंत्रवादियों को संगठित करने में बड़ा काम किया। परन्तु इस एक बात के अलावा उसमें दूसरी विशेषताएं नहीं थीं। राष्ट्रपति-पद की शपथ लेते समय भी वह शराब पिये हुए था। उसका राजनैतिक विश्वास तीव्र वर्ग-घृणा पर आधारित था और चारित्र की दृष्टि से वह कमजोर, निर्दयी व जिद्दी था। भाग्य इसी व्यक्ति को लिंकन का उत्तराधिकारी बनानेवाला था। लिंकन ने परिषद् के निर्णय का नम्रता से विरोध करते हुए एक मित्र को लिखा कि वह व्यक्ति इस मनोनयन के योग्य नहीं है। साथ ही यह सुझाया कि नदी की बीच धार में घोड़े नहीं बदलने चाहिये अर्थात् उपराष्ट्रपति-पद पर जो व्यक्ति अब तक काम कर रहा था उसे ही रहने दिया जाना चाहिये।

यह सम्भावना थी कि असन्तुष्ट रिपब्लिकी बाद में विद्रोह करेंगे और दूसरों को मैदान में लायेंगे। परन्तु अब उनका ध्यान डेमोक्रेटों की ओर आकर्षित हो गया। उनकी परिषद् अगस्त के अंत में शिकागो में मिलने वाली थी। इस बीच युद्ध में मिली असफलताओं के कारण उत्तर में गहरी से गहरी मानसिक निराशा फैल गयी। यह इतनी भयानक थी कि पूरे युद्धकाल में ऐसी निराशा पहले कभी नहीं फैली थी। यह सुनकर अवश्य ही क्षोभ होगा कि उस वर्ष दक्षिण की हालत सरोते में पड़ी सुपारी की तरह थी और कमर तोड़ने के लिए केवल एक ही करारी चोट की आवश्यकता थी। परन्तु किसी भी बुद्धिमान मनुष्य के हृदय में उत्तर की विजय में सन्देह नहीं रहा था। तभी विजयी उत्तर वालों को ऐसा लगने लगा कि अब उन्हें हार मान लेनी चाहिये। लिंकन ने कहा, "देश

और उसकी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए किसी भी श्रेणी के लोग एक मत नहीं हैं जितने कि इस समय स्थल सैनिक हैं। क्या उनको सबसे अधिक चोट नहीं सहनी पड़ी रही है? जब वे साहस नहीं छोड़ रहे हैं तो फिर हमें छोड़ने की क्या जरूरत है?" यह इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि उस समय उत्तर का साहस जवाब दे चुका था। जब युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहा तो विजय के मार्ग में बाधाएं ही लोगों को इतना दहला देती थीं कि युद्ध के प्रथम दो वर्षों में भारी पराजयों में भी कभी उनका साहस नहीं टूटा था। कुछ लोग पराजय से भयभीत होकर युद्ध रोकने की उल्टी-सीधी बातें फैलाने लगे। शिकागो में डेमोक्रेटों के महा सम्मेलन के पूर्व के दो माह उस दल के लिए शुभ शकुन थे। चाहे प्रतिष्ठित डेमोक्रेट वास्तविकता को स्वीकार नहीं करते फिर भी उनका मन्तव्य यह था कि युद्ध के प्रति लोगों की भावना शिथिल हो गयी है क्योंकि जनता का ध्यान युद्ध के दूसरे क्षेत्रों से हटकर पोटोमा की सेना पर केन्द्रित हो गया था। शरमन ने जान्सटन को वापिस खदेड़ दिया और हुड को हटा दिया था। फारागोट ने मोबाइल के नौसैनिक युद्ध में उत्तर की सम्पत्ति में और भी वृद्धि की। परन्तु उत्तर की भावना पर इन बातों का प्रभाव पड़ा कि ग्राण्ट भले ही आगे बढ़ा, ली की सेना के सामने वह असफल हो गया। शेनानडोआ युद्ध में उत्तर की हार हुई और दक्षिण ने वाशिंगटन पर भी हमला कर दिया। पीटसबर्ग में ग्राण्ट का पहला आक्रमण पुनः असफल हुआ और उसे भारी क्षति उठानी पड़ी। सेना में इससे कुछ निराशा पैदा हो गयी। किस उम्मीदवार को डेमोक्रेट खड़ा करनेवाले हैं और उनकी राजनीतिक चाल का क्या सामान्य सिद्धान्त रहेगा, यह उनके सम्मेलन से कई हफ्ते पहले मालूम हो गया था। रिपब्लिकी पहले से ही निराश हो गये थे कि वे डेमोक्रेटों को नहीं हरा सकेंगे। शिकागो सम्मेलन में ऐसे प्रतिनिधि, जिनका चरित्र उनकी स्पष्टवादिता के मुकाबले में उच्च नहीं था, युद्ध के कट्टर विरोधी थे। उनका नेता वालाण्डीघम था। कुछ लोग ऐसे भी थे जो खुल कर युद्ध के पक्ष में भाषण देते थे परन्तु वे भी दासमुक्ति और सरकार के विरुद्ध थे। उनका नेता सीमूर था जो स्वाभिमान और देशभक्ति की बातें करता था। सम्मेलन का सभापति सीमूर को बनाया गया। यह युद्ध के पक्ष में भी था और युद्धविरोधी वालाण्डीघम उसके कार्यक्रम का मुख्य संचालक था। ऐसे व्यक्तियों का आपस में आत्मसम्मान के साथ सहयोग करना बहुत कठिन था। सहयोग का तो तरीका उन्होंने निकाल ही लिया, जो दलीय पद्धति के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। पहले तो उन्होंने

एक सिद्धान्त की घोषणा की जिसका उद्देश्य शान्ति प्राप्त करना था। इसके बाद उन्होंने एक उम्मीदवार खड़ा किया जो उनके दृष्टिकोण में युद्ध में सफलता ला देगा। इस आशय का प्रस्ताव भी पास किया गया, "यह सम्मेलन स्पष्ट घोषणा करता है कि अमरीकी जनता की यह मान्यता है कि चार वर्ष तक युद्ध जारी रहने पर भी गणराज्य फिर से कायम नहीं हो सका है। न्याय, मानवता, स्वतंत्रता, जनकल्याण की यह दृढ़ मांग है कि युद्ध रोकने की तुरन्त कोशिश की जाय, ताकि अन्त में राज्यों का सम्मेलन बुला कर अथवा अन्य शांतिमय तरीकों से शीघ्र-से-शीघ्र सुलह कायम की जा सके और इस शान्ति का आधार राज्यों का संघात्मक संगठन हो।" इस प्रस्ताव में उद्देश्य संघात्मक राज्य की स्थापना बनाया गया है और साधन तुरन्त युद्धबन्दी बताया गया है। यह भेद स्पष्ट है। इस प्रस्ताव का अर्थ स्पष्ट करने को यह लिखा गया, "हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि युद्ध असफल हो गया।" इस प्रस्ताव में राष्ट्रपति-पद के लिए डेमोक्रेट उम्मीदवार मैक्लीन चुना गया। मैक्लीन ने अपने चुने हुए शब्दों में इस प्रस्ताव को यह भाग उड़ा दिया कि युद्ध असफल रहा। इस संशोधन के बाद ही उसने उम्मीदवारी स्वीकार की। वह गणराज्य को किसी तरह की हानि नहीं पहुँचाना चाहता था परन्तु वह निश्चित और स्पष्ट लाभ भी नहीं पहुँचाना चाहता था। निर्वाचक भी अब डेमोक्रेटों के पक्ष में थे, क्योंकि वे शांति चाहते थे अथवा उनका उम्मीदवार एक योद्धा था। परन्तु उन्हें क्या पता था कि दुर्भाग्य उनके इस इरादे पर मुस्करा रहा था और शीघ्र ही शक्ति-परिवर्तन का पांसा ही पलटने वाला था। उस समय के पर्यवेक्षकों ने भी यही सोचा था। युद्ध की ही घटनाओं ने मैक्लीन और उसके व्यवस्थापकों की योजनाओं को तहस-नहस कर दिया। उस समय यदि उत्तर के धैर्य व शक्ति पर थोड़ा और जोर पड़ता तो भी डेमोक्रेटों की नीति से, जो अब स्पष्ट रूप से सामने रख दी गयी थी, लोग भय खाते थे। वास्तव में जिन महीनों में शिकागो सम्मेलन होने ही वाला था और इसकी समाप्ति के कुछ दिन बाद भी रिपब्लिकी लोगों में निराशा बनी रही। परन्तु इस समय लोगों में यह भय घर कर गया था, चाहे भय युद्ध में असफलताओं के कारण हो अथवा नेताओं की राजनैतिक निराशा के रूप में लोगों में पहुँचा हो। रिपब्लिकन दल के चतुर लोग अपने राज्यों के आधार पर यह भविष्यवाणी कर रहे थे कि उनके चुनाव जीतने की कोई सम्भावना नहीं है। ये लोग इधर-उधर गुप्त मंत्रणा कर रहे थे कि लिंकन को छोड़ दिया जाय और ग्राण्ट से उम्मीदवार बनने के लिए अनुरोध किया जाय।

सबसे बड़े दल-व्यवस्थापक थर्लोवीड ने १२ अगस्त के पूर्व लिंकन से कहा कि आपके चुने जाने की अब कोई आशा नहीं है। दस दिन बाद ही केन्द्रीय रिपब्लिकी समिति के अध्यक्ष रेमोण्ड ने भी यही बात फिर दुहरायी कि संधि की बातचीत शुरू कर दी जाय।

थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाय कि अगले नवम्बर में मैक्लीन चुन लिया जाता और मार्च में वह युद्ध चालू रहने की अवस्था में ही पदग्रहण करता तो इस पर विश्वास करना कठिन है कि वह दास-प्रथा को पुनः स्थापित कर देता अथवा कम-से-कम डेढ़ लाख नीग्रो लोगों को जो अब उत्तर की सेना में भर्ती थे, बिना किसी सुरक्षा के निकाल बाहर करता। लिंकन तो यह मानता ही था कि मैक्लीन और उसके दल के सिद्धान्त उसको यही करने को मजबूर करते और उसके लिए यह कार्य नीति व स्वाभिमान के अतिरिक्त भी सैनिक कारणों से आत्मघात के समान ही होती। मैक्लीन ने सन्धि के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। परन्तु मुख्य सवाल तो उसके साथियों और उनके चरित्र का था, उनके शब्दों का नहीं। वास्तव में उनके सिद्धान्तों का अर्थ, जिनमें, उसका विश्वास भी था लिंकन की दास नीति को कुछ सीमा तक बदलना था। स्पष्ट है कि उसे दक्षिण से संधि-चर्चा के लिए मजबूर होना पड़ता। दक्षिण को सन्तुष्ट करने से, जब कि वह समझौते के लिए झुकने को तैयार ही नहीं था, अव्यवस्था पैदा होती और हार मान लेने से उत्तर के लोगों में तीव्र रोष की लहर फूट पड़ती। ग्राण्ट ने अपने एक मित्र को लिखे पत्र में बड़ी कुशलता से इसका वर्णन किया है। उस मित्र ने यह पत्र लिंकन के पक्ष में प्रकाशित कर दिया। फिलाडेल्फिया में, युद्ध में आहत लोगों की सहायता के लिए किये गये एक मेले में लिंकन ने कहा, "हमने यह युद्ध बाध्य होकर स्वीकार किया था, युद्ध हमने शुरू नहीं किया था। हमने उसे एक उद्देश्य के कारण स्वीकार किया और जब वह उद्देश्य पूरा हो जायेगा तो युद्ध स्वयं ही रुक जायेगा। मैं ईश्वर से आशा करता हूँ कि उद्देश्य पूर्ण होने के पहले युद्ध कदापि नहीं रुके।" मैक्लीन तथा सामान्य डेमोक्रेटों का वास्तविक दृष्टिकोण कैसा भी रहा हो वे लिंकन के उपरोक्त मत के पक्ष में नहीं थे। यह सम्भव भी हो सकता था कि द्विअर्थी बात करने वाले भले ही चुनाव जीत लेते परन्तु युद्ध नहीं जीत सकते थे और स्थायी शान्ति पा जाना उनके लिए कहीं कोसों दूर था।

पुनर्निर्वाचन के बाद लिंकन भावी ४ वर्षों के बाद कहीं शान्तिपूर्ण जीवन

बिताने की कल्पना करने लगा और इतना ही नहीं वह शांति-व्यवस्था की युद्ध-समाप्ति के पूर्व ही सजग कल्पना करने लगा था। इसमें कहीं कोई सन्देह नहीं है कि वह दुबारा राष्ट्रपति चुने जाने पर देश की जनता द्वारा उसको जो सर्वोच्च सम्मान दिया जाता, उसकी किसी से भी कम कदर नहीं करता। परन्तु प्रशासनिक कार्य ऐसा था कि यदि लिंकन की अपेक्षा कोई दूसरा भी राष्ट्रपति होता और गर्व से नहीं फूलता तो भी उसके शान्तिपूर्ण जीवन की व्यक्तिगत इच्छाएँ काम के बोझ से ही दब जातीं। उसके लिए ऐसा होना अत्यन्त स्वाभाविक था। एक बुद्धिमान राष्ट्रपति अपने ही पुनः चुनाव के लिए प्रत्यक्ष में अधिक प्रचार नहीं कर सकता, परन्तु उसने तो आश्चर्यजनक तौर पर कहीं कुछ भी नहीं किया। १८६४ के प्रारम्भ में जब युद्ध का अंत अधिक निकट लग रहा था और एक रिपब्लिकी को चुना जाना प्रायः निश्चित था वह ठीक ही सोच सकता था, "मैं ही वह रिपब्लिकी उम्मीदवार रहूँगा।" परन्तु उसने चेस की सम्भावनाओं को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया था और ग्राण्ट के बारे में तो उसने कहा था, "यदि वह रिचमण्ड ले ले तो उसे राष्ट्रपति-पद भी दे दिया जाय।" जब युद्ध लम्बा लगने लगा और उसके अन्त होने के पूर्व ही डेमोक्रेट राष्ट्रपति के चुने जाने की सम्भावना बढ़ गयी तब बात कुछ और ही थी। एक पत्र-सम्पादक अगस्त में बुरी तरह से कार्यव्यस्त राष्ट्रपति से मिला और उससे कहा, "आपको कुछ सप्ताहों के लिए आराम और एकान्त की आवश्यकता है।" परन्तु लिंकन ने उत्तर दिया, "मैं अपने विचारों से तो दूर नहीं भाग सकता। मैं यह नहीं मानता हूँ कि मैं यह बात अभिमान या महत्वाकांक्षा के कारण कह रहा हूँ; ये दोनों कमजोरियाँ मुझमें हैं भी, परन्तु मुझे ऐसा लगता ही है कि नवम्बर में देश के सुख या दुख का निर्णय होने वाला है।" डेमोक्रेट दल के किसी भी पक्ष ने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं रखा जिसके कारण गणराज्य सदा के लिए नष्ट हो सकता है। वह ग्राण्ट के लिए पद खाली करने में बड़ा सन्तोष मानता था, बशर्ते ग्राण्ट अपना काम समाप्त कर लेता। परन्तु जब इसमें देर हो गयी तब ग्राण्ट को मजबूर करके वहाँ से हटा कर राजनीति में लाने के आन्दोलन से लिंकन बहुत चिंतित हो गया। बड़ी मुश्किल से अन्त में कहीं जाकर उसे ग्राण्ट जैसा सुयोग्य सेनापति मिल पाया था और यदि उसका ही काम अधूरा रह जाता तो फिर सर्वनाश था, क्योंकि युद्ध के इस संकटकाल में यदि मैक्लीन चुना जाता तो सर्वनाश होकर ही रहता। ग्राण्ट को उसके मुकाबले में उम्मीदवार खड़े करने के पीछे लक्षित

उद्देश्य से ग्राण्ट के सम्मानार्थ बुलायी गयी एक सभा में लिंकन को भाषण देने के लिए बुलाया गया। उसने स्पष्ट राजनीतिक पद्धति अपनाते हुए लिखा, "मेरे लिए वहाँ आना असम्भव है। फिर भी जनरल ग्राण्ट और उसके नेतृत्व में महान सेनाओं की शक्ति बढ़ाने और उसके कार्यों को दृढ़ स्वरूप देने के प्रत्येक प्रयत्न में मैं उसके साथ हूँ। वह और उसके बहादुर सैनिक अपनी महान देशसेवा में संलग्न हैं और मुझे विश्वास है कि आप इस सभा में ऐसे प्रेरणा-भरे शब्द कहेंगे जिससे ग्राण्ट और उसके सैनिक और उनके गोलन्दाज दृढ़ता से शत्रु पर करारी चोट कर सकें।" अगस्त में उसने ग्राण्ट के मित्र ईटन को अपना विचार स्पष्ट बता दिया। वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ग्राण्ट सैनिक स्थिति को अरक्षित छोड़ कर राजनीति में खुशी से प्रवेश कर सकता है और उसको यह विश्वास था कि किसी प्रकार का दबाव भी उसे ऐसा करने को मजबूर नहीं कर सकेगा। परन्तु वह इस बात को पक्की कर लेना चाहता था। ईटन ग्राण्ट से मिला और उसने बातचीत के दौरान में बड़े ही सलीके से उसका ध्यान उसके मित्रों के इस भावी षड्यंत्र की ओर आकर्षित किया। ईटन ने बाद में लिखा, "हम बहुत ही शांति से बात कर रहे थे, पर ग्राण्ट ने एक लहजे में उत्तर दिया। वह दृश्य देखने जैसा था। उसने इतनी दृढ़ता के साथ जो उत्तर दिया वैसा सुनने की मुझे आशा नहीं थी। उसने कसकर अपना घूँसा कुर्सी के हत्थे पर जोर से मारा 'वे ऐसा नहीं कर सकते', 'वे मुझे ऐसा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।' ग्राण्ट सामान्यतः जोर देकर क्रोध से बात नहीं करता था। मैंने पूछा, तुमने राष्ट्रपति से यह कह दिया है क्या? ग्राण्ट ने उत्तर दिया, 'नहीं मैं राष्ट्रपति को अपनी ओर से विश्वास दिलाना इतना जरूरी नहीं समझता। हमारे उद्देश्य के लिए उसका चुना जाना इतना ही महत्वपूर्ण मानता हूँ जितना सेना की युद्ध-क्षेत्र में विजय।'" लिंकन ने बाद में कहा, "मैंने कहा था न वे उसे तब तक नहीं पकड़ सकते जब तक वह विद्रोह को समाप्त न कर देगा!" अब केवल उसे यह खतरा रह गया था कि मार्च में मैक्लीन राष्ट्रपति चुना जा सकता है। इसका केवल एक ही इलाज किया जा सकता था। युद्ध को कोशिश करके इसके पहले ही समाप्त कर देना। अब रेमोण्ड की दक्षिण से सन्धि-चर्चा करने की सलाह सामने आयी। लिंकन का उत्तर देने का तरीका हम पहले ही देख चुके हैं। उस समय यह अफवाह जोरों पर थी कि नवम्बर में मैक्लीन जीत गया तो उसे अनियमित तौर पर तुरन्त ही शक्ति सौंपे जाने का प्रयत्न होगा।

लिंकन ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह अपने पद पर निर्धारित अंतिम दिन तक काम करेगा। २३ अगस्त को उसने विलक्षण ढंग से, जिसमें उसका गहरा आवेग प्रकट होता था, एक प्रस्ताव लिखा और उस कागज की तह कर दी। उसने अपने मंत्रियों से कहा कि वे बिना पढ़े ही उस पर अपने हस्ताक्षर करके अपनी स्वीकृति प्रगट करें। सबने उस पत्र की पीठ पर अपने हस्ताक्षर कर दिये और चाहे कुछ भी निश्चय उसने क्यों न किया हो यह जाने बिना ही साथ देने के लिए तैयार हो गये। यह लिंकन व उनके मंत्रियों की महान गौरवता-सूचक बात थी। उसने उस प्रस्ताव को बन्द करके अलग रख दिया। कोई नहीं बता सकता था कि इस अन्धकारपूर्ण समय में लिंकन की ओर से जनता का विश्वास कितना उठ गया था। यह मानना कि लिंकन को नीचे गिराने के षड्यंत्रों में भी जनता भाग नहीं लेगी, सम्भावना से परे की आशा करना था। निश्चय ही ऐसे लोग अवश्य थे जिन्होंने उसकी योग्यता को जल्दी ही समझ लिया और उसकी प्रशंसा करते रहे। सभी लोग तो गरीब देहाती व सादगीपूर्ण व्यक्ति नहीं थे जिनसे मान्यता की लिंकन इच्छा करता और आशा भी करता। पूर्वी सेनाओं के सैनिक अब लिंकन को अच्छी तरह जान गये थे। उत्तर के प्रत्येक भाग में ऐसे ईमानदार माता-पिता भी थे जो वाशिंगटन गये थे और राष्ट्रपति-भवन में दुखद अवस्था में घुसे थे परन्तु वे अत्यन्त प्रसन्न होकर लौटे थे। वे लिंकन के बारे में बहुत ही अच्छी भावना लेकर घर लौटे थे। इनमें ऐसे भी कुटुम्ब थे जिनको जन्म और पालनपोषण के कारण अमरीका में अधिक से अधिक प्रतिष्ठा मिली थी। ऐसी ही एक लड़की ने लिंकन की मृत्यु के बाद अपने पिता को इस प्रकार लिखा। श्रीमती हरकोर्ट ने, जो उस वक्त कुमारी लिली मोटले थी, लिखा—"मैं भी आपकी तरह (ईश्वर को धन्यवाद है) यह दुहराती हूँ कि हमारे बीच से उठा लिये जाने के पहले भी हम उनकी हमेशा इज्जत करते थे।" यदि हम राजनैतिक जगत की ओर दृष्टि डालें तो हमें उन लोगों में जो ईमानदारी से लिंकन के दास-प्रथा के प्रति रुख को समझ नहीं पाते थे उनमें चार्ल्स सम्नर जैसे उत्तम अपवाद भी मिलते हैं। एक अच्छे गवर्नर की भावनाओं का भी हमें आदर करना पड़ेगा जो उसके पास एक कष्टदायक परन्तु गम्भीर प्रस्ताव लेकर आया और जिसे लिंकन ने एक गवाँरू उपाख्यान सुनाकर चतुराई से चुप कर दिया। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि अक्खड़पन और अर्द्ध शिक्षा का गहरा पर्दा ऐसा था जो लिंकन के असाधारण गुणों की ओर अधिकांश राजनीतिज्ञों का ध्यान आकर्षित करने में बाधक था। श्री रोड्स ने १८६४ में वाशिंगटन

तथा प्रशासन के सम्पर्क में रहनेवालों में जो चेष्टाएं प्रचलित थीं उसके बारे में सबूत इकट्ठे किये हैं। उस समय वहाँ के राजनीतिक समाज में इस तरह की विद्वत्ता, सूझ-बूझ और सहृदयता की औसतन इतनी ही कमी थी जितनी कि यूरोप के अधिकांश नष्टप्राय सामन्ती दरबारों में थी। लिंकन को इसी अलगाव में रहना पड़ा और काम करना पड़ा था। कम-से-कम उसके पहलू का तो इससे भी कठोर चित्र सामने आता है। अपनी महानता के चरम शिखर पर पहुँचने के कुछ ही समय पूर्व का—जब लिंकन वाशिंगटन की सड़कों पर देखा जा सकता था—वाल्ट व्हिटमेन ने सजीव वर्णन किया है। लिंकन के सहायक यह जोर देते थे कि राष्ट्रपति के साथ घुड़सवार अंगरक्षक ठाठ से सजे-धजे रहना चाहिये। उन घुड़सवार रक्षकों का जिक्र करते हुए वह कहता है कि वह जुलूस वेषभूषा में घुड़सवारी के प्रदर्शन में बहुत दर्शनीय नहीं होता था। लिंकन अच्छे डीलडौलवाले सफेद घोड़े पर चढ़ता था, सादे कपड़े पहनता था जो कुछ मैलेकुचैले भी रहते थे। वह सामान्य से सामान्य व्यक्ति मालूम होता था। उसके अंगरक्षक भी पूर्ण सज्जाहीन होते थे। उनको देखकर किसी भी तरह की कल्पना नहीं होती। केवल कभी कोई उत्सुक अजनबी ठहर जाता और देखने लगता था। मुझे अब्राहम लिंकन का गहरा ताम्रवर्णी चेहरा बिलकुल स्पष्ट दिखाई देता था। उसमें पड़ी गहरी झुर्रियाँ; गढ़े में धँसी आँखों में हमेशा गहन चिंतन व विषाद का भाव मेरे सामने आ जाता था। हम एक दूसरे के प्रति मैत्री भाव से नमस्कार कर लेते थे। कभी-कभी राष्ट्रपति एक खुली बग्घी में आता-जाता था। कवि कहता है कि वह भी कुछ शानशौकत जैसी नहीं थी। कभी-कभी उसका दस-बारह वर्षीय पुत्र उसके दाहिनी ओर टट्टू पर सवार होकर चलता था। एक बार वे मेरे बहुत ही नजदीक से निकले और जब वह धीरे-धीरे निकल रहे थे तो मैंने राष्ट्रपति के चेहरे की ओर गंभीरता से देखा। उसकी दृष्टि भावहीन होते हुए भी मेरी ही आँखों से टकरा रही थी। लिंकन ने झुककर नमस्कार किया और मुस्कराया। परन्तु मैंने उसकी मुस्कराहट की गहराई में छिपा हुआ ऐसा पीड़ा-भाव देखा जो पहले बता चुका हूँ।" कोई भी कलाकार अथवा चित्रकार इस व्यक्ति के चेहरे के गहरे किन्तु सूक्ष्म तथा अप्रत्यक्ष भाव को नहीं पकड़ सका। वहाँ कुछ और ही था। इसे चित्रित करने के लिए दो तीन शताब्दी पहले के किसी चित्रकार का होना आवश्यक था।

साथ में टट्टू पर चढ़ा उसका छोटा लड़का टामस था। उसे टैड कहके

पुकारते थे। अपने पिता की फुरसत के समय वह उसके साथ ही रहता था। वह अब मर चुका है। उससे बड़ा एक लड़का रॉबर्ट उस समय हारवर्ड में पढ़ता था। बाद में वह इंगलैण्ड में राजदूत के पद पर भी रहा। विली एक होनहार प्यारा और चपल बच्चा था। वह कुछ समय तक राष्ट्रपति-भवन का स्वच्छन्द पंछी रहा। वह भी १८६२ के प्रारम्भ में ही बारह वर्ष की अवस्था में ही मर गया। उसका पिता उस समय मैक्लीन को युद्ध में आगे बढ़ने के लिए झकझोरने में तन्मय था। एक लड़का बहुत पहले शिशु अवस्था में ही समाप्त हो गया था। लिंकन दम्पति की बस यही संतति थी। उनके बारे में जनता को बहुत कम जानकारी थी। जो कुछ पता चला है उससे यही ज्ञात होता है कि वह बुद्धिमान तथा सहृदय पिता था। बच्चों का उस पर विश्वास था और वह उनसे मिलकर सुखी होता था। जान निकोले, उसका विश्वस्त निजी सचिव और खुशमिजाज जान हे, ये दोनों ही लिंकन के सुखी जीवन के साथी थे क्योंकि उसके दैनिक जीवन में आनन्द का भी एक अंश रहता था। वाइट-हाउस में और कभी-कभी गर्मी के दिनों में वाशिंगटन के पास सैनिक गृह में वह जो जीवन बिताता था वह सादा जीवन होता था और अपने खुद के लिए—अतिथियों के लिए नहीं—भोजन के समय पर्याप्त या स्वादिष्ट पदार्थों की चिन्ता नहीं करता था। वह लोगों को अधिक दुखी नहीं बना सकता था। परन्तु अपने रक्षकों को—जिन पर स्टाण्टन कड़ी नजर रखता था—कुछ तकलीफ अवश्य देता था क्योंकि वह युद्ध-विभाग की अर्धरात्रि-परिषदों से उठ कर अकेला ही वाइट हाउस से सैनिक-गृह पैदल चल देना पसन्द कर देता था। जिन घटनाओं को उसने सम्भाला उनके विशद इतिहास में भी ऐसे पर्याप्त प्रमाण मिल जाते हैं कि उसने कैसे निरंतर कठिन और चिन्तित अवस्था में भी कार्य किया था। ऐसी स्थिति लगभग चारों वर्ष सर्वदा बनी ही रही। उस इतिहास की बहुत-सी उलझनों पर तो केवल नजर डाल ली गयी है और कुछ बिलकुल ही छोड़ दी गयी हैं। उदाहरण के लिए, फ्रांस और मैक्सिको सम्बन्धी कठिनाई और टेक्सास में प्रतिष्ठित व्यवसायी बैंकों का टूटना, ऐसी समस्याएं थीं जिन पर बहुत कम ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति का यह भी कर्तव्य था कि वह सब लोगों की पहुँच अपने तक जारी रखे। इस कर्तव्य को लिंकन खास तौर से पूरा करने की कोशिश करता था।

नियमित मेहमानों के अतिरिक्त, आगन्तुकों का एक तांता ही उसके

यहाँ बँधा रहता था जिससे उस पद की अखरनेवाली नीरसता में भी काफी सरसता आ ही जाती होगी। कभी-कभी उसकी पैनी दृष्टि मानव स्वभाव के विलक्षण और आकर्षक तत्वों पर पड़ जाती थी। ऐसे व्यक्ति भी आ जाते जो न तो कोई कष्ट ही देते न किसी तरह की मांग करते। उनमें न तो दिखावट, न विलक्षणता का प्रदर्शन ही होता था परन्तु वे सरल हृदय व ईमानदारी के साथ भक्ति प्रगट करने या आनन्दभरे दो शब्द कहने की इच्छा रखते थे। ऐसे व्यक्तियों का लिंकन अकृत्रिम अनुग्रह मान कर हृदय से स्वागत करता था। ऐसे किसान, दूर देहाती लोग जिनसे वह बहुत ही अच्छी तरह बात कर सकता था, आते और उसे औचित्य से अधिक समय उन्हें देना पड़ता था। कभी-कदाच् वर्षों से बिछुड़े हुए मित्र का आगमन होता। एक बार कुछ राजनीति-कुशल लोगों ने डेविस हैंक्स को नये वस्त्रों से सजा कर उसे कतिपय राजनीतिक अपराधियों को क्षमा करवाने के लिए अपना प्रतिनिधि बना कर वाशिंगटन भेज दिया। ये लोग आवश्यकता से अधिक सफल हो गये। हालांकि स्टाण्टन बीच में पड़ा भी और डेविस उससे मिलने के बाद अपने पुराने मित्र लिंकन को यह सलाह दे गया कि उस मंत्री को निकाल देना। परन्तु इस प्रकार की मुलाकातों में असंख्यों शिकवे और शिकायतें लिंकन जैसे सचेत और सदय व्यक्ति पर भारी बोझ डालनेवाली होती थीं। विशेषतः छोटे-छोटे मामलों के सम्बन्ध में जब उसकी सहृदयता घटती-बढ़ती रहती थी तब तो यह भार और भी अधिक बढ़ जाया करता था। लिंकन से मिलकर अधिकांश लोग यह भावना लेकर जाते थे कि वह गरीबों की कितनी कृतज्ञता मानता है और कम-से-कम उनकी बात तो वह ध्यान देकर सुन ही लेता है। उनके प्रार्थनापत्रों को स्वीकार करके जो उस पर सबसे भारी बोझ डालने वाले थे, उसने अपने देशवासियों पर चिरस्मरणीय प्रभाव डाल दिया।

अमरीकी सैनिक स्वभावतः नियमबन्धन या अनुशासन का अधिक आदी नहीं होता है। सैनिक न्यायालय द्वारा लगातार भगोड़ों पर अथवा पहरे के समय सो जाने या अन्य लापरवाही के लिए मौत की सजाएं दी जा रही थीं। इनमें से कुछ लोग राष्ट्रपति को अपनी क्षमा की अपीलें भेजते थे, जिस पर वह सप्ताह में एक दिन विचार भी करता था। उसे लिंकन सबसे मनहूस दिन कहता था। अपराधी के माता-पिता या मित्र लगातार लिंकन से अपील करते रहते थे। एक समय तो ऐसा था जब वह क्षमा के लिए आवश्यकता से अधिक तैयार रहता था। वह कहता, तुम नहीं जानते कि एक मनुष्य को मर जाने देना

कितना कठोर है जब कि यह भी सम्भव लगता हो कि तुम्हारी कलम की एक लिखावट ही उसकी जान बचा सकती है। बटलर उसे लिखा करता था कि वह सेना की शिस्त को बिगाड़ रहा है। मीड को लिखे गये उसके एक पत्र से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वह सस्ती भावनाओं और विचाररहित दया का प्रदर्शन नहीं करना चाहता था। क्षमा के ऐसे असंख्य उदाहरणों का तात्पर्य यही है कि जहाँ वह क्षमा की अपनी इच्छा को उचित ढंग से प्रयोग कर सकता था वह कभी जांच करने और बीच में पड़ने से पीछे नहीं हटता था। कोई भी कांग्रेस सदस्य आधी रात को उसके शयनकक्ष-पड़ाव में जबरदस्ती जा घुसता और उसे जगा कर किसी भी अपराधी के पक्ष में नये तथ्य सामने रख कर कहता कि इन पर विचार ही नहीं किया गया है, तो उसी समय उसे यह निर्णय मिल जाता, "अच्छा! मैं नहीं समझता हूँ कि उसे गोली मारने से कोई लाभ होगा।" कहा जाता है कि बरमोण्ट में एक किसान का लड़का विलियम स्काट प्रायद्वीपीय युद्ध में लम्बी पैदल यात्रा के बाद अपने एक बीमार साथी को राहत देने के लिए स्वैच्छा से उसके स्थान पर दुहरा पहरा देने को तैयार हो गया। वह अपने पहरे पर ही सो गया, और सोते हुए पकड़ लिया गया। उसे मौत की सजा दी गयी। उसी समय राष्ट्रपति फौज में आया हुआ था और उसके बारे में भी सुना। राष्ट्रपति उसके पास गया, उसके घर के बारे में बातें की, उसकी माँ का चित्र देखा, इत्यादि। तब उसने लड़के के कन्धों पर अपने हाथ रखे और काँपती आवाज में कहा, "मेरे बच्चे! तुमको गोली नहीं मारी जायेगी। तुम्हारी यह बात कि तुम जगे नहीं रह सकते थे, मैं विश्वास कर लेता हूँ। मैं तुम पर भरोसा करके तुमको वापिस सैनिकों में भेज रहा हूँ। परन्तु तुम्हारे कारण मुझे काफी तकलीफ हुई है। अब तुम मुझे यह बताओ कि तुम मेरा यह कर्ज कैसे चुकाओगे?" स्काट ने बाद में बताया कि जब उसकी मृत्यु जो सामने ही थी अचानक जीवन में बदल गयी तो उसके लिए सोचना कितना कठिन हो गया। "परन्तु लिंकन को धन्यवाद है कि मैंने अपने पर कुछ काबू करके हिसाब लगाया कि मेरा वेतन और हमारे खेत को माँ-बाप गिरवी रख कर जो ला सकें और कुछ मेरे दोस्तों की मदद से मैं खर्च दे सकूँगा यदि वह पाँच-सौ, छ-सौ डालर के अन्दर हो।" "परन्तु—मेरी मांग इससे बहुत अधिक है और बहुत भारी है।" राष्ट्रपति ने कहा—"तुम्हारे मित्र इसे नहीं दे सकते। न तुम्हारे पारितोषिक से यह पूरा होगा और न खेतों से ही। तुम्हारे सारे मित्र मिलकर भी यह नहीं दे सकते हैं। संसार में एक ही

आदमी इसे दे सकता है। उसका नाम है विलियम स्काट। अगर आज के दिन से ही विलियम स्काट अपने कर्तव्य पर डट कर काम करता रहे ताकि वह जब मरने का समय आये तो मेरे चेहरे की ओर उसी प्रकार देख सके जैसा आज देख रहा है और यह कह सके कि मैंने *अपना वायदा पूरा कर दिया।* तब मेरा कर्ज चुक जायेगा। क्या तुम यह वायदा करोगे और क्या उसे पूरा करने की कोशिश करोगे?" इस घटना को बहुत दिन नहीं हुए कि वह युद्ध में बुरी तरह घायल हो गया और बाद में मर गया। परन्तु मरने के पहले उसने राष्ट्रपति को यह सन्देश भिजवा दिया कि मैंने अच्छा सिपाही बनने की कोशिश की है और जिन्दा रहता तो आपके ऋण को पूरी तरह उतार देता। मैं आपके दयाद्र चेहरे की ओर देखता हुआ ही मर रहा हूँ और आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे एक सैनिक की तरह युद्ध में उत्सर्ग होने का अवसर दिया।" यदि यह कहानी सच नहीं भी हो जैसा कि उसकी सत्यता में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है तो सचमुच में ऐसा आदमी विलक्षण ही था जिसके बारे में लोग ऐसी बातें गढ़ते हैं।

जब लिंकन का स्वास्थ्य प्रत्यक्ष ही गिरता हुआ दिखाई देने लगा तो मित्रगण उससे अक्सर अनुरोध करते थे कि वह लगातार मिलने वालों में से अनावश्यकों से न मिले और जब थक जाय तब मिलना बन्द कर दें। उसने यह बात कभी नहीं मानी। वह कहता था कि उन गरीबों के स्थान पर यदि मैं होता तो मुझे यह कैसा लगता। यह मैं कभी नहीं भूल सकता। इनकी मांग ही क्या है और इनको मिल ही क्या जाता है। परन्तु वह यह मान लेता था कि इससे उसके स्वास्थ्य व मस्तिष्क पर बहुत भार पड़ता है। लोग उसकी हँसी उड़ाते या उसे बुलाकर कहते भी तो वह इसकी चिन्ता नहीं करता था। जब किसी ने ऐसे ही उपहास पर सहानुभूति प्रगट की तो उसने कहा, "आप बेचैन न हों। मैंने बहुतेरे उपहास बिना किसी द्वेष के सहे हैं और बहुत-सी हमदर्दी भी मुझे मिली है जो उपहास से शून्य नहीं थी। मुझे तो यह सहने की आदत है।" परन्तु यह विलक्षण स्वभाव जो इन शब्दों से प्रकट होता है, जिसका उसके नजदीकी लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता ही होगा, साधारणतः लोगों की समझ में नहीं आता था। इन सब बातों को यदि हम उसकी अधिक व्यापक चिन्ताओं के साथ जोड़ दें—जो कि युद्ध की अंतिम अवस्था प्रारम्भ होने से पहले इतनी तीव्र थी—तो यह माना जा सकता है लिंकन पर उस सीमा तक जोर पड़ गया होगा जिसमें मनुष्य अपनी निर्णयशक्ति और चेतना

खोने से जरा ही बच सके। ऐसी स्थिति में तो साहस या सामान्य मानवीय भावनाओं को भी खो बैठने की सम्भावना रहती है। ऐसा कोई सबूत नहीं है कि उसकी स्थिति कभी ऐसी हुई होगी। उसके उल्लेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि अन्त तक उसका मस्तिष्क और चरित्र दृढ़ता के साथ गतिशील व विकसित होते रहे। हम देख ही चुके हैं कि इससे पहले उसके जीवन की स्वाभाविक उदासीनता सभी पर्यवेक्षकों पर गहरा प्रभाव डालती थी। इल्लीनायस शराबघर के उसके एक साथी ने पुराने दिनों के बारे में बताया कि कभी-कभी जब सवेरे ही वह वहाँ आ पहुँचता तो लिंकन को अकेला आग तापते हुए पाता था। जहाँ वह रात भर दुखपूर्ण सोच-विचार में पड़ा रहता। इसके अतिरिक्त आश्चर्य की बात यह थी रात को ही बिना शराब छुए भी वह खिलखिलाकर विनोद प्रसंगों में हँसता रहता था और ऐसी चिन्ता का कोई कारण नहीं रह गया था। लिंकन की सबसे अधिक कठिनाई का समय उसके जीवन का कष्टपूर्ण समय नहीं रहा होगा। वह संसार की कठोर से कठोर परिस्थिति से भी लड़ने का आदी हो चुका था। यह बात उसके लिए निराशा लाने वाली नहीं थी बल्कि उसको शक्ति देने वाली थी। उसके अपने मस्तिष्क में अनुभवों के विशाल कोष थे जो उसे प्रेरणा व सूझ प्रदान करते रहते थे। अपने बहुत ही निकट के मित्रों में वह अपनी कविता का कोष खोल देता था, विशेषतः दुखान्त कविताओं का। उदाहरण के लिए वह रिचार्ड द्वितीय के भाषणों को दुहराया करता था।

"भगवान के लिए चलो जमीन पर बैठें!
और राजाओं की मृत्यु की दुखभरी कहानियाँ कहें।"

सामान्य जान-पहिचानवाले व्यक्ति उसके व्यक्त विचारों में एक दूसरी ही झलक देख रहे थे, उसका एक मात्र संगी 'विनोदप्रियता', हँसी मजाक का खेल जिसमें उसको आनन्द मिलता था, आखिर तक उसको सहारा देता रहा। चाहे व्यवहार की बात हो अथवा गँवारूपन की, कोई इसके कारण बुरा नहीं मानता था। विलक्षणता ही प्यारी होती है। नकल करने में वास्तविक जीवन का मजा हल्का पड़ जाता है। लेकिन लिंकन की तो, निस्सन्देह, प्रकृति ही वास्तविक दिल्लगी की थी। गम्भीर, सारगर्भित और मौलिक विनोद अमरीकी मनोरंजकों की बढ़िया से बढ़िया पुस्तक से भी अधिक व्यापक, मनुष्यत्व के गुणों से पूरित, शेक्सपीयर के सुखान्त नाटकों की तरह लिंकन की यह विनोदप्रियता स्पष्टतः ही अधिक गंभीर, अधिक महान विचारों तथा भावनाओं की धारा से मिलती-जुलती थी

जिसने उसके महानतम भाषणों को प्रोत्साहन दिया। शारीरिक तौर पर अभी उसका स्वास्थ्य इतना नहीं बिगड़ गया था कि सुधर न सके। परन्तु प्रत्यक्षतः शरीर इतना गिर गया था कि वह कभी भी काम करना बन्द कर सकता था। उसके चेहरे की गहरी झुर्रियाँ और भी गहरी हो गयी थीं। उसकी पतली टांगें सदा के लिए ठण्डी रहने लगी थीं।

उत्तर से निराशा के बादल अचानक ही उड़ गये। उत्तर ने एक ऐसे देश की सी सजा भुगती जिस पर प्रारम्भ में तो युद्ध का पूरा भार नहीं पड़ता है और जब विजय की सहज आशा कई बार टकरा चुकी हो तो युद्ध की गम्भीरता उसे महसूस होती है। यह आवश्यक ही है कि उत्तर में फैली हुई निराशा का जिक्र किया जाय। परन्तु उत्तर ने जिस विजय के लिए बीड़ा उठाया था उसकी सैनिक कठिनाइयाँ बहुत ही अधिक थीं, और ऐसे कठिन कार्य में डटे रहने और निरन्तर जूझने में मनुष्य-स्वभाव को देखते हुए अपरिमित धैर्य की आवश्यकता थी। परन्तु जिन दिनों परिस्थिति सम्हली तो यह स्थिति भी अनुकूल हो गयी। दो सितम्बर को शरमन ने तार दिया 'अटलाण्टा हमारा है, और करीब-करीब विजय कर लिया गया है।' इससे पहले की सफलताएं सैनिक चाल की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण भले ही रही हों, परन्तु एक सामान्य व्यक्ति भी मान-चित्र देखकर उसका महत्व समझ सकता था कि उत्तर ने जार्जिया के बीच में एक बड़े शहर पर अधिकार कर लिया है। इसके बाद तो एक साथ फारागाट की विजय, शेरिडन की शेनानडोआ घाटी का अभियान, ऐसे थे जिसने सारे युद्ध को जाज्वल्यमान रूप से चित्रित कर दिया था और जिन्होंने हमेशा के लिए उत्तर से दक्षिणी भय के भूत को भगा दिया। जिस युद्ध को लोगों ने सभा में मतों द्वारा 'असफल' करार दे दिया था प्रत्यक्ष है कि वह असफल नहीं हुआ था। उसी समय प्रतिष्ठित व चरित्रवान् लोगों ने लिंकन के पक्ष में अपने भाषणों व वक्तव्यों द्वारा जोरदार आन्दोलन किया। जर्मन क्रान्तिकारी सुधारवादी जनरल शूर्ज को, जो बिस्मार्क के समय तक जिन्दा रहा और जिसने कौतुकप्रिय बिस्मार्क से एक बैठक में कहा था, "मैं अब भी आपकी शासनपद्धति की तुलना में प्रजातंत्र को अधिक अच्छा समझता हूँ", गृहयुद्ध में अपने सेनानायक का पद भी खोना पड़ा, क्योंकि लिंकन ने कह दिया कि वह पद अब उसे वापस नहीं मिल सकता। वह भी लिंकन के पक्ष में था। चेस भी इस आँधी में बह गया और महिनों तक छलपूर्ण आडम्बर के बाद लिंकन के समर्थन में जुट गया। नवम्बर के चुनाव में लिंकन भारी बहुमत

से चुन लिया गया। नियमित चुनाव-क्षेत्र में उसको दो-सौ तैंतीस में से दो-सौ बारह मत प्राप्त हुए। उत्तर के तीन राज्य ही जिनमें इल्लीनायस भी एक था उसके विरुद्ध रहे। विजय के पश्चात् वहाँ जो भीड़ बधाई देने पहुँचती उन्हें वह संक्षिप्त भाषण देता था। इनमें से बहुतेरे ऐसे हैं जिन्हें हम बहुत नियमित भाषण नहीं कह सकते हैं। वह स्वयं भी यही कहता था। अब वह इतना वृद्ध हो गया था कि औपचारिक तरीकों पर अधिक ध्यान नहीं दे सकता था। बहुत दिनों से इसी बात को लेकर वर्तमान विद्रोह ने सरकार को बड़ी कठिन कसौटी पर कस दिया, और राष्ट्रपति का निर्वाचन संविधान के कारण विद्रोह के दिनों में भी होने पर कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। परन्तु बिना निर्वाचन के स्वतंत्र सरकार नहीं बन सकती थी। यदि विद्रोह उन्हें राष्ट्रीय चुनावों को छोड़ बैठने या स्थगित करने के लिए मजबूर कर देता तो यह दावा सही होता कि उसने तानाशाही स्थापित कर देश का सत्यानाश कर दिया होता। परन्तु चुनाव के साथ में लगे अवांच्छित झगड़ों के होते हुए भी, जनता ने अच्छा निर्णय दिया। इससे यह दिखा दिया गया कि भारी गृहयुद्ध की अवस्था में भी जनता की सरकार चुनावों में खड़ी रह सकती है। उस समय तक संसार को यह नहीं मालूम था कि ऐसा भी सम्भव हो सकता है। इन दिनों का उसका महत्वपूर्ण भाषण यह था—"परन्तु विद्रोह जारी है, और चुनाव समाप्त हो चुका है, तब क्यां सबका यह संयुक्त कर्तव्य नहीं है कि वे फिर से हाथ मिला लें और अपने देश की रक्षा के लिए मिलकर जोर लगायें। अपनी ओर से मैंने यह कोशिश की है और करता रहूँगा कि एकता के मार्ग में कोई अड़ंगा न आने पाये। जब से मैं यहाँ हूँ मैंने किसी के लिए जानबूझ कर काँटे नहीं बोये हैं। एक ओर दुबारा चुने जाने का जो आदर मुझे मिला उसको मैं अनुभव करता हूँ और सर्वशक्तिमान भगवान का हृदय से कृतज्ञ हूँ कि उसने मेरे देशवासियों को सही परिणाम पर पहुँचाया। मेरे ख्याल में इसमें उनकी भलाई ही है। दूसरी ओर इस बात से मुझे अधिक आनन्द नहीं मिलेगा कि इस परिणाम से किसी को दुख हो। क्या मैं उनसे, जिनका मेरे साथ मतभेद नहीं रहा, यह कह सकता हूँ कि वे इसी भावना से उनसे हाथ मिला लें जिनका मेरे से मतभेद रहा हो और अब इसे समाप्त करते समय आइये हम अपने बहादुर सिपाहियों और नौसैनिकों तथा उनके शूरवीर और गौरवशाली सेनानायकों को धन्यवाद दें।"

मंत्रीमंडल में उसने वह कागज निकाला जिसको उसने अगस्त के अंधकार-

पूर्ण दिनों में तह करके रख दिया था। उसने अपने मंत्रियों को याद दिलाया कि उन्होंने उस पर बिना पढ़े ही हस्ताक्षर किये थे, और उसे पढ़कर सुनाया, उसमें लिखा था—"पिछले कई दिनों से और आज भी यह बहुत ही संभाव्य लग रहा है कि यह मंत्रीमंडल फिर से नहीं चुना जायेगा। तब मेरा कर्तव्य होगा कि चुने हुए राष्ट्रपति के साथ इस प्रकार सहयोग करूँ कि चुनाव और पदग्रहण के बीच के समय में गणराज्य अक्षुण्ण हो जाय, क्योंकि वह ऐसे आधारों पर चुना जायेगा कि वह गणराज्य की रक्षा नहीं कर सकेगा।" लिंकन ने समझाया यदि मेक्लीन जीत जाता तो वह क्या करता। लिंकन ने कहा, "मैं उसके पास जाता और कहता, जनरल! इस चुनाव से स्पष्ट हो गया है कि आप मुझसे अधिक शक्तिशाली हैं और देशवासियों पर मेरे बजाय आपका प्रभाव अधिक है।" फिर मैं उसे गणराज्य की रक्षा के लिए सहयोग का आमन्त्रण देता कि वह अपने प्रभाव का उपयोग करके अधिक स्वैच्छिक सैनिक भर्ती करने में मदद करे। सेवार्ड ने कहा कि जनरल कहता, "हाँ! हाँ!! और दूसरे दिन फिर आप याद दिलाते तो कहता, हाँ! हाँ! यही होता रहता और वह करता कुछ नहीं।"

निर्वाचन के बाद इमर्सन ने एक पत्र में लिखा, "इतिहास में शायद ही पहले कभी जनमत की वेदी पर इतना भयंकर दाव लगाया गया होगा। मेरा ख्याल है कभी नहीं।"

उत्तर के सभी जिलों और सभी वर्गों के अमरीकियों के लिए, जिन्होंने अपने दिल-दिमाग को दृढ़ करके राष्ट्र का जीवन बचाने के लिए अपना सर्वस्व दे डाला था और देते रहे थे, १८६४ का राजनीतिक संकट युद्ध का सबसे अधिक चिन्ताजनक समय रहा होगा। यहाँ यह दुहराना आवश्यक है कि उस समय यह अनुमान लगाना असम्भव था कि इस बात का कितना वास्तविक भय था कि इस संकट के कारण उनकी लोकप्रिय सरकार जनता की सच्ची और आधारभूत इच्छाओं को कहीं धोखा न दे बैठे क्योंकि किसी भी देश में, अमरीका में तो सबसे अधिक, औसतन राजनीतिज्ञ (जिनका मत सब से अधिक जोरों से सुनायी देता है) अनिश्चित और सामान्य प्रतिनिधि ही होते हैं। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि उत्तर एक बार तो थरथरा गया होगा। योग्य सैनिकों के सामने उत्तर की जिम्मेदारी जिस रूप में आ खड़ी हुई उसे समझने की कोशिश करने के बाद ही, कोई नागरिक यह समझ पाता कि बहुत मजबूत होते हुए भी अपनी शक्ति का प्रभाव डालने के लिए कितनी दृढ़ प्रतिज्ञा की आवश्यकता थी।

अध्याय बारह

अन्त

६ दिसम्बर १८६४ को लिंकन ने कांग्रेस को अपना अन्तिम वार्षिक सन्देश भेज दिया। गणराज्य के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए उचित उपायों के बारे में जो उग्रवादी विवाद तथा प्रतिक्रिया आदि हुई और जिनका प्रभाव राष्ट्रपति के निर्वाचन तथा पतझड़ के अन्य चुनावों पर पड़ा, उन्हें उसने पूर्णतया भूल जाने की अपील की। उसने कहा, "राजनीतिज्ञों ने अपने स्वाभाविक ज्ञान से यह प्रकट कर दिया है कि जनता में इस प्रश्न पर कोई मतभेद नहीं है कि गणराज्य रहे।" यह बात पूर्णतया सही थी, क्योंकि अनेक डेमोक्रेटों ने युद्ध का विरोध किया था; लेकिन किसी भी घोषणापत्र या भाषण में जनता से यह प्रतिज्ञा नहीं की थी कि शान्ति लाने के लिए वह गणराज्य की बलि दे देंगे। गणराज्य को सफल बनाने के साधनों का जिक्र करते हुए उसने लिखा—"उपलब्ध प्रमाणों पर ध्यान से विचार करने के बाद मुझे यह जँचता है कि विद्रोहियों के नेता से सन्धि की चर्चा का कोई लाभ नहीं हो सकता, वह गणराज्य को भंग करने से कम किसी बात पर राजी नहीं होगा। यह हम नहीं होने देंगे। ऐसी रियायत नहीं दी जा सकती। हमारे और उसके बीच का प्रश्न अब पूर्णतया स्पष्ट है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका हल युद्ध में निर्णायक विजय है। सरकार युद्ध को एक ही अनिवार्य शर्त पर रोक सकती है कि विद्रोही लोग राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध उठाये हथियारों को डाल दें।" गलतफ़हमी की सम्भावना को मिटाने के लिए उसने लिखा—"कोई भी व्यक्ति जो दासमुक्ति की घोषणा अथवा कांग्रेस के किसी भी कानून के अनुसार स्वतंत्र हो चुका है उसे कदापि मेरे इस पद पर रहते फिर से गुलाम नहीं बनाया जा सकेगा। यदि लोग किसी भी तरीके या साधन से प्रशासन के जिम्मे ऐसे लोगों को फिर से गुलाम बनाने का काम थोप देंगे, तो और कोई भले ही इस कार्य-भार को सम्हाले, मैं तो कदापि उसे स्वीकार नहीं करूंगा।" यह अन्तिम वाक्य केवल दिखावा मात्र नहीं था। कुछ समय तक दास-प्रथा

को जारी रखने वाला वैधानिक संशोधन पास नहीं हो सका और सम्भव था कि वह पूर्णतया असफल ही हो जाता। इसी बीच में न्यायालय यह निर्णय भी दे सकते थे कि दक्षिणी राज्यों का प्रत्येक नीग्रो 'दास' है। लिंकन के शब्दों से उनकी समझ में यह आ गया कि वे अपने निर्णय को कार्यान्वित करने में असफल रहते। परन्तु दक्षिण में अब दास-मुक्ति का प्रश्न ही नहीं रह गया था। जेफरसन डेविस ने स्वयं ही यह घोषणा कर दी थी कि दास-प्रथा समाप्त हो गयी है क्योंकि अधिकांश दास अपने को मुक्त कर चुके थे, और वह स्वयं इस प्रश्न की बिलकुल चिन्ता नहीं करता था। अब उत्तर और दक्षिण के बीच गणराज्य और पृथकता के अतिरिक्त और कोई प्रश्न नहीं रहा।

जिस दिन लिंकन ने अपना वार्षिक सन्देश भेजा, उसी दिन उसने सीनेट को भी एक सन्देश भेज कर अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त किया। वृद्ध न्यायाधीश रोजर टेने की, जिसने ड्रेडस्काटवाले मामले में विवादास्पद निर्णय दिया था, अक्टूबर में मृत्यु हो गई। उसके रिक्त पद पर राष्ट्रपति द्वारा औपचारिक रूप से जो नियुक्ति की गयी उसकी पुष्टि के लिए सीनेट से प्रार्थना की गयी। राष्ट्रपति ने चेस को नियुक्त किया था। चेस के प्रसिद्ध वकील होने के आधार पर उसे वह इसके योग्य भी लगा। परन्तु कई जानकार लोगों ने उसे कहा भी कि वह केवल दिखावटी रूप से जरूर लिंकन के पक्ष में भाषण देता रहा, परन्तु व्यक्तिगत रूप से सदा ही लिंकन के विरुद्ध रहा और उसके विरुद्ध कुप्रचार भी करता रहा तथा असंतोष पैदा करता रहा। अतः लिंकन को इस सार्थक उक्ति के प्रमाण मिलने पर भी उसने कहा कि 'मैं किसी व्यक्ति को पतित देखना नहीं चाहता।' कोई यह कल्पना भी नहीं करता था कि लिंकन उसे सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करेगा। सम्नर और मैसेचुसेट से कांग्रेस सदस्य ऐली वास्तव में लिंकन के पास चेस की इस नियुक्ति के लिए अनुरोध करने गया था। ऐली कहता है कि हम को यह जानकर बड़ी निराशा हुई कि राष्ट्रपति ने चेस द्वारा की गयी अपनी और प्रशासन की कड़वी आलोचना पहले ही सुन रखी थी। लिंकन ने उसके कई दोषों पर भी उनका ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद में उन्हें मालूम हुआ कि उसने अपने प्रति की गयी शिकायतों का उत्तर जानने के लिए ही इनका ध्यान आकर्षित किया था। "हम दोनों को निराशा हुई, और हमने यह अच्छी तरह समझ लिया कि राष्ट्रपति चेस को नियुक्त नहीं करेगा। हमें ऐसा लगा कि मनुष्य का स्वभाव क्या इतना कमजोर है कि उससे इतनी सी भी आशा नहीं की जा सकती।" एक दिन सवेरे ऐली

ने फिर राष्ट्रपति से मुलाकात की, लिंकन ने कहा, "मैं तुम्हें एक बात बता दूँ, तुम खुश हो जाओगे। मैंने अभी चेस के पास समाचार भेजा है कि तुम मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किये जा रहे हो। तुम्हीं को यह बात पहले पहल बतायी है।" ऐली ने लिंकन की विशाल सहृदयता के बारे में कुछ कहा। परन्तु उत्तर में लिंकन ने जो वास्तविक कठिनाई थी वह बताई। रिपब्लिकी दल और देश के प्रति अपने कर्तव्य की दृष्टि से लिंकन हमेशा ही चेस को नियुक्त करना चाहता था। केवल एक ही सन्देह था जो उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था। यह सन्देह केवल इतना ही था कि राष्ट्रपति बनने की लालसा असफल रहने पर भी क्या वह कभी हृदय से ऐसा महान मुख्य न्यायाधीश बनने का प्रयत्न करेगा जैसा कि लिंकन की दृष्टि में वह चाहे तो बन सकता था। लिंकन की व्यावहारिक असफलता में कभी-कभी महानता का भी पहलू रहता था। अब वह चेस को भी पत्र लिखने की सोच रहा था कि उसे यह बात स्पष्ट तौर पर गम्भीरता से बतायी जाय कि उसकी दुविधा कहाँ है। परन्तु उसे यह बात बड़ी कठिनाई से समझ में आयी कि उसके द्वारा सहृदयता और भाईचारे के कारण लिखे गये स्पष्ट पत्र का वह सन्देहशील तथा ईर्ष्यालु व्यक्ति कोई दूसरा ही अर्थ न लगा बैठे। चार्ल्स सम्नर, जो इस अवसर पर चेस का पक्ष ले रहा था, इस समय में उग्रवादियों में सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति था। ये उग्रवादी दक्षिण में निर्बाध नीग्रो मताधिकार और सामान्यतः कड़ी और अपरिवर्तनीय 'पुनर्निर्माण' की योजना पर जोर दे रहे थे। यह योजना वे विजयी राष्ट्र के रूप में दक्षिण की भावनाओं की परवाह न करते हुए इस कार्य में उनके सहयोग की अपेक्षा नहीं रख कर भी सारे दक्षिण पर थोपना चाहते थे। यह स्वाभाविक ही है कि सम्नर लिंकन की योजना से जो स्पष्ट उदार व अधिक व्यावहारिक थी, उसका विरोधी बन गया। उसके बारे में यह तो कई बार कहा जा चुका है कि वह गंभीर व्यक्ति था। परिहास की एक झलक भी उसमें नहीं थी। यहाँ तक कहा जा सकता है कि वह लिंकन के लिए एक सहानुभूतिरहित साथी था। परन्तु वह पूर्ण रूप से निःस्वार्थी और निष्कपट भी था।

वाशिंगटन् में वही एक ऐसा व्यक्ति था जिसके साथ लिंकन को सामाजिक व्यवहार बनाये रखने और राजनीतिक चर्चा करने में सुख प्राप्त होता था। लिंकन उसे सदा ही प्रसन्न बनाये रखने की चेष्टा करता रहता था। जब कभी वह उसके कमरे में प्रवेश करता तो लिंकन यदि पहले से अस्तव्यस्त ढंग से

सुविधापूर्वक आराम के ढंग से बैठा हुआ भी होता तो तत्काल औपचारिक ढंग से बैठ जाता और उसके प्रति अदब से पेश आता।

३१ जनवरी १८६५ को प्रतिनिधि सभा ने सीनेट द्वारा पहले पास किया हुआ दास-प्रथा रोकने के लिए वैधानिक संशोधन का प्रस्ताव स्वीकार कर दिया। लिंकन इसके लिए बहुत उत्सुक था। इसलिए कि इसके पक्ष में आवश्यक तीन चौथाई राज्यों का मतदान अब प्रारम्भ हो सकता था।

कुछ ही समय पूर्व दक्षिणी कांग्रेस ने १३ मार्च १८६५ को अपनी अन्तिम सबसे अधिक चिन्तामय और विक्षिप्त बैठक नीग्रो स्वयंसेवक भर्ती करने के लिए कानून पास करके समाप्त कर दी। इस भर्ती में सम्मिलित सभी नीग्रो स्वतंत्र मान लिये जायेंगे। यह भी उसी कानून में धारा बना दी गयी थी, परन्तु अब तक बहुत विलम्ब हो चुका था, अतएव सैनिक लाभ के दृष्टिकोण से यह बेकार था। परन्तु दासता का प्रत्यक्ष अन्त जो युद्ध ने कर दिया, उसकी इससे अच्छी मान्यता और क्या होती कि दक्षिणी विधायकों ने शेष बचे दासों को सैनिक बनाने की सम्मति देकर रही-सही कमी भी पूरी कर दी।

१८६४ में सैनिक गतिविधि थोड़ी-सी ही गतिशील हुई थी। रिचमण्ड में दक्षिण के नेताओं की समझ में यह आ गया कि भविष्य कितना संकटमय है। उस राजधानी का पतन, चाहे जल्दी हो या देर से, निश्चित था, ली की फौज यदि रिचमण्ड से निकल जाती तो युद्ध को कम या अधिक समय के लिए बढ़ा सकती थी, परन्तु शरमन का समुद्र-तट तक का धावा और उत्तर की ऐसी ही सफलताएं जो अब प्रारम्भ हो चुकी थी, उनसे दक्षिण को यह अनुभव होने लगा कि दक्षिण का एक भी बन्दरगाह, एक भी बारूद घर, एक भी रेल मार्ग, एक भी अन्नक्षेत्र उत्तर की मार से बचा नहीं रह सकता। शरमन भी जानता था कि उसे ऐसा ही अनुभव कराना जरूरी है। रिचमण्ड के कांग्रेसी सदस्य और सरकारी अफसर यह जानते थे कि दक्षिण के लोग अब शान्ति चाहते हैं और दक्षिण सरकार का बोलबाला समाप्त होने वाला है। उन्होंने जेफरसन डेविस से कई बार मांग की कि उसे सन्धि की बात आरम्भ करनी चाहिए, परंतु किसी ने भी यह नहीं निश्चित किया था कि शान्ति के लिए उन्हें क्या मूल्य देना पड़ेगा और उनमें ऐसी दृढ़ शक्ति नहीं थी कि वे अपने राष्ट्रपति को रोक सकते। एक बार तो वास्तव में जेफरसन डेविस ने उनकी एक बात मान ली। ९ फरवरी १८६५ को उसने ली को सारी दक्षिणी फौजों का प्रधान सेनापति बनाना स्वीकार कर लिया। ली को अधिक व्यापक अधिकार देर से

देने पर भी उसका सैनिक लाभ ही हुआ, परन्तु इससे राजनीतिक लाभ कुछ नहीं हो सका। यदि ली चाहता तो दक्षिण का सैनिक तानाशाह बन बैठता। उस समय इसके लिए कोई भी उसे दोष नहीं देता। परन्तु उसके दिमाग में कभी भी सैनिक कर्तव्यों के अतिरिक्त और कोई लालसा नहीं रही। दक्षिण के निरर्थक उद्देश्यों के लिए जिन लोगों ने प्रयत्न किये उनमें सबसे अधिक प्रिय और स्मरणीय व्यक्तित्व ली का था। उसने प्रारम्भ में पृथकता के लिए कुछ नहीं किया था और न बाद में ही। इस दिशा में उसने अपने राजनीतिक नेता की इच्छाओं को पूरी करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। लिंकन ने जेफरसन डेविस और उसकी नीति के बारे में सदा ही सही अर्थ लगाया। एक बार दक्षिण की पृथकता के उद्देश्य में दीक्षित होकर और संघ राज्य के प्रमुख पदाधिकारी पद की सौगन्ध खाकर जब तक एक भी आदमी आज्ञा मानने के लिए था वह तब तक उस उद्देश्य को नहीं छोड़ सकता था। भले ही यह कहा जा सकता है कि उसके द्वारा संकट काल में भी यह रुख अपनाये रखना मिथ्या अभिमान अथवा उसकी वास्तविक दृढ़ता रही हो। उसने अभी तक यह सत्य आंकने का प्रयत्न ही नहीं किया कि स्थिति भारी संकट की है और जनता का साहस आखिरकार कितना सहम उठा है। सम्भवतया लिंकन की भाँति वह भी यह बतलाना चाहता था कि शान्ति की जल्दी करनेवाले यह गौर करें कि शांति का क्या मूल्य चुकाना पड़ता है और यह भी सम्भव हो सकता है कि अपनी भयानक दुरावस्था में उसने उत्तर के रुख के सम्बन्ध में कुछ अस्पष्ट और बेकार आशाओं के भ्रम में अपने को डाल रखा हो। इसके विरुद्ध लिंकन ऐसी किसी कार्यवाही में भाग नहीं लेता जिसमें दक्षिण के पृथक होने को विद्रोह न समझा जाता और उपद्रव को समाप्त करने का निश्चय न किया जाता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वह दक्षिण के प्रभावशाली लोगों की किसी भी अनौपचारिक मंत्रणा को भी न सुने जिससे उनको अपनी स्थिति का ज्ञान हो।

लिंकन के पोस्टमास्टर जनरल का पिता वृद्ध फ्रांसिस ब्लेयर शांति दूतों में अंतिम था जिसको उसने जेफरसन डेविस से मिलकर वहाँ की स्थिति अपनी आँखों देखने का मौका दिया। यह जनवरी सन् १८६५ में रिचमण्ड गया था। उसके मध्यस्थ होने के इरादे और इस सम्बन्ध में लिंकन और डेविस की अजीब स्थिति का एक विलक्षण परिणाम निकला। दक्षिण का उपराष्ट्रपति स्टीफन पतझड़ के दिनों में डेविस से बिना किसी तरह के तनाव के शान्ति का प्रचार

कर रहा था तथा दो अन्य दक्षिणी नेता ग्राण्ट के दफ्तर में आये और झूटमूठ ही यह प्रतिनिधित्व किया कि उन्हें डेविस ने भेजा है और लिंकन उनसे बात करने के लिए तैयार है। जो दस्तावेज उनके पास थे उनसे प्रकट था कि डेविस ने उन्हें लिंकन से दक्षिण के स्वतंत्र रहने के आधार पर बातचीत करने भेजा था और लिंकन का सभ्यतापूर्ण उत्तर था कि विद्रोही सेनाओं के हथियार डालने के सम्बन्ध में निजी तौर पर किसी भी व्यक्ति से बातचीत करने को वह तैयार है। ग्राण्ट पर उनकी शान्ति की सच्ची इच्छा का गहरा प्रभाव पड़ा। उसने लिंकन से प्रार्थना की कि वह उनसे मिले। लिंकन ने इसी कारण उनसे बात करने को राजी हो गया। उसने ग्राण्ट को कड़ा आदेश भेजा कि वह अपने कार्य में तनिक भी ढिलाई न करे। वह स्वयं सेवार्ड के साथ उनसे मिलने आया और तीन फरवरी को डेविस के इन तीन दूतों से हैम्पटन यार्ड पर एक जहाज में मिला। लिंकन और स्टीफन पिछले दिनों में साथ-साथ ही विगदली कांग्रेसी रहे थे, और एक बार स्टीफन के भाषण के प्रभाव से लिंकन की आँखों से आँसू तक बहने लगे थे। दोनों पुराने मित्रों की तरह मिले। लिंकन ने अपनी स्थिति स्पष्ट करने में देर नहीं लगायी। दुखी दूतों ने उसको निश्चित इरादे से इधर-उधर बहकाना चाहा, वे और सम्भवतः डेविस भी यह आशा करते थे कि आमने-सामने के वार्तालाप में लिंकन अपना विचार बदल देगा। सम्भव है, ब्लेयर की बातचीत से उनके मन में भी यही आशा जमी थी। परन्तु उनको सफलता नहीं मिली। दोनों ओर से बातचीत खुलकर दोस्ताना ढंग से होती रही। लिंकन ने अपना व्यक्तिगत अभिमत स्पष्ट कर दिया कि जब दक्षिण हथियार डालेगा तो उसके साथ कैसा व्यवहार किया जायेगा। उसने यह सतर्कता बरती कि उन्हें स्पष्ट जता दिया कि वह कोई वायदा या सौदा नहीं कर सकता। केवल यही कह सकता है कि विद्रोह की सजा देने में जिनका सम्बन्ध प्रशासन से है और जो अकेले उसके हाथ में है, निर्दयता नहीं की जायेगी। दास-प्रथा पर चर्चा हुई। सेवार्ड ने उन्हें वैधानिक संशोधन की बात बतायी कि कांग्रेस ने अब यह मामला जनता के सामने रखा है। एक दूत ने फिर हथियारबन्द विद्रोहियों से बात करने की लिंकन की अस्वीकृति का जिक्र किया और उस सम्बन्ध में चार्ल्स प्रथम की याद दिलायी। लिंकन ने कहा कि मुझे इतिहास ठीक याद नहीं है। ऐसे सब मामलों पर आपको सेवार्ड जवाब देंगे। चार्ल्स प्रथम के बारे में मुझे इतना ही याद है कि अन्त में उसे अपना सिर देना पड़ा था। तब वह स्टीफन को सरल शब्दों में समझाने लगा कि वह उसका काम

नहीं कर सकता। बाद में उसने कांग्रेस को बताया कि बातचीत व्यर्थ रही। इस भेंट से वह निजी गौरव की एक बात गांठ बांध लाया और उसको गौरव-पूर्ण मानता भी रहा। स्टीफन ने कहा था, "तुम हमें वह विद्रोही समझते हो जिनको देशद्रोह के अपराध में फाँसी दी जाती है।" लिंकन ने कहा, "बात तो यही है।" स्टीफन ने जवाब दिया, "अच्छा! हम जानते ही हैं कि तुम्हारा दृष्टिकोण यही होगा परन्तु तुमको सच कहते हैं कि तुम्हारे राष्ट्रपति रहते हुए हमें फाँसी चढ़ने में कोई भय नहीं है।" इस प्रशंसा के अतिरिक्त वह एक ऐसी भावना मन में बना लाया कि यदि वह मित्रों से अपनी बात मनवा सकता तो अच्छा रहता और उत्तर के लिए श्रेयस्कर भी होता। इससे यह पता चलता है कि दक्षिण के लोग कितने निराश हो चुके थे और उसने इस बात पर भी विचार किया कि मैत्रीपूर्ण घोषणा से वे जल्दी हथियार भी डाल देंगे। जिस कष्ट में दक्षिण इस समय डूबा हुआ था उससे उसे बहुत दुख हुआ। उसको यह दृढ़ विश्वास था कि दास-प्रथा केवल दक्षिण का पाप नहीं है। सारे देश का पाप है। इसलिए बैठक से लौट-कर वह दिन-भर प्रस्ताव तैयार करने में जुटा रहा। उसे आशा थी कि सम्भवतः काँग्रेस के दोनों सदन उसे स्वीकार कर लेंगे। एक घोषणापत्र भी तैयार किया गया जिसे कि वह उस हालत में प्रकाशित भी करता जब वह प्रस्ताव पारित हो जाता। उसने यह प्रस्ताव रखा कि दक्षिण के राज्यों को चालीस करोड़ डालर के संयुक्त राज्य के ऋणपत्रक दे दिये जायँ। यह उत्तर के लिए दो-सौ दिन के युद्ध का खर्च पड़ता था। यह रुपया राज्यों को दासों के रूप में जायदाद की हानि के अनुपात में बाँट दिया जाय। यदि युद्ध १ अप्रैल तक समाप्त हो जाय तो आधा अभी दे दिया जाय और बाकी वैधानिक संशोधन के पास हो जाने पर दिया जाय। बहुत ही अच्छा होता, यदि शान्ति स्थापना का काम ऐसे व्यक्ति पर छोड़ा जाता जो व्यावहारिक राजनीति से पीछे भी हटता तो इतनी ही सदाशयता से काम भी लेता। फिर भी उस गृहयुद्ध में जिसमें बदले की भावना तो लगभग थी ही नहीं, स्वाभाविक उत्साह और भावनाओं को दबाना कठिन था। यदि हम युद्धरत काँग्रेस से ऐसे प्रस्ताव के पास हो जाने की आशा करते तो हमारी आशा अन्य उन्नत राष्ट्रों के स्तर से भी अधिक प्राप्त करने की होती है। लिंकन का भ्रम अगले दिन ही दूर हो गया जब उसने यह प्रस्ताव मंत्री-मंडल के सामने पढ़ा तो उसके अपने ही मंत्रियों में से एक ने भी इस पर सहमति प्रकट नहीं की। इस प्रस्ताव को असफल होने के लिए

तब प्रस्तुत करना निरर्थक व प्रतिष्ठाहीन काम होता। उसने खेदपूर्वक कहा कि तुम सब मेरा विरोध करते हो, और उस प्रस्ताव को अलग रख दिया। परन्तु युद्ध अब तक बहुत आगे बढ़ गया था। हम फिर उसी घटना से सिलसिला आरम्भ करेंगे जहाँ उसे बीच में छोड़ा था। उस समय १८६४ के वर्ष का अंत हो रहा था।

सर्दी के कारण सेनाओं की गतिविधि थोड़े समय के लिए बन्द हो गयी थी। शरमन सवाना में उत्तर को प्रस्थान करने की तैयारी कर रहा था। यह अभियान अटलाण्टा अभियान से भी अधिक कठिन था क्योंकि इस मार्ग में नदियाँ और दलदल था। उसके शत्रुओं ने कोशिश की कि उसके उत्तर पश्चिम में आगस्टा पर सारी ताकत एकत्र करके लगा दी जाय। उसने एक ओर तो आगस्टा पर दिखावटी आक्रमण किया और दूसरी ओर चार्ल्स्टन शहर और बन्दरगाह पर भी ऐसा आक्रमण किया। यह क्रम उसने जारी रखा परन्तु दूसरी ओर सधी हुई विशाल सेना लेकर उसने तेज गति से दलदलों को पार कर लिया और १७ फरवरी १८६५ को दक्षिण कारोलिना की राजधानी कोलम्बिया जा पहुँचा। इस प्रस्थान में उसने अपने सैनिक ज्ञान का विलक्षण परिचय दिया। दक्षिण का आगस्टा पर जो शक्ति केन्द्रित करने का इरादा था इस घटना के कारण मिट्टी में मिल गया। पीछे हटते हुए दक्षिणी सेना ने रुई के बड़े गोदामों में आग लगा दी और यह अभागा शहर आग की लपटों में झुलसता रहा। इस सर्वनाश का दोष दक्षिण ने स्वाभाविक रूप से शरमन के सर पर मढ़ा परन्तु यह अन्यायपूर्ण व अनुचित बात थी। दक्षिणी सेना को शहर खाली करना पड़ा और १८ फरवरी १८६५ को उसने दक्षिण के भ्रामक राजनीतिक आदर्शों संस्कृति और पौरुष के केन्द्र पर भी अधिकार कर लिया।

नौसेनापति पोर्टर, शरमन को सहयोग देने के लिए समुद्र में जहाजी बेड़े के साथ तैयार था। (फाराग़ट आयु और बीमारी के कारण अस्वस्थ था।) टेनेसी में टामस की सेना को ग्राण्ट ने सर्द बैरकों में जाने की आज्ञा नहीं दी। उसकी एक टुकड़ी शोफील्ड की अध्यक्षता में वाशिंगटन लायी गयी और वहाँ से उत्तर कारोलिना भेज दी गयी। बर्नसाइड के आक्रमण के बाद ही उत्तर का सभी बन्दरगाहों पर अधिकार हो गया था। दक्षिण के हाथ में अब केवल एक ही बन्दरगाह रह गया। रिचमण्ड को जो थोड़ी-बहुत सामग्री घेरे को भंग करने के बाद मिल पाती थी वह भी यहीं से पहुँचती थी और उसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती थी। बटलर ने ग्राण्ट की स्पष्ट अवज्ञा

करके विलिंग्टन पर पोर्टर के साथ सबसे बड़ी असफलता पायी। परन्तु पोर्टर और ग्राण्ट निराश नहीं हुए। वह शुरू से अन्त तक नौसेना के साथ मिल कर काम कर रहे थे। फरवरी को पोर्टर ने एक उत्साही जनरल टेरी के सहयोग से विलमिंग्टन बन्दरगाह के मुहाने पर फिशर किले पर शान से विजय प्राप्त की। यह बन्दरगाह भी दक्षिण के हाथ से जाता रहा। २२ फरवरी को शोफील्ड ने उपरोक्त शहर भी ले लिया और शरमन की सेना को आवश्यकता के समय निकटवर्ती एक समुद्री अड्डा भी प्राप्त हो गया।

इसी बीच में रिचमण्ड और पीटसबर्ग के पूर्व में ग्राण्ट की सैनिक खाइयाँ दक्षिण की ओर दिनोंदिन बढ़ती जा रही थीं और ली की सैनिक मोर्चेबन्दी चालीस मील के घेरे में सीमित हो गयी थी। ग्राण्ट की सेना ने विशाल किले के दक्षिण में मुख्य रेल मार्ग काट दिया और दक्षिण पश्चिम में सड़क के मार्ग को भी अवरुद्ध कर दिया। अब कहीं कोई सन्देह नहीं रहा कि रिचमण्ड को हथियार डालने पड़ेंगे। वास्तविक समस्या ग्राण्ट के लिए यह थी कि कहीं ली और उसकी सेना रिचमण्ड से निकल नहीं भागे और फिर युद्ध को आगे जारी रखे।

ली की मुख्य सेनापति के पद पर नियुक्ति युद्ध को और आगे बढ़ाने के लिए नहीं की गयी थी। जोसफ जान्सटन, जिसके पीछे हटने की योग्यता का शरमन भी आदर करता और उससे भय खाता था, पिछली जुलाई में डेविस द्वारा हटा दिया गया था। अब उसे उन सेनाओं का नायक बना दिया गया जो शरमन के विरुद्ध केन्द्रित की गयी थी। उन्हें आशा थी कि वह इन्हें उत्तर में बढ़ कर रिचमण्ड के निकट ग्राण्ट से मिलने से रोक लेगा। इस समय कुल मिलाकर दक्षिण की सेना में निन्यानवे हजार सैनिक थे जो कारोलिना, जार्जिया और फ्लोरिडा में फैले हुए थे। इतनी ही सेना शरमन के पास थी, शोफील्ड उससे उत्तर कारोलिना में मिल ही चुका था। जानस्टन शरमन के विरुद्ध लड़ने के लिए केवल तैंतीस हजार सैनिक ही इकट्ठे कर पाया। यह अब शरमन का काम था कि वह इतनी जल्दी बढ़े कि उसके विरुद्ध जान्स्टन बड़ी भारी सेना नहीं जुटा पाये। जान्स्टन की सेना का यह काम था कि वह शरमन को शोफिल्ड से नहीं मिलने दे। इनके मिलने से कुछ ही समय पूर्व उत्तर कारोलिना के बीच में वेण्टनविले के युद्ध में वह शरमन की सेना को करारी चोट पहुँचाने में असफल रहा और उसे बाध्य होकर पीछे हटना पड़ा और खाइयों में मोर्चाबन्दी करके सेना को तैयार रखना पड़ा। शरमन उस पर वहाँ

हमला नहीं करना चाहता था। शीघ्र ही शोफील्ड के वहाँ आ जाने पर उसे वह जगह भी छोड़नी पड़ी। २३ मार्च १८६५ को शरमन ने एक रेल केन्द्र पर अधिकार कर लिया। सवाना से गोल्डबरी तक वह अपनी फौज को पचास दिनों में दौड़ाता हुआ ले आया, जिसमें उसके सैनिकों को ऊबड़खाबड़ पहाड़ी प्रदेश और बुरे मौसम के कारण अपार कष्ट भी सहने पड़े और उसने असाधारण सहनशक्ति तथा सैनिक कौशल का अपूर्व परिचय दिया। अब वह पीटसबर्ग से रेल मार्ग द्वारा एक-सौ चालीस मील दक्षिण में था। न्यूस नदी के मुहाने पर उसके पूर्व में न्यूबर्न का बन्दरगाह उसके लिए रसद प्राप्ति का मजबूत अड्डा था। ग्राण्ट अब आवश्यकता पड़ने पर अपनी फौजों को जलमार्ग द्वारा पीटसबर्ग और रिचमण्ड जल्दी से पहुँचा सकता था। अब जान्स्टन के लिए पीछे हटने को एक ही मार्ग रह गया था। उसे न्यूयार्क की घाटी के ऊपरी भाग में अंतर्वर्ती प्रदेश की ओर एक रेलमार्ग का सहारा ही था। वह ग्रीन्सबरो भी जा सकता था जो पीटसबर्ग से डेढ़-सौ मील दक्षिण पश्चिम में था। ग्रीन्सबरो एक दूसरे ही रेलमार्ग से पीटसबर्ग और रिचमण्ड से जुड़ा था। इसी रेल मार्ग के सहारे ली भी जान्स्टन से मिल सकता था।

रिचमण्ड से निकल भागने के लिए ली की जितनी भी योजनाएं थीं वे उस समय बुरे मौसम के कारण असफल रहीं, क्योंकि परिवहन की दृष्टि से सड़कें बहुत खराब थीं और जितनी देर उसे मजबूरी से रुकना पड़ा उतने में भाग निकलने की सभी सम्भावनायें कम होती गयीं। फिलिप शैरीडन को अपनी महत्वाकांक्षा का पद (मेजर जनरल) मिल गया था। यह पद पहले मैक्लीन को प्राप्त था। परन्तु राष्ट्रपति-पद के चुनाव में हार जाने पर उसने इसे त्याग दिया था। शेरीडन में तेजी के साथ आगे बढ़ कर आक्रमण करने की विलक्षण प्रतिभा थी। यह ऐसी प्रतिभा थी जिससे सामान्य नागरिकों का साहसिक हृदय मुग्ध हो उठता था। ग्राण्ट को प्रसन्नता हुई कि शरमन की ही तरह शेरीडन में भी ऐसे ही गुण थे कि वह अपने सेनापति के उद्देश्य को अपना कर दृढ़ निश्चय द्वारा पूरा कर डालता। सर्दी के मारे घोड़ों के बेकार हो जाने के कारण शेरीडन को शीतऋतु में चुप बैठना पड़ा। परन्तु सत्ताइस फरवरी को दस हजार घुड़सवार सेना लेकर वह शेननडोआ घाटी के लिए चल पड़ा। अरली की अधीनता में बहुत सी दक्षिणी घुड़सवार सेना पहले ही नष्ट हो चुकी थी। विशेषकर इस उजड़ी हुई घाटी में घास की बड़ी भारी कमी थी। अब शेरीडन ने रही-सही शत्रु सेना को तितरबितर कर

दिया। अरली की छोटी सी पैदल सेना को मार भगाया, उसका तोपखाना छीन लिया। रिचमण्ड के पश्चिम में अस्सी-नब्बे मील पर ही लिञ्चबर्ग में दक्षिणी सेना थी। यद्यपि यह इतनी शक्तिशाली थी कि शेरीडन की घुड़सवार सेना को उस स्थान पर कब्जा न करने देती परन्तु वह इसके अतिरिक्त दूसरे किसी काम की नहीं थी। अब मैदान में दक्षिण की ओर कोई फौज भी रिचमण्ड के निकट नहीं थी जो ली को सहारा दे सके। कुछ छोटी-छोटी सैनिक टुकड़ियाँ कोसों दूर दक्षिण में थीं। वे भी समय पर नहीं पहुँच सकती थीं। बीच का रेल मार्ग नष्ट किया जा चुका था। शेरीडन ने अब रिचमण्ड के उत्तर पश्चिम में रेल-मार्ग और नहर-मार्ग भी नष्ट कर दिये, उसे अब दक्षिण में जाना था और यदि सम्भव हो तो शरमन से जा मिलना था। जेम्स घाटी के ऊपरी भाग में बाढ़ के कारण अपना मार्ग अवरुद्ध देखकर वह रिचमण्ड के उत्तर होकर निकल गया और उन्नीस मार्च को ग्राण्ट से जा मिला ताकि उसकी घुड़सवार सेना और वह स्वयं उसके पास तैयार रहे जिससे ग्राण्ट जब अन्तिम समय आये तो उससे काम ले सके।

४ मार्च १८६५ को अब्राहम लिंकन ने दूसरी बार संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति का पद ग्रहण किया। उस पदग्रहण-समारोह के अवसर पर औपचारिक कार्यक्रम में एक सरल व सादगीपूर्ण परन्तु एक नयी ही विशेषता थी। उसके अंगरक्षकों में नीग्रो सेना की टुकड़ी भी थी। उस समय यद्यपि उसने कुछ कहा नहीं परन्तु उसके विचार युद्ध को अधिक लम्बा जारी रखने के कदाचित् नहीं रहे होंगे, वरन् विजित दक्षिण में शान्ति-स्थापना कैसे यथाशीघ्र सम्भव हो यह उसके मन में होगा। भले ही यह सुखकर कार्य होते हुए भी युद्ध से कम कठिन कार्य नहीं था। उसकी कठिनाइयाँ अब केवल दक्षिण से ही नहीं वरन् उत्तर से भी उत्पन्न होने वाली थीं। उस दिशा में उसने जो अस्थायी प्रस्ताव एक-दो बार रखे वे उसके नये मार्ग की ओर संकेत करते हैं। पदग्रहण-समारोह के भाषण में भी उसने बीती घटनाओं का जो जिक्र किया उससे भी यही भावना प्रकट होती है। गेटिसबर्ग का उसका संक्षिप्त भाषण, जिसमें उसके व्यक्तित्व की पूर्ण झलक मिलती है तथा पदग्रहण-समारोह का भाषण, उसकी अनोखी वक्तृत्वशक्ति के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। उसकी भाषण-कला की दूसरों से तुलना करना यहाँ आवश्यक नहीं है क्योंकि यह अप्रतिम थी और इतिहास की महान व्याख्याओं से पूर्णतया भिन्न थी। उसके भाषणों में उच्च नाटकीय तत्वों का अधिक समावेश है।

दूसरी बार के पदग्रहण-समारोह-भाषण में ऐसी कई महत्वपूर्ण बातें हैं जिन पर टिप्पणी करना आवश्यक है और इसे स्पष्ट भी करना जरूरी है। आज तक शायद ही किसी महान राजनीतिज्ञ ने अपने भाषण में तीव्र अगाध धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत भाषा का इतना खुलकर प्रयोग किया होगा। परन्तु वह अवसर ऐसा था जिसने उसे स्वाभाविक रूप दे दिया। उसके विचार और भाषा इस समारोह की परम्परा से विपरीत थी। कोई भी समझदार व्यक्ति सन्देह नहीं कर सकता था कि वक्ता जनता के दिल को तो छू रहा है, परन्तु उसका हृदय यहाँ नहीं है कहीं और ही है। परन्तु एक वृद्ध इल्लीनायस का वकील जिसका दावा था कि वह 'राष्ट्रपति' लिंकन की ओट में भी लिंकन के व्यक्तित्व को पहचान सकता था, यहाँ उसने आश्चर्य ही किया होगा कि क्या यह भाषण लिंकन की हृदय की आवाज है। जब वह ख्याति प्राप्त कर चुका तब उसके चरित्र की अन्य सब विशेषताओं की तरह उसका धर्म भी उसके पुराने साथियों की चर्चा का सामान्य विषय हो गया था। कई लोगों का यह कथन है कि वह ईसाई था परन्तु इस धर्म को अच्छी तरह न जानता था। ये लोग समझदारी का रुख अपनाते हुए केवल इतना ही संकेत करते हैं कि वह ईसाइयत या धर्म जैसी चीज से कोसों दूर था। युवावस्था में ही उसने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों से हमेशा के लिए नाता तोड़ लिया, हालां कि उसके निकटवर्ती बिभिन्न गिरजाघरों में सम्भवतः उस समय ऐसे ही विचार प्रचलित रहे होंगे। जिस दृढ़ता से उसने इनके खण्डन की प्रतिज्ञा की उससे उसके कुछ मित्रों को दुख हुआ। वह धर्मगुरुओं के व्यवहार में ईसा मसीह की सही भावनाओं का पाखण्डपूर्ण विरोधाभास देखता था। दैवी चमत्कार, बाइबिल की कहानी को अक्षरशः भगवान की देन होने में उसे विश्वास नहीं था। परन्तु उस समय इन सभी गिरजाघरों में यही एक आधारभूत विश्वास था। इस मूल आधार के स्थान पर वह किसी पादरी के अधिकार अथवा धर्म के लिए सांसारिक संगठन (गिरजाघरों) की स्थापना के पक्ष में नहीं था। पड़ोसियों के प्रत्यक्ष विश्वासों से पूर्ण विरोधाभास होते हुए भी वह स्वयं प्रेसब्रिटेरियन सार्वजनिक आराधना में जाता था और अपने बालबच्चों को भी ले जाता था। उसकी माँ ऐपिस्कोपल और उसके अपने माता-पिता वेप्तिस्त थे। वह बाइबिल से प्रेम करता था और उसे गहराई से जानता था। उसको बहुत से धार्मिक भजन भी याद थे। मृत्यु के सालभर पूर्व उसने स्पीड को लिखा था, "मैं बाइबिल पढ़ रहा हूँ और इससे मुझे लाभ होता है। इस सारी पुस्तक को अधिक से अधिक तर्क

पर तोलो और जो निष्कर्ष निकालो उस पर विश्वास करो। तुम जीवन और मृत्यु दोनों में अधिक अच्छे रहोगे।" पुरानी बाइबिल की अपेक्षा वह नयी बाइबिल को विशेष पसन्द करता था। इसे वह ईसा की सच्ची आत्मा कहता था और उसने गम्भीरता के साथ इसे अपने जीवन में ढाल भी लिया था।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि एक व्यापक और सर्वशक्तिमान ईश्वर में दृढ़ विश्वास ही उसका धर्म था। हल्के अन्धविश्वासों की भावनाएँ, जो अधिकांश सीमाक्षेत्रीय लोगों की तरह उसमें भी पायी जाती थीं, उसके जीवन में कोई महत्व नहीं रखती थीं। वह भगवान का अपने जीवन से गहरा और दयालुतापूर्ण सम्बन्ध जोड़ता था। अपने राष्ट्रपति की उम्मीदवारी में जब उसने किसी से कहा कि पादरियों द्वारा मेरा विरोध होने से मुझे गहरा आत्मिक कष्ट होता है, तो यह माना गया कि वह ईसाई नहीं था। उसने कहा, "मैं जानता हूँ, भगवान है और वह अन्याय और दास-प्रथा से घृणा भी करता है। मुझे संकट के तूफान आते दिखाई दे रहे हैं। मैं जानता हूँ इसमें भी उसका हाथ है। अगर उसने मेरे लिए उन संकट के दिनों में कोई काम प्रदान किया होगा तो मेरी मान्यता है कि ऐसा काम मेरे लिए जरूर ही होगा। मैं उस समय के लिए भी तैयार हूँ। मैं कुछ नहीं हूँ परन्तु सत्य सब कुछ है। मैं जानता हूँ कि मैं ठीक कहता हूँ। मेरी मान्यता है कि स्वतंत्रता उचित है, सही है, क्योंकि ईसा मसीह ऐसा ही सिखाता है और ईसा मसीह स्वयं भगवान है। मैंने लोगों को बता दिया है कि विभाजित घर बहुत दिनों तक नहीं टिक सकता, बाइबिल और हमारी बुद्धि का भी यही मत है और लोगों का भी यही मत मिलेगा।" जब उसके पुराने जान-पहिचानवाले उसे कहते कि वह धर्म को नहीं मानता तो उनकी राय उसके ऐसे वाक्यों के आधार पर बनी होती थी, "जिस ईश्वर के सम्बन्ध में वह अभी बड़ी गम्भीरता से बात कर रहा था उसे व्यक्ति के रूप में नहीं मानता था।" इसकी गहराई में जाने से कि उसका तथा अन्य अनेक लोगों का मन्तव्य ऐसा कहने में जो था, उसका कोई अर्थ नहीं। परन्तु बाद में यह स्पष्ट हो गया कि यह अजन्मा मनुष्येतर शक्ति ऐसी थी जिसके साथ वह मानसिक सम्बन्ध जोड़ सकता था। उसकी शक्तिशाली बुद्धि केवल एक सामान्य और अस्पष्ट कल्पना को ही मानकर नहीं बैठने वाली थी। उस जैसा परिहासप्रिय व्यक्ति इतना अहंकारी भी नहीं हो सकता था कि प्रार्थना न करे। वह प्रार्थना तो करता ही था और दिल से करता था। उस बात का आदर करता था कि दूसरे लोग उसके लिए और राष्ट्र के लिए प्रार्थना करते थे। अपने पद से की हुई

घोषणाओं में जो राष्ट्र के धार्मिक त्योहारों पर की जाती थीं, वह प्रार्थना पुस्तक की ही भाषा लिख लेता था, कोई आधुनिक लेखक आज वैसी भाषा नहीं लिख सकता है। इसलिए वह किसी भी सेनापति, किसी भी राजनीतिज्ञ से बिना हिचकिचाहट के धर्म की बात कर लेता था। यह सम्भव है कि ऐसी शक्ति उसे बाद में मिली हो। लिंकन, हममें से अधिकांश की तरह, अपने विकास को रोकता नहीं था। श्रीमती लिंकन को तो ऐसा लगा कि उनके बच्चे 'विली' के मर जाने के समय से ही, उसके सारे धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया था। ऐसा होना सम्भव भी था। उस दुख के समय से, जब कि उसकी मुसीबतें शुरू ही हो रही थीं, लिंकन में बहुत कुछ विलक्षणताएं और आ गयीं। चार वर्ष तक लगातार विषम तकलीफों के बाद उसकी क्षमता बढ़ी थी, उसकी सरल न्यायप्रियता, दयाद्रता, धैर्य और उसकी विनम्रता सभी में वृद्धि हुई थी। यहाँ हम उसका एक भाषण उद्धृत कर रहे हैं जो असामान्य है। इसे एक महान व्यक्ति ने अपने भाग्य के ऐसे संकटकाल में दिया है जिसे एक दुखान्त कहानीकार अपने मुख्य पात्र से कहलाता है। यह व्यक्ति ऐसा था जो घटाटोप अंधकार में अकेला खड़ा रहा। उसने न्याय किया, सबसे दयाद्र होकर प्यार किया, वह अपने भगवान के साथ नम्र होकर चला था। वह पाठक जिस पर धार्मिक आदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यह नहीं समझ सकेगा कि उसके काल्पनिक शब्दों के पीछे वास्तविक अनुभूति भी थी कि नहीं। उस पाठक को जिसकी धार्मिकता अडिग है, यह दुख नहीं होगा कि इस आदमी का धर्म में कोई विश्वास ही नहीं है।

उसने कहा, "साथी देशवासियो! राष्ट्रपति-पद की प्रतिज्ञा दूसरी बार लेने के अवसर पर लम्बे भाषण की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी पहले थी। उस समय जिस लम्बे मार्ग पर हमें चलना था उस सम्बन्ध में कुछ विस्तृत बात करना आवश्यक थी। गृहयुद्ध को लेकर सभी बातों में सार्वजनिक घोषणाओं की आवश्यकता रही, अब भी राष्ट्र की शक्ति इसी में लगी हुई है और उसका सारा ध्यान इधर ही केन्द्रित है। अब चार वर्ष बीत जाने के बाद कुछ नया कहने के लिए नहीं रह गया है। हमारी सेनाओं की प्रगति, जिस पर युद्ध की सभी बातें मुख्यतः निर्भर हैं, वह जितनी मुझे मालूम है उतनी जनता को भी मालूम ही है और मेरा विश्वास है कि यह सब के लिए काफी सन्तोषजनक और उत्साहप्रद हैं। भविष्य के लिए बड़ी-बड़ी आशाएं हैं, परन्तु अभी से कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

चार वर्ष पूर्व ऐसे ही अवसर पर हमारी चिन्ताएं सिर पर लटकी तलवार की तरह इस गृहयुद्ध के प्रति थीं। सभी उससे डरते थे, सभी उसे टाल देना चाहते थे। इसी स्थान से जब पद-ग्रहण का भाषण दिया जा रहा था, जिसमें केवल यही बात कही गयी थी कि बिना युद्ध किये गणराज्य को कैसे बचा लिया जाय, विद्रोहियों के एजेन्ट शहर में बिना युद्ध के ही इसे नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे। बात-बात में ही गणराज्य को भंग कर राज्यों को बांट लेना चाहते थे। दोनों दल युद्ध नहीं चाहते थे। परन्तु एक दल राष्ट्र को जीवित रहने देने के बजाय युद्ध करने पर तुला हुआ था और दूसरा पक्ष राष्ट्र को नष्ट होने देने के बजाय युद्ध स्वीकार कर लेना अच्छा समझता था, और युद्ध छिड़ गया।

सम्पूर्ण जन संख्या का आठवाँ भाग हब्शी-दासों का था। ये सारे देश भर में फैले हुए नहीं थे बल्कि देश के दक्षिणी भाग में केन्द्रित थे। ये दास एक विलक्षण और शक्तिशाली सम्पत्ति के रूप में थे। सभी जानते थे कि यही सम्पत्ति की भावना युद्ध का कारण थी। इस सम्पत्ति को शक्तिशाली व स्थायी बनाने और इसका क्षेत्र बढ़ाने के लिए ही विद्रोही लोग गणराज्य के टुकड़े करना चाहते थे, चाहे इसके लिए उन्हें युद्ध ही क्यों न करना पड़े। सरकार इससे अधिक करने का दावा नहीं करती थी कि उसका क्षेत्र न बढ़ने दे। कोई भी पक्ष यह आशा नहीं करता था कि युद्ध का विस्तार और अवधि इतनी बढ़ जायेगी। न किसी को यह आशा ही थी कि युद्ध का मूल कारण ही युद्ध के दौरान में या इसके अंत के पहले ही समाप्त हो जायेगा। प्रत्येक पक्ष सरल व शीघ्र विजय पाना चाहता था और दोनों ही आधारभूत और विलक्षण परिणाम के पक्ष में अधिक नहीं थे। वे एक ही बाइबिल पढ़ते थे और एक ही भगवान से प्रार्थना करते थे, और प्रत्येक एक दूसरे के विरुद्ध भगवान की मदद मांगता था। यह अजीब लगेगा कि कोई व्यक्ति न्यायी परमात्मा की मदद दूसरे मनुष्यों के पसीने से कमायी रोटी छीनने के लिये माँगे। लेकिन हम फैसला करने न बैठ जायँ ताकि हम पर भी कोई फैसला करने न बैठे। दोनों की प्रार्थना का उत्तर तो दिया जा नहीं सकता। किसी का भी पूर्ण उत्तर नहीं आया है। परमात्मा का अपना उद्देश्य है। संसार पर उसके अपने ही अपराधों से गाज गिरती है, क्योंकि अपराध तो होते ही हैं परन्तु गाज उसी व्यक्ति पर गिरती है जिसके जरिये यह अपराध होता है। यदि हम यह मान लें कि अमरीकी दास-प्रथा उन्हीं अपराधों में एक है जो भगवान की इच्छा के फलस्वरूप है, परन्तु जिन्हें समय पूरा हो जाने के कारण वह अब हटाना चाहता है और वह इसी निमित्त उत्तर और दक्षिण

दोनों को ही यह भयंकर युद्ध दे रहा है क्योंकि इन्हीं लोगों के द्वारा ये पाप हुए हैं, तो क्या इस बात से हमें भगवान में उसके उन गुणों में कोई कमी दिखाई देती है। जिन्हें हम भगवान में प्रत्यक्ष देखते हैं दिल से प्रार्थना करते हैं कि युद्ध की यह भयंकर महामारी जल्दी ही निकल जाय। फिर भी यदि भगवान की यह इच्छा है कि जब तक दासों की ढाई-सौ वर्ष की कठोर परिश्रम से जमा की गयी हराम की सम्पत्ति का ढेर भस्म नहीं हो जाता और जब तक कि कोड़ों की मार से निकले हुए खून की एक-एक बूँद की कीमत तलवार की धार से निकलते हुए रक्त द्वारा चुकायी नहीं जाती, तब तक यह युद्ध जारी रहेगा। जैसा कि तीन हजार वर्ष पूर्व कहा गया था अब भी यही कहा जायेगा। भगवान के न्याय सच्चे, पूर्ण और पवित्र हैं।

"किसी के प्रति दुर्भाव नहीं, सभी के प्रति उदारता, भगवान के दिखाये हुए सत्य पर दृढ़ता के साथ, हम जो काम हाथ में है उसे समाप्त करें। देश के घावों पर पट्टी बाँधें। युद्ध में उत्सर्ग हुए लोगों के लिए उनकी विधवाओं और उनके अनाथ बच्चों की चिन्ता करें और हम वह सब करें, जिससे न्यायपूर्ण और स्थायी शान्ति हममें, आपस में और अन्य सभी देशों के साथ स्थापित हो जाय और बनी रहे।"

इस भाषण के साथ लिंकन की अपनी टिप्पणी भी है। "१५ मार्च १८६५—प्रिय मीड! प्रत्येक व्यक्ति थोड़ी प्रशंसा पसन्द करता है। आपने मेरे छोटे घोषणात्मक भाषण और पदग्रहण की वक्तृता को लेकर जो मेरी प्रशंसा की है उसके लिए धन्यवाद। मुझे आशा है कि पदग्रहण की वक्तृता मेरी किसी भी अन्य वक्तृता की तुलना में कुछ अच्छी रहेगी। परन्तु मेरा ख्याल है, यह तुरन्त ही लोकप्रिय नहीं हो सकी। यह दिखाने से कि भगवान और उसके उद्देश्यों में अन्तर है, लोग खुश नहीं होते। इस मामले में इस बात को न मानना मानो यह मानना है कि संसार के ऊपर भगवान नहीं है। यह एक सत्य है जो मेरा ख्याल है कहा जाना जरूरी है और उसमें जो भी लांछना की झलक है वह सीधी मेरे ऊपर पड़ती है। मैं सोचता था कि अन्य लोग मेरे बजाय इसे कह दें।"

—सत्यतापूर्वक आपका, अब्राहम लिंकन"

ऐसा लगता है कि २० मार्च १८६५ को उसके जीवन में मानों एक नया सूर्योदय हो गया था। उसके पुत्र राबर्ट लिंकन ने कुछ समय पूर्व ही हारवार्ड में

पढ़ाई समाप्त कर ली थी। लिंकन ने ग्राण्ट से नम्रता से पूछा कि अनुशासन और अच्छे अनुकरण को ध्यान में रख कर क्या मार्ग अपनाया जाय कि वह कुछ सैनिक जीवन का भी अनुभव प्राप्त कर सके। ग्राण्ट ने तुरन्त ही उसे अपने सहायकों में भर्ती कर लिया और कप्तान का पद दे दिया। अब ग्राण्ट ने लिंकन को अपनी सेना के सदर मुकाम में छुट्टी बिताने के लिए आमंत्रित किया। इस निमंत्रण में छुट्टी बिताने के अतिरिक्त बहुत-कुछ रहस्य भी था, क्योंकि ग्राण्ट अपनी अंतिम आक्रमण की योजना दृढ़ कर रहा था और लिंकन को वह अपने निकट रखना चाहता था। इसके अतिरिक्त शेरीडन भी आ गया था। जब लिंकन वहीं था तभी शरमन एडमिरल पोर्टर के साथ गोल्डबरो से चला आया ताकि अपने अगले अभियान की ग्राण्ट से सलाह कर ले। आवश्यक सैनिक या राजनीतिक आज्ञाओं की पूर्ति करने को लिंकन वहाँ मौजूद था। लिंकन प्रसन्न था कि अब उसे सैनिक मामलों में कहीं कुछ कहना या करना नहीं था। उसने केवल इतनी ही हार्दिक इच्छा प्रकट की कि दक्षिणी सेनाओं को अन्तिम तौर पर हटाने के लिए कम से कम रक्तपात किया जाय। वह अपनी सैनिक जिज्ञासा की तृप्ति के लिए इधर-उधर देखने-भालने लगा, ठीक उसी तरह जैसे मोर्चे पर बाहरी आगन्तुक स्वाभाविक रूप से उत्सुकता प्रकट करते हैं। उसने वहाँ से जो पत्र लिखे उससे यह पता चलता है कि वहीं कहीं निकट ही भारी गोलंदाजी की आवाज सुनकर उसे बहुत उत्सुकता हुई। उसको ऐसा लगा कि कहीं घमासान युद्ध हो रहा है। परन्तु जो यह बात जानते थे उन्हें जरा भी उत्सुकता नहीं थी। बाद में वह ग्राण्ट के सेनानायकों के साथ देहात में घोड़े पर चढ़कर घूमता रहा। अपने लम्बे टोप, छोटे कोट के कारण घोड़े पर वह एक विशेष और विलक्षण व्यक्ति दिखाई देता था। एक बार तो उसने बटलर के साथ जाने के लिए जोर दिया और सारे रास्ते उससे इंजिनियरी की बाबत लगातार प्रश्न पूछता रहा। इससे उसका मुख्य इंजिनियर भी काम में सहायता नहीं पहुँचा सका। छः मील तक यही क्रम जारी रहा, रास्ते में सर्वत्र उत्तर की सेनाएं उसके प्रति प्रसन्न होकर नारे लगा रही थीं। दक्षिण के सैनिक इतने नजदीक थे कि उसे टोप और कोट से पहिचान कर गोली मार सकते थे। चाहे वह कितना ही अजीब क्यों न था ग्राण्ट के अफसरों को वह एक अच्छा और निडर घुड़सवार प्रतीत हुआ। शरमन के आ जाने पर तो उनकी बातचीत का अन्त ही नहीं था। शरमन को पहले तो राष्ट्रपति की इस चिन्ता पर बहुत हँसी आयी, जब उसने यह पूछा कि तुम्हारी अनुपस्थिति में सेना सुरक्षित भी है या नहीं।

किंतु इससे उस शूरवीर के हृदय में लिंकन की सहृदयता और महानता की गहरी छाप जम गयी।

लिंकन की यह उत्कट इच्छा थी कि विजित लोगों के साथ दया और मैत्री का बर्ताव किया जाय। शरमन और पोर्टर भी इसी पक्ष में थे। इसके कारण शरमन ने जान्स्टन की शर्तें मानने में भूलें भी कर दीं, क्योंकि उसके ध्यान में यह नहीं आया कि दक्षिणी नेताओं के प्रति दया और दक्षिण के कल्याण की कामना का अर्थ दक्षिण के राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रति दयार्द्र होना नहीं था। ग्राण्ट कोई ऐसी गलती नहीं कर सकता था। एक या दो सप्ताह पूर्व ही ली ने किसी प्रकार सन्धि की बातचीत के लिए संकेत दिया था। लिंकन ने तुरन्त ही आज्ञा दी कि ली से बिना किसी शर्त हथियार डालने के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य से बात ही नहीं करनी है। दक्षिण के जन-जीवन और संस्थाओं के पुनर्निर्माण के अतिरिक्त लिंकन के मस्तिष्क में यह चिन्ता भी घर किये बैठी थी कि युद्ध समाप्ति के बाद ही विद्रोहियों को सजा देने की पुरजोर मांग उठेगी। कांग्रेस के कानून के अनुसार दक्षिण में उच्च राजनीतिक तथा फौजी पदाधिकारी लोग देशद्रोही समझे जाते थे और उत्तर में उनको फाँसी पर लटकाने की बातें हो रही थी। परन्तु बाद में यह सिद्ध हुआ कि विजयी हो जाने के बाद लोग शान्ति से दूसरे ढंग की बात भी सुन सकते थे। परन्तु उस समय वे तनिक भी रियायत देने को तैयार नहीं थे। लिंकन को इसकी गहरी चिन्ता थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उसके हाथों में जो दया का अधिकार था उसे वह खुल कर प्रयोग करता, परन्तु वह इस मामले में विवाद पैदा करना कतई नहीं चाहता था। ग्राण्ट को एक शराब नहीं पीने वाले आयरलैंड निवासी का दृष्टान्त सुनाया कि कैसे उसने अनजाने में ही शराब सामने रखने वाले व्यक्ति को क्षमा कर दिया, इस तरह उसे समझा दिया कि उससे जेफरसन डेविस और उसके साथियों को पकड़ लाने का उत्साह दिखाने की आशा नहीं की जाती है।

लिंकन जब सिटी पाइंट में ग्राण्ट के सदर सैनिक मुकाम पर था, उन्हीं दिनों ली ने दक्षिण पश्चिम की सड़कों का उपयोग पुनः करने के उद्देश्य से, अपने पूर्वी युद्ध क्षेत्र पर अचानक हमला कर घेरे डालने वालों का ध्यान बँटाना चाहा। यह प्रयत्न असफल हुआ तथा उत्तर को अपना घेरा कसने के लिए एक और अच्छा मौका मिल गया। १ अप्रैल को शेरीडोन को ली की सेना के दक्षिण में

दूर तक भेजा गया। उसने फाइवफोर्क नामक स्थान पर युद्ध करके पीटर्सबर्ग से सीधे पश्चिम की ओर जाने वाले रेल मार्ग पर कब्जा कर लिया। इस ओर दक्षिण की सुरक्षा पंक्ति बहुत ही कमजोर थी। शत्रु को यहाँ चोट करने से रोकने के लिए ली को अपनी सेनाएं दूसरी महत्वपूर्ण जगहों से हटानी ही पड़तीं। अगले दो दिनों में ग्राण्ट की फौजों ने पीटर्सबर्ग की पूर्वी रक्षा पंक्ति में कई जगह आक्रमण किये। बाहरी रक्षा पंक्ति में उन्होंने दरार डाल दी और शहर की आन्तरिक मोर्चेबन्दी पर उत्तर के सैनिक टूट पड़े। दो अप्रैल को रविवार के दिन एक गिरजाघर में प्रार्थना के समय जेफरसन डेविस को ली का यह सन्देश मिला कि निकल भागने के लिए वह तुरन्त तैयारी करें, क्योंकि पीटर्सबर्ग एक रात से अधिक बचाया नहीं जा सकता, और रिचमण्ड तो तुरन्त ही शत्रु के कब्जे में आने वाला था। उस रात दक्षिण सरकार राजधानी से हट गयी और ली ने दूसरे दिन किला खाली करना शुरू कर दिया। लिंकन को बुला लिया गया था। वह जल मार्ग से आया। नौसैनिक अफसरों को आश्चर्य और भयत्रस्त छोड़ कर बहुत कम अंगरक्षकों को लेकर वह तुरन्त रिचमण्ड को चल दिया। वहाँ वह अपने छोटे बेटे टैड का हाथ पकड़े शहर में टहलने लगा, प्रसन्नता के आवेश में नीग्रो लोगों ने हृदय से उसका स्वागत किया। दक्षिणी उत्सुकतावश क्रोध से उसे घूरते रहे। जब वह उत्तरी युद्धबन्दियों की जेलें तथा दूसरे कई स्थानों को देखने गया तो वहाँ के निवासियों ने अप्रसन्नता जैसी कोई भावना नहीं प्रकट की। कैम्पबेल के साथ जो पहले सर्वोच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश था उसकी काफी दिलचस्प बातचीत हुई। वह कुछ हफ्ते पहले हेम्पटन रोड पर डेविस के राजदूत के रूप में मिल चुका था। केम्पबेल ने वरजीनिया के विधायकों की एक सभा बुलाने की आज्ञा प्राप्त कर ली ताकि ली की फौज जल्दी ही हथियार डाल सके। परन्तु वह आज्ञा शीघ्र रद्द कर दी गयी क्योंकि उसने शर्तों को अटपटा व गलत समझ लिया था और उत्तर का भी उद्देश्य इसी बीच में पूरा हो चुका था।

जेफरसन डेविस अपने मंत्रियों को लेकर जान्स्टन की फौज में जा पहुँचा। वहाँ पहुँचने के बाद जान्स्टन और ब्रोरगार्ड के साथ उन लोगों ने युद्ध के बारे में भावी गतिविधि पर विचार-विमर्श किया। उसने ढाढस बंधाया। "मैं एक घोषणा करूँगा और उससे बहुत से सिपाही सेना में भर्ती हो जायेंगे। मैं अब भी शत्रु पर गहरी चोट करके कचूमर निकाल दूँगा," परन्तु इस पर किसी ने

कोई उत्तर नहीं दिया। अन्त में उसने जान्स्टन से पूछा। उसने बेधड़क होकर सारी असलियत उसके सामने रख कर उसकी आँखों से पर्दा हटा दिया, और कहा कि अब और लड़ना अपराध होगा। उसने डेविस से शरमन के साथ संधि वार्ता की आज्ञा ले ली। इसी बीच पराजित दक्षिण का राष्ट्रपति और सुदूर दक्षिण में चला गया।

ली का उद्देश्य आपोमैटाक्स नदी के उत्तर होकर निकल जाने का था। यह नदी पीटर्सबर्ग होकर पूर्व में जेम्स मुहाने तक बहती है। ली को रास्ते में एक स्थान पर दक्षिण की ओर जान्स्टन की सेना की ओर मुड़ना पड़ता था। उसने अपनी सेना को बच निकालने के लिए इस बार भी पहले जैसे ही अदम्य साहस और कुशलता का परिचय दिया। ली का पीछा करने के लिए ही नहीं वरन् उसे घेर लेने के लिए भी उत्तर ने अपने साहसी व अदम्य प्रयत्नों में कसर नहीं रखी। ग्राण्ट ने उसका पीछा करते हुए उसे विनम्रता से कई पत्र लिखे कि वह हथियार डाल दे और भयंकर रक्तपात को बचाये। उत्तरी घुड़सवार सेना ली के आगे पहुँच गयी। जिस रेल मार्ग से वह भागना चाहता था उसे उखाड़ फेंका गया। पहाड़ी घाटियों और दर्रों पर सैनिक दस्ते जम गये। उसकी रसद की गाड़ियाँ रोकी जा रही थीं। ली की सेना तेजी से भागकर सुरक्षित स्थल पर पहुँचने के प्रयत्न में थी। ६ अप्रैल को सेलर्स क्रीक पर अन्तिम भयंकर युद्ध के बाद ९ अप्रैल को, पीटर्सबर्ग से लगभग सत्तर मील पश्चिम में आपोमेटाक्स कोर्टहाउस में ली बुरी तरह घिर गया। वहाँ से बच निकलने की अब कोई सम्भावना नहीं रह गयी थी। उसी दिन ली और ग्राण्ट अपने अफसरों के साथ निकटवर्ती खेत में एक मकान में मिले। जो वहाँ मौजूद थे उन्होंने बाद में बताया कि ली और ग्राण्ट के व्यक्तित्व में बड़ा भारी अन्तर था। ली राजशाही शान शौकत से मिला और ग्राण्ट, सादे कपड़े ही पहने हुए था जो विजयी के रूप में अवसर के अनुपयुक्त थे। वह दलदली मार्ग से जल्दी-जल्दी आया था और उसके कपड़ों पर कीचड़ भी लगी हुई थी। ली ने अपने पूर्वपरिचित मित्र मीड का स्वागत किया और कहा कि तुम कितने वृद्ध हो गये हो कि तुम्हारे बाल सफेद हो गये हैं। मीड ने नम्रता से उत्तर दिया कि इसके लिए उम्र नहीं ली उत्तरदायी है। ग्राण्ट को जब यह समाचार मिला कि ली हथियार डाल रहा है तो वह अत्यन्त हर्षित हो उठा। परन्तु अपने सामने पराजित शत्रु को देखकर उसे उसकी बहादुरी का ख्याल आ गया। वह शोकमग्न हो उठा। वे युद्ध के पूर्व काल की सैनिक जीवन की निजी

बातें करने लगे। ग्राण्ट का कहना है कि वह उस समय अपने सामने जो काम था उसे लगभग भूल ही गया था। ली ने खुद चलाकर पूछा कि किन शर्तों पर तुम हमारी हार स्वीकार करोगे। ग्राण्ट बैठ गया और लिखने लगा, वह भूल गया कि उसने कब शुरू किया और उसे क्या-क्या लिखना चाहिए। लिखते समय उसे ली की सुन्दर तलवार का ध्यान आया। तुरन्त ही उसने संधि की शर्तों में जोड़ दिया कि हर दक्षिणी अफसर को अपनी तलवार और घोड़ा रखने की आज्ञा होगी। ली ने वह प्रारूप पढ़ा और जब वह उस स्थल पर पहुँचा तो विचलित हो उठा। उसने इस आदमी की गहराई देखी और कुछ और भी माँगने का साहस किया। उसने कहा, "मेरा ख्याल है कि आपको शायद यह ज्ञात नहीं है कि दक्षिण के घुड़सवार सैनिकों के घोड़े उनके अपने हैं।" ग्राण्ट ने कहा—"अवश्य इनकी खेतों में सख्त आवश्यकता पड़ेगी" और इस दिशा में कुछ और सहूलियतें दे दी। ली ने कहा कि इससे हमारे सैनिकों पर सब से अच्छा प्रभाव पड़ेगा, इससे दक्षिण की जनता को साथ में लेने में भी काफी मदद मिलेगी। ग्राण्ट ने अपनी लिखित शर्तों में यह भी शामिल कर लिया कि दक्षिणी अफसरों को देशद्रोह के अपराध से क्षमा प्रदान कर दी जायेगी। यह लिंकन की आज्ञा की अवज्ञा थी, पर इस पर उस समय कोई एतराज नहीं किया गया। ली ने अब नागरिक जीवन ग्रहण कर लिया और वरजीनिया में एक कालिज के प्रधान के रूप में अपने पड़ोसियों की सेवा करने लग गया। उसकी बहुत इज्जत हुई। वह सैनिकों की खुल कर आवभगत करता था, यह नहीं पूछता था कि वह उत्तर की ओर से लड़ा या दक्षिण के साथ था। ग्राण्ट विजित राजधानी में प्रवेश करने के लिए नहीं ठहरा। उसका मुख्य काम समाप्त हो गया था। वह तुरन्त ही अपने लड़के को भर्ती करवाने चला गया। लिंकन सिटी पाइंट में ८ अप्रैल तक रहा। फिर स्टीमर से वापिस चल दिया। उसके साथ दो दिन की इस जलयात्रा में जो लोग थे उन्होंने बताया कि युद्ध-समाप्ति के उपलक्ष्य में उसने वहाँ शान्ति से पारिवारिक आनन्द जैसा सुख युद्ध के बाद पहली बार प्राप्त किया। किसी ने कहा कि जेफरसन डेविस को वास्तव में फाँसी देनी चाहिये। लिंकन का उत्तर एक प्रत्याशीत उद्धरण के रूप में सामने आया। "अगर चाहते हो कि कोई और तुम्हें न तोले तो तुम किसी को मत तोलो!" दूसरे दिन रविवार था। राष्ट्रपति ने "मेकबैथ" में से कुछ अंश पढ़ कर सुनाया। सम्नर वहाँ था। उसने कहा कि नीचे की पंक्तियाँ राष्ट्रपति ने दो बार पढ़ीं—

"डंकन अब चिर निद्रा में, समाधि में सो रहा है
जीवन के तीव्रतम पीड़ामय अभिशाप के बाद
वह शांति से सो पाया है।
देशद्रोह ने उसे कहीं का नहीं रखा,
अब वह ऐसी स्थिति में है, जहाँ
तलवार, विष, आंतरिक डाह, विदेशी
प्रभुत्व उसको छू भी नहीं सकते हैं।"

मंगलवार ११ अप्रैल को विजयोल्लास से हर्षित जन-समूह वाइटहाउस में लिंकन को बधाई देने पहुँचा। उसने उनके समक्ष एक भाषण दिया जो प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं वरन् तथ्यों की दृष्टि से अच्छी तरह तैयार किया गया था। इसमें दक्षिण के पुनः निर्माण और लुइसियाना में जो काम किया जा रहा था उसके बारे में चर्चा थी। इस पर जो वादविवाद उठ खड़ा हुआ उसकी चर्चा का अब कोई महत्व नहीं है। लिंकन ने कहा, "मेरी योजना की सभी बातें अक्षरशः कार्यान्वित हों, ऐसी कोई ज़िद मुझे नहीं है।" उसने अपनी यह इच्छा स्पष्ट जता दी कि दक्षिण के जो लोग देशभक्ति के साथ गणराज्य और दासमुक्ति को स्वीकार करके राज्य सरकारों को पुनर्जीवित करने की कोशिश कर रहे हैं उन्हें छोटी-छोटी बातों में परेशान न किया जाय। उसने इस पर भी जोर दिया कि चाहे छोटे पैमाने पर ही क्यों न हो—यह कार्य आरम्भ हो जाना चाहिए। उसको इस बात से दुख हुआ कि लुईसियाना में उसकी यह बात नहीं मानी गयी कि शिक्षित और सैनिक नीग्रो लोगों को मताधिकार दे दिया जाय। परन्तु वहाँ नीग्रो लोगों की स्वतंत्रता पूरी तरह स्वीकार कर ली गयी थी। उनके लिए सार्वजनिक पाठशालाओं में शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया था, और राज्य के नये विधान में धारासभा को अधिकार दे दिया गया था कि वह उन्हें मताधिकार दे सकती है। उसने कहा, "इससे स्पष्ट ही प्रगति होगी। यह मान लो कि लुईसियाना की नयी सरकार एक अण्डा है, जिसे सेकर हम तुरंत चिड़िया प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु उसे तोड़ कर नहीं। लुईसियाना के सम्बन्ध में कही हुई यह बात दूसरे राज्यों पर भी लागू है।" उसने अन्त में कहा कि यह सारा मामला इतना विलक्षण और नवीन है कि दूसरी कोई विशेप और अपरिवर्तनीय योजना विस्तारपूर्वक नहीं बनायी जा सकती, क्योंकि ऐसी विशेप और अपरिवर्तनीय योजना एक नयी बाधा बन जायेगी। महत्वपूर्ण सिद्धान्त तो अटल होने ही चाहिए। वर्तमान परिस्थिति में मेरा यह कर्तव्य हो सकता है कि दक्षिण के

लिए कुछ नयी घोषणाएं करूँ। मैं विचार कर रहा हूँ और जब मुझे विश्वास हो जायेगा कि यह काम उचित है तो उसे किये बिना नहीं रहूँगा। पूरी एक पीढ़ी इस बात के लिए आंसू बहाती रही कि वह घोषणा कभी की ही नहीं जा सकी।

१४ अप्रैल १८६५ को गुड फ्राइडे के दिन पवित्र धार्मिक सहगान के साथ सम्टर दुर्ग पर उसके पुराने रक्षक जनरल एण्डरसन द्वारा गणराज्य का झण्डा पुनः फहरा दिया गया। उसी दिन सवेरे वाशिंगटन में मंत्रीमंडल की बैठक थी। रेल दुर्घटना हो जाने के कारण सेवार्ड को चोट लग गयी थी और वह बिस्तर में पड़ा हुआ था। ग्राण्ट वहीं था और शरमन की सेना से कुछ समाचार पाने के लिए उत्सुक था। लिंकन उस दिन बहुत प्रसन्न था। सवेरे ही उसने अपने पुत्र राबर्ट लिंकन से उसके सैनिक बनने के नये अनुभवों पर बातचीत करके आनन्द प्राप्त किया।

मंत्रीमंडल की बैठक में उसने ग्राण्ट और मन्त्रियों को बताया कि शरमन से शीघ्र ही शुभ समाचार मिलने वाले हैं। उसने कहा, "यह बात मैं जानता हूँ। क्योंकि कल मैंने एक स्वप्न देखा है जिसे मैं पहले भी कई बार देख चुका हूँ। स्वप्न यह है कि एक विलक्षण अवर्णनीय विमान में मैं बैठा हूँ। मैं पहले भी स्वप्नों में वैसा ही विमान देखता रहा हूँ। वह विमान मुझे बड़ी तेजी से अन्धकार और अस्पष्ट देश की ओर ले जा रहा था। यह स्वप्न मैं हमेशा जब भी विजय होने वाली होती, उसके एक दिन पहले देखता रहा हूँ। ऐण्टीटम, मरफ्रीबरो, गेटिसबर्ग और विक्सबर्ग की विजय के पूर्व भी मैंने यह स्वप्न बारबार देखा।" ग्राण्ट ने कहा कि मरफ्रीबरो तो विजय नहीं थी, और वैसे भी वह महत्वहीन थी। लिंकन अपनी ही बात कहता रहा। बैठक में सामान्य कार्यवाही के बाद दक्षिण के पुनर्निर्माण पर बातचीत हुई। लिंकन प्रसन्न था कि कांग्रेस स्थगित हो गयी है और अब वादविवाद में उलझे बिना निर्विघ्न काम किया जा सकेगा। "कांग्रेस की आगामी बैठक के पूर्व ही यदि हम बुद्धिमान और योग्य हैं तो राज्यों में फिर से जान फूँक देंगे, और उनकी सरकारों को सफलतापूर्वक क्रियाशील कर देंगे। उन राज्यों में फिर से व्यवस्था हो जायेगी और सर्वत्र गणराज्य की पुनः स्थापना हो जायेगी।" अन्त में विद्रोहियों के सम्बन्ध में बातचीत हुई और उन पर मुकद्मा चलाने या फाँसी देने की मांग का जिक्र भी किया गया। लिंकन ने कहा, "मुझसे कोई यह आशा न करे कि मैं इन लोगों को, इनमें बुरे से बुरे को भी, फाँसी देने या गोली मारने का काम हाथ में लूँगा। तुम लोग उनको डरा कर देश से निर्वासित कर दो, उन्हें जेल में बन्द कर दो, सींकचों में डाल दो और उन्हें

डरा कर भगा दो," और जैसे भेड़ों को गड़रिये डराते हैं उसी तरह उसने अपने बड़े-बड़े हाथ ऊपर फैंके और श् श् की आवाज की। "यदि हम सहृदयता और एकता चाहते हैं तो हमें अपना क्रोध शांत करना होगा। हमारे कतिपय मित्रों की यह उत्कट इच्छा है कि इन राज्यों के स्वामी बन जायँ, उन राज्यों में हस्तक्षेप करके उन पर तानाशाही थोपी जाय, वहाँ की जनता के साथ, साथी नागरिकों का सा बर्ताव न किया जाय, न उनके अधिकारों की ही प्रतिष्ठा की जाय। मैं इन भावनाओं से सहानुभूति नहीं रखता।" उसकी ये अन्तिम लिखित बातें ऐसी हैं जो सार्वजनिक मामलों में उसका रुख स्पष्ट करती हैं।

दोपहर के बाद लिंकन और श्रीमती लिंकन एक साथ ही गाड़ी में निकले। उसने अपनी पत्नी से अगाध दाम्पत्य प्रेम और आनन्द से बातचीत की। वार्ता का विषय था कि जब राष्ट्रपति का सेवा-काल समाप्त हो जायेगा तो वे किस प्रकार आनन्दमय जीवन बितायेंगे। उस रात दोनों एक नाटक देखने गये क्योंकि इंगलैण्ड की तरह अमरीका में गुडफ्राइडे नहीं मनाया जाता है। ग्राण्ट का परिवार भी साथ आने वाला था, परन्तु उन्होंने अपना विचार बदल दिया और वे उसी दिन वाशिंगटन से बाहर चले गये। अतः एक नवजवान अफसर मेजर रैथबोन और उसकी प्रेयसी (दोनों अभागे) उनके बदले में लिंकन के साथ हो गये। नाट्यगृह में भारी भीड़ थी। युद्ध से लौटे हुए अनेक अफसर वहाँ आये हुए थे और वे सभी लिंकन से मिलना चाहते थे। नाटक था "हमारे अमरीकी चचेरे भाई"। उसमें लार्ड डनड्रेरी ने अपनी भूमिका शानदार ढंग से निभायी और उसे बाद में इसके कारण अच्छी प्रसिद्धि मिली। १० बजे के बाद नाटक की किसी ऐसी स्थिति में जो उपस्थितों में से किसी को भी याद नहीं है, नाटक-घर में गोली चलाने की आवाज सुनी गयी, अब्राहम लिंकन बेहोश होकर गिर पड़ा और मरणोन्मुख था। एक वहशी देहाती जो लिंकन के निकट चोर की तरह छिप कर पहुँच गया था और अपना काम कर चुका था, वहाँ दिखायी दिया। मेजर रैथबोन पर जिसने उसे पकड़ने की कोशिश की उसने छुरे से वार किया। वह छज्जे पर से रंगमंच पर कूद पड़ा। वह एक पर्दा पकड़े हुए था परन्तु नीचे गिर पड़ा, उसकी एक टांग में चोट भी पहुँची। वह शीघ्र उठा और उसने वरजीनिया की जय का नारा लगाया, "जालिमों की यही सजा है" यह चिल्लाता हुआ रंगमंच पर पर्दों के पीछे छिपता हुआ, बाहर खड़े हुए घोड़े पर चढ़ कर गायब हो गया।

यह हत्यारा जान विल्स बूथ था, प्रसिद्ध नाट्यकलाकार का भाई, जो बोस्टन में हेमलेट नाटक खेल रहा था। यह व्यक्ति भी नाटक में कलाकार था और

साहसी जीवट का युवक था। इसमें ऐसा ही विलक्षण खूंख्वार राजनीतिक जोश था, जो कभी-कभी दक्षिणी लोगों में पाया जाता है। शराब और रंगमंच ने उसमें ऐसे ही भाव भर दिये थे और वह संतुलन खोकर क्रोध से उबल उठा था। वह एक ऐसे षड्यंत्र का नेता था जिसका उद्देश्य लिंकन व कई उत्तरी नेताओं को समाप्त करना था। उपराष्ट्रपति सेवार्ड और ऐण्ड्रयू जानसन की भी उसी रात हत्या की जानेवाली थी। एक षड्यंत्रकारी, विक्षिप्त बलिष्ठ युवक उसी रात सेवार्ड के घर में घुस गया, उसने सेवार्ड और उसके परिवार के दो व्यक्तियों को घायल कर दिया। सेवार्ड तो पहले ही दुर्घटना में चोट पहुँचने के कारण बिस्तर में पड़ा था। उसे चार-पाँच घाव लगे। परंतु इनमें से किसी की मृत्यु नहीं हुई। सैनिक अदालत ने उस विक्षिप्त लड़के, एक षड्यंत्रकारिणी महिला तथा एक अन्य व्यक्ति को फाँसी पर चढ़ा दिया। इस व्यक्ति का अपराध यह था कि उसे जानसन की हत्या करने के लिए कहा गया था परन्तु उसने यह अस्वीकार कर दिया। इस मुकदमे की कार्यवाही से न तो नये राष्ट्रपति को और न इससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य लोगों को श्रेय मिला। बूथ स्वयं, कई कारनामों के बाद खलिहान में घिर कर मारा गया। सिपाहियों ने उस खलिहान में आग लगा दी थी। जान बचाने के लिए भागते हुए उसने यह कहा बताते हैं कि लोगों ने ब्रूटस या कैसियस की तरह उसकी प्रशंसा के गीत क्यों नहीं गाये।

दक्षिण में ऐसे ही साहसहीन और हृदय में कटुता रखने वाले कई व्यक्ति थे, जो लिंकन की मृत्यु चाहते थे। खास तौर से ऐसे लोगों में वह भी थे जो वाशिंगटन में दक्षिण के समर्थक थे। यदि इस पर विचार किया जाय कि बूथ की तरह कलंकित हत्या करने के प्रति लोगों की सहानुभूति अधिक थी नहीं, यदि ऐसी ही बात होती, तो दक्षिण का जो अन्त सन्निकट था उसकी गति को न तो न्यायपूर्ण तरीके ही और न ऐसी कलंकपूर्ण हत्याएं ही रोक सकने में समर्थ थीं। कभी भी किसी भी दक्षिण के साहसी व्यक्ति के लिए ऐसा करना कठिन नहीं था। उसी दिन, जिस दिन सवेरे उधर लिंकन और ग्राण्ट मंत्रीमंडल में शरमन के सम्बन्ध में चिन्ताजनक रूप से बातचीत कर रहे थे, उत्तरी कारोलिना में रैले नामक स्थान पर शरमन को जान्स्टन का आत्मसमर्पण और संधिचर्चा का पत्र मिला। उसने तत्काल उत्तर दे दिया। तीन दिन बाद वह रेल से ग्रीनबरो के लिए रवाना होने वाला ही था कि तार बाबू ने कहलवाया कि तुम्हारे लिए एक जरूरी सन्देश है। वह सीधा तारघर गया और उसे सुन कर अवाक् रह गया। फिर उसने तारबाबू को सौगन्ध दिलायी कि इस समाचार को

वह गुप्त रखे क्योंकि उसे यह भय था कि यदि उसकी सेना को यह समाचार शत्रु से संधि करने के पहले मिल जायेगा तो रैले में भयंकर अव्यवस्था और उपद्रव हो जायेगा। बाद में इस समाचार से बहुत दिनों तक वह विजयी सेना हर्ष की स्थिति में होते हुए भी अगाध शोकसागर में डूब गयी। यह शोकप्रदर्शन इतना हार्दिक था कि लोग कई दिनों तक इसे भुला नहीं पाये। शरमन जान्स्टन से मिलने अकेला ही पास के एक खेत में गया। वहाँ उसने उसे लिंकन की हत्या का समाचार सुनाया। शरमन उसे ध्यान से देख रहा था। वह कहता है कि जान्स्टन के माथे पर पसीने की बूँदें चमक उठीं। वह क्रोध से काँप उठा। उसने कहा, "यह इस युग के लिए सबसे बड़े कलंक की बात है।" बाद में उसने यह जानना चाहा कि क्या शरमन यह सोचता है कि इस कांड में दक्षिणी अधिकारियों का हाथ है। शरमन ने विश्वास दिलाया कि ली और उस पर कोई इस तरह का दोषारोपण नहीं कर सकता, परन्तु जेफरसन डेविस और इसी तरह के व्यक्तियों के प्रति उसे सन्देह है। शरमन की गलती से सन्धि में कुछ देर हुई जिसके कारण अधिकारियों ने मूल प्रस्ताव को ही अस्वीकार कर दिया। पर कुछ ही दिन बाद सब बातें तय हो गयीं और जान्स्टन की सारी सेना ने हथियार डाल दिये। बीस वर्ष बाद उनका नेता जो अब बहुत बुड्ढा हो चुका था शरमन की श्मशान यात्रा में शामिल हुआ। वहाँ उसे ठण्ड लग गयी और न्यूमोनिया से उसकी मृत्यु हो गयी। जेफरसन डेविस फ्लोरिडा की सीमा पर १० मई को पकड़ लिया गया। हत्या के सन्देह में वह जेल में पड़ा रहा, परन्तु जब राष्ट्रपति एण्ड्रयू जानसन को विश्वास हो गया कि उसके विरुद्ध जो सबूत इकट्ठे किये गये हैं वे निरर्थक हैं तो उसने उसे छोड़ दिया। बहुत दिनों तक डेविस मिसीसिपी में जीवित रहा। उसने अपने संस्मरण लिखे। जिसमें दक्षिण को पृथक करने के पूरे कानूनी तर्क, जोसफ जान्स्टन के साथ उसके विग्रह का अपना दृष्टिकोण तथा अन्य अनेक बातें हैं। उसने लिखा है—"जब हमने लिंकन की हत्या की बात सुनी तो कुछ सैनिकों ने आनन्द मनाया। परन्तु मुझे तो सचमुच ही दुख हुआ क्योंकि लिंकन के मुकाबले में एण्ड्रयू जानसन दक्षिण के अधिक विरुद्ध था।" हमें यह देखकर दुख होता है कि जिस व्यक्ति ने दृढ़ता के साथ इतिहास में इतना संस्मरणीय भाग लिया वह अपने-आपको संस्मरणों में पूर्णतया सही प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। दक्षिण के कई शहरों में और दूर में फैली हुई सैनिक टुकड़ियों के हार मान लेने के बाद टैक्सास में दक्षिणी जनरल किर्बी स्मिथ ने २६ मई को [illegible] के उत्तराधिकारी जनरल कानबाई को हथियार डाल दिये और चार वर्ष [illegible]

फिर भी यहाँ एक बात पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। वह जिस तरह के संगठनों के अन्दर विकसित हुआ उसे उसने स्वीकार किया और उसका उपभोग भी किया। परन्तु जनतंत्र की कमजोरियों और इसकी बुराइयों का उसे जो कड़ा अनुभव हुआ उसके कारण भी वह इससे विमुख नहीं हुआ। बाद के दिनों में भी उसे कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ परन्तु वह तनिक भी उसके व्यक्तित्व को प्रभावित नहीं कर सका। यदि लिंकन सरकार के स्वरूप पर गंभीर विचार करता तो उसको इस जनतांत्रिक सरकार से भी श्रेष्ठ कोई दूसरी प्रणाली अच्छी लगती। वह एक ऐसे देश का नागरिक था जहाँ न तो सामन्तशाही है न लोकतंत्र ही। उसके शब्दों या कार्यों से कोई राजनीतिक सिद्धान्त भी प्रगट नहीं होता। परन्तु उसकी भावनाएं और क्रियाकलाप साधारण व्यक्तियों और सामान्य सिद्धान्तों को गौरवान्वित करने वाले थे। वह परिहास-कला में बड़ा निपुण था। एक ओर शक्तिशाली महान व्यक्तिओं से लेकर दूसरी ओर जिम जेट के भाई अथवा बुड्ढे जज ब्राउन के शराबी गाड़ीवान तक उसके परिहास के पात्र थे। मानों इसी तरह यदाकदा विनोद करने वाले महाकवि वर्ड्सवर्थ को "जोंक चुनने वाले" या नेल्सन में नायक अथवा नेपोलियन या पीटर बेल में खलनायकों के गुण दिखायी दिये। अपने से अधिक योग्य मंत्रियों से काम लेने, उनकी प्रतिष्ठा करने, क्षमा करने और उनकी बात रद्द करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता था, क्योंकि वह उनसे भय नहीं खाता, न उनकी चापलूसी ही करता। उसके हृदय में उनके प्रति घृणा, डाह, या अनादर जैसी कोई बात नहीं थी। एक बार वह युवावस्था में जैक अर्मस्ट्रॉंग के सामने खड़ा होकर जिस स्थिति का अनुभव कर चुका था उसके बाद उसमें कभी ऐसी भावना पैदा ही नहीं हुई। उसने अपने उच्च पद की कठिनाइयों व संकटों का उसी दृढ़ता और बुद्धिमानी से मुकाबला किया जिस दृढ़ता और गरीबी की स्थिति में रोजी कमाते समय उसने किया था। उसने देश की पतवार उसी दृढ़ता से सम्हाली थी जिस दृढ़ता के साथ वह नाविक जीवन में तूफानों या बाढ़ में अपनी नाव खेता था। एक बार उसने किसी को राष्ट्रपति के रूप में हस्ताक्षर देते समय संक्षेप में लिखा था, "मैं कभी दास बनना नहीं पसन्द करता, अतएव मैं किसी का स्वामी भी बनना नहीं चाहता हूँ। जनतंत्र के बारे में मेरे यही विचार हैं। इसके विरुद्ध जो भी व्यवस्था है, और उसके विरोधाभास की सीमा जितनी ही विस्तृत है, उतनी ही वह व्यवस्था जनतंत्र नहीं है।"—अब्राहम लिंकन।

ऐतिहासिक घटनाओं की अनुक्रमणिका

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	इंगलैण्ड तथा अन्य देश
	१७५७–६० चैथम (विलियम पिट) का मंत्रीमंडल
१७५९ क्यूबेक विजय	१७५९ क्यूबेक की विजय
	१७६२ रूसो का 'कोन्ट्रैट सोशियल' प्रकाशित
	१७६४–७६ सूती उद्योग में महत्वपूर्ण आविष्कार
१७६५ स्टाम्प कानून पास हुआ	१७६५ वाट का भाप इंजन
१७७६ स्वतंत्रता की घोषणा	१७७६ अर्थशास्त्री एडम का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दि वेल्थ आफ नेशन्स' प्रकाशित
	१७७८ चैथम की मृत्यु
	१७८२ रोडनी की विजय
१७८३ अमरीकी स्वतंत्रता को मान्यता मिली	
१७८७ संविधान बना, राज्यों ने उत्तर-पश्चिम क्षेत्र काँग्रेस को दिया और उसमें गुलामी की प्रथा बन्द की	
१७८९ विधान लागू हुआ	१७८९ स्टेट्स जनरल की बैठक
१७९३ एली विटने के कपास ओटने के यंत्र का आविष्कार	१७९३ फ्रांसीसी प्रजातंत्र से इंगलैण्ड का युद्ध
	१७९४ फ्रांस-संसद द्वारा दास-व्यापार अवैध
१७९९ वाशिंगटन की मृत्यु	
	१८०२ आमीन की सन्धि
१८०३ लुईसियाना की खरीद	१८०३ नेपोलियन से इंगलैण्ड का युद्ध

संयुक्त राष्ट्र अमरीका		इंगलैण्ड तथा अन्य देश	
१८०४	हैमिल्टन की मृत्यु		
		१८०५	ट्राफलगर
		१८०६	अमरीकी फुलटन की भाप की नाव फ्रांस में सीन नदी पर
१८०७	फुलटन की भाप की नाव हडसन पर	१८०७	इंगलैण्ड ने दास व्यापार बन्द किया
१८०८	अमरीका ने दासव्यापार बन्द किया	१८०८	विमीरा का युद्ध सिंत्रा की बैठक वर्ड्सवर्थ के साहित्यक कार्य सर्वत्र प्रसिद्धि की ओर
१८०९	अब्राहम लिंकन का जन्म	१८०९	डारविन, टेनीसन, ग्लेडस्टन का जन्म
१८१२-१४	इंगलैण्ड से युद्ध		
		१८१५	वाटरलू
१८२०	मिसूरी समझौता		
१८२३	मुनरो सिद्धान्त की घोषणा		
		१८२५	इंगलैण्ड में प्रथम रेल्वे खुली
१८२६	जैफरसन की मृत्यु	१८२६	मैक्सिको और दक्षिण अमरीका में स्पेनी उपनिवेशों की स्वतंत्रता को कैनिंग द्वारा मान्यता मिली
		१८२७	नावारिनो
१८२८	'पृथकता' आन्दोलन जारी जैकसन का चुनाव		
		१८२९	कैथोलिक मुक्ति
१८३०	हेयने-वेबस्टर विवाद		
१८३१	गैरीसन द्वारा 'लिबरेटर' का प्रथम अंक प्रकाशित लिंकन न्यू सालेम में जीवन प्रारम्भ करता है अमरीका में पहली रेल्वे खुली	१८३१	मैजिनी द्वारा 'यंग इटली' की स्थापना
		१८३२	प्रथम सुधार प्रस्ताव

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	इंगलैण्ड तथा अन्य देश
	१८३३ अंगरेजी उपनिवेशों में दासमुक्ति
१८३४ लिंकन इल्लीनायस धारासभा में निर्वाचित	
	१८३६-४० 'ग्रेट बोअर ट्रेक'
१८३७ जैक्सन का दूसरा राष्ट्रपति-काल समाप्त	१८३७ विक्टोरिया को राजगद्दी मिली : भाप का पहला जहाज इंग्लैंड से अमरीका गया
	१८३८ इंग्लैंड में पहली तार की लाइन डाली गयी
	१८३९ लार्ड डरहम की कनाडा-सम्बन्धी रिपोर्ट
१८४१ अमरीका में पहली तार की लाइन डाली गयी	
१८४२ लिंकन ने इल्लीनायस धारा-सभा छोड़ी और नवम्बर में शादी की	
	१८४४ 'मार्टिन चूजलविट' प्रकाशित
१८४५ टैक्सास पर कब्जा	
१८४६ ओरेगन और ब्रिटिश कोलम्बिया की सीमा ग्रेट-ब्रिटेन के साथ तय	१८४६ संयुक्त राष्ट्र अमरीका के साथ ओरेगन तथा ब्रिटिश कोल-म्बिया की सीमा तय
१८४६-७ मेक्सिको युद्ध	१८४६–७ आयर्लेण्ड में अकाल
१८४७-८ लिंकन कांग्रेस में	
१८४८ कैलीफोर्निया में सोना मिला	१८४८ फ्रांस और यूरोप के कई भागों में क्रान्ति
१८५० क्ले-समझौता मान्य कलहान की मृत्यु	१८५० आस्ट्रेलियन उपनिवेशों का विधान कानून
१८५२ क्ले और वैबस्टर की मृत्यु	१८५२ न्यूजीलैण्ड का विधान कानून
१८५४ मिसूरी समझौता रद्द रिपब्लिकी दल बना	१८५४–५ आस्ट्रेलिया में सोने के लिए भागदौड़ क्रीमिया युद्ध

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	इंगलैण्ड तथा अन्य देश
	१८५४-६ पुर्तगाली राज्यों में दास-मुक्ति
१८५६ बुकनान ने फ्रेमोण्ट को हराया	
१८५७ ड्रेड स्काट मामला	१८५७-८ भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध
१८५८ कन्सास में लिंकन-डगलस विवाद	
१८५९ जान ब्राउन का छापा	१८५९ डारविन का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ओरीजिन आफ स्पेसीज' प्रकाशित
	१८५९-६० इटली साम्राज्य बना
१८६० नवम्बर में लिंकन राष्ट्रपति निर्वाचित दिसम्बर में दक्षिण केरोलिना में संघ से अलगाव का प्रस्ताव पास	१८६० डच पूर्वी द्वीपों में दासमुक्ति
१८६१ फरवरी ४—दक्षिण संघ बना मार्च ४—लिंकन का पदग्रहण अप्रैल १२-१४—सम्टर किले पर गोलाबारी अप्रैल-युद्ध प्रारम्भ, और अधिक अलगाव जुलाई—बुलरन का प्रथम युद्ध दिसम्बर—ट्रेण्ट पर इंगलैण्ड का दावा मान्य	१८६१ रूसी अर्धदासों की मुक्ति
१८६२ अप्रै०-अग०—मैक्लीन प्रायद्वीप में अप्रैल—शिलोह मई—जैकसन शेनानडोआ घाटी में अग०-अक्टू०—दक्षिणी सेना केण्टकी में अग०—बुलरन का दूसरा युद्ध	१८६२ अलबामा मरसी से भाग निकला (जुलाई)

	संयुक्त राष्ट्र अमरीका		इंगलैण्ड तथा अन्य देश
	सित०—ऐण्टीटम में दास-मुक्ति घोषणा नव०—मैक्लीन हटाया गया दिस०—फ्रेड्रिकबर्ग, मरफ्रीब्रो		
१८६३	मार्च १—जबरन भर्ती कानून मई—चांसलरविले, जैकसन मारा गया जुलाई—गेटिसबर्ग, विक्स-बर्ग, न्यूयार्क में हुल्लड़ सित०—चिकामौगा नवं०—गेटिसबर्ग भाषण, चाटानूगा	१८६३	पौलैण्ड में क्रांति, मैक्समिलियन मेक्सिको का सम्राट घोषित
१८६४	मई—ग्राण्ट और शरमन के महान अभियान प्रारम्भ जून—कोल्ड हारबर, बाल्टीमोर सम्मेलन जुलाई—अरली का हमला वाशिंगटन तक अगस्त—मोबाइल शिकागो सम्मेलन सित०—शरमन अटलाण्टा में, शेरीडन शेनानडोआ घाटी में नव०—लिंकन दुबारा राष्ट्रपति निर्वाचित दिस०—नेशविले, शरमन सवाना में	१८६४	प्रशिया और आस्ट्रिया का डेनमार्क पर आक्रमण
१८६५	जन०—काँग्रेस द्वारा १३ वाँ संशोधन स्वीकृत शरमन और शेरीडन आगे बढ़े		

	संयुक्त राष्ट्र अमरीका		इंगलैण्ड तथा अन्य देश
	मार्च ४—लिंकन द्वारा दुबारा पद-ग्रहण		
	अप्रे. २–९–रिचमण्ड विजय, ली का समर्पण		
	अप्रे. १४–१५—लिंकन की हत्या		
	दिस. ३१–संविधान में १३ वाँ संशोधन मंजूर		
१८६६	अटलांटिक महासागर में तार की लाइन (केबल) सफलता से बिछायी गयी	१८६६	अटलांटिक तार की लाइन सफलता से डाली गयी, आस्ट्रिया-प्रशिया युद्ध
		१८६७	ब्रिटिश उत्तर अमरीका अधिनियम, दास बच्चे ब्राजील में मुक्त, मेक्सिको में मैक्सिमिलियन की हार और फाँसी
१८६८	'पुनर्गठित' दक्षिण में भारी अव्यवस्था	१८६८	जापान में पुनः मिकाडो सरकार पोप अडिग
१८७०	नीग्रो मताधिकार स्वीकृति के लिए संशोधन	१८७०	फ्रांस-जर्मन युद्ध
१८७२	अलाबामा के सम्बन्ध में ग्रेट ब्रिटेन से पंच निर्णय	१८७२	अमरीका से अलाबामा के सम्बन्ध में पंचनिर्णय केप उपनिवेश में उत्तरदायी सरकार
१८७६	पुनःनिर्माग की असफलता मंजूर : हेस का निर्वाचन		
१८७७	गणराज्य की सेनाएँ दक्षिण से वापिस ।		
		१८७८	स्पेन के अंतिम उपनिवेश क्यूबा में दास-मुक्ति

पर्ल पुस्तकमाला

योगी और अधिकारी—आर्थर कोएस्लर। सुप्रसिद्ध साहित्यक-विचारक द्वारा लिखित आज के गंभीर प्रश्नों पर गवेषणापूर्ण निबंध। मूल्य ५० नये पैसे।

थामस पेन के राजनैतिक निबंध—मानव के अधिकारों और शासन के मूलभूत सिद्धांतों से सम्बंधित एक महान कृति। मूल्य : ५० नये पैसे।

नववधू का ग्राम-प्रवेश—स्टिफन क्रेन। महान अमरीकी लेखक स्टिफन क्रेन की नौ सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह। मूल्य : ७५ नये पैसे।

भारत-मेरा घर—सिंथिया बोल्स। भारत में भूतपूर्व अमरीकी राजदूत चेस्टर बोल्स की सुपुत्री के भारत-सम्बंधी संस्मरण। मूल्य : ७५ नये पैसे।

स्वातंत्र्य-सेतु—जेम्स ए. मिचनर। हंगेरी के स्वातंत्र्य-संग्राम का अति सजीव चित्रण इस पुस्तक में किया गया है। मूल्य : ७५ नये पैसे।

शस्त्र-विदाई—अर्नेस्ट हेमिंग्वे। युद्ध और घृणा से अभिभूत विश्व की पृष्ठभूमि में लिखित एक विश्व-विख्यात उपन्यास। मूल्य : १ रुपया।

डा. आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड—लिंकन बारनेट। आइन्स्टीन के सिद्धान्तों को इसमें सरल रूप से समझाया गया है। मूल्य : ७५ नये पैसे।

अमरीकी शासन-प्रणाली—अर्नेस्ट एस. ग्रिफिथ। अमरीकी शासन-प्रणाली को समझने में यह पुस्तक विशेष लाभदायक है। मूल्य : ५० नये पैसे।

अध्यक्ष कौन हो ?—केमेरोन हावले। एक सुप्रसिद्ध, सशक्त और कौशलपूर्ण उपन्यास, जो कुल चौबीस घंटे की कहानी है। मूल्य : १ रुपया।

अनमोल मोती—जॉन स्टेनबेक। स्टेनबेक ने इसमें एक सरल-हृदय मछुए की बड़ी मार्मिक कथा प्रस्तुत की है। मूल्य : ७५ नये पैसे।

अमेरिका में प्रजातंत्र—अलेक्सिस डि. टोकवील। प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व प्रख्यात फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ द्वारा लिखित एक अमर कृति। मूल्य : ७५ नये पैसे।

फिलिपाइन में कृषि सुधार—एल्विन एच. स्काफ। फिलिपाइन में हुए हुक-विद्रोह और वहाँ की सरकार द्वारा शांति के लिए किये गये प्रयासों का अति रोचक वर्णन। मूल्य : ५० नये पैसे।

मनुष्य का भाग्य—लकॉम्ते द नॉय। एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक द्वारा जीव और जगत के मूलभूत प्रश्नों का वैज्ञानिक विश्लेषण। मूल्य : ७५ नये पैसे।

शांति के नूतन क्षितिज—चेस्टर बोल्स। आज की विश्व-समस्याओं पर एक सुस्पष्ट एवं विचारपूर्ण विवेचन। मूल्य : १ रुपया।

जीवन के शिखर—अर्नेस्ट के. गेन। यह उपन्यास सन् १९५४ का सबसे अधिक बिकनेवाला उपन्यास माना जाता है। मूल्य : १ रुपया।

१९५९ के नये प्रकाशन

डनबार की घाटी—बोर्डन डील। अपनी पैतृक सम्पत्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए एक किसान के संघर्ष की कहानी। मूल्य : १ रुपया।

रूस की पुनर्यात्रा—लुई फिशर। स्तालिन की मृत्यु के बाद प्रख्यात पत्रकार फिशर की रूस यात्रा का अति रोचक वर्णन। मूल्य : ७५ नये पैसे।

रोम से उत्तर में—हेलेन मेक् ईनूस। रहस्य, रोमांच और खतरों से परिपूर्ण यह उत्कृष्ट उपन्यास सभी को रोचक लगेगा। मूल्य : १ रुपया।

मुक्त द्वार—हेलेन केलर। अंधी, गूंगी और बहरी होते हुए भी हेलन केलर का नाम विश्व-विख्यात है। प्रस्तुत पुस्तक में वे एक गंभीर विचारक के रूप में प्रकट होती हैं। मूल्य : ५० नये पैसे।

हमारा परमाणुकेन्द्रिक भविष्य—एडवर्ड टैलर और अल्बर्ट लैटर। परमाणुशक्ति के तथ्य, खतरों तथा सम्भावनाओं की चर्चा प्रस्तुत पुस्तक में अमरीका के दो विशेषज्ञों द्वारा की गयी है। मूल्य : १ रुपया।

नवयुग का प्रभात—थामस ए. डूली, एम. डी.। एक नवजवान डाक्टर की दिलचस्प कहानी जो भयंकर रोगों से ग्रसित जनता की सेवा के लिए सुदूर लाओस में जाता है। मूल्य : ७५ नये पैसे।

रूजवेल्ट का युग (१९३२-४५)—डेक्स्टर पर्किन्स। मूल रूप में शिकागो युनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक रूजवेल्ट के समय का अच्छा ——— है। मूल्य : ४० नये पैसे।